व्यावहारिक मनोविज्ञान

डॉ. वात्स्यायन

व्यावहारिक मनोविज्ञान

(APPLIED PSYCHOLOGY)

[यू॰ पी॰ बोर्ड की इन्टरमीडियेट परीक्षा में मनोविज्ञान विषय के द्वितीय प्रश्न-पत्र के पाठ्यक्रमानुसार]

लेखक

डॉ॰ वात्स्यायन

[तृतीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण]

१९६६

केदार नाथ राम नाथ

प्रकाशक मेरठ

प्रकाशक
केदार नाथ राम नाथ,
मेरठ।

प्रथम संस्करण १९६३
द्वितीय संस्करण १९६४
तृतीय संस्करण १९६६

मूल्य ५.०० रु०

मुद्रक
नवज्योति प्रिंटिंग प्रेस,
मेरठ।

SYLLABUS

Psychology

PAPER II—*Applied Psychology*

1. Psychological Testing and Guidance—Tests of Intelligence, special abilities, Interests and Personality. Verbal and Non-verbal tests. Individual and Group Tests. Validity and Reliability.

2. Educational, Vocational and Personal Guidance with special reference to Indian conditions. Guidance Service in U. P.

3. Mental Hygiene—Meaning, Scope and value of Mental Hygiene. What is Mental Health. Causation of Mental ill-health. Corrective and preventive measures.

4. Juvenile Delinquency—
   (a) Causes—Social, Economic and Psychological.
   (b) Corrective Measures—Probation, reformatory schools and psycho-therapy.

5. Crowds and Audiences : Exprience and behaviour as a member of—
   (a) an aggressive mob
   (b) a panicky crowd and
   (c) an audience at a speech, sermon, etc.

6. Group Tensions—Their growth, persistence and methods of relief with special reference to casteism, communalism, regionalism, linguism in India.

7. Advertisement and Propaganda—
   The Psychological basis of their appeal.
   Prophylaxis against misleading suggestion and partial truths.

8. Psychology in Industry—Personal selection. Working Conditions and chances of promotion. Human relations in industry with special reference to administration and welfare activities. Strikes and lock-outs.

List of Experiments and Activities—

1. Administration of Psychological Tests.

2. Collection and analysis of sayings reflecting caste, community and regional prejudices to bring out their inadequate basis.

3. Collection of various advertisements and their analysis to discover the basis of their appeal.

4. Observation of election propaganda at the time of election to the Municipality, District Board or the Assembly with reference to factual basis, suggestibility and emotional appeal.

प्रश्न-सूची

प्रश्न-संख्या		पृष्ठ-संख्या
	अध्याय १—विषय प्रवेश	
१	व्यावहारिक मनोविज्ञान क्या है ? भारत में उसकी क्या आवश्यकता है ?	१
२	व्यावहारिक मनोविज्ञान के क्षेत्र का संक्षिप्त वर्णन कीजिये ।	४
३	व्यावहारिक मनोविज्ञान के मूल्य के बारे में आप क्या जानते हैं ? सक्षेप में बतलाइये ।	६
	अध्याय २—मनोवैज्ञानिक परीक्षण और निर्देशन	
४	निर्देशन क्यों जरूरी है ? इसके लिये मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की क्या आवश्यकता है ?	१४
५	बुद्धि परीक्षणों के विकास के इतिहास का संक्षिप्त वर्णन करो । (अथवा) : बुद्धि-लब्धि से आप क्या समझते हैं ? यदि १० वर्ष की अवस्था के बालक की मानसिक आयु १२ वर्ष है तो उसकी बुद्धि-लब्धि क्या होगी तथा उसका स्तर क्या होगा ? बुद्धि-लब्धि के अनुसार लोगों का वर्गीकरण कैसे होता है ?	१५
६	बुद्धि से क्या तात्पर्य है ? बुद्धि मापन (Intelligence Testing) के शाब्दिक (Verbal) तथा अशाब्दिक (Non Verbal) परीक्षण में क्या भेद हैं ? इन दोनों का प्रयोग किन-किन विशेष परिस्थितियों में होता है ?	१९
७	उदाहरण देकर बतलाइये कि विशेष योग्यताओं की परीक्षा कैसे की जाती है । इन परीक्षणों का क्या महत्व है ?	३१
८	रुचि परीक्षण का क्या महत्व है ? रुचि परीक्षण के कुछ उदाहरण दीजिये तथा रुचि सूचियों की सीमायें बतलाइये । (अथवा) रुचि-पत्री (Interest inventory) अथवा निर्धारण मान (Rating scale) का वर्णन कीजिए ।	३२
९	व्यक्तित्व की परीक्षा की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए और उनके गुण-दोषों की समीक्षा कीजिये ।	३७

१० संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—परीक्षणों की वैधता और विश्वसनीयता (Validity and Reliability of Tests) (अथवा) मनोवैज्ञानिक परीक्षण की विश्वसनीयता (Reliability) तथा वैधता (Validity) से आप क्या समझते हैं ? किसी परीक्षण की विश्वसनीयता को निश्चित करने के लिये किन विधियों का प्रयोग किया जाता है ? ४७

अध्याय ३—शैक्षिक, व्यवसायिक और वैयक्तिक निर्देशन

११ निर्देशन की क्या आवश्यकता है ? निर्देशन क्या है ? संक्षेप में बतलाइये। ५१

१२ कर्मचारी सेवा और निर्देशन सेवा में अन्तर बतलाइये। ५६

१३ शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन में क्या सम्बन्ध है ? शैक्षिक निर्देशन के कार्यों तथा विभिन्न पहलुओं का वर्णन कीजिये। भारतीय उदाहरण दीजिये। (अथवा) जूनियर हाई स्कूल स्तर पर शैक्षिक निर्देशन के महत्व का विवेचन कीजिए। उपयुक्त निर्देशन के मार्ग में किन-किन कठिनाइयों का अनुभव होता है ? ५७

१४ व्यावसायिक निर्देशन से क्या अर्थ समझते हैं ? व्यावसायिक निर्देशन के लिये किन-किन बातों को जानना आवश्यक है ? इस पर प्रकाश डालिए। ६६

१५ पश्चिम और भारत में व्यावसायिक निर्देशन की प्रगति का संक्षिप्त वर्णन कीजिये। व्यावसायिक निर्देशन की प्रक्रिया बतलाइये। ६९

१६ वैयक्तिक निर्देशन क्या है ? उसका अन्य प्रकार के निर्देशनों से क्या सम्बन्ध है ? ७३

१७ वैयक्तिक निर्देशक की क्या आवश्यकता और महत्व है ? ७४

१८ वैयक्तिक निर्देशन की प्रक्रिया को विस्तार से समझाइये। इस सम्बन्ध में उत्तरोत्तर अनुशीलन की पद्धतियाँ बतलाइये और वैयक्तिक निर्देशन का एक उदाहरण दीजिये। ७६

१९ संक्षिप्त टिप्पणी लिखो—भारत में निर्देशन सेवा व्यवस्था। ८१

२० संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—उत्तर प्रदेश में निर्देशन सेवायें। ८२

अध्याय ४—मानसिक आरोग्य

२१ मानसिक आरोग्य का क्या अर्थ है ? उसका उद्देश्य तथा विभिन्न पहलू बतलाइए तथा उसकी परिभाषा कीजिए। ९२

२२ मानसिक आरोग्य के क्षेत्र का वर्णन कीजिए। ९५

२३ मानसिक आरोग्य का क्या मूल्य है ? भारत में मानसिक आरोग्य का महत्व बतलाइये। ९६

२४ मानसिक स्वास्थ्य क्या है ? उसका मानसिक आरोग्य से क्या सम्बन्ध है ? मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति के लक्षण बतलाइये । ९९

२५ मानसिक अस्वस्थता के कारणों की संक्षेप में विवेचना कीजिये । १०३

२६ मानसिक अस्वस्थता के विभिन्न उपचार बतलाइये । १०९

२७ मानसिक अस्वस्थता की रोकथाम के उपाय बताइए । ११२

२८ मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान (Mental Hygiene) तथा मानसिक स्वास्थ्य में क्या अन्तर है ? पाठशाला के बालकों में मानसिक स्वास्थ्य के संवर्द्धन के लिये आप सामान्यतः क्या उपाय करेंगे ? ११६

अध्याय ५—किशोरापराध

२९ बाल अपराध (Juvenile delinquency) किसे कहते हैं ? बाल अपराध के मनोवैज्ञानिक कारणों पर प्रकाश डालिये । (अथवा) बाल अपराध किसे कहते हैं ? इनके सामाजिक तथा आर्थिक कारणों की व्याख्या कीजिये । ११७

३० किशोरापराध के कारण क्या है ? सामाजिक, आर्थिक और मनो-वैज्ञानिक कारणों का वर्णन कीजिये । (अथवा) बाल अपराध के मनोवैज्ञानिक कारणों पर प्रकाश डालिये । अपने उत्तर की पुष्टि उदाहरणों से कीजिये । १२०

३१ आधुनिक सभ्य देशों में किशोरापराध के सुधार के क्या उपाय किये जाते हैं ? इस प्रसंग में प्रवीक्षण सुधार संस्थाओं और मनोवैज्ञानिक उपचार का वर्णन कीजिये । १३३

३२ किशोरापराध की रोकथाम के उपाय बताइये । १४१

अध्याय ६—भीड़ तथा श्रोता समूह

३३ भीड़ की परिभाषा कीजिये । एक श्रोता समूह भीड़ का रूप कैसे धारण कर लेता है ? (अथवा) भीड़ तथा श्रोता समूह में क्या अन्तर है ? उदाहरण सहित समझाइये । भीड़ को किस प्रकार नियन्त्रण में लाया जा सकता है ? १४६

३४ आप भीड़ के सामूहिक व्यवहार को कैसे समझायेंगे ? १५०

३५ साधारण भीड़ (Crowd) और आक्रामक भीड़ (mob) में क्या भेद है ? साधारण भीड़ की क्या विशेषतायें हैं ? १५२

३६ भीड़ के प्रमुख रूपों को बताइए । इनमें से प्रत्येक प्रकार की भीड़ के मनोवैज्ञानिक लक्षणों का वर्णन कीजिये । १५७

३७ विभिन्न प्रकार की सक्रिय भीड़ के सदस्य के अनुभव तथा व्यवहार का संक्षेप में वर्णन कीजिये और उनकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या कीजिये । १६०

३८ श्रोता समूह का वर्गीकरण कीजिये और विभिन्न प्रकार के श्रोता समूहों में सदस्यों के अनुभव तथा व्यवहार का वर्णन कीजिये । १६८

अध्याय ७—सामूहिक तनाव

३९ सामूहिक तनाव क्या है ? उनका विकास तरह होता है ? (अथवा) पूर्वधारणा (Prejudice) से क्या तात्पर्य है ? पूर्वधारणा किस प्रकार सामूहिक तनाव उत्पन्न करती है ? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिये । (अथवा) पूर्वधारणा से क्या अभिप्राय है ? उदाहरण देकर समझाइये । पूर्वधारणा को दूर करने के लिये क्या उपाय हैं ? १७२

४० सामूहिक तनाव के स्थायित्व के कारण बतलाइये । १७९

४१ सामूहिक तनाव के निवारण की मुख्य-मुख्य विधियाँ बतलाइये एवं भारतीय परिस्थितियों में उदाहरण दीजिये । १८५

४२ सामूहिक तनाव का विकास किस प्रकार होता है ? जातिवाद (Casteism) तथा सम्प्रदायवाद (Communalism) के उदाहरण देकर अपने उत्तर को स्पष्ट कीजिए । १८९

४३ भारतवर्ष में क्षेत्रवाद के विकास और स्थायित्व के कारण बताइए तथा उनके निवारण के उपाय सुलझाइये । १९७

४४ भारत में भाषावाद के विकास और स्थायित्व के कारण बतलाइये और उनके निवारण के लिये सुझाव दीजिए । २००

अध्याय ८—विज्ञापन और प्रचार

४५ विज्ञापन क्या है ? उसके उद्देश्य बतलाइये । २०४

४६ विज्ञापन की अपील के मनोवैज्ञानिक आधार की विवेचना कीजिये । (अथवा) विज्ञापन कला के क्या सिद्धान्त हैं ? विज्ञापन के मनोवैज्ञानिक प्रभाव की विवेचना कीजिये । २०६

४७ प्रचार क्या है ? उसकी अपील का मनोवैज्ञानिक आधार बतलाइये । २१६

४८ प्रचार की विभिन्न प्रविधियाँ (Techniques) बतलाइये ? प्रभावशाली प्रचार में किन बातों का ख्याल रखना चाहिए ? २२१

४९ भ्रामक प्रचार और विज्ञापनों का प्रतिरोध करने के उपाय बतलाइये । २२५

५० प्रचार का क्या अर्थ है ? प्रचार में नारों (Slogans) का क्या स्थान है ? कुछ उदाहरण देकर समझाइये । २२७

५१ संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :— निर्देशशीलता (Suggestibility) २२८

अध्याय ९—उद्योग में मनोविज्ञान

५२	मनोविज्ञान का उद्योग में क्या महत्व है ? कर्मचारियों के चयन (Personnel Selection) में मनोविज्ञान किस प्रकार सहायक होता है ?	२३२
५३	संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये :—कर्मचारियों का चयन (Personnel Selection)। (अथवा) किसी उद्योग में काम करने वाले लोगों का चुनाव किन सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है ? इस प्रकार के चुनाव तथा व्यावसायिक निर्देशन के अन्तर को स्पष्ट कीजिये।	२३५
५४	उद्योग में कार्य की दशाओं का क्या महत्व है ? कार्य की विभिन्न दशाओं का वर्णन करते हुये उनमें सुधार के सुझाव दीजिये।	२४३
५५	पदोन्नति कितने प्रकार की होती है ? वह किन बातों पर निर्भर होती है ? उसका औचित्य और महत्व बतलाइये।	२४९
५६	प्रशासन और कल्याण के कार्यों का विशेष रूप से निर्देश करते हुए उद्योग में मानवीय सम्बन्धों की चर्चा कीजिए।	२५३
५७	श्रम-कल्याण क्या है ? उसके क्या कार्य हैं ? उससे मालिकों को क्या लाभ हैं ? भारत में श्रम-कल्याण का महत्व बतलाइये।	२५७
५८	संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—हड़ताल और तालेबन्दी।	२६३

अध्याय १०—पाठ्यक्रम में निर्धारित प्रयोग

५९	शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण पर एक प्रयोग का वर्णन कीजिये।	२६८
६०	अशाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण पर एक प्रयोग का वर्णन कीजिए।	२७१
६१	व्यावसायिक रुचि पत्री द्वारा रुचि का पता लगाने के लिए एक प्रयोग का वर्णन कीजिए।	२७५
६२	जाति सम्बन्धी दो पूर्व धारणाओं (Prejudices) की प्रचलित कहावतें बताइये। इनकी असंगति (Absurdity) को दिखाने के लिए क्या उपाय करेंगे ?	२७९
६३	विज्ञापनों को एकत्र कर उनका प्रभाव जानने के लिये जो प्रयोग आपने किया हो, उसको लिखिये।	२८४
६४	एसेम्बली के चुनाव के अवसर पर चुनाव प्रचार के परीक्षण तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के प्रयोग का वर्णन करो।	२८६

१

विषय प्रवेश
(Introduction)

प्रश्न १—व्यावहारिक मनोविज्ञान क्या है ? भारत में उसकी क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—व्यावहारिक मनोविज्ञान, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है मनोविज्ञान का व्यावहारिक पहलू है। हैपनर (Hepner) के शब्दों में "व्यावहारिक मनोविज्ञान के लक्ष्य मानव क्रियाओं का वर्णन, भविष्य कथन और नियंत्रण हैं ताकि हम स्वयं अपने जीवन को बुद्धिमत्तापूर्वक समझ सकें और निर्देशित कर सकें तथा दूसरों के जीवन को प्रभावित कर सकें।"* इस तरह व्यावहारिक मनोविज्ञान को मनोविज्ञान की शाखा न कहकर उसका एक पहलू कहना अधिक अच्छा होगा। जिस तरह हर एक विज्ञान के मौखिक (theoretical) और व्यावहारिक (Applied) दोनों पहलू होते हैं उसी तरह मनोविज्ञान में भी मौखिक अध्ययन के साथ व्यावहारिक पहलू भी है। भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र तथा समाज शास्त्र आदि विभिन्न विज्ञानों की खोजों का भी व्यावहारिक जीवन में प्रयोग किया गया है। अपनी प्रयोगशालाओं में प्रयोग के आधार पर वैज्ञानिक सामान्य सिद्धान्तों की खोज करता है। परन्तु इन सामान्य सिद्धान्तों की उपयोगिता प्रयोगशालाओं की चहारदीवारियों तक ही सीमित नहीं है। आखिरकार मानव जीवन का मुख्य उद्देश्य जीना है और यह जीना भी कीड़े-मकोड़ों की तरह जीना नहीं बल्कि मनुष्य की तरह जीना है। मनुष्य की विशेषता यह है कि उसको बुद्धि मिली है जिसके आधार पर वह अपने चारों तरफ की चीजों को समझ सकता है, उनके सामान्य नियमों की खोज कर सकता है और अपने जीवन को वेहतर बनाने के लिये उनका इस्तेमाल कर सकता है। यही सारे ज्ञान विज्ञान का मूल स्रोत है। अतः दूसरे विज्ञानों की तरह मनोविज्ञान भी मनुष्य के कल्याण के लिये ही है। इनका मतलव यह नहीं हुआ कि केवल ज्ञान बढ़ाने के लिये सत्यों की खोज नहीं की जाती या किसी मौखिक अध्ययन की जीवन में कोई

व्यावहारिक मनोविज्ञान क्या है ?

* "The aims of applied psychology are the description, prediction and control of human activities in order that we may understand and direct intelligently our lives and influence the lives of other."

—H. W. Hepner.

जगह नहीं है। सच पूछिये तो मनुष्य के जीवन में मौखिक और व्यावहारिक का अन्तर ही बिल्कुल सापेक्ष (Relative) है। जो बात एक ओर से देखने पर मौखिक मालूम पड़ती है वही दूसरे पहलू से व्यावहारिक सिद्ध हुई है। कहना न होगा कि मनोविज्ञान के मौखिक अध्ययन से मिले हुये तथ्यों का अधिक से अधिक व्यावहारिक उपयोग किया जा रहा है और भविष्य में इस उपयोग के बढ़ते ही जाने की आशा है।

व्यावहारिक मनोविज्ञान का इतिहास

ऐतिहासिक क्रम में मौखिक अध्ययन पहले होता है और उसके बाद उसका व्यावहारिक उपयोग किया जाता है। इस तरह मनोविज्ञान में भी पहले तरह-तरह के सिद्धान्त खोजे गये और फिर उनका इस्तेमाल किया गया। स्पष्ट है कि व्यावहारिक मनोविज्ञान सामान्य मनोविज्ञान के बाद पैदा हुआ। पैटर्सन (Patterson) ने अपने लेख Applied Psychology Comes of Age में व्यावहारिक मनोविज्ञान के विकास के इतिहास को नीचे लिखे हुये चार भागों में बाँटा है—

१. गर्भावस्था—१८८२ से लेकर १९१७ तक व्यावहारिक मनोविज्ञान का गर्भावस्था काल था। इस काल में गाल्टन, कैटेल और बिने (Binet) का काम महत्वपूर्ण है। इस काल में अमेरिका विश्व युद्ध में लगा हुआ था।

२. जन्म काल—पैटर्सन के अनुसार १९१७ से १९१८ तक व्यावहारिक मनोविज्ञान का जन्म काल माना जाना चाहिये। इस काल में अमेरिका में सेनाओं में भर्ती के लिये मनोविज्ञान का इस्तेमाल किया गया। सैनिकों के चुनाव के लिये आर्मी आल्फा (Army Alpha) और आर्मी बीटा (Army Beta) परीक्षण तैयार किये गये।

३. बाल्यावस्था—पैटर्सन के अनुसार सन् १९१८ से १९३७ तक व्यावहारिक मनोविज्ञान की बाल्यावस्था मानी जानी चाहिये। १९३७ में अमेरिका में व्यावहारिक मनोविज्ञान की एक राष्ट्रीय संस्था कायम हुई जिसने राष्ट्रीय सुधार में मनोविज्ञान के व्यवहार को बढ़ावा देना शुरू किया।

४. युवावस्था—इसके बाद से व्यावहारिक मनोविज्ञान अपनी युवावस्था में प्रवेश करता है। तब से आज तक इसका क्षेत्र बढ़ता ही जा रहा है और बढ़ता ही जायेगा। व्यावहारिक मनोविज्ञान के विकास का इतिहास वास्तव में अमेरिका में उसके विकास का इतिहास है यद्यपि यह निश्चित है कि व्यावहारिक मनोविज्ञान का वर्तमान रूप अमेरिका में विकसित हुआ है।

व्यावहारिक मनोविज्ञान ने मनोविज्ञान को जिस खोज को सबसे अधिक बढ़ावा दिया है वह व्यक्तिगत विभिन्नताओं (Individual Differences) से सम्बन्धित है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से व्यक्तियों में बुद्धि, सामर्थ्य, व्यक्तित्व के गुण तथा अनेक बातों में भारी भेद दिखाई पड़ा। इससे यह बात स्पष्ट हो गई कि सभी लोग एक सा काम नहीं कर सकते। आधुनिक युग में श्रम विभाजन का बड़ा भारी महत्व है। सभी आधुनिक देशों में सारी आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था श्रम विभाजन पर ही टिकी होती है। श्रम विभाजन का सिद्धांत इस मनोवैज्ञानिक तथ्य पर आधारित है कि सभी लोग सभी तरह का काम नहीं कर सकते। कोई भी देश श्रम विभाजन से अधिक से अधिक फायदा तभी उठा सकता है जब कि वह राष्ट्रीय पमाने पर अपने सभी नागरिकों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं की जांच करवाये और सही व्यक्ति के लिये सही काम तथा सही काम के लिए सही व्यक्ति की व्यवस्था करे। इससे जहाँ राष्ट्रीय शक्ति का अधिक से अधिक इस्तेमाल होगा वहाँ शक्ति की व्यर्थ हानि भी नहीं होगी। उदाहरण के लिये अगर एक आदमी को मशीन के कामों में अधिक दिलचस्पी है और उसको पढ़ाने का काम करना पड़ रहा हो तो इससे न केवल देश को एक अच्छा इन्जीनियर नहीं मिल पाता बल्कि एक बुरे अध्यापक के होने से देश का नुकसान होता है। इस बात को समझकर आजकल सभी प्रगतिशील देश व्यावसायिक निर्देशन का अधिक से अधिक इस्तेमाल करने की कोशिश कर रहे हैं। अतः व्यावहारिक मनोविज्ञान की हर कदम पर जरूरत पड़ती है।

व्यक्तिगत विभिन्नताओं के परीक्षण

भारत एक नवोदित जनतन्त्र है। जनतन्त्र की शक्ति जनता में है। जनता नागरिकों का सामूहिक नाम है। ये नागरिक भिन्न-भिन्न योग्यतायें रखते हैं। जनतन्त्र का विकास इन्हीं नागरिकों के विकास पर निर्भर है। अतः भारत का भविष्य उज्ज्वल बनाने के लिये यह जरूरी है कि देश के नागरिकों को योग्यता के अनुसार उनको काम दिया जाय और उनसे अधिक और अच्छा काम लेने लायक परिस्थितियाँ पैदा की जायें। यहाँ पर व्यावहारिक मनोविज्ञान की जरूरत स्वयं सिद्ध हो जाती है। भारत में मनोविज्ञान का अध्ययन शुरू हुये अभी बहुत दिन नहीं हुये परन्तु फिर भी व्यावहारिक मनोविज्ञान का प्रचार धीरे-धीरे बढ़ रहा है। यह बराबर अनुभव किया जा रहा है कि शिक्षा, उद्योग, अपराध निरोध, चुनाव, प्रचार आदि अनेक क्षेत्रों में मनोवैज्ञानिक उपायों से काम लेने की जरूरत है। यह तथ्य माना जा चुका है कि इन कामों में मनोवैज्ञानिक पद्धतियों का निरीक्षण और परीक्षण, अनुसंधान और खोज का बड़ा महत्व है। अकेले शिक्षा के क्षेत्र को ही लिया जाय तो भारत में करोड़ों बालकों को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उपयुक्त शिक्षा की जरूरत है। आजकल की पढ़ाई न तो नवयुवकों में चरित्र

भारत में व्यावहारिक मनोविज्ञान की आवश्यकता

निर्माण करती है, न उनको अपनी रोजी कमाने के योग्य बनाती है और न उनमें यह समझने की ताकत पैदा करती है कि वे क्या कर सकते हैं और उनको क्या करना चाहिये। इस सब के लिये मनोविज्ञान की जरूरत है। देश को स्वतन्त्र हुये अभी कुछ ही दिन हुये है कि अनेक विघटनकारी शक्तियों ने अपना काम करना शुरू कर दिया है। कुछ लोग जातिवाद का झंडा उठाये हुये हैं तो कुछ लोग भाषा के नाम पर अलग प्रान्त की मांग पेश करते हैं। कुछ लोग प्रान्तीयता का जहर उगल रहे हैं, तो कुछ लोग धर्म का झंडा लेकर राजनैतिक क्षेत्र में उतर आये हैं। वर्ग-द्वेष अलग बढ़ रहा है। स्वार्थ, घूसखोरी, निष्क्रियता के साथ-साथ निराशा और हताशा (Frustration) भी कम नहीं है। इन सब परिस्थितियों को सुलझाने के लिए मनोवैज्ञानिक खोजों से बड़ी सहायता मिलेगी। मनोविज्ञान के इस उपयोग को समझ कर देश में जगह-जगह पर मनोविज्ञानशालायें खोली जा रही है जिनमें व्यावसायिक निर्देशन और शिक्षा सम्बन्धी तथा व्यक्तिगत समंजन के विषय में परामर्श दिये जाते हैं।

★

प्रश्न २—व्यावहारिक मनोविज्ञान के क्षेत्र का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।

व्यावहारिक मनोविज्ञान का क्षेत्र

(Scope of Applied Psychology)

जहाँ-जहाँ मानव जीवन में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग किया जा सकता है वहाँ-वहाँ व्यावहारिक मनोविज्ञान का क्षेत्र भी है। इस तरह व्यावहारिक मनोविज्ञान का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। स्थूल रूप से उसके क्षेत्र को निम्नलिखित विभागों में बांटा जा सकता है :—

१. मानसिक चिकित्सा और स्वास्थ्य (Mental Cure and Hygiene)
२. मशवरा तथा निर्देशन (Counselling and Guidance)
३. शिक्षा (Education)
४. उद्योग और व्यापार (Industry and Trade)
५. सामाजिक समस्यायें (Social Problems)
६. सरकारी नौकरियों में चुनाव (Selection in Govt. Services)
७. अपराध निरोध और न्याय (Prevention of Crime and justice)
८. राजनैतिक क्षेत्र (Political Field)

मनोविज्ञान का मानसिक रोगों का इलाज करने में बड़ा महत्व है। मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक रोग सम्बन्धी खोज की है। पहले इन रोगों का कारण भूत-प्रेत आदि अदृश्य शक्तियों को समझा जाता था और स्याने तथा ओझे मानसिक रोगियों पर अमानुषिक अत्याचार करते थे। नैदानिक मनोविज्ञान से व्यक्तियों के असामान्य व्यवहार से सम्बन्धित समस्याओं को समझने, उनके

(१) मानसिक चिकित्सा और स्वास्थ्य

कारणों का पता लगाने तथा उन कारणों को दूर करके व्यक्ति को परिवेश के अनुकूल बनाने में सहायता मिलती है। इन रोगों के विश्लेषण में मनोविश्लेषणवादी खोजों ने बड़ी सहायता की है। बहुत से रोग ऐसे हैं जिनका मनोविश्लेषण द्वारा बड़ी सफलता से इलाज किया गया है। पाश्चात्य देशों में लगभग हर एक बड़े अस्पताल के साथ एक मानसिक रोग विशेषज्ञ रखने का प्रबन्ध किया गया है। रोग का ठीक-ठीक पता लगाने में चिकित्सक को मनोवैज्ञानिक से बड़ी सहायता मिलती है क्योंकि हर एक रोग का एक मनोवैज्ञानिक पहलू भी होता है। सन् १९५१ में एक अमेरिकन सर्वेक्षण (Survey) से यह मालूम हुआ कि अमेरिका में ४३ प्रतिशत चिकित्सालयों में नैदानिक मनोविज्ञान का प्रयोग किया जाता है। परन्तु खेद है कि भारत में नैदानिक मनोविज्ञान का प्रचार अभी लगभग नहीं के बराबर है। आशा है कि भविष्य में इस ओर जरूर प्रगति होगी।

आजकज भारत में पढ़े लिखे लोगों में भारी बेकारी फैली हुई है। इस बेकारी का जहाँ एक बड़ा कारण यह है कि नौकरियाँ कम हैं वहाँ एक कारण यह भी है कि पढ़े-लिखे लोग व्यवसायों (Vocations) में जाना नहीं चाहते और नौकरियों के पीछे भागते हैं। उनमें अधिकतर लोग यह समझ नहीं पाते कि वे कौन-सा काम कर सकते हैं अर्थात् उनमें कौन-से काम करने की अच्छी योग्यता है। अक्सर वे ऐसा व्यवसाय चुन लेते हैं जो उनके लायक नहीं होता जबकि आपने लायक व्यवसाय में जाने का उन्हें ध्यान भी नहीं आता। यह समस्या थोड़ी बहुत सभी देशों में है। अतः आधुनिक देशों में मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं की सहायता से युवक-युवतियों को उनका व्यवसाय निश्चित करने में सलाह दी जाती है। इन देशों में केवल कालेजों और विश्वविद्यालयों में ही नहीं बल्कि व्यवसाय केन्द्रों और रोजगार के दफ्तरों (Employment Exchanges) में भी मनोवैज्ञानिक सलाह से काम लिया जाता है। इससे सही आदमी को सही काम और सही काम को सही आदमी मिल जाता है। भारत में भी अब धीरे-धीरे व्यवसाय चुनने में मनोविज्ञान से सहायता लेने की कोशिश की जा रही है।

(२) मशवरा तथा निर्देशन

व्यवसाययिक निर्देशन के अलावा मनोवैज्ञानिक बहुत-सी निजी और घरेलू समस्याओं को सुलझाने में भी मशवरा देता है। इस तरह के मशवरे की अधिकतर व्यक्तियों को कभी न कभी जरूरत पड़ ही जाती है। किसी का बालक पढ़ने से भागता है, किसी का बालक चोरी करता है, किसी का लड़का घर से भाग जाता है, इस तरह की बहुत-सी कठिनाइयों को जब माता-पिता खुद नहीं सुलझा पाते तो उन्हें मनोवैज्ञानिकों से मशवरा लेना पड़ता है। बच्चे, माता-पिता तथा शिक्षकों की इज्जत कैसे करें, पढ़ाई में क्या विषय लें, कौन-कौन-से खेल खेलें, सिनेमा देखें या न देखें आदि ऐसी बातें हैं जिनमें मनोवैज्ञानिकों की सलाह की जरूरत है।

आजकल शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान का व्यवहार बढ़ता ही जा रहा है यहाँ तक कि शिक्षा मनोविज्ञान एक स्वतन्त्र विषय ही बन गया है। शिक्षण की प्रक्रिया (Process) के बारे में रोज नई खोजें की जा रहीं हैं। इसी तरह प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, विचार, तर्क आदि अनेक मानसिक प्रक्रियाओं का पूरी तरह फायदा उठाने और उनका पूरी तरह विकास करने के बारे में मनोवैज्ञानिक नियमों की खोज की जा रही है। पाठ्यक्रम को बालक की रुचि, योग्यता तथा व्यक्तित्व के अनुकूल बनाने की कोशिश की जा रही है। शिक्षा मनोविज्ञान यह भी बतलाता है कि शिक्षा देने के सबसे उत्तम उपाय कौन-कौन से हैं, बालकों में अनुशासन किस तरह पैदा किया जा सकता है, स्वस्थ आदतें कैसे बनाई जा सकती हैं, बुरी आदतें कैसे छुड़ाई जा सकती हैं तथा बालक की विभिन्न योग्यताओं का सर्वोत्तम विकास किस तरह किया जा सकता है। विद्यार्थियों की अभिरुचि की परीक्षा करके मनोवैज्ञानिक उनके अध्ययन के विषयों को निश्चित करने में सहायता देते हैं। मनोवैज्ञानिक शिक्षा की सीमायें (Limitations), तथा सम्भावनायें (Possibilities) बतलाता है और इन सम्भावनाओं को प्राप्त करने के साधन भी बतलाता है।

(३) शिक्षा

मनोविज्ञान शिक्षक के लिये सबसे अधिक लाभदायक है। शिक्षा का उद्देश्य बालक का विकास करना है, बालक के विकास का अध्ययन मनोविज्ञान करता है और वही यह बतलाता है कि शिक्षक किस बालक का किस तरह विकास करे। क्लीफोर्ड टी० मार्गन (Clifford T. Morgan) के शब्दों में "बालक के विकास का अध्ययन हमें यह जानने योग्य बनाता है कि क्या पढ़ायें, कब पढ़ायें और कैसे पढ़ायें।"

उद्योग और व्यापार के क्षेत्र में मनोविज्ञान ने बड़ी सहायता की है। उसने उद्योग और व्यापार को वैज्ञानिक स्तर पर लाने की कोशिश की है। मनोविज्ञान का इस क्षेत्र में कहाँ तक इस्तेमाल किया जाता है यह इसी से स्पष्ट होता है कि औद्योगिक मनोविज्ञान (Industrial Psychology) अथवा वाणिज्य मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक अलग शाखा ही बन गया है। एक उदाहरण लीजिए, एक कारखाने के मालिक के सामने अधिक से अधिक और अच्छी किस्म का उत्पादन करने का लक्ष्य होता है। इसके लिये उसके पास कुछ आदमी और मशीनें होती हैं। कारखाने में सैंकड़ों तरह के अलग-अलग काम होते हैं जिनके लिये अलग-अलग योग्यता के आदमी की जरूरत होती है। अधिक से अधिक उत्पादन तभी हो सकता है जबकि हर एक काम पर उसके योग्य व्यक्ति ही रखा जाय। यह मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं की सहायता से ही किया जा सकता है। आधुनिक औद्योगिक केन्द्र भिन्न-भिन्न कार्यों के लिये योग्य व्यक्तियों के चुनाव के लिये मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं का सहारा लेते हैं। कर्म-

(४) उद्योग और व्यापार

चारियों की कार्य विधि की जांच में तथा उसकी देख-रेख सम्बन्धी समस्याओं में भी मनोवैज्ञानिकों की सहायता ला जाती है। इसके अलावा कारखानों की बहुत-सी समस्याओं जैसे काम करने की विधि, औजारों में सुधार, काम करने के घण्टे तथा विश्राम के समय का वितरण, थकावट और उकताहट दूर करने के उपाय, वेतन तथा मजदूरी का निश्चय, काम करने की स्वास्थ्यप्रद परिस्थितियाँ उत्पन्न करने आदि में भी मनोवैज्ञानिकों से बहुत सहायता मिलती है। मजदूरों और कारीगरों की हड़ताल और मिलों की तालेबन्दी की समस्यायें सुलझाने में भी मनोविज्ञान ने बड़ी सहायता दी है। दुर्घटनाओं के सम्बन्ध में रोक-थाम करने में भी मनोवैज्ञानिकों ने सुझाव दिये हैं। स्थिरता परीक्षाओं (Tests of Steadiness), चौकन्नेपन की परीक्षाओं (Tests of Alertness), रुचियों की परीक्षाओं (Tests of Interests), तथा विशेष योग्यताओं की परीक्षाओं (Tests of Special Abilities) आदि से कर्मचारी में इन सब बातों की जाँच की जाती है। वास्तव में आर्थिक कार्यों के सभी क्षेत्रों में, उत्पादन (Production), वितरण (Distribution), विनिमय (Exchange) आदि में मनोविज्ञान का प्रयोग किया जाता है। उपभोक्ता (Consumer), विक्रय (Selling) तथा विज्ञापन (Advertisement) आदि का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। उपभोक्ता किस तरह की चीजें चाहता है, चीजों को किस तरह बेचा जाता है, विज्ञापन के कौन-से तरीके सफल हो सकते हैं आदि प्रश्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा सुलझायें जाते हैं। आधुनिक व्यापार में विज्ञापन का बड़ा भारी महत्व है और अकेले इस क्षेत्र में ही मनोविज्ञान से जितनी सहायता मिली है उसको देखकर व्यावहारिक मनोविज्ञान का महत्व स्पष्ट होता है।

(५) सामाजिक समस्यायें

व्यावहारिक मनोविज्ञान न केवल उद्योग और व्यवसाय, शिक्षा, मानसिक स्वास्थ्य आदि की समस्यायें सुलझाने में ही सहायता नहीं की बल्कि सामाजिक समस्याओं को सुलझाने में भी सहायता की है। उदाहरण के लिये भारत में जाति-भेद की समस्या अथवा अन्य देशों में वर्ग-भेद की समस्या अथवा पश्चिमी देशों में रंग-भेद की समस्या का मूलाधार मनोवैज्ञानिक है और उनको सुलझाने के लिये मनोवैज्ञानिक उपायों की जरूरत है। मनोवैज्ञानिक सर्वेक्षणों के आधार पर जनता की अभिरुचि का पता लगाया जाता है और इस अभिरुचि को समझ कर उसके अनुकूल सुझाव देने में सुधार करने की कोशिश की जाती है।

(६) सरकारी नौकरियों में चुनाव

आजकल लगभग सभी सभ्य देशों में, सभी तरह की सरकारी नौकरियों में, चुनाव के लिये मनोवैज्ञानिकों की सहायता ली जाती है। मनोवैज्ञानिकों के द्वारा बनाई गई परीक्षाओं के आधार पर सार्वजनिक सेवा आयोग (Public Service Commission) तथा अन्य नियुक्ति संस्थायें सब तरह के सरकारी कर्मचारियों का चुनाव करती है। सेना में जल, थल और वायु सेनाओं के लिये योग्य

व्यक्तियों के चुनाव में मनोवैज्ञानिक परीक्षाएँ बड़ी लाभदायक साबित हुई हैं द्वितीय महायुद्ध में सेना में भर्ती करने के लिये आर्मी एल्फा तथा आर्मी बीटा परीक्षण बनायें गए थे और उनके परिणाम के अनुसार सैनिकों को काम बांटा गया था। इसी समय इंजीनियरिंग मनोविज्ञान का भी प्रारम्भ हुआ। मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे यन्त्र बनाये जिनसे भिन्न-भिन्न प्रकार के काम करने वालों को छांटने में सुविधा होती है। इसके साथ-साथ उन्होंने तरह-तरह की मशीनें, मोटर गाड़ियाँ, खरादें, इंजन तथा छापेखाने के डिजाइन बनाने में भी सहायता दी।

(७) अपराध निरोध और न्याय

अपराध निरोध और न्याय के क्षेत्र में तो मनोविज्ञान की कदम-कदम पर जरूरत पड़ती है। आधुनिक सभ्य देशों में अपराधियों को दण्ड देने की ही नहीं बल्कि उनके सुधार की भी कोशिश की जाती है। इस कोशिश में अपराधी के व्यक्तित्व को समझना बड़ा जरूरी है। अपराधी के मनोविज्ञान को जाने बिना सुधार करने वाले कर्मचारियों को अपराधियों के सुधार में सफलता नहीं मिल सकती। खासतौर से किशोरापराधियों का सुधार तो पूरी तरह से मनोवैज्ञानिक उपायों पर ही आधारित है। अपराध निरोध के अलावा न्याय करने में भी मनोविज्ञान से बड़ी सहायता मिलती है। न्याय की क्रिया में खासतौर से तीन लोग कार्य करते हैं—न्यायाधीश, वकील तथा गवाह। सरकारी पक्ष का वकील जुर्म साबित करने की कोशिश करता है जबकि अभियुक्त का वकील उसको बचाने की कोशिश करता है। गवाह सच्ची-झूंठी सब तरह की घटनाओं का बयान करता है। इसमें न्यायाधीश को सच-झूंठ का निश्चय करना होता है। यह निश्चय उसके कानून के ज्ञान पर नहीं बल्कि उसकी मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि पर निर्भर है। अपराधियों को पकड़ने में पुलिस विभाग को भी मनोविज्ञान से बड़ी सहायता मिलती है। अनेक यंत्र ऐसे बनाये गये हैं जिनसे अपराधी व्यक्ति की आन्तरिक स्थिति का भी परिचय पाया जा सकता है। इस तरह अपराध निरोध तथा न्याय के क्षेत्र में सब कहीं मनोविज्ञान का खूब इस्तेमाल किया जाता है।

(८) राजनैतिक क्षेत्र

राजनैतिक क्षेत्र में, चाहे राज्य जनतन्त्रात्मक हो या तानाशाही अथवा सामन्तशाही, मनोविज्ञान का सदैव व्यापक रूप में प्रयोग होता है। शासक तभी सफल हो सकता है जबकि वह शासितों के मनोविज्ञान से अच्छी तरह परिचित हो। उदाहरण के लिए दंगा करने वालों की भीड़ शाँत करना सभी अफसरों के लिये सम्भव नहीं है। ऐसा तो वही कर सकता है जो भीड़ मनोविज्ञान को अच्छी तरह जानता हो। कानून बनाने के बाद ही शासन की समस्या हल नहीं हो जाती। जनता में कानून के मानने और तोड़ने, दोनों तरह की प्रवृत्ति पाई जाती है और कानून का पालन करा लेने के लिये शासक को जनता से मनोवैज्ञानिक ढंग से व्यवहार करने की जरूरत होती है।

इसी तरह कानून बनाने में भी इस बात के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की जरूरत है कि उस कानून का प्रभावित होने वाले लोगों पर क्या असर पड़ेगा तथा उनकी क्या प्रतिक्रिया (Reaction) होगी। आधुनिक जनतन्त्रीय राज्यों में प्रशासन और कानून बनाने के अलावा राजनीति का एक महत्वपूर्ण पहलू चुनाव भी है। चुनाव में प्रचार का बड़ा महत्व है और प्रचार मनोवैज्ञानिक होने पर ही अपने उद्देश्य में सफल हो सकता है। कुछ चतुर लोग मनोवैज्ञानिक प्रचारों से मतदाताओं का रुख ठीक मौके पर इस तरह पलट देते हैं कि बात की बात में हारी हुई बाजी जीत ली जाती है। चुनाव के समय विशेष क्षेत्र के मतदाता क्या चाहते हैं, उनकी क्या भावनायें हैं और कैसी मानसिक दशायें हैं इसके ज्ञान पर ही चुनाव का प्रचार आधारित होता है। इस तरह राजनैतिक क्षेत्र में भी कदम-कदम पर मनोविज्ञान का व्यावहारिक उपयोग किया जाता है।

संक्षेप में, व्यावहारिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में मनुष्यों की सारी क्रियायें और उनके सारे अन्तर्सम्बन्ध आ जाते हैं। कहना न होगा कि व्यावहारिक मनोविज्ञान के क्षेत्र का उपरोक्त वर्णन संक्षिप्त और अधूरा है। सच तो यह है कि उसके क्षेत्र का कोई भी वर्णन पूरा हो ही नहीं सकता क्योंकि उसका क्षेत्र बराबर बढ़ता जा रहा है। उद्योग, व्यापार, न्याय, कला, साहित्य, धर्म, पारिवारिक जीवन, शिक्षा, सामाजिक जीवन, कारखाने का जीवन, मजदूर, विद्यार्थी, नेता सभी के लिये और सब कहीं मनोविज्ञान का उपयोग है। अन्त में यदि यह कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी कि जहाँ-जहाँ मानव-व्यवहार हो और उसको बेहतर बनाने की सम्भावना हो वहाँ-वहाँ व्यावहारिक मनोविज्ञान का क्षेत्र भी है।

★

प्रश्न ३—व्यावहारिक मनोविज्ञान के मूल्य के बारे में आप क्या जानते हैं? संक्षेप में बतलाइये।

व्यावहारिक मनोविज्ञान का मूल्य
(Value of Applied Psychology)

व्यावहारिक मनोविज्ञान शिक्षा, मानसिक स्वास्थ्य, उद्योग और व्यापार, अपराध निरोध और न्याय तथा सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। उसने मानव की विभिन्नताओं पर प्रकाश डालकर व्यावसायिक निर्देशन और श्रम विभाजन के महत्व को स्पष्ट किया है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा भिन्न-भिन्न मनुष्यों की भिन्न-भिन्न मानसिक शक्तियों की जांच करके व्यावहारिक मनोवैज्ञानिक ने उनके समुचित उपयोग और अधिकतम विकास के साधन बतलाये हैं। व्यक्तियों की अभिवृत्तियों (Aptitudes) की परीक्षा करके उसने

उनके भविष्य की योजना बनाने में भी सुझाव दिये हैं। उसने सामाजिक समस्याओं के हल बतलाये हैं और मालिक तथा मजदूर, ग्राहक तथा दुकानदार के परस्पर अनुकूलन में सहायता दी है। आधुनिक सभ्य देशों में व्यावहारिक मनोविज्ञान की उपयोगिता कदम-कदम पर मालूम पड़ती है परन्तु फिर भी कुछ विशेष क्षेत्रों में उसका महत्व अधिक स्पष्ट है। यहाँ पर इन्हीं क्षेत्रों का संक्षिप्त वर्णन किया जायेगा।

व्यावहारिक मनोविज्ञान के मूल्य के विषय में मुख्य बातें निम्नलिखित हैं :—

१. मानसिक स्वास्थ्य में सहायता।

२. मशवरा तथा निर्देशन में सहायता।

३. शिक्षा में सहायता।

४. उद्योग और व्यापार में सहायता।

५. सामाजिक समस्याओं के सुलझाव में सहायता।

६. सरकारी नौकरियों के लिये चुनाव में सहायता।

७. अपराध-निरोध और न्याय में सहायता।

८. राजनैतिक क्षेत्र की समस्याओं को सुलझाने में सहायता।

(१) मानसिक स्वास्थ्य में सहायता

मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में व्यावहारिक मनोविज्ञान ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। मनोवैज्ञानिक ने पागलों की बेड़ियाँ कटवा दीं और पागल के मानसिक कारणों का विश्लेषण करके उसका व्यवस्थित इलाज शुरू किया। मन और शरीर का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है अत: बहुधा शारीरिक रोग के साथ मानसिक विधियाँ भी लगी रहती हैं। इन व्याधियों को दूर करने में आधुनिक चिकित्सक मनोवैज्ञानिकों की सहायता लेते हैं। विद्वानों ने तो यहाँ तक कहा है कि यदि मानव प्रवृत्तियों (Tendencies) और मानसिक प्रक्रियाओं को ठीक-ठीक समझ लिया जाय तो ९५ प्रतिशत रोगी केवल सुझाव के सहारे चंगे किये जा सकते हैं।

(२) मशवरा तथा निर्देशन में सहायता

व्यक्तिगत जीवन में व्यावहारिक मनोविज्ञान बड़ा सहायक सिद्ध हुआ है। जहाँ उसने व्यक्ति को रोजमर्रा की बहुत-सी समस्याओं को सुलझाने में सहायता दी है वहाँ उसने उसको भविष्य की योजनायें बनाने में भी रास्ता दिखाया है। व्यावहारिक मनोविज्ञान की सहायता से व्यक्ति अपनी सामर्थ्य को जान पाता है और यह समझ पाता है कि वह कौन-से व्यवसाय के उपयुक्त है। कार्लाइल ने कहा है Know what you can do and do it like a

Hercules अर्थात् जान लो कि तुम क्या कर सकते हो और हरक्यूलिस की तरह उसको करो । किसी काम को हरक्यूलिस की तरह करना तो इतना कठिन बात नहीं है जितना कि यह जानना कि विशेष व्यक्ति क्या कर सकता है । मनोवैज्ञानिक ने इस कठिनाई को सुलझाया है । मनोविज्ञान के आधार पर व्यावसायिक चुनाव करने से सफलता की सम्भावना बहुत अधिक बढ़ जाती है केवल व्यवसाय के सम्बन्ध में ही नहीं वल्कि व्यक्तिगत सम्बन्धों के बारे में भी मनोवैज्ञानिक का मशवरा बहुत सहायक सिद्ध हुआ है । व्यावहारिक जीवन में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर अम्ल करके ही व्यक्ति सफल पिता, सफल मित्र, सफल शिक्षक, सफल नेता और सफल डाक्टर, वकील आदि हो सकता है ।

शिक्षा के क्षेत्र में तो मनोविज्ञान ने मानों क्रान्ति ही कर दी है । शिक्षा के महत्वपूर्ण पहलू हैं—पाठ्यक्रम (Curriculum) तथा शिक्षा-प्रणाली । इन दोनों ही पहलुओं में मनोविज्ञान ने क्रान्तिकारी सुधार किए हैं ।

(३) शिक्षा में सहायता

आधुनिक शिक्षक विद्यार्थियों में अपराध, अनुशासनहीनता तथा अन्य अनेक दोषों को दूर करने के लिये मनोवैज्ञानिक की सहायता लेते हैं । मनोविज्ञान ने शिक्षक और विद्यार्थी के समंजन में सहायता दी है ।

देश की आर्थिक समृद्धि उसके उद्योग और व्यापार पर निर्भर होती है । उद्योग मालिक और मजदूर के समंजन और मानव शक्ति के सर्वोत्तम उपयोग पर निर्भर है । व्यापार उपभोक्ता की इच्छानुसार वस्तुएँ जुटाने, उपभोक्ताओं में उनका प्रचार करने तथा ग्राहक और विक्रेता के समंजन पर निर्भर है । इन सब बातों में व्यावहारिक मनोविज्ञान की सहायता उसके क्षेत्र के वर्णन में पीछे बतलाई जा चुकी है । आधुनिक उद्योग और व्यापार में प्रचार और विज्ञापनबाजी का बड़ा महत्व है । प्रचार और विज्ञापन के नित्य नये और आकर्षक तरीके निकालकर मनोवैज्ञानिक व्यापारियों और उद्योगपतियों की सहायता करता है । यदि यह कहा जाय तो अतिश्योक्ति न होगी कि व्यावहारिक मनोविज्ञान की सहायता लिये बिना उद्योग तथा व्यापार को वैज्ञानिक स्तर पर नहीं खड़ा किया जा सकता ।

(४) उद्योग और व्यापार में सहायता

व्यावहारिक मनोविज्ञान का महत्व केवल व्यक्ति के निजी जीवन में ही नहीं बल्कि उसके सामाजिक जीवन में भी है । समाज सामाजिक सम्बन्धों की एक व्यवस्था है । इन सामाजिक सम्बन्धों के ठीक रहने से ही समाज ठीक रहता है । इनकी गड़बड़ी से सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं । सामाजिक सम्बन्ध मनुष्य की प्रवृत्तियों, अभिवृत्तियों, भावनाओं आदि के परस्पर समंजन

(५) सामाजिक समस्याओं का सुलझाव

पर निर्भर होते हैं। वास्तव में सामाजिक समस्याएं इसी समंजन (Adjustment) की समस्यायें हैं। जाहिर है कि सामाजिक समस्याओं को सुलझाने के लिये अर्थात् समाज के सब व्यक्तियों के समुचित अनुकूलन के लिये समाज सुधारकों को मनोविज्ञान का व्यावहारिक उपयोग करना चाहिए। उदाहरण के लिए भारत में जाति-भेद की समस्या बड़ी जबर्दस्त है। जातिवाद एक विशेष रूढ़िवादी मानसिक व्यवहार को जाहिर करता है। इस मानसिक व्यवहार को समझे बिना जातिवाद की समस्या हल नहीं की जा सकती।

(६) सरकारी नौकरियों में भर्ती में सहायता

और क्षेत्रों को छोड़कर यदि व्यावहारिक मनोविज्ञान के महत्व का केवल सरकारी नौकरियों के चुनाव में ही मुल्यांकन किया जाय तो भी उसका मूल्य निर्विवाद सिद्ध हो जायेगा। जैसा कि व्यावहारिक मनोविज्ञान के इस क्षेत्र के विवेचन में पीछे बतलाया जा चुका है सभी आधुनिक सरकारें अपनी सभी तरह की नौकरियों में उपयुक्त व्यक्तियों की भर्ती के लिये, बड़े पैमाने पर मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं का प्रयोग करती हैं। इससे राष्ट्रीय शक्ति का सर्वोत्तम उपयोग हो पाता है।

(७) अपराध निरोध और न्याय में सहायता

अपराध निरोध के क्षेत्र में आधुनिक सुधार व्यावहारिक मनोविज्ञान का ही देन है। सुधार गृह, प्रवीक्षण व्यवस्था, खुले जेलखाने आदि अपराध-निरोध के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक उपायों को अपनाने का परिणाम हैं। अपराधियों का उपचार तो पूरी तरह मनोवैज्ञानिक ज्ञान पर ही निर्भर है क्योंकि अपराधी शारीरिक नहीं बल्कि मानसिक रोगी होता है। जैसा कि व्यावहारिक मनोविज्ञान के इस क्षेत्र के वर्णन में पीछे बतलाया जा चुका है मनोविज्ञान ने अपराधी को पकड़ने में पुलिस को, न्यायाधीश को समझाने में वकील को और झूठे गवाहों को तोड़ने में न्यायाधीश को सहायता दी है।

(८) राजनैतिक समस्याओं का सुलझाव

अन्त में व्यावहारिक मनोविज्ञान के मूल्य का सबसे अधिक पता राजनैतिक क्षेत्र के विभिन्न पक्षों पर दृष्टि डालने से चलता है। इस विषय में प्रशासन, कानून बनाने तथा चुनाव आदि के क्षेत्र में मनोविज्ञान के महत्व का वर्णन पीछे किया गया है। इसके अलावा मनोविज्ञान युद्धकाल में सेनाओं में आत्म-विश्वास (Self confidence) बनाये रखने में सहायक होता है। आधुनिक सरकारें युद्ध के दिनों में जनता की प्रतिक्रियाओं पर ध्यान रखती हैं और मनोवैज्ञानिक सुझावों के द्वारा उसमें स्थिरता तथा दृढ़ता बनाये रखने की कोशिश करती हैं। केवल युद्ध में ही नहीं बल्कि शान्ति स्थापना में भी व्यावहारिक मनोविज्ञान बड़ा उपयोगी है।

विभिन्न जातियों, प्रजातियों तथा राष्ट्रों के परस्पर तनाव को दूर करने के लिए उनकी मानसिक प्रवृत्तियों को समझकर मनोवैज्ञानिक उपायों से काम लेने की जरूरत है। इस तरह मनोविज्ञान विश्व में सब कहीं मानव-सम्बन्धों के अनुकूल में सहायक सिद्ध हुआ है।

व्यावहारिक मनोविज्ञान के मूल्य की इस मोटी रूप-रेखा से मानव जीवन में उसके महत्व का पता चलता है। व्यावहारिक मनोविज्ञान का महत्व उसके क्षेत्र के साथ-साथ बढ़ता जाता है और उसका क्षेत्र नई-नई मनोवैज्ञानिक खोजों के साथ फैलता जाता है।

—

२

मनोवैज्ञानिक परीक्षण और निर्देशन
(Psychological Testing and Guidance)

प्रश्न ४— निर्देशन क्यों जरूरी है। इसके लिए मनोवैज्ञानिफ परीक्षणों की क्या आवश्यकता है ?

मनोवैज्ञानिक परीक्षण और निर्देशन

उत्तर—अक्सर माँ-बाप अपने बालक के भविष्य के बारे में तरह-तरह की कल्पनायें किया करते हैं। कुछ सोचते हैं कि उनका बालक बड़ा होकर डिप्टी कलक्टर बनेगा तो कुछ उसको डाक्टर या इंजीनियर बनाना चाहते हैं। कुछ सोचते हैं कि उनका बालक को नामी वकील बनना चाहिए तो कुछ उसको जज की कुर्सी पर बैठा देखना चाहते हैं। मगर कितने माँ-बाप की उम्मीदें पूरी होती हैं ? गलती यही है कि बालक की मानसिक सामर्थ्यों, रूचियों, मनोवृत्तियों आदि को जाने बिना ही माँ-बाप उसका रास्ता चुन लेते हैं। बड़े होने पर हर एक युवक-युवती के सामने समस्यायें होती हैं कि वह किन-किन विषयों की शिक्षा प्राप्त करे और कौन-से व्यवसाय को अपनाये या कौन-सीं नौकरी में जाये। इन समस्याओं को सही तौर से सुलझाने के लिये हर एक युवक-युवती को निर्देशन (Guidance) की जरूरत है। निर्देशन वही आदमी दे सकता है। जिसको भिन्न-भिन्न व्यवसायों और नौकरियों के बारे में व्यापक जानकारी हो और साथ ही साथ जो निर्देशन पाने वाले व्यक्ति की मानसिक सामर्थ्यों, रूचियों तथा मनोवृत्तियों आदि को भी जानता हो। पहला काम कार्य विश्लेषण (Job Analysis) और दूसरा मनोवैज्ञानिक परीक्षण (Psychological Testing) का है। निजी समस्याओं को सुलझाने तथा पढ़ाई के विषयों के चुनाव में तो मनोवैज्ञानिक परीक्षणों पर ही सारा दारोमदार है। इस तरह मनोवैज्ञानिक परीक्षण ही निर्देशन का आधार है। उसके बिना निर्देशन अधिक सही नहीं हो सकता और न अधिक सफलता की आशा ही की जा सकती है। इसका मतलब यह नहीं है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के बनाये जाने से पहले निर्देशन होता ही न था। अमेरिका में निर्देशन सेवायें (Guidance Services) मनोवैज्ञानिक परीक्षणों को विकसित होने के पहले से चली आ रही हैं। परन्तु फिर भी यह जरूर कहा जा सकता है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के अभाव में निर्देशन वैज्ञानिक स्तर पर नहीं आ सकता।

स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षणों ने ही निर्देशन को वैज्ञानिक स्तर पर रखा है। मनोवैज्ञानिक परीक्षण की शुरुआत १६०५ में अल्फ्रेड विने (Alfred Binet) के पहले परीक्षण के प्रकाशित होने से हुई। १६१६ में स्टानफोर्ड विश्वविद्यालय में टरमन (Terman) ने विने परीक्षण का संशोधित रूप प्रकाशित किया। ये दोनों ही व्यक्तिगत परीक्षण (Individual Tests) थे। प्रथम विश्वयुद्ध में आर्मी आल्फा (Army Alfa) और आर्मी बीटा (Army Beta) नामक दो सामूहिक परीक्षण बनाये गये जिनसे पहला पढ़े-लिखों के लिये और दूसरा अनपढ़ों के लिये था। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का बड़े पैमाने पर प्रयोग प्रथम विश्वयुद्ध से ही शुरू हुआ।

★

प्रश्न ५—वुद्धि परीक्षणों के विकास के इतिहास का संक्षिप्त वर्णन करो।

और

प्रश्न—बुद्धि-लब्धि से आप क्या समझते हैं? यदि १० वर्ष की अवस्था के बालक की मानसिक आयु १२ वर्ष है तो उसकी बुद्धि-लब्धि क्या होगी तथा उसका स्तर क्या होगा? बुद्धि-लब्धि के अनुसार लोगों का वर्गीकरण कैसे होता है?

(यू० पी० बोर्ड १६६५)

बुद्धि परीक्षण
(Test of Intelligence)

व्यावहारिक मनोविज्ञान इस तथ्य पर आधारित है कि भिन्न-भिन्न लोगों की सामर्थ्य, रुचियाँ, योग्यतायें आदि भिन्न-भिन्न होती हैं। जैसे-जैसे व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर अधिक प्रकाश पड़ा वैसे-वैसे मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न व्यक्तिगत विशेषताओं को मापने की कोशिश की। इस माप के लिये तरह-तरह के परीक्षण बनाये गये। इनमें वुद्धि को मापने के परीक्षण बहुत प्रसिद्ध हुए। १६वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गाल्टन (Galton) ने विभिन्न इन्द्रियों के कामों के मापने के लिये कुछ परीक्षण बनाये। इन परीक्षणों से गाल्टन ने ऐन्द्रिक विभेदीकरण (Sensory discrimination), ऐन्द्रिक प्रत्यक्षीकरण (Sensory perception) तथा ऐन्द्रिक तीक्ष्णता (Sensory Acuity) को मापा। यद्यपि ये माप विशेषतौर से बुद्धि सम्बन्धी नहीं हैं। परन्तु इनको बुद्धि परीक्षण का अग्रदूत माना जा सकता है।

बुद्धि परीक्षणों का इतिहास

सन् १८८० में ऐबिंगहास (Ebbinghaus) ने विभिन्न व्यक्तियों के बुद्धि सम्बन्धी अन्तर को मानने के लिये कई तरह के परीक्षण तैयार किये। सन् १८६० में अमेरिका के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक कैटेल (Cattell) ने कुछ मानसिक परीक्षण तैयार किये। इन परीक्षणों के आधार पर कैटेल ने कोलम्बिया विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों पर प्रतिक्रिया की गति (Speed of Reaction) ऐन्द्रिक तीक्ष्णता

एबिंगहास और कैटेल के परीक्षण

स्मृति (Memory) तथा कुछ अन्य सरल मानसिक क्रियाओं के बारे में व्यक्तिगत विभिन्नताओं की माप की।

परन्तु वास्तव में बुद्धि परीक्षण की दिशा में सबसे पहला और ठोस कदम फ्रांस के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एलफ्रेड बिने (Alfred Binet) ने उठाया। एल्फ्रेड बिने पाठशाला में पढ़ने वाले बालकों की मनोवैज्ञानिक क्रियाओं पर अनुसंधान कर रहे थे। इस अनुसंधान के बीच उन्होंने देखा कि अल्प बुद्धि बालकों को उपयोगी शिक्षा देने के लिये उनको विशेष कक्षाओं में रखकर उनकी योग्यता के अनुकूल शिक्षा देना जरूरी है। इस बारे में अध्ययन करने के लिये बिने की अध्यक्षता में सन् १९०४ में एक जांच सभा बनाई गई। अल्प बुद्धि बालकों के बारे में जाँच करने के लिये इस सभा के सामने सबसे पहले एक ऐसे मानदण्ड की जरूरत हुई जिससे कि बालकों की बुद्धि की जाँच की जा सके।

बिने परीक्षण

साइमन के सहयोग से बिने ने सन् १९०५ में एक मानदण्ड बनाया और प्रकाशित किया। यह मानदण्ड बिने-साइमन मानदण्ड (Binet Simon Scale) कहलाया। इस मानदण्ड में सरलतम से लेकर जटिलतम क्रियाओं तक लगभग ३० क्रियाओं (Tasks) को एक क्रम में रखा गया। इस मानदण्ड के आधार पर औसत बुद्धि वाले तथा अल्प बुद्धि दोनों प्रकार के बालकों पर परीक्षण करके बिने और साइमन ने आयु के विभिन्न स्तरों (Age levels) के लिये नियम (Norms) निश्चित किये। बिने साइमन के बुद्धि परीक्षण के अनुसार यदि कोई बालक पाँच वर्ष की वास्तविक आयु (Chronological Age) में केवल वही कार्य कर पाता है जो औसत बुद्धि वाले ३ वर्ष की आयु के बालक कर लेते हैं तो उसकी मानसिक आयु (Mental Age) तीन वर्ष मानी जायेगी। इसी तरह यदि कोई बालक ३० क्रियाओं में से पहली छः से आगे नहीं कर पाता तो उसको जड़ (Idiot) वर्ग में रखा जाता है।

बिने साइमन मानदण्ड

इस मौलिक मानदण्ड में बिने और साइमन ने बराबर संशोधन किये। पहला संशोधित मानदण्ड सन् १९०८ में प्रकाशित हुआ इसमें क्रमशः ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२ और १३ वर्ष की आयु के बालक बालिकाओं के लिये प्रश्न थे। इस संशोधन की सफलता से अन्य देशों के मनोवैज्ञानिकों ने अपने देश के परिवेश के अनुकूल बुद्धि परीक्षणों का निर्माण किया। इनमें बर्ट का लन्दन अनुशीलन (Burt's London Revision) तथा टरमैन का स्टैनफोर्ड अनुशीलन (Terman's Stanford Revision) अधिक प्रसिद्ध है।

बिने परीक्षण के अनुशीलन

स्टैनफोर्ड अनुशीलन में टरमैन ने बुद्धि-लब्धि (Intelligence Quotient or I. Q.) का इस्तेमाल किया। बुद्धि परीक्षणों को समझने के लिये बुद्धि-लब्धि

बुद्धि-लब्धि

को समझना बड़ा जरूरी है। किसी व्यक्ति की बुद्धि लब्धि-निकालने के लिये उसकी मानसिक आयु (Mental Age) को उसकी वास्तविक आयु (Chronological Age) से भाग देकर १०० से गुणा कर दिया जाता है। इस प्रकार बुद्धि-लब्धि निकालने के लिये निम्नलिखित सूत्र इस्तेमाल किया जाता है—

$$\frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}} \times 100 = \text{बुद्धि-लब्धि}$$

अथवा

$$\frac{\text{Mantal Age or M. A.}}{\text{Chronological Age or C. A.}} \times 100 = \text{Intelligence Quotient or I. Q.}$$

उदाहरण के लिये मान लीजिये कि एक बालक की मानसिक आयु ४ वर्ष और वास्तविक आयु ५ वर्ष है तो उसकी बुद्धि-लब्धि इस तरह प्रकट की जायेगी $\frac{४}{५} \times १०० = ८०$। यह बालक सामान्य से कम बुद्धि का है क्योंकि सामान्य बालक की बुद्धि-लब्धि ९० से १०९ तक मानी जाती है।

बुद्धि लब्धि के आधार पर टरमन ने बुद्धि के निम्नलिखित स्तर माने हैं—

बुद्धि के स्तर

१४० से ऊपर	प्रतिभाशाली
१२०–१४०	अत्यन्त तीव्र बुद्धि
११०–११९	तीव्र बुद्धि
९०–१०९	सामान्य बुद्धि
८०–८९	मन्द बुद्धि
७०–७९	सीमावर्ती (Marginal) बुद्धि हीनता
७० से नीचे	निश्चित बुद्धिहीनता

बिने परीक्षण के दूसरे अनुशीलन का अर्वाचीन संशोधित रूप सन् १९३७ में टरमन मैरिल मानदण्ड (Terman Merrill Scale) के नाम से प्रकाशित हुआ।

टरमन मैरिल मानदंड

टरमन और मैरिल द्वारा संशोधित स्टैन्फोर्ड बिने मानदण्ड में परीक्षण सम्बन्धी और अधिक विषयों का समावेश किया गया। अब यह मानदण्ड में दो वर्ष से लेकर १८ वर्ष तक की आयु के बालकों के लिये उपयोगी हो गया। इस मानदण्ड में दो वर्ष से चार वर्ष तक की आयु के बालकों के लिये वार्षिक तथा अर्धवार्षिक दो प्रकार के परीक्षणों का प्रबन्ध किया गया। वयस्क व्यक्तियों के लिये अनेक अन्य विषय भी शामिल कर दिये गये। इसमें प्रत्येक अवस्था स्तर (Age level) के लिये छः या आठ विषय रखे

गये। इसमें दो फार्म होते हैं जिनमें परीक्षक थोड़े समय में ही किसी भी व्यक्ति की वुद्धि परीक्षा कर सकता है। टरमन-मैरिल मानदण्ड में चौदह वर्ष की आयु के लिये निम्नलिखित प्रश्न दिये जाते हैं :—

(१) शब्दों की एक सूची में से ५० शब्दों की परिभाषा करना।

(२) कागज गोड़ने के काम में नियम का पता लगाना।

(३) राष्ट्रपति और राजा का अन्तर वतलाना।

(४) कुछ तथ्यों में सिलसिला जोड़ना और उनसे नतीजा निकालना।

(५) गणित के सवाल हल करना।

(६) घड़ी की सुइयों को अदल बदल कर समय बतलाना।

भारतीय प्रयास

भारतीय परिस्थितियों में विने परीक्षण का सबसे पहला प्रमाणीकरण डॉक्टर सी० हरवर्ट राइस (Dr. C. Herbert Rice) ने किया। परन्तु इसका संशोधित रूप विने परीक्षण से लगभग विल्कुल भिन्न था। यह परीक्षण उर्दू और पंजावी भाषाओं में बनाया गया। इसमें दो प्रकार के मानदण्ड थे, एक में १० क्रियायें थीं और दूसरे में ३५ क्रियायें थीं। छोटा मानदण्ड अधिक विश्वसनीय सिद्ध हुआ। सन् १९२७ ई० में उर्दू, अंग्रेजी और हिन्दी में क्रिश्चियन कालेज के डॉ० जे० मनरी (Dr. J. Manry) ने वाचिक समूह परीक्षण तैयार किया। इस परीक्षण में कुल मिलाकर १०० प्रश्न हैं। सन् १९३३ में श्री लज्जा शंकर झा ने १० वर्ष से लेकर १८ वर्ष तक के बालकों के लिये समूह परीक्षण तैयार किया। इन परीक्षणों में टरमन के समूह परीक्षणों के संशोधित और परिमार्जित रूप को अपनाया गया। इनके अतिरिक्त लाहौर के डॉ० जलोटा (Dr. Jalota) के बनाये हुये हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी में समूह परीक्षण बड़े उपयोगी सिद्ध हुये। बिहार के निर्देशन केन्द्र में डॉ० एस० एम० मोहसिन के निर्देशन में अनेक समूह परीक्षण और बौद्धिक योग्यताओं को मापने वाले परीक्षण-समूह (Batteries) तैयार किये गये।

अवाचिक परीक्षण

बिने परीक्षण तथा अन्य उपरोक्त परीक्षण वाचिक है। अतः इनमें शाब्दिक योग्यता का बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसलिये इनसे वे अनपढ़ों की परीक्षा नहीं की जा सकती। उनके लिये अवाचिक अर्थात् ऐसे परीक्षणों की आवश्यकता है जिनमें शाब्दिक योग्यता की आवश्यता न हो। अवाचिक समूह परीक्षणों में मैंजेल ने भारतीय बालकों के लिये चित्रकारी की योग्यता पर आधारित परीक्षण निर्माण किये हैं। इसके अलावा कालेज के विद्यार्थियों के लिये आई० आर० कुमारिया ने समूह परीक्षण निर्माण किया। इस दिशा में अन्य महत्वपूर्ण प्रयत्न डॉ० ललित कुमार शाह, सी० टी० फिलिप, एच० सी० बनर्जी, डी० एन० राय, टी० पी० मौखिक तथा

स्व० एच० पी० मैती के हैं। उपरोक्त विवरण से जाहिर है कि भारत में अभी अवाचिक समूह परीक्षणों की दिशा में बहुत कम कार्य हुआ है। आशा है कि भविष्य में इस दिशा में प्रगति होगी।

★

प्रश्न ६—बुद्धि से क्या तात्पर्य है? बुद्धि मापन (Intelligence Testing) के शाब्दिक (Verbal) तथा अशाब्दिक (Non Verbal) परीक्षण में क्या भेद हैं? इन दोनों का प्रयोग किन-किन विशेष परिस्थितियों में होता है?

(यू० पी० बोर्ड १९६३)

बुद्धि से क्या तात्पर्य है?

रोजाना की बोलचाल की भाषा में बुद्धि एक सामान्य शब्द है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी इस शब्द का व्यापक प्रयोग किया जाता है परन्तु मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि की परिभाषा अनेक प्रकार से की है। स्थूल रूप से ये परिभाषायें निम्नलिखित हैं:—

बुद्धि की परिभाषा

(१) बुद्धि नई परिस्थिति में अभियोजन करने की योग्यता:—वैल्स (Wells) के अनुसार, "बुद्धि नई परिस्थिति में बेहतर काम करने के लिये अपने व्यवहार प्रतिमान को पुनर्गठित करने का गुण है।"[1] विलियम स्टर्न (Wm. Stern) के अनुसार 'बुद्धि एक व्यक्ति की नवीन परिस्थिति के साथ अनुकूलन करने की सामथ्य है।"[2]

बुद्धि की इस परिभाषा में निम्नलिखित दोष हैं:—

(अ) इस परिभाषा से बुद्धि का पूरा स्वरूप स्पष्ट नहीं होता।

(ब) बुद्धि और अभियोजनशीलता एक नहीं हैं। बुद्धि जन्मजात है, अभियोजनशीलता में बहुत कुछ अर्जित है।

(२) बुद्धि गत अनुभव से लाभ उठाने की योग्यता है—एबिंगहॉस और थार्नडाइक के अनुसार, गत अनुभव से लाभ उठाने की योग्यता ही बुद्धि है। दूसरे शब्दों में, बुद्धि शिक्षण की योग्यता है।

बुद्धि की इस परिभाषा में निम्नलिखित दोष हैं:—

(अ) शिक्षण की योग्यता और बुद्धि एक नहीं हैं क्योंकि शिक्षण की योग्यता बुद्धि के अलावा अन्य बातों पर भी निर्भर करती है।

---

1. "Intelligence is the property of recombining our behaviour pattern as to act better in novel situation." —Wells.

2. "Intelligence is the ability to adjust oneself to a new situation." —Wm. Stern.

(ब) यह परिभाषा बुद्धि के पूरे स्वरूप का वर्णन नहीं करती।

(३) बुद्धि अमूर्त चिन्तन की योग्यता है—गैरेट (Garrett) के अनुसार बुद्धि में "चिन्हों के प्रयोग और समझने की आवश्यकता वाली समस्याओं के सुलझाव में आने वाली योग्यतायें"[3] सम्मिलित हैं। टरमन (Terman) के अनुसार "अमूर्त चिन्तन की योग्यता ही बुद्धि है।"[4]

बुद्धि की इस परिभाषा में निम्नलिखित दोष हैं :—

(अ) अमूर्त चिन्तन ही बुद्धि नहीं है, वह बुद्धि का केवल एक अंग है।

(ब) यह परिभाषा बुद्धि के पूरे स्वरूप का वर्णन नहीं करती।

(४) बुद्धि अनेक शक्तियों का एक समुदाय है—वेश्लर (Wechsler) के अनुसार, "बुद्धि एक व्यक्ति की प्रयोजनपूर्वक कार्य करने, तर्कपूर्वक सोचने और अपने अपने परिवेश से भली प्रकार व्यवहार करने की समुच्चय या ध्रुवीय योग्यता है।"[5] हसबैन्ड (Husband) ने बुद्धि की विभिन्न शक्तयों को गिनाते हुए कहा है, "बुद्धिमान व्यक्ति गत अनुभव को प्रभावपूर्वक प्रयोग करता है, अधिक लम्बे काल तक अपने ध्यान को लगाए रखने में समर्थ होता है, एक नई और अपरिचित परिस्थिति से अधिक तेजी से और कम असंमजस तथा कम गलतियों के साथ अनुकूलन करता है, अनुक्रिया की परिर्वतनशीलता और विविधता दिखलाता है, दूर के सम्बन्धों को देखने योग्य होता है, अमूर्त चिन्तन कर सकता है, दमन और नियन्त्रण की अधिक सामर्थ्य रखता है और आत्म-आलोचन के योग्य होता है।"[6]

हसबैन्ड का बुद्धिमान व्यक्ति का यह वर्णन बिल्कुल ठीक है परन्तु बुद्धि को इन समस्त योग्यताओं का योग नहीं माना जा सकता। बुद्धि कोई अकेली शक्ति है या कई शक्तियों की समष्टि है इस विषय में भी वैज्ञानिकों में मतभेद है। वास्तव

---

3. Intelligence as including "the abilities demanded in the solution of problems which require the comprehension and use of symbols." —Garrett.

4. "Intelligence is ability to think abstractly." —Terman.

5. "Intelligence is the aggregate or global capacity of an individual to act purposefully, to think rationally and to deal effectively with his environment." —Wechsler.

6. "The intelligent person uses past experience effectively, is able to concentrate and keep his attention focussed for longer periods of time, adjusts in a new and unaccustomed situation rapidly and with less confusion and with fewer false moves, shows variability and versatality of response, is able to see distant relationships, can carry on abstract thinking, has a greater capacity of inhibition or delay and is capable of exercising self-criticism." —Husband.

में बुद्धि का स्वरूप निश्चित करने के लिये अभी और भी प्रयोगों की आवश्यकता है।

बुद्धि परीक्षणों के प्रकार
(Forms of Intelligence)

बुद्धि परीक्षणों को उनमें दी हुई क्रियाओं के अनुसार दो वर्गों में बांटा जा सकता है :—

१. वाचिक परीक्षण (Verbal Tests)

२. अवाचिक परीक्षए (Non-Verbal Tests)

अवाचिक परीक्षण में जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है भाषा का प्रयोग किया जाता है और अवाचिक परीक्षए में ऐसी क्रियायें शामिल होती हैं जिनमें भाषा का प्रयोग नहीं करना पड़ता। ये दोनों ही तरह के परीक्षण व्यक्तियों के लिये भी बनाये गये हैं और समूह के लिये भी बनाये गये हैं। इस तरह वाचिक और अवाचिक दोनों तरह के परीक्षणों को व्यक्तिगत और समूह दो वर्गों में बांटा जा सकता है। अतः अन्त में बुद्धि परीक्षणों के निम्नलिखित वर्ग हो सकते हैं :—

१. वाचिक व्यक्ति-बुद्धि परीक्षण (Verbal Individual Intelligence Tests)

२. अवाचिक व्यक्ति-बुद्धि परीक्षण (Non-verbal Individual Intelligence Tests)

३. वाचिक समूह-बुद्धि परीक्षण (Verbal Group Intelligence Tests)

४. अवाचिक बुद्धि-समूह परीक्षण (Non-verbal Group Intelligence Tests)

वाचिक व्यक्ति-बुद्धि परीक्षण
(Verbal Individual Intelligence Tests)

वाचिक व्यक्ति बुद्धि परीक्षण, जैसा कि उनके नाम से स्पष्ट है, ऐसे कुछ परीक्षण हैं जो व्यक्तियों को दिये जाते हैं अर्थात् जिनमें व्यक्ति की बुद्धि परीक्षा की जाती है और जिनमें भाषा का काफी इस्तेमाल होता है। विने साइमन बुद्धि परीक्षण तथा उसके सब अनुशीलन (Revisions) इसी वर्ग में आते हैं। वाचिक और अवाचिक परीक्षणों के अलावा कुछ ऐसे परीक्षण भी होते हैं जिन में वाचिक और अवाचिक दोनों प्रकार की क्रियायें होती हैं। ये मिश्रित परीक्षण (Mixed Types of Tests) कहलाते हैं।

इस प्रकार के परीक्षण का एक उदाहरण उत्तर प्रदेश की मनोविज्ञानशाला का टरमन-मैरिल मानदण्ड का हिन्दी अनुशीलन है। इस अनुशीलन में स्थूल पदार्थों

टरमन मैरिल मानदण्ड का हिन्दी अनुशीलन

से लेकर कठिन प्रश्नों तक अनेक प्रकार की सामग्री दी गई है। प्रारम्भ की क्रियायें सरल और स्थूल हैं जैसे गुटकों का पुल या मीनार बनाना अथवा छोटे बड़े लकड़ी के टुकड़ों को उनके अनुकूल खाली जगह में जमाना। इसके साथ-साथ परीक्षण के अन्त में ऐसे कठिन प्रश्न भी हैं जिनमें काफी सोचने की जरूरत पड़ती है। यह परीक्षण विभिन्न आयु के वर्गों में कम होता जाता है। उदाहरण के लिये 'वर्ष दो' में निम्नलिखित क्रियायें होती हैं :—

१. तीन छिद्र वाला आकार।

२. नाम द्वारा वस्तु पहचानना।

३. शरीर के अंग पहचानना

४. गुटकों की मीनार बनाना।

५. चित्र देखकर वस्तु का नाम बतलाना।

६. शब्द क्रम।

उत्तम प्रौढ़ तीन (Superior Adult Third) में विभिन्न क्रियायें निम्न प्रकार हैं:—

१. शब्द भण्डार।

२. दिशा बोध।

३. विपरीत सहधर्मता।

४. कागज काटना।

५. तर्क करना।

६. नौ अंक दोहराना।

अवाचिक व्यक्ति-बुद्धि परीक्षण
(Non-Verbal Individual Intelligence Tests)

वाचिक परीक्षणों में बालक की भाषा सम्बन्धी योग्यता की अधिक जरूरत पड़ती है। जाहिर है कि यह परीक्षण विद्यार्थियों अथवा पढ़े-लिखे लोगों पर ही लागू किया जा सकता है। अनपढ़ लोगों पर ऐसा परीक्षण नहीं किया जा सकता जिसमें भाषा के प्रयोग की अधिक जरूरत होती है क्योंकि ऐसे परीक्षणों के द्वारा वे पढ़े-लिखे लोगों के व्यवितत्व अन्तर को नहीं मापा जा सकता। उनमें तो इस तरह के परीक्षणों के परिणाम लगभग एक-से ही आयेंगे। अत: अनपढ़ लोगों की बुद्धि की परीक्षा करने के लिये अवाचिक व्यक्ति-बुद्धि परीक्षणों का इस्तेमाल किया

जाता है। जैसा कि इनके नाम से जाहिर है इन बुद्धि परीक्षणों में भाषा सम्बन्धी योग्यता की कम से कम जरूरत पड़ती है और इनमें किताबी ज्ञान का कम से कम असर पड़ता है। अवाचिक परीक्षणों का एक उदाहरण क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण (Performance Intelligence Test) है।

क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण

अवाचिक व्यक्ति बुद्धि परीक्षण के उदाहरण के रूप में अब क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण (Performance Intelligence Test) को विस्तार से समझ लेना प्रासंगिक होगा। मन (Munn) के शब्दों में, "क्रिया शब्द का प्रयोग आमतौर से ऐसे परीक्षण में किया जाता है जिसमें समझ और भाषा के प्रयोग की कम से कम आवश्यकता होती है।" इस तरह क्रियात्मक बुद्धि परीक्षणों में ऐसे विषयों (Items) का प्रयोग किया जाता है जिनमें भाषा की नहीं बल्कि अनुक्रियाओं (Responses) की जरूरत होती है। इन बालकों, निरक्षरों, मन्द बुद्धि और विदेशियों की बुद्धि परीक्षा हो सकती है।

पिंटनर-पैटर्सन क्रियात्मक मानदण्ड

क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण का एक उदाहरण पिंटनर-पैटर्सन-क्रियात्मक मानदण्ड (Pintner-Patterson-Performance Scale) है। इसको पिंटनर और पैटर्सन ने सन् १९१७ में बनाया। इस मानदण्ड में १५ तरह के परीक्षण हैं जिनमें सात आकार फलक (Form Boards) ६ परीक्षण चित्र पूर्ति (Picture Completions), स्मृति विस्तार (Memory span) और अन्य पहेलियां (Picture Puzzles) तथा अनुकरण (Imitation) आदि हैं।

पोर्टियस भूल-भुलैया परीक्षण

क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण का एक अन्य उदाहरण पोर्टियस भूल-भुलैया परीक्षण (Porteus Maze Tests) हैं। इनमें कागज-पेंसिल भूल-भुलैया परीक्षण का प्रयोग किया जाता है। पोर्टियस ने अपने परीक्षण में तीन वर्ष से लेकर १४ वर्ष तक की आयु के बालकों के लिये भूल-भुलैया बनाईं। आयु के अनुसार ये भूल-भुलैया बराबर कठिन होती जाती हैं। प्रयोज्य (Subject) को दो बार मौका दिया जाता है। यदि वह दोनों बार असफल होता है तो यह समझा जाता है कि उसकी बुद्धि उस विशेष व्याख्या स्तर की नहीं है। १२ और १४ वर्ष की आयु के बालकों के लिये ४ मौके दिये जाते हैं। पोर्टियस के परीक्षणों से केवल बुद्धि की ही परीक्षा नहीं होती बल्कि व्यक्ति का स्वभाव भी मालूम नहीं पड़ता है। इस परीक्षण की विशेषता यह है कि इसमें कुछ ऐसे पहलुओं को भी लिया गया है जो कि स्टैन्फोर्ड बिने परीक्षणों में भी नहीं हैं।

क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण का एक सरल उदाहरण आकार फलक परीक्षण (Form Board Test) है। इसमें सैगुइन (Seguin) और गोडार्ड (Goddard)

आकार फलक परीक्षण

के परीक्षण उल्लेखनीय हैं। आकार फलक परीक्षण में विभिन्न आकार या ब्लाक (Blocks) होते हैं और एक फलक होता है जिनमें उन आकारों के अनुरूप छिद्र होते हैं। प्रयोज्य को बोर्ड के इन छेदों में उनके अनुरूप ब्लाकों को फिट करना पड़ता है। इसमें सब ब्लाकों को रखने में लगे हुए समय और की हुई गलतियाँ नोट की जाती हैं तथा इन दोनों से परीक्षण का लब्धांक (Score) निकाला जाता है।

मैरिल पामर ब्लाक बिल्डिंग परीक्षण

बालकों के लिये उपयुक्त क्रियात्मक परीक्षणों में से एक अत्यन्त प्रसिद्ध परीक्षण मैरिल पामर ब्लाक बिल्डिंग परीक्षण (Merrill-Palmer Block Building Test) है। इसमें सैगुइन आकार फलक के अतिरिक्त ब्लाक बिल्डिंग परीक्षण भी शामिल होता है।

वैश्लर वैल्लव्यू परीक्षण

क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण का एक अन्य उदाहरण वैश्लर-वैल्लव्यू-परीक्षण Wechsler-Bellevue Test) है। यह परीक्षण सन् १९३९ में १० से लेकर ६० वर्ष तक के लोगों की बुद्धि परीक्षा के लिये बनाया गया। इसके बारे में रुफर और लैजार्स ने लिखा है कि "आधुनिक क्लीनिक में वह माप के सबसे अधिक महत्वपूर्ण यन्त्रों में से एक के रूप में बिने की श्रेणी में आता है।" इस तरह वयस्क व्यक्तियों की बुद्धि परीक्षा के लिये यह सबसे अधिक उपयुक्त परीक्षण है। यह एक मिश्रित प्रकार का (Mixed Type) परीक्षण है। इस परीक्षण में पाँच वाचिक और पाँच क्रियात्मक सहायक परीक्षण (Sub-Tests) होते हैं। इस परीक्षण की विशेषता यह है कि इनसे मानसिक योग्यता का केवल एक ही सूचक (Index) नहीं मिलता बल्कि एक योग्यताओं का वृत्त (Profile of abilities) मिल जाता है।

भाटिया की परीक्षण माला

भाटिया की क्रियात्मक परीक्षण की बैट्री (Bhatia's Battery of Performance Tests) का उल्लेख किये बिना क्रियात्मक बुद्धि परीक्षणों का और वाचिक व्यक्ति बुद्धि परीक्षण का विवरण पूरा नहीं होगा। अतः यहाँ उसका भी संक्षिप्त वर्णन किया जायेगा। यह परीक्षण-माला उत्तर प्रदेश की मनोविज्ञानशाला के भूतपूर्व संचालक डॉ० चन्द्र मोहन भाटिया ने बनाई थी। इस बैट्री में निम्न-लिखित पाँच सहायक परीक्षण हैं :—

(१) कोहज ब्लाक डिजाइन टैस्ट (Kohez Block Design Test)—इसमें कोहज द्वारा बनाये गये ब्लॉक डिजाइन टैस्ट के १० विषय शामिल कर लिये गये हैं। हर एक विषय में एक कार्ड होता है जिस पर एक रंगीन डिजाइन बना रहता है। इस डिजाइन को देखकर प्रयोज्य रंगीन गुटकों की सहायता से वैसा ही डिजाइन बनाता हैं। ये डिजाइन दसों विषयों में क्रमशः सरल से जटिल होते जाते हैं।

(२) एलक्जेण्डर पास एलौंग टैस्ट (Alexander Pass Along Test)—भाटिया की बैट्री में एलक्जेंडर पास एलौंग टैस्ट भी शामिल कर लिया गया है। इसमें भी कुछ डिजाइन इत्यादि रहते हैं और इन डिजाइनों को देखकर प्रयोज्य एक खुले बक्स में रखे रंगीन टुकड़ों को खिसका कर उसी डिजाइन की तरह रखता है।

(३) पैटर्न ड्राइंग टैस्ट (Pattern Drawing Test)—इस टैस्ट को डॉ० भाटिया ने स्वयं बनाया है। इसमें आठ कार्ड होते हैं जिनमें से प्रत्येक पर एक रेखा आकार बना होता है। प्रयोज्य इस आकार को देख कर विशेष आकार बनाता है।

(४) तात्कालिक स्मृति परीक्षण—इसमें कुछ अंक बोले जाते हैं और प्रयोज्य उनको तुरन्त दोहराता है जिससे इसकी तात्कालिक स्मृति पर प्रकाश पड़ता है।

(५) चित्र निर्माण परीक्षण—इस सहायक परीक्षण में पाँच विषय रहते हैं जिनसे भारतीय ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित चित्रों के क्रमशः २, ४, ६, ८ और १२ टुकड़े होते हैं। प्रयोज्य के सामने एक बार में एक चित्र के टुकड़े रखे जाते हैं और वह उन टुकड़ों को जोड़कर चित्र बनाता है।

उपरोक्त भाटिया परीक्षण के अलावा उत्तर प्रदेश की मनोविज्ञानशाला ने ४ से १० वर्ष की आयु के बालकों के लिये एक अन्य क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण की बैट्री तैयार की है।

वाचिक और अवाचिक दोनों ही तरह के व्यक्ति बुद्धि परीक्षणों में कुछ कठिनाइयाँ हैं। मोटे तौर से ये कठिनाइयाँ निम्नलिखित हैं :—

(१) समय की कठिनाई—व्यक्ति बुद्धि परीक्षण में आमतौर से लगभग एक घण्टा या उससे अधिक समय लग जाता है और एक बार में एक ही व्यक्ति की परीक्षा की जाती है। जाहिर है कि इस रफ्तार से बहुत अधिक संख्या में प्रशिक्षित परीक्षकों की जरूरत पड़ेगी और तब भी सबका काम नहीं हो सकेगा।

व्यक्ति बुद्धि परीक्षणों में कठिनाइयाँ

(२) अनुभवी परीक्षकों की आवश्यकता—व्यक्ति बुद्धि परीक्षण में दूसरी कठिनाई अनुभवी परीक्षकों की आवश्यकता के कारण है। अनुभव न होने पर इस परीक्षण में सही परिणाम नहीं मिल सकता। परन्तु इतनी अधिक संख्या में अनुभवी परीक्षकों का मिलना लगभग असम्भव ही है।

उपरोक्त कठिनाइयों के होते हुए भी कुछ विशेषताओं के कारण व्यक्ति बुद्धि परीक्षणों का अपना महत्व है। व्यक्ति बुद्धि परीक्षणों की ये विशेषतायें निम्नलिखित हैं :—

(१) वैयक्तिक निर्देशन के लिये उपयुक्त—वैयक्तिक अथवा निजी निर्देशन (Personal Guidance) के लिये व्यक्ति बुद्धि परीक्षण सबसे अधिक उपयुक्त है।

व्यक्ति बुद्धि परीक्षणों की विशेषतायें

निजी समस्यायें व्यक्ति की अपनी विशिष्ट समस्यायें होती हैं और वे सभी व्यक्तियों में एक सी नहीं होतीं। अतः उनको समझने के लिये और उनमें सुझाव देने के लिये व्यक्ति बुद्धि परीक्षण ही सहायक है। इनसे परामर्शदाता को व्यक्ति का सूक्ष्म परीक्षण करने का मौका मिलता है।

(२) **अधिक विश्वसनीय परिणाम**—व्यक्ति बुद्धि परीक्षण के परिणाम समूह परीक्षण के परिणामों में अधिक विश्वसनीय होते हैं। इसके कई कारण हैं। एक तो समूह परीक्षण में परीक्षार्थी एक दूसरे की नकल कर सकते हैं। दूसरे अनेक लोगों के उपस्थित रहने से उनको खुल कर उत्तर देने में संकोच हो सकता है। तीसरे दूसरों के मौजूद रहने से ही व्यक्ति के उत्तरों में अन्तर आ सकता है क्योंकि दूसरों की उपस्थिति से वह अशान्त, संकोचशील, उद्विग्न आदि हो सकता है और इस प्रकार क्रियात्मक परीक्षणों में अधिक गलतियां कर सकता है। व्यक्ति बुद्धि परीक्षण में इनमें से कोई कठिनाई नहीं रहती और प्रयोज्य के उत्तर अधिक स्वाभाविक तथा उसका कार्य अधिक सन्तुलित हो पाता है।

(३) **उपचार में सहायता**—मानसिक चिकित्सा या उपचार में केवल व्यक्तिगत परीक्षणों पर ही निर्भर किया जा सकता है।

वाचिक समूह बुद्धि परीक्षण
(Verbal Group Intelligence Test)

समूह बुद्धि परीक्षण में, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, किसी एक व्यक्ति की नहीं बल्कि समूह की बुद्धि परीक्षा की जाती है। इसमें समूह के सभी व्यक्तियों को एक ही तरह के निर्देश दिये जाते हैं और सभी को एक ही प्रकार के काम करने होते हैं। परीक्षणों के परिणाम के आधार पर लब्धांक भी प्रायः मशीन से निकाल लिया जाता है जिससे न तो अधिक समय की आवश्यकता होती है और न कुशल परीक्षकों की।

समूह बुद्धि परीक्षण का एक उत्तम उदाहरण आर्मी आल्फा (Army Alpha) और आर्मी बीटा (Army Beta) बुद्धि परीक्षण हैं। आर्मी आल्फा परीक्षण वाचिक

आर्मी आल्फा और आर्मी बीटा परीक्षण

था और पढ़े-लिखे लोगों के लिये बनाया गया था। आर्मी बीटा परीक्षण अवाचिक था और अनपढ़ लोगों के लिये बनाया गया था। ये परीक्षण प्रथम महायुद्ध में अमेरिका के सैनिकों की जाँच के लिये बनाये गये थे। इन परीक्षणों से कई महत्वपूर्ण बातें मालूम हुईं। उदाहरण के लिये इनसे मन्द बुद्धि कुशल विशेषज्ञ होने की क्षमता वाले, बड़े अफसर होने की क्षमता वाले तथा प्रशिक्षण की आवश्यकता वाले लोगों का अलग-अलग पता चल गया।

इस परीक्षण की सफलता के कारण द्वितीय महायुद्ध में भी युद्ध और नौ सेना विभागों के सैनिकों के वर्गीकरण के लिये कुछ समूह परीक्षण वनाये गये जिनमें निम्नलिखित दो विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं:—

नौ सेना और सेना सामान्य वर्गीकरण परीक्षण

१. नौ सेना सामान्य वर्गीकरण परीक्षण।
२. सेना सामान्य वर्गीकरण परीक्षण।

क्रूज (Cruze) के अनुमान के अनुसार १९४१ से १९४६ तक सेना सामान्य वर्गीकरण परीक्षण के द्वारा लगभग एक अरब से अधिक व्यक्तियों की जांच की गई। इस परीक्षण में तीन तरह के विषय होते हैं—एक तो शब्द कोष सम्बन्धी समस्यायें, दूसरी अंकगणित सम्बन्धी समस्यायें तथा तीसरे ब्लाक गिनने की समस्यायें।

डॉ० सोहनलाल का समूह परीक्षण

उत्तर प्रदेश की मनोविज्ञानशाला में ११ वर्ष की आयु के बालकों के लिये डॉ० सोहनलाल द्वारा निर्मित एक समूह परीक्षण का प्रयोग किया जाता है। १३, १४ तथा १५ वर्ष की आयु के बालकों के लिये तथा वयस्कों के लिये भी बुद्धि परीक्षण बनाये गये हैं।

डॉ० सोहनलाल द्वारा बनाये गये ११ वर्ष की आयु के बालकों के बुद्धि परीक्षण में दिये गये विभिन्न विषयों में से कुछ निम्नलिखित हैं :—

निम्नलिखित उदाहरण में सर के नीचे एक रेखा खींची गई है क्योंकि अन्य वस्तुयें न होते हुए भी लड़के के सर होना जरूरी है। उदाहरण इस प्रकार है—

आवश्यक है :—

लड़के में········(कोट, जूता, बस्ता, सर, बाईसकिल, गेंद)

उपरोक्त उदाहरण को देखकर प्रयोज्य को कुछ प्रश्नों में ठीक उत्तर के नीचे रेखा खींचनी है। इस प्रकार के प्रश्नों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :—

आवश्यकता है :—

३३—जंगल में···············(शेर, भालू, सांप, कीचड़, कांटा, पेड़)

३४—समुद्र में··········(जहाज, हवाई जहाज, पानी, यात्री धुंध, ठंड)

३५—बर्फ में·············(बुरादा, कम्बल, टाट, कूड़ा, धुंआ, ठंडक)

१३ वर्ष की आयु के बालकों के लिये बनाये गये परीक्षण में कुछ विषय निम्नलिखित हैं :—

एक उदाहरण में ५ शब्द दिये गये हैं जिनमें जो शब्द बाकी चार शब्दों से अलग है उसके नीचे रेखा खींची गई है। इस उदाहरण को देखकर दिये हुए प्रश्नों में इस प्रकार के शब्दों के नीचे रेखा खींचनी है। उदाहरण अग्रलिखित है :—

इन शब्दों को देखो :—

मलमल, मखमल, लट्ठा, चमड़ा, मारकीन।

हल करने के लिये दिये गये प्रश्नों के उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

१. कुत्ता, गाय, भैंस, मुर्गी, घोड़ा।

२. मन्दिर, मस्जिद, गिरजा, धर्मशाला, गुरुद्वारा।

वाचिक समूह बुद्धि परीक्षणों के उपरोक्त उदाहरणों से जाहिर है कि इनमें समूह के व्यक्तियों की तर्क शक्ति, कल्पना शक्ति, तुलना और अन्तर करने की शक्ति, दिशाओं का बोध तथा अंक सम्बन्धी योग्यता और भाषा सम्बन्धी योग्यता की परीक्षा की जाती है। समूह परीक्षण में यह जरूरी है कि परीक्षक परीक्षण को पूरी तरह जानता हो और उससे सम्बन्धित निर्देशनों को अच्छी तरह समझता हो। इसलिए अक्सर परीक्षक पहले खुद अपनी परीक्षा कर लेता है। इसके साथ ही साथ परीक्षक को परीक्षण की परिस्थिति के बारे में कुछ यांत्रिक पहलुओं का ज्ञान होना भी जरूरी है जैसे प्रयोज्यों को बैठाने का समुचित प्रबन्ध करना, परीक्षण के रिक्त पत्रों (Test blanks) को बाँटना और परीक्षण सम्बन्धी सामग्री जैसे पैंसिल आदि का प्रबन्ध करना।

अवाचिक समूह बुद्धि परीक्षण
(Non Verbal-Group Intelligence Test)

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है वाचिक बुद्धि परीक्षण केवल पढ़े लिखे लोगों के लिये होते हैं क्योंकि उनमें भाषा सम्बन्धी योग्यता की अधिक जरूरत पड़ती है। इसीलिए अवाचिक समूह बुद्धि परीक्षण बनाये गये हैं। इनमें भाषा का कम से कम इस्तेमाल किया जाता है और प्रयोज्य की क्रियायें अधिक करनी पड़ती हैं। अवाचिक बुद्धि परीक्षण का एक उदाहरण कैटेल का कल्चर फ्री परीक्षण (Culture Free Test) तथा एन० आई० आई० पी० (N. I. I. P) का परीक्षण है। इन परीक्षणों में दिये गये विषयों का एक उदाहरण निम्नलिखित है :—

आगे दिये हुये चित्र में ३ वर्ग हैं और चौथे वर्ग की जगह खाली है। इन तीन वर्गों में कुछ आकार बने हुए हैं। बाँई ओर पाँच वर्गों में भिन्न-भिन्न आकार दिये गये हैं। आगे दिये हुए चित्र में चौथे वर्ग की जगह में पाँचों में से एक ऐसा आकार रखना है कि तीसरे वर्ग के आकार का उससे वही सम्बन्ध हो जो पहले वर्ग के आकार का दूसरे वर्ग के आकार से है।

अवाचिक समूह बुद्धि परीक्षणों में प्रयोज्यों को सरल से सरल ढंग का निर्देश समझा दिया जाता है और जहाँ तक हो सकता है करके दिखा दिया जाता है जिस से कि भाषा की योग्यता की कम से कम जरूरत पड़े।

अवाचिक समूह बुद्धि परीक्षणों की विशेषतायें

समूह बुद्धि परीक्षणों में कुछ क्रियात्मक परीक्षण होते हैं। जिनमें प्रयोज्य अपनी अपनी योग्यता के अनुसार कुछ रेखायें खींचता है कुछ खाली जगहों को भरता है, कुछ खाली

पत्रों को भरता है अथवा कुछ सरल अनुक्रियायें करता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने अवाचिक परीक्षणों को बुद्धि का सही मापदण्ड नहीं माना है। दूसरी ओर कुछ मनोवैज्ञानिक उनको वाचिक परीक्षण से भी बेहतर समझते हैं। उदाहरण के लिए एलेक्जैंडर (Alexander) ने लिखा है "एक पूर्ण क्रियात्मक बैट्री एक पूर्ण वाचिक बैट्री की अपेक्षा अधिक बेहतर मानदण्ड होगी।" सच तो यह है कि अवाचिक समूह बुद्धि परीक्षण यदि वाचिक परीक्षणों से अधिक नहीं तो कम महत्वपूर्ण भी नहीं है। उनकी कुछ विशेषतायें निम्नलिखित हैं :—

(१) **भिन्न-भिन्न व्यक्ति समूहों की तुलना**—विभिन्न भाषाओं तथा संस्कृतियों के व्यक्ति समूहों की तुलना में सबसे पहली बाधा उनका भाषा सम्बन्धी अन्तर है। अवाचिक समूह बुद्धि परीक्षणों से यह कठिनाई दूर की जा सकती है और विभिन्न व्यक्ति समूहों की तुलना की जा सकती है।
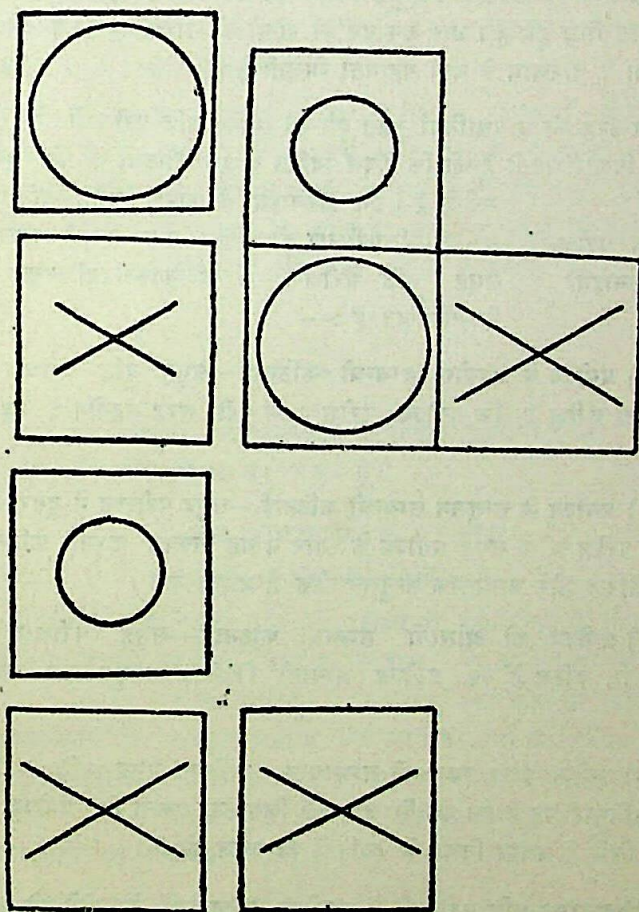
चित्र—१

(२) निरक्षर सैनिकों की परीक्षा—वाचिक समूह बुद्धि परीक्षण निरक्षर अथवा अनपढ़ सैनिकों की बुद्धि परीक्षा के लिये सर्वथा अनुपयुक्त हैं। अवाचिक बुद्धि परीक्षण द्वारा अनपढ़ सैनिकों की सीखने की योग्यता की परीक्षा की जाती है।

(३) बालकों की बुद्धि परीक्षा—बालकों की भाषा सम्वन्धी योग्यता बहुत कम होती है अतः उनके लिये वाचिक समूह बुद्धि परीक्षण नहीं प्रयोग किये जा सकते। बालकों की बुद्धि परीक्षा के लिये अवाचिक समूह बुद्धि परीक्षण ही काम दे सकता है।

(४) कुछ विशेष वर्गों को परामर्श—अवाचिक समूह बुद्धि परीक्षणों के उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि कुछ विशेष वर्ग के व्यक्तियों के लिये ये परीक्षण सबसे उपयुक्त सिद्ध हुये हैं। अतः इन वर्गों के लोगों को उचित परामर्श देने के लिये इन परीक्षणों के परिणाम से बड़ी सहायता मिलती है।

सब तरह की सावधानियाँ रखते हुये भी व्यक्ति बुद्धि परीक्षणों में कुछ ऐसी कठिनाइयाँ दिखाई पड़ती हैं जो कि केवल व्यक्ति बुद्धि परीक्षणों से ही दूर की जा सकती हैं। इन कठिनाइयों के कारण समूह बुद्धि परीक्षण व्यक्ति बुद्धिपरीक्षण की अपेक्षा कम यथार्थ समझ जाते हैं समूह बुद्धि परीक्षण में ये कठिनाइयाँ स्थूल रूप से निम्नलिखित हैं :—

समूह बुद्धि परीक्षणों में कठिनाइयाँ

(१) प्रयोज्य के सहयोग सम्बन्धी कठिनाई—समूह बुद्धि परीक्षण में यह निश्चय करना कठिन है कि प्रयोज्य परीक्षण में पूरी तरह सहयोग दे रहा है या नहीं।

(२) प्रयोज्य के सन्तुलन सम्बन्धी कठिनाई—समूह परीक्षण में दूसरी कठिनाई यह है कि परीक्षण के समय प्रयोज्य के बारे में यह निश्चय करना ,कठिन है कि उसका शारीरिक और भावात्मक सन्तुलन ठीक है अथवा नहीं।

(३) प्रयोज्य की आसानी सम्बन्धी कठिनाई—समूह परीक्षण में यह निश्चय करना कठिन है कि प्रयोज्य आसानी (Ease) महसूस कर रहा है या कठिनाई।

(४) प्रयोज्य द्वारा नकल की सम्भावना—वाचिक समूह बुद्धि परीक्षण में एक अन्य कठिनाई यह है कि यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि प्रयोज्य ने अपने उत्तर स्वयं लिखे हैं अथवा निकट के व्यक्यिों की नकल की है।

वाचिक समूह बुद्धि परीक्षणों में उपरोक्त कठिनाइयों के होते हुये भी उनके कुछ अपने लाभ हैं जिनके कारण उनका व्यापक प्रयोग किया जाता है। जैसा कि

समूह परीक्षणों की विशेषतायें

पहले बतलाया जा चुका है। ये लाभ वही हैं जो व्यक्ति बुद्धि परीक्षण की कठिनाइयाँ है। मोटे तौर से समूह परीक्षण की विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

(१) समय की बचत—व्यक्ति परीक्षणों के मुकाबले में समूह परीक्षणों की एक बड़ी विशेषता यह है उनमें समय की भारी बचत होती है और कम समय में अधिक व्यक्तियों की परीक्षा की जा सकती है।

(२) गति परीक्षण—वास्तव में समूह परीक्षणों में हर एक काम के लिये समय निश्चित कर दिया जाता है इससे वे एक प्रकार से गति परीक्षण (Speed Tests) भी बन जाते हैं।

(३) फलांक की गणना में आसानी—समूह परीक्षणों की एक अन्य विशेषता यह है कि उनमें फलांकों (Scores) की गणना बड़ी शीघ्रता से हो जाती है और गलती की सम्भावना भी नहीं रहती।

(४) तुलनात्मक अध्ययन—समूह परीक्षण व्यक्तियों के तुलनात्मक अध्ययन के लिये बड़े उपयोगी हैं। उनमें सभी तरह के प्रश्न और काम होते हैं समूह का जो व्यक्ति जिस स्तर के कामों के आगे नहीं बढ़ पाता उससे उसकी योग्यता का स्तर पता चलता है और समूह के अन्य व्यक्तियों के कामों से तुलना करके यह जाना जा सकता है कि अन्य लोगों के मुकाबले में उसकी योग्यता कैसी है।

*

प्रश्न ७—उदाहरण देकर बतलाइये कि विशेष योग्यताओं की परीक्षा कैसे की जाती है। इन परीक्षाओं का क्या महत्व है ?

विशेष योग्यताओं के परीक्षण
(Tests of Special Abilities)

निर्देशन के लिये केवल बुद्धि की परीक्षा ही काफी नहीं है क्योंकि निर्देशन केवल बुद्धि के आधार पर नहीं किया जा सकता। किस व्यक्ति को कौन-सा कार्य करना चाहिये, किस विद्यार्थी को कौन-सा पाठ्यक्रम चुनना चाहिए इत्यादि विभिन्न समस्याओं में निर्देशन देने के लिये व्यक्ति की बुद्धि के साथ-साथ उसकी विशेष योग्यताओं का परीक्षण भी जरूरी है क्योंकि जीवन की समस्याओं में इन विशेष योग्यताओं का बड़ा महत्व होता है।

विशेष योग्यताओं के परीक्षण का महत्व

विशेष योग्यताओं से सम्बन्धित परीक्षणों के विवरण से पहले वह जानना जरूरी है कि विशेष योग्यताओं का परीक्षण किस उम्र में किया जा सकता है। यह

परीक्षण की उम्र

सवाल इसलिये उठता है क्योंकि बचपन में मनुष्य की विशेष योग्यतायें अलग-अलग नहीं दिखाई पड़तीं। ये विशेष योग्यतायें किस उम्र में अलग-अलग दिखाई पड़ने लगती हैं इस बारे में मनोवैज्ञानिकों में मतभेद है। ड्रयू (Drew) के अनुसार मनुष्य की विशेष योग्यतायें ११ वर्ष की आयु में जाहिर होने लगती हैं। दूसरी ओर साइरिल बर्ट (Cyril Burt) ने मनुष्य की विशेष योग्यतायें जाहिर होने की उम्र १३ वर्ष मानी है। सामान्य रूप से ड्रयू का मत अधिक माना जाता है। इसलिये शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन भी ११ वर्ष की उम्र से ही किया जाता है।

विशेष योग्यता का परीक्षण

विशेष योग्यता के जाहिर होने की उम्र निश्चय करने के बाद अब एक सवाल यह भी रह जाता है कि विशेष योग्यतायें कितनी हैं? वास्तव में विशेष योग्यताओं की गिनती करना बड़ा मुश्किल है। और इस बारे में कोई मत सर्वमान्य नहीं है। थर्सटन (Thurstone) और उसके सहयोगियों ने सात मूल मानसिक विशेषतायें मानी हैं। थर्सटन इन्हें मूल मानसिक योग्यतायें (Primary mental abilities) कहता है। ये मूल मानसिक योग्यतायें हैं—शब्द बोध सम्बन्धी, संख्या सम्बन्धी, तर्क सम्बन्धी, स्मृति सम्बन्धी, शब्द प्रवाह सम्बन्धी तथा आकारात्मक योग्यता सम्बन्धी इत्यादि। शिकागो मानसिक योग्यता परीक्षण (Chicago primary mental ability Test) इन्हीं मानसिक योग्यताओं के आधार पर तैयार किया गया है। इसी आधार पर बनी एक दूसरी परीक्षण माला अमेरिका के साइकोलोजिकल कारपोरेशन (Psychological Corporation) में इस्तेमाल की जाती है। इस परीक्षण बैट्री में निम्नलिखित परीक्षण हैं:—

(१) वाचिक तर्क (Verbal reasoning)
(२) अंक सम्बन्धी योग्यता (Numerical ability)
(३) अमूर्त तर्क (Abstract reasoning)
(४) देशीय सम्बन्ध (Space relations)
(५) यंत्रवत तर्क (Mechanical reasoning)
(६) लेखा सम्बन्धी गति और यथार्थता (Clerical speed and Accuracy)
(७) भाषा के प्रयोग (Language Test)

प्रश्न ८—रुचि परीक्षण का क्या महत्व है? रुचि परीक्षण के कुछ उदाहरण दीजिये तथा रुचि सूचियों की सीमायें बतलाइये।

अथवा

प्रश्न—रुचि पत्री (Interest inevntory) अथवा निर्धारण मान (Rating scale) का वर्णन कीजिए। (यू० पी० बोर्ड १९६४)

रुचियों के परीक्षण
(Tests of Interests)

निर्देशन में रुचि से सम्बन्धित जानकारी भी बहुत जरूरी है। कोई व्यक्ति कौन-सा कार्य अच्छी तरह कर सकता है, यह उसकी बुद्धि और योग्यता के अलावा रुचि पर भी बहुत कुछ निर्भर है। किस विद्यार्थी को कौन-सा विषय अथवा पाठ्यक्रम चुनना चाहिए, इसमें उसकी बुद्धि और योग्यता के अलावा रुचि पर भी ध्यान देना पड़ेगा।

रुचि परीक्षण का महत्व

इस तरह निर्देशन में, चाहे वह शिक्षा सम्बन्धी हो अथवा व्यावसायिक, व्यक्ति की रुचि के बारे में पता लगा देना बड़ा जरूरी है। आमतौर से लोग यह समझते हैं कि रुचि का पता लगाने के लिए किसी व्यक्ति से पूछना ही काफी है। उदाहरण के लिए लोग एक दूसरे से पूछा करते हैं कि आपकी किस विषय में रुचि है अथवा आपको कौनसा काम अच्छा लगता है इत्यादि। परन्तु विज्ञान में इस तरह की अटकलबाजियों से काम नहीं चल सकता। उसमें हर एक बात का यथासम्भव यथार्थ निश्चय होना चाहिये। अतः मनोविज्ञान में रुचि को मापने के अनेक परीक्षण निकाले गये।

रुचि सूचियाँ

रुचि का सबसे सरल और सबसे प्रचलित परीक्षण व्यक्ति से इस विषय में पूछना है। प्रयोज्य को एक लम्बी सूची दे दी जाती है और उससे अपनी रुचि के व्यवसाय के आगे निशान लगाने को कहा जाता है। इस सूची को देखकर मनोवैज्ञानिक यह जान लेता है कि विशेष व्यक्ति को किस विशेष व्यवसाय में रुचि है। इस प्रकार की सामान्य सूचियों में मार्गरेट-इ-होपोक (Margaret-E-Hoppock) की व्यवसायों की चैकलिस्ट (Check List of Occupations) उल्लेखनीय है।

स्ट्रांग का व्यावसायिक रुचि का रिक्त पत्र

इन सामान्य सूचियों के अलावा कुछ अन्य सूचियाँ इस प्रकार की बनाई जाती हैं जिनमें व्यवसाय के साथ-साथ व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं के जाहिर होने का मौका दिया जाता है। इस तरह की सूचियों का एक उदाहरण स्ट्रांग का व्यावसायिक रुचि का रिक्त पत्र (Strong's Vocational Interest Blank) है। इसमें वयस्क स्त्री-पुरुषों तथा लड़के-लड़कियों के लिये अलग-अलग रिक्त पत्र होते हैं। सम्पूर्ण रिक्त पत्र आठ भागों में विभाजित होता है जिनका क्रम और विवरण निम्नलिखित हैं :—

१. व्यवसाय
२. मनोरंजन
३. स्कूल के विषय
४. विभिन्न कार्य

५. व्यक्तित्व की विशेषतायें
६. कार्य में रुचि का क्रम
७. दो कार्यों में रुचि की तुलना
८. वर्तमान योग्यताओं और गुणों का मूल्यांकन

इन रिक्त पत्रों से यह पता लगाने की कोशिश की जाती है कि पत्र भरने वाले की रुचि किस व्यवसाय में सफल व्यक्ति की रुचि से मेल खाती है। इस तरह स्ट्रांग की सूची (Inventory) विभिन्न व्यवसायों में सफल व्यक्तियों के तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित है।

वोकेशनल प्रीफ्रेन्स रिकार्ड

एक दूसरी तरह की रुचि मापने की सूचियाँ ऐसी होती हैं जिनमें भिन्न-भिन्न व्यवसायों की प्रक्रियाओं तथा वास्तविक क्रियाओं का और उनके लिये आवश्यक व्यक्तिगत विशेषताओं और व्यवसाय के वातावरण का वर्णन होता है। इस प्रकार की सूची का एक उदाहरण डनलप का एकेडेमिक प्रिफ्रेंस रिकार्ड (Dunlop's Academic Preference Record) है। उत्तर प्रदेश की मनोविज्ञान-शाला का वोकेशनल प्रिफ्रेंस रिकार्ड (Vocational Preference Record) भी इसी वर्ग में आता है। यह रुचि सूचि विभिन्न रुचि क्षेत्रों (Interest areas) का वर्णन करती है। इसमें समस्त व्यवसायों को १० रुचि क्षेत्रों में बाँटा गया है। इन दसों क्षेत्रों में होने वाली क्रियाओं का सूची में उल्लेख किया जाता है और प्रयोज्य को बहुत पसन्द, साधारण पसन्द तथा नापसन्द इन तीन में से किसी एक पर निशान लगाना पड़ता है। सब क्रियाओं के निशान को जोड़कर रुचि का एक परिपार्श्व चित्र (Profile) बनाया जाता है जिससे व्यक्ति को उसके भावी व्यवसाय के सम्बन्ध में निर्देशन दिया जा सकता है। इस रुचि पत्री के विभिन्न रुचि क्षेत्र निम्नलिखित हैं:—

१. घर से बाहर के (Out door) कार्य जैसे मैदानों, जंगलों, बाजारों आदि के कार्य।

२. यांत्रिक (Mechanical) कार्य।

३. हिसाब किताब रखने से सम्बन्धित (Computational) कार्य।

४. वैज्ञानिक (Scientific) कार्य।

५. समझाने बुझाने से सम्बन्धित (Persuasive) कार्य।

६. कलात्मक (Artistic) कार्य।

७. साहित्यिक (Literary) कार्य।

८. संगीत सम्बन्धी (Musical) कार्य।

९. समाज सेवा (Social service)

१०. लेखा सम्बन्धी (Clerical) कार्य।

रुचियों को मापने की उपरोक्त सूचियों से निर्देशन में सहायता मिलती हैं परन्तु इन सूचियों में कुछ अपने दोष और सीमायें हैं जिनको ध्यान में रखकर ही कार्य लेना चाहिये। स्थूल रूप से ये सीमायें निम्नलिखित हैं:—

रुचि सूचियों की सीमायें

(१) व्यवसाय का विवरण एकत्र करने में कठिनाई—जैसे कि पहले बतलाया जा चुका है व्यवसाय सम्बन्धी सूचियों में व्यवसाय का विवरण दिया जाता है। परन्तु वास्तव में किसी भी व्यवसाय का पूरा विवरण अर्थात् उसमें होने वाली सब क्रियाओं, उनके लिये आवश्यक योग्यताओं तथा रुचियों आदि का विवरण इकट्ठा करना बड़ा मुश्किल है। मनोवैज्ञानिक की तो बात ही क्या है उस व्यवसाय में काम करने वाले लोग भी उस व्यवसाय का पूरा विवरण नहीं दे सकते।

(२) उत्तरों की विश्वसनीयता में संदेह—रुचि पत्रियों में विभिन्न व्यवसाय, रुचि क्षेत्र अथवा काम के बारे में व्यक्ति की परीक्षा नहीं ली जाती बल्कि उससे पूछा जाता है। जाहिर है कि यह सामग्री पूरी तरह वैज्ञानिक नहीं हो सकती क्योंकि व्यक्तियों के उत्तरों में पूरा सन्देह है। इसके अलावा यह जानने का भी कोई तरीका नहीं है कि उत्तर सही दिया गया है या गलत।

(३) रुचि की परिवर्तनशीलता—रुचि पत्रियाँ रुचि के बारे में जानकारी देती हैं। परन्तु रुचि स्वभाव का कोई स्थिर अथवा स्थायी गुण नहीं हैं। रुचियाँ बदलती रहती हैं और इसलिए किसी व्यक्ति की किसी विशेष समय की रुचियों से यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि उसको किस व्यवसाय में जाना चाहिए। हो सकता है कि उसकी सामर्थ्य किसी विशेष व्यवसाय के अनुकूल हो और उसमें जाने के बाद उसकी उसमें रुचि भी हो जाय। व्यवसाय के बारे में यह देखा गया है कि बहुत से लोग जो किसी विशेष व्यवसाय को पहले पसन्द नहीं करते थे उसमें जाने के बाद उसको पसन्द करने लगे। दूसरी ओर कुछ ऐसे लोग भी हैं जो यह कहते थे कि उनको अमुक व्यवसाय में बड़ी रुचि है परन्तु जब उनको वह व्यवसाय करने को दिया गया तो उनको पता लगा कि उनको उसमें रुचि नहीं थी। अतः केवल रुचि पत्री से ही यह निश्चित नहीं किया जा सकता कि किस व्यक्ति को किस व्यवसाय में जाना चाहिए। यदि किसी व्यक्ति की इस समय किसी विशेष व्यवसाय के अनुकूल रुचि है तो इससे यह गारन्टी नहीं दी जा सकती कि भविष्य में भी उसको उस व्यवसाय में रुचि रहेगी। दूसरी ओर यदि उसको उस व्यवसाय में रुचि नहीं है तो इससे यह कहना ठीक नहीं होगा कि भविष्य में भी उसकी उस विशेष व्यवसाय में रुचि नहीं होगी क्योंकि रुचि जन्म जात तो है नहीं, वह अर्जित है। बहुत-से कामों में हमारी रुचि नहीं होती और बाद में हो जाती है। बहुत–से कामों में हमारी रुचि होती है और बाद में नहीं रहती। बहुत-से कामों में हमारी रुचि नहीं होती और बाद में दिलाई जाती है।

(४) **रुचि और सफलता में अनिवार्य सम्बन्ध नहीं हैं**—व्यावसायिक निर्देशन में रुचि पत्रियों के आधार पर विशेष व्यवसाय में सफलता के बारे में भविष्यवाणी करना वैज्ञानिक नहीं है। किसी व्यक्ति की किसी व्यवसाय में रुचि होने से ही यह निश्चित नहीं होता कि उसको उस व्यवसाय में सफलता जरूर मिलेगी। उदाहरण के लिए भारतीय विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले वहुत से विद्यार्थी पी० सी० एस० (P. C. S.) या आई. ए. एस. (I. A. S.) के पदों में रुचि रखते हैं और जोर-शोर से उनकी प्रतियोगिताओं में भाग लेते हैं। रुचि रखने पर भी इन प्रतियोगिताओं में कितने सफल होते हैं और इन सफल व्यक्तियों में भी कितने सफल प्रशासक सिद्ध होते हैं यह देखकर व्यवसाय और रुचि को कोई भी अनिवार्य रूप से सम्बन्धित नहीं मान सकता। व्यवसाय में सफलता व्यक्ति की रुचि से अधिक उसकी योग्यताओं पर आधारित है। वहुधा किसी विशेष काम में अरुचि का अर्थ उससे भागने की प्रवृत्ति, आलस्य, साहसहीनता आदि चारित्रिक दोष होते हैं। उदाहरण के लिये गाँवों से शहरों में पढ़ने आने वाले अधिकांश विद्यार्थी खेती करना नहीं पसन्द करते और सफेदपोश नौकरियों के पीछे भागते हैं अथवा उनमें रुचि दिखलाते हैं। परन्तु क्या इससे यह सिद्ध होता है कि उनकी खेती में अरुचि है या वे खेती के उपयुक्त नहीं ? जब उन्होंने कभी खेती में रुचि लेने की कोशिश ही नहीं की, जब वे शारीरिक परिश्रम से भागना चाहते हैं, जब उन्हें शहर का भड़कीला वातावरण ही पसन्द है तब उन्हें खेती में रुचि हो ही कैसे सकती है ? परन्तु इस अरुचि के आधार पर यह कहना एकदम गलत होगा कि उनको खेती के व्यवसाय में नहीं जाना चाहिए अथवा उनको उसमें सफलता कम मिलेगी।

(५) **व्यवसाय का वर्गीकरण वैज्ञानिक नहीं है**—इन रुचि पत्रियों में एक दूसरा वड़ा दोष यह है कि इनमें व्यवसायों को तथाकथित अलग-अलग वर्गों में बाँटा गया है वह वैज्ञानिक नहीं है। सच पूछिये तो कोई भी दो व्यवसाय समान नहीं होते। हर एक व्यवसाय में अपनी विशिष्ट क्रियायें, उत्तरदायित्व तथा सफलता के लिये आवश्यक गुण होते हैं और इस तरह के स्वतन्त्र व्यवसाय हजारों नहीं तो सैकड़ों जरूर हैं। इतने व्यवसायों की विस्तृत सूची बनाना और उसमें हर एक व्यवसाय का विस्तृत विवरण देना अत्यन्त कठिन है।

रुचि पत्रियों के उपरोक्त दोषों से यह नहीं समझना चाहिए कि वे बिल्कुल बेकार हैं। वास्तव में रुचि का विषय ही ऐसा है कि उस पर दिये हुये निर्णय से अधिक यथार्थता की आशा नहीं की जा सकती। कामचलाऊ रूप से रुचि पत्रियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। परन्तु उनसे काम लेते समय उनकी उपरोक्त सीमाओं को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए।

★

प्रश्न ९—व्यक्तित्व की परीक्षा की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिये और उनके गुण-दोषों की समीक्षा कीजिये।

व्यक्तित्व के परीक्षण

(Tests of Personality)

मनोवैज्ञानिक निर्देशन के लिये बुद्धि परीक्षण के साथ व्यक्तित्व के परीक्षण की भी जरूरत होती है। व्यक्तित्व को मापने के लिए कई तरह के परीक्षणों का इस्तेमाल किया जाता है। उदाहरण के लिए परिस्थिति परीक्षण, मनोविश्लेपणात्मक परीक्षण तथा आरोपणात्मक पद्धति। इनके अलावा जीवन वृत्त विधि, साक्षात्कार तथा प्रश्नावली और श्रेणी मूल्यांकन विधि का भी अपना महत्व है। संक्षेप में, व्यक्तित्व को मापने की विभिन्न विधियाँ निम्नलिखित हैं:—

(१) जीवन वृत विधि (Case-History Method)
(२) साक्षात्कार विधि (Interview Method)
(३) प्रश्नावली विधि (Questionnaire Method)
(४) निर्माण परीक्षण विधि (Performance Method)
(५) पेन्सिल कागज विधियाँ (Pencil and Paper devices)
(६) मूल्यांकन विधि (Rating Method)
(७) परिस्थिति परीक्षण (Situation Test)
(८) मनोविश्लेपणात्मक परीक्षण (Psycho-Analytic Test)
(९) आरोपणात्मक विधि (Projective Method)।

उपरोक्त परीक्षणों में से सबसे अधिक प्रचलित आरोपणात्मक विधि है। इस विधि का विस्तृत वर्णन करने से पहले अन्य विधियों का भी संक्षिप्त विवरण दे देना प्रासंगिक होगा।

(१) जीवन वृत्त विधि

जीवन वृत्त विधि (Case-History Method) में, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है प्रयोज्य के जीवन का विवरण एकत्रित किया जाता है। इस जीवन वृत्त में उसकी आनुवंशिकता और परिवेश से सम्बन्धित छोटी-बड़ी सभी बातों की जानकारी प्राप्त की जाती है। इस विधि से सामान्य और असामान्य दोनों प्रकार के व्यक्तियों के व्यक्तित्व की परीक्षा की जा सकती है परन्तु इसके लिये बड़े अनुभवी परीक्षकों की आवश्यकता है।

कैथराइन एम० मौरर (Katherine M. Mourar) की रिपोर्ट A Behaviour Problem in a Young Child से लिए एक उदाहरण से यह और

भी स्पष्ट हो जायेगा कि नैदानिक मनोवैज्ञानिक (Clinical Psychologists) व्यक्तित्व के विश्लेषण में जीवन वृत्त पद्धति का किस प्रकार प्रयोग करते हैं—

जीवन वृत्त विधि का एक उदाहरण

लुसी की आयु तीन वर्ष नौ माह की है। वह अत्यधिक उद्दण्ड, जिद्दी और क्रोधी स्वभाव की है। उसके माता-पिता से इण्टरव्यू करने पर वे बालिका के समुचित पालन पोषण न करने के लिये एक दूसरे पर दोषारोपण करने लगे और भावात्मक रूप से असंतुलित मालूम पड़े। फिर उनका अलग-अलग इण्टरव्यू किया गया। लूसी की एक चाची और एक नर्सरी शिक्षक का भी इण्टरव्यू किया गया। इण्टरव्यू में लूसी की माता ने बतलाया कि लूसी का साधारण रूप से जन्म हुआ। उसने यह बतलाया कि उसकी सास घर के काम में हिस्सा न लेती थी और घण्टों लूसी के साथ काटती थी, लूसी को अत्यधिक अपच (Constipation) रहता था और उसको दौरे से चढ़ते थे जिनमें वह जमीन पर लेट जाती चीखती, चिल्लाती और दूसरों पर हमला करती थी और विस्तर पर नहीं जाती थी। लूसी की माता अपने वैवाहिक अनुकूलन के विषय में बतलाना न चाहती थी, परन्तु उसकी सास ने उसके मित्रों की, उसके गृह प्रबन्ध की और लूसी के साथ उसके व्यवहार की कटु आलोचना की।

दो वर्ष की आयु से लूसी के व्यवहार की समस्यायें शुरू हुई थीं। तीन वर्ष की आयु में वह अन्य समवयस्क बालिकाओं के समान गुड़ियों से खेलने के स्थान पर कहानियाँ सुनना पसन्द करती थी। लूसी कभी अन्य बालकों के साथ नहीं खेली। अन्य बच्चों में होने पर वह उससे लड़ती थी। वह अपने पिता के साथ घूमने जाना और रहना पसन्द करती थी यद्यपि क्रोध भड़कने पर वह उसे भी नहीं छोड़ती थी। एक बार जब पिता ने किसी से बातचीत करने में उसकी बात न सुनी तो उसने पिता के पैर में काट लिया।

पिता से इण्टरव्यू करने पर मालूम हुआ कि उसको लूसी पर गर्व था। वह उसे बहुत बुद्धिमान समझता है और उसने लूसी के अपने प्रति ध्यान का वर्णन किया जिसमें कि वह एक वयस्क स्त्री की तरह काम करती थी। उसने लूसी की प्रसन्नता में सन्देह प्रकट किया और बतलाया कि शायद वह सुरक्षित महसूस न करती थी।

लूसी की शारीरिक परीक्षा करने पर उसमें सिवाय कुछ अधिक वजन के कोई भी शारीरिक असामान्यता न दिखाई पड़ी। डाक्टर के अनुसार अपच गलत खाने के कारण था। अंगूठा चूसना, नाखून काटना और बाल मोड़ना स्पष्ट था।

जब उसका पिता लूसी को मानसिक चिकित्सक के यहाँ लाया तो वह आकर्षक, स्त्रियोचित और नम्र मालूम पड़ती थी। जब उसकी माता उसको लाई तब वह उद्दण्ड, स्वतन्त्र और जबर्दस्त मालूम पड़ती थी। कभी-कभी वह झगड़ा करने

लगती थी और माँ के कोट पहनने की प्रार्थना करने पर चीखने, चिल्लाने और जमीन में लोटने लगती थी।

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से लूसी में आठ वर्ष की मृत्यु की शब्द-शक्ति और औसत से बहुत अधिक बुद्धि दिखाई पड़ी। उसकी भाषा की शक्तियाँ उसकी शारीरिक शक्तियों से बहुत अधिक विकसित थीं।

नैदानिक मनोवैज्ञानिक ने लूसी के व्यवहार का निम्नलिखित विश्लेषण किया :—

मनोवैज्ञानिक द्वारा व्यवहार का विश्लेषण

यह एक भली प्रकार विकसित और प्रभावशाली व्यक्तित्व की तेज बालिका है जो अत्यधिक वयस्क ध्यान और साथ की आदी हो चुकी है, जिसका दैनिक कार्यक्रम थका देने वाला और अव्यवस्थित है, जिससे माता-पिता और बालक के सम्बन्ध में अव्यवस्था उत्पन्न हो गई है। उसको अन्य बालकों से अनुकूलन करने का अवसर नहीं मिला और उसका विविध अनुभव न मिलने के कारण उसकी बुद्धि का अत्यधिक विकास हो गया है। उसकी योग्यताओं का विकास सन्तुलित रूप में नहीं हुआ है, उसकी शाब्दिक शक्तियाँ गत्यात्मक (Motor) शक्तियों की अपेक्षा अत्यधिक बढ़ गई हैं। वह अपनी कमियों को समझती है जिससे बालक के स्तर पर उसका सन्तुलन और भी कठिन हो गया है। वह चिकित्सकों को एक अत्यधिक थकी हुई छोटी बाल अत्याचारी (Tyrant) मालूम हुई जिसको माता से भावात्मक सन्तोष न मिला था और जो भावात्मक रूप से पिता पर स्थिर होती जा रही थी।

मनोवैज्ञानिक ने उसके लिये मुख्य रूप से इन बातों की सिफारिश की :—

मनोवैज्ञानिक द्वारा सिफारिशें

माता से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित होने चाहियें और लूसी के घर के जीवन के पुनसंगठन में उसको सहायता मिलनी चाहिये। इसमें अधिक सोना, सन्तुलित भोजन, विशेष तौर से बालकों के साथ घर के बाहर खेलना होना चाहिये और शाम के खाने के पहले थोड़े समय तक घर के किसी सदस्य माता अथवा पिता द्वारा व्यक्तिगत रूप से उसकी ओर ध्यान दिया जाना चाहिये। माता को यह अनुभव होना आवश्यक था कि वह लूसी की प्रगति के लिये जिम्मेदार है परन्तु पिता और सास का इण्टरव्यू करके उनको यह जता दिया गया कि लूसी और उसकी माता में सम्बन्ध बेहतर करने के लिये उनको अपना दैनिक कार्यक्रम बदलना पड़ेगा। बालक को एक नर्सरी स्कूल में दाखिल कर दिया गया और स्कूल तथा क्लीनिक के बीच समझौता हो गया, जिससे कि बालक के सुधरने के पहले उसके दुर्व्यवहार के कारण उसे स्कूल से न निकाला जा सके। नर्सरी स्कूल में लूसी का अनुकूलन होने में शुरू-शुरू में भारी कठिनाइयाँ पड़ीं। कुछ सालों में यह मालूम हुआ कि लूसी

स्कूल के अनेक कामों जैसे पढ़ने-लिखने तथा स्काउटिंग आदि में सबसे आगे थी। परन्तु वह अपनी शुरू की कमियों पर अब भी विजय न पा सकी थी जिसमें माता के लिये प्रेम की कमी और डैडी के लिये उसका अत्यधिक मोह भी शामिल था। पन्द्रह वर्ष की आयु में वह सुन्दर बालिका थी जो कि बड़ी योग्य मालूम पड़ती थी और सधा हुआ व्यवहार करती थी। उसमें घबराने की आदतें नहीं थीं। उसकी अपनी रिपोर्ट के अनुसार उसका सबसे अधिक सुख डैडी के साथ काम करने में था। वह जिस आदमी से विवाह करने का स्वप्न देखती थी वह ठीक डैडी के समान था।

जीवन वृत्त विधि के उपरोक्त उदाहरण से उसकी उपयोगिता पर प्रकाश पड़ता है। निस्सन्देह इस विधि से व्यक्तियों के असामान्य व्यवहार के कारणों का पता लगाने में सहायता मिलती है परन्तु फिर भी वैज्ञानिक दृष्टि से इस पद्धति में अनेक दोष हैं। सबसे बड़ा दोष तो यह है कि जीवन वृत्त का सही रूप में संग्रह करना बड़ा कठिन है। यदि रोगी से स्वयं पूछा जाय तो वह निश्चय ही बहुत कुछ काल्पनिक और गलत बातें बतलायेगा। उसके सम्बन्धी भी सदैव ठीक बातें नहीं बतलाते। उस व्यक्ति के प्रति उनके रुख के अनुसार वे बातों को बढ़ा-चढ़ाकर या घटाकर बतला सकते हैं। इस प्रकार एकत्रित किये हुये जीवन वृत्त के आधार पर रोग अथवा असामान्य व्यवहार के कारणों का निश्चित करना कभी भी वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता, चाहे व्यवहार में यह निदान कभी-कभी सही ही क्यों न बैठता हो।

जीवन वृत्त विधि के दोष

वास्तव में जीवन वृत्त विधि में उपरोक्त दोष ही उसकी कठिनाइयाँ हैं। सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि सही रूप में जीवन वृत्त कैसे एकत्रित किया जाय। दूसरे, यह आवश्यक नहीं है कि एक ही घटना अथवा बात का विभिन्न मनोवैज्ञानिक एक ही अर्थ लगायें अथवा उसे समान महत्व दें। उदाहरण के लिये फ्रायड के अनुयायी कुछ मनोविश्लेषक जीवन वृत्त में यौन सम्बन्धी घटनाओं पर अत्यधिक जोर देते हैं।

जीवन वृत्त विधि की कठिनाइयाँ

वास्तव में जीवन वृत्त विधि की सफलता बहुत कुछ उसके प्रयोग करने वाले मनोवैज्ञानिक की निष्पक्षता, मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि और सूझ-बूझ पर निर्भर है क्योंकि यह कोई यथार्थ (Exact) विधि नहीं है। तथापि योग्य मनोवैज्ञानिकों ने उसका बड़ी सफलता से प्रयोग किया है। इसके अलावा जिन कारणों का पता लगाने का कोई और साधन न हो, व्यक्ति के जीवन सम्बन्धी उन कारणों का पता लगाने के लिये जीवन वृत्त विधि के अतिरिक्त और चारा ही क्या है? अतः समस्त सीमाओं

निष्कर्ष

और दोषों के होते हुए भी जीवन वृत्त विधि का मनोविज्ञान, विशेषत: नैदानिक मनोविज्ञान (Clinical Psychology) में महत्वपूर्ण स्थान है।

(२) साक्षात्कार विधि

व्यक्तित्व की परीक्षा के लिये सबसे अधिक सामान्य विधि साक्षात्कार विधि (Interview Method) है। सरकारी नौकरियों में चुनाव के लिये इस विधि का सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाता है। इसमें परीक्षक और परीक्षार्थी आमने सामने बैठते हैं और परीक्षार्थी परीक्षक के सवालों का जवाब देता है। परीक्षार्थी के दिये हुये जवाबों के अलावा उसके हाव-भाव, तौर तरीके तथा दूसरी बातों से भी उसके व्यक्तित्व का पता चलता है। जीवन वृत्त विधि की तरह साक्षात्कार विधि में भी बड़े कुशल परीक्षणों की जरूरत है। कुशल परीक्षक ऐसा सवाल पूछता है कि जिससे मतलब की बात निकल आये और परीक्षार्थी निसंकोच अपने व्यक्तित्व को जाहिर कर सके। वास्तव में साक्षात्कार विधि जितनी परीक्षार्थी पर निर्भर है उतनी ही परीक्षक पर भी निर्भर है।

(३) प्रश्नावली विधि

व्यक्तित्व की परीक्षा के लिये प्रश्नावलियों का बड़े पैमाने पर प्रयोग किया जाता है। प्रश्नावली (Questionnaire) जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, चुने हुये कुछ ऐसे प्रश्नों की सूची होती है जिनके उत्तरों से व्यक्तित्व की विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है। इन प्रश्नों के सामने हाँ या ना लिखा रहता है जिसमें से परीक्षार्थी गलत शब्द को काट देता है और सही के आगे निशान लगा देता है। प्रश्नावलियों से व्यक्तित्व के विभिन्न लक्षणों जैसे आत्म-विश्वास, सामाजिकता, अन्तर्मुखता, प्रभुत्व वृत्ति अथवा आधीनता की वृत्ति आदि की जानकारी की जाती है।

प्रश्नावली विधि में कुछ कठिनाइयाँ निम्नलिखित हैं :—

१. कभी-कभी परीक्षार्थी सही बात को छिपा लेते हैं और गलत उत्तर देते हैं।

प्रश्नावली विधि में कठिनाइयाँ

२. कभी कभी सवाल इस तरह के होते हैं कि उनका मतलब परीक्षक कुछ और लगाता है और परीक्षार्थी कुछ और लगाता है।

३. आमतौर से परीक्षार्थी अच्छी तरह सोचे समझे बिना ही सवालों के जवाब लिख देते हैं जिससे गलती होने की सम्भावना रह जाती है।

प्रश्नावली विधि का महत्व

उपरोक्त कठिनाइयों के होते हुये भी प्रश्नावली विधि बड़ी ही उपयोगी सिद्ध हुई है। आलपोर्ट तथा मिनेसोटा आदि ने ऐसी प्रश्नावलियाँ बनाई हैं जिनसे व्यक्तित्व के किसी एक शील-गुण की जाँच हो सके। इस विधि में विभिन्न परीक्षार्थियों द्वारा एक ही प्रश्न के अनेकों उत्तर दिये जाने से तुलनात्मक अध्ययन में बड़ी सहायता मिलती है। इन प्रश्नावलियों पर आधारित निर्णय तुलनात्मक

(Comparative) के साथ-साथ संख्यात्मक (Statistical) भी होते हैं। प्रश्नावलियों से अनेक व्यक्तियों का परीक्षण एक साथ हो जाता है और इस तरह बहुत सा समय बच जाता है।

निर्माण परीक्षण विधि में (May) और हार्टशोर्न (Hartshorne) ने चलाई। इस विधि में परीक्षार्थी को कुछ खास तरह का काम देकर उसके व्यक्तित्व के शीलगुण की परीक्षा की जाती है। उदाहरण के लिये कुछ बालकों की ईमानदारी की जाँच करने के लिए एक परीक्षण में ८, १० वजनों को जिनमें बहुत कम अन्तर था एक जगह रख दिया गया। हर एक वजन के नीचे उसकी तौल लिख दी गई। अब बालकों को उन वजनों को तौल के क्रम से रखने को कहा गया। ईमानदार बालकों को ऐसा करने में बड़ी कठिनाई हुई और बेईमान बालकों ने उनके नीचे के वजनों को पढ़कर वजनों को झटपट क्रमानुसार लगा दिया। कक्षा में विद्यार्थियों की ईमानदारी की परीक्षा करने के लिये एक बहुत ही सरल विधि इस तरह हो सकती है। विद्यार्थियों को इमला बोल दिया जाय और उनकी कापियाँ इकट्ठी कर ली जायें तथा कापियों में निशान लगाये बिना गुप्त रूप से हर एक की गलतियाँ नोट कर ली जायें। इसके बाद कापियाँ उनको वापस कर दी जायें और उनको स्वयं अपनी गलतियों को काटकर नम्बर देने को कहा जाय। इमले को बोर्ड पर लिख दिया जाय। ईमानदार बालक अपनी गलतियों को काटेंगे और बेईमान बालक उन्हें काटने की जगह चुपचाप ठीक कर लेंगे। गुप्त रूप से नोट की गई गलतियों से मिलाकर कक्षा के विद्यार्थियों में ईमानदारी की परीक्षा की जा सकती है।

(४) निर्माण परीक्षण विधि

व्यक्तित्व परीक्षण की कुछ सरल विधियाँ पेन्सिल-कागज विधियाँ कही जा सकती हैं क्योंकि इनमें पेन्सिल-कागज का प्रयोग किया जाता है। इनमें प्रयोज्य दिये हुये प्रश्न-पत्र में प्रश्नों का उत्तर देने के लिये कागज पर निशान लगाता है। इस प्रकार के एक कागज-पेन्सिल परीक्षण का प्रसिद्ध उदाहरण मिनेसोटा नाना स्थितिक व्यक्तित्व सूची (Minnesota Multiphasic personality Inventory) है। इसमें ५५० विषय (Items) होते हैं। इनसे व्यक्तित्व में हिस्टीरिया, मानसिक उन्माद आदि की ओर झुकाव का पता चल जाता है। यह परीक्षण व्यक्तिगत और समूहगत दोनों प्रकार का होता है।

(५) पेन्सिल कागज विधियाँ

इस विधि से व्यक्ति की परीक्षा करने में उसको ५५० कार्ड दिये जाते हैं जिनमें से प्रत्येक में एक प्रश्न होता है। बक्स के पीछे तीन कार्ड होते हैं जिनमें क्रमशः

मिनेसोटा नाना स्थितिक व्यक्तित्व सूची

True (सत्य), False (असत्य) और Cannot Say (कह नहीं सकता) लिखा रहता है। प्रयोज्य को दिये हुए ५५० कार्डों में से प्रत्येक में लिखे वाक्य को पढ़कर और अपने पर लागू करके यह निश्चय करना होता है कि वह सत्य है, असत्य है अथवा उसके विषय से कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता। इनमें से जो बात होती है उसी के कार्ड के पीछे वह उस कार्ड को रख देता है।

इस सूची के विषय विविध प्रकार के होते हैं। कुछ उन कामों का वर्णन करते हैं जो व्यक्ति विविध परिस्थितियों में करता है। कुछ शारीरिक कठिनाइयों, भयों तथा भावनाओं आदि से सम्बन्धित होते हैं। इनमें बहुत से विषय इस प्रकार के होते हैं जिनमें अपने को अच्छा दिखलाने के लिये ईमानदारी से उत्तर न देने वालों के लिये धोखा देने का अवसर होता है। उदाहरण के लिये एक कार्ड में लिखा है "I somes time put off untill tomorrow what I should do today" अर्थात् मैं कभी-कभी आज के काम को कल पर छोड़ देता हूँ। अपने को अच्छा दिखलाने का प्रयास करने वाला व्यक्ति इस बात के उसके विषय से सत्य होने पर भी इसको 'असत्य' वाले कार्ड के पीछे रख देगा। इस प्रकार के विषयों में अधिकतर का 'असत्य' वाले कार्ड के पीछे रखा जाना इस बात का सूचक है कि व्यक्ति अपने को अच्छा दिखलाने की कोशिश कर रहा है और उसने सही जवाब नहीं दिये हैं। 'कह नहीं सकता' वाले कार्ड के पीछे रखे गये कार्ड अक्सर यह दिखलाते हैं कि प्रयोज्य विषयों के कार्डों में लिखी बातों को कहाँ तक नहीं समझा है अथवा वह उनका उत्तर देने में कहाँ तक लापरवाह है। इस परीक्षण में सामूहिक औसत (Group norms) की तुलना में व्यक्ति के अंकों की परीक्षा करके उसके व्यक्तित्व के विषय में मूल्यांकन (Rating) किया जाता है।

व्यक्तित्व को मापने की एक अन्य विधि मूल्यांकन विधि (Rating method) है। इस विधि में स्थूल रूप से दो तरह से काम किया जाता है। एक तो प्रयोज्य

(६) मूल्यांकन विधि

से कुछ ऐसे सवालों का जवाब देने को कहा जाता है जो कि व्यक्तित्व के कुछ गुणों से सम्बन्धित हों। प्रयोज्य जिस तरह के जवाब देता है अथवा दिये हुए जवाबों में जिनको चुनता है उनसे उसके व्यक्तित्व का पता चलता है। मूल्यांकन की एक दूसरी विधि प्रयोज्य को वास्तविक परिस्थिति में रखकर उसके व्यवहारों और प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करना है। उदाहरण के लिये किसी व्यक्ति में कार्य पटुता, अध्यवसाय, मेहनत आदि विभिन्न गुणों की जांच करने के लिये उसको कई काम दिए जा सकते हैं।

यूं तो मूल्यांकन विधि बड़ी सीधी सी मालूम पड़ती है। परन्तु इस विधि का प्रयोग करने के लिये बड़े कुशल परीक्षक की जरूरत है। स्थूल रूप से इस विधि में मुख्य कठिनाइयाँ अग्रलिखित हैं :—

मूल्यांकन विधि में कठिनाइयां

१. इस विधि में परीक्षक में अत्यधिक कुशलता और योग्यता की जरूरत है।

२. इस विधि में पक्षपात की सम्भावना बहुत अधिक है क्योंकि यह एक सामान्य बात है कि अपने प्रियजनों की बुराई कोई नहीं देखता।

३. इस विधि में एक अन्य कठिनाई यह है कि किसी व्यक्ति में एक विशेष गुण अथवा अवगुण दिखाई देने पर हम उसके चरित्र को अच्छा या बुरा मान लेते हैं और उसके चरित्र के अन्य पहलुओं में भी गुण अथवा दोष देखने लगते हैं।

४. इस विधि में चौथी कठिनाई यह है कि किसी भी शीलगुण की मात्रा को आंकना बड़ा कठिन है, अक्सर इसमें गलती हो जाती है।

उपरोक्त कठिनाइयों के होते हुये भी मूल्यांकन विधि का सामाजिक और औद्योगिक क्षेत्र में काफी प्रयोग किया जाता है। जैसा कि बतलाया जा चुका है परीक्षक में आवश्यक गुण होने पर मूल्यांकन को बहुत कुछ यथार्थ बनाया जा सकता है।

परिस्थिति परीक्षण में, जैसा कि उसके नाम से जाहिर है, व्यक्ति को कुछ विशेष परिस्थितियों में रखकर उसके व्यक्तित्व के गुण-दोषों की जाँच की जाती है।

(७) परिस्थिति परीक्षण

वास्तव में यह विधि निर्माण परीक्षण जैसी ही है, अन्तर केवल यह है कि इसमें व्यक्ति को एक परिस्थिति में रखा जाता है और निर्माण परीक्षण में उसको कुछ कार्य करने को दिये जाते हैं। बहुधा मनोवैज्ञानिकों ने इन दोनों विधियों को एक ही मान लिया है, अतः इसका अलग वर्णन करना अनावश्यक है।

व्यक्तित्व की परीक्षा करने के लिये मनोविश्लेषणात्मक विधि में दो तरह के परीक्षण अधिक प्रचलित हैं :—(१) मुक्त साहचर्य (Free Association) और

(८) मनोविश्लेषणात्मक विधि

(२) स्वप्न विश्लेषण (Dream Analysis)। इन दोनों परीक्षणों की सहायता से मनोविश्लेषक व्यक्तित्व की अचेतन विशेषताओं को मालूम करता है। स्वप्न विश्लेषण में प्रयोज्य अपने स्वप्न का वर्णन करता है और बुद्धि का इस्तेमाल किये बिना अर्थात् मन को खुला छोड़कर स्वप्न में दिखाई दी हुई चीजों, जीवों तथा क्रियाओं के साथ स्वतन्त्र साहचर्य करता है। बुद्धि का अंकुश न होने के कारण इस साहचर्य से अक्सर उसके अचेतन मन की सही बात जाहिर हो जाती है। मनोविश्लेषण विधि खासतौर से असामान्य (Abnormal) व्यक्तियों के व्यक्तित्व की विशेषताओं, मानसिक ग्रन्थियों (Mental Complexes) और मानसिक रोग (Mental Diseases) का पता लगाने में इस्तेमाल की गई है। इस विधि में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि इसके लिये बड़े कुशल और अनुभवी मनोविश्लेषक की जरूरत है।

बहुधा सफल मनोविश्लेषक पहले अपने मन का विश्लेपण कर लेता है जिससे पक्षपात का डर नहीं रहता।

व्यक्तित्व की परीक्षा में सबसे अधिक प्रसिद्ध और प्रचलित परीक्षण आरोपणात्मक विधि के हैं। यह विधि जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है आरोपण (Projection) के तथ्य पर आधारित है। आरोपण का अर्थ किसी चीज, व्यक्ति अथवा क्रिया में अपनी विशेष मानसिक अवस्था अथवा व्यक्तित्व के अनुसार कोई विशेष बात देखना है। उदाहरण के लिये ताजमहल एक संगमर्मर की इमारत है जिसको देखने बहुत से लोग जाते हैं। व्यक्तित्व की विभिन्न विशेषताओं के अनुसार भिन्न-भिन्न लोग ताजमहल में भिन्न-भिन्न बातें पाते हैं। भावुक व्यक्ति उसको भावनाओं के एक साकार स्मारक के रूप में देखता है जबकि आर्थिक और राजनैतिक प्रश्नों को अत्यधिक महत्व देने वाले व्यक्ति को वह शोषण का प्रतीक भी मालूम पड़ सकता है। यह तो एक स्थूल वस्तु का उदाहरण हुआ परन्तु इससे यह स्पष्ट हुआ कि मनुष्य किसी भी वस्तु को ज्यों का त्यों नहीं देखता बल्कि उसमें अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं को भी आरोपित करता है। इस आरोपण का विश्लेषण करके और अन्य लोगों के आरोपण से उसकी तुलना करके व्यक्तित्व की अनेक विशेषताओं की जाँच की जा सकती है। आरोपणात्मक पद्धतियों में दो परीक्षण अधिक प्रसिद्ध हैं :—

(९) आरोपणात्मक विधियाँ

(१) रोर्शा का स्याही धब्बा परीक्षण (Rorschach Ink blot Test)।

(२) मरे का प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण (Murray's Thematic Apperception Test)।

इसको संक्षिप्त में टी० ए० टी० भी कहते हैं। सामान्य रूप से व्यक्तित्व की परीक्षा में इन दो परीक्षणों का अत्यधिक प्रयोग किया जाता है। अतः यहाँ पर इनका संक्षिप्त वर्णन किया जाता है।

(१) रोर्शा स्याही धब्बा परीक्षण—इस परीक्षण को एक स्विस विद्वान हरमन रोर्शा (Herman Rorschach) ने प्रचलित किया। रोर्शा ने १० प्रामाणिक स्याही धब्बे के कार्डों का प्रयोग किया जो कि अब भी प्रयोग किये जाते हैं। इन धब्बों में कोई चित्र नहीं बनाया गया है। इनमें पाँच पूरी तरह काले हैं, दो काले और लाल हैं और बाकी तीन में अनेक रंग हैं। व्यक्तित्व की जाँच करने के लिये इन दसों कार्डों को प्रयोज्य के सामने एक-एक करके रखा जाता है और उससे यह पूछा जाता है कि उसे इस धब्बे में क्या क्या दिखलाई पड़ता है। ये कार्ड निश्चित समय के अन्तर से पेश किये जाते हैं। इसके बाद वे कार्ड फिर से एक-एक करके प्रयोज्य के सामने रखे जाते हैं और उससे यह पूछा जाता है कि उसने पहली बार

जो कुछ देखा वह उस धब्बे में कहां था। इन धब्बों के प्रति प्रयोज्य को प्रतिक्रिया का अर्थ निश्चित करने के लिये मनोवैज्ञानिक स्थान, निर्धारिक गुण तथा विषय का विश्लेषण करता है। स्थान के विश्लेषण में यह देखा जाता है कि प्रयोज्य में धब्बे के किसी विशेष भाग के प्रति प्रतिक्रिया है अथवा सम्पूर्ण धब्बे के प्रति। सामान्य रूप से यह माना जाता है कि अधिक पूर्ण प्रतिक्रिया करने वाला व्यक्ति अधिक सैद्धान्तिक है। निर्धारित गुण के विश्लेषण में यह देखा जाता है कि प्रयोज्य में प्रतिक्रिया धब्बे की बनावट के कारण है अथवा उसके विभिन्न रंगों या गति के कारण। विषय के विश्लेषण में यह देखा जाता है कि प्रयोज्य धब्बे में मनुष्य की आकृति देखता है अथवा पशु की, वस्तु की या किसी और की।

उपरोक्त विश्लेषण के साथ-साथ यह भी देखा जाता है कि प्रत्येक धब्बे के प्रति प्रतिक्रिया में प्रयोज्य को औसत रूप से कितना समय लगा, उसने कुल कितनी प्रतिक्रियायें कीं तथा ये प्रतिक्रियायें सामान्न रूप की हैं अथवा नहीं। इन सब बातों के प्रयोज्य की चेतन और अचेतन विशेषताओं को जाँच की जाती है।

चित्र २—रोर्शा का एक स्याही धब्बा

स्याही धब्बा परीक्षण में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि प्रयोज्य की प्रतिक्रियाओं की व्याख्या बहुत कुछ आत्मगत (Subjective) हो जाती है जिससे प्रयोज्य के व्यक्तित्व की विशेषताओं का ठीक-ठीक पता नहीं चलता। परन्तु फिर भी इस परीक्षण को अधिक से अधिक वैज्ञानिक बनाने की कोशिश की जा रही है।
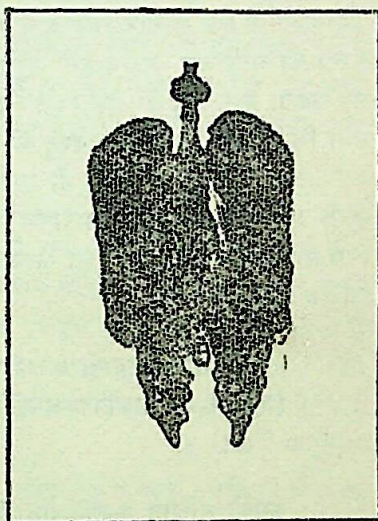
(२) मरे प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण:—इस परीक्षण में मरे (Murrey) और मार्गन (Morgan) ने कुछ चित्रों की सहायता से व्यक्तित्व की विशेषताओं की जांच की। ये चित्र अब भी प्रामाणिक माने जाते हैं। इन चित्रों में भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में स्त्री-पुरुष दिखाये जाते हैं। इन चित्रों को देखकर प्रयोज्य आरोपण के द्वारा चित्र के पात्रों से अपना तादात्म्य (Indentification) कर लेता है। प्रयोज्य के सामने एक-एक चित्र उपस्थित किया जाता है और उसको एक निश्चित समय जैसे पाँच मिनट में उस चित्र के आधार पर एक कहानी लिखनी होती है। आरोपण के द्वारा इस कहानी में प्रयोज्य न जानते हुए भी अपने व्यक्तित्व की अनेक विशेषताओं को व्यक्त करता है। उसको सोचने का समय नहीं मिलता। अतः

कहानी में उसकी स्वाभाविक इच्छायें, संवेग, स्थाई भाव आदि व्यक्त होते हैं। इन कहानियों के आधार पर मनोवैज्ञानिक प्रयोज्य के व्यक्तित्व का विश्लेषण करता है और उसकी विशेषताओं का पता लगाता है।

मरे प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण (Thematic Apperception Test or T. A. T.) में भी रौर्शा परीक्षण की तरह काफी जटिलता मिलती है। इसके द्वारा व्यक्तित्व परीक्षण संख्यात्मक न होकर गुणात्मक (Qualitative) होता है। अतः इसमें गलतियां हो जाना स्वाभाविक है। परन्तु फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं कि अनुभवी और कुशल मनोवैज्ञानिक इस परीक्षण से प्रयोज्य के व्यक्तित्व की अनेक विशेषताओं का पता लगा सकता है। इस परीक्षण की सहायता से अनेक मानसिक विकृतियों का पता लगाया जाता है जिनसे उनके इलाज में सहायता मिलती है।

प्रश्न १०—संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—परीक्षणों की वैधता और विश्वसनीयता (Validity and Reliability of Tests) (यू० पी० बोर्ड १९६५)

अथवा

मनोवैज्ञानिक परीक्षण की विश्वसनीयता (Reliability) तथा वैधता (Validity) से आप क्या समझते हैं? किसी परीक्षण की विश्वसनीयता को निश्चित करने के लिये किन विधियों का प्रयोग किया जाता है?

(यू० पी० बोर्ड १९६४)

(अ) प्रामाणिकता
(Validity)

व्यक्तित्व की विशेषताओं, बुद्धि तथा रुचि आदि के परीक्षणों के विवरण से यह जाहिर है कि सभी तरह के परीक्षणों में एक-सी प्रामाणिकता नहीं होती।

प्रामाणिकता क्या है? कोई परीक्षण कहाँ तक प्रामाणिक है यह इस बात से जाना जाता है कि उसके परिणामों के आधार पर दिया गया निर्णय कहाँ तक यथार्थ होता है। उदाहरण के लिये उसी बुद्धि परीक्षण को प्रामाणिक माना जा सकता है जिससे बुद्धि की सही परीक्षा हो सकती है। जिस बुद्धि परीक्षण से जिस अंश में बुद्धि की सही परीक्षा हो सकती हो उसको उसी अंश में प्रामाणिक माना जायेगा। इस तरह प्रामाणिकता परीक्षण का वह गुण है जिसके आधार पर उस पर आधारित निर्णय का सही या गलत होना निश्चय किया जाता है। उदाहरण के लिये रुचि पत्रियों की प्रामाणिकता बुद्धि परीक्षणों से कम है। यहाँ पर एक कठिनाई है। मान लीजिये कि एक विशेष परीक्षण से कुछ विद्यार्थियों की बुद्धि की परीक्षा की गई। अब वह

परीक्षण प्रामाणिक है अथवा नहीं यह इसी बात पर निर्भर करेगा कि विद्यार्थियों में वास्तव में उतनी बुद्धि है या नहीं जितनी कि उस परीक्षण के परिणाम से मालूम पड़ती है। यहाँ पर यह कठिनाई है कि यह कैसे मालूम किया जाय कि विद्यार्थियों में उतनी बुद्धि है या नहीं जितनी कि परीक्षण से मालूम पड़ती है। स्पष्ट है कि परीक्षण की प्रामाणिकता की जाँच के लिये किसी न किसी स्वतन्त्र कसौटी का होना आवश्यक है। विद्यार्थी की बुद्धि सम्बन्धी परीक्षण के उदाहरण में परीक्षा फल परीक्षण की प्रामाणिकता की एक कसौटी हो सकता है। सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि यदि परीक्षण के प्राप्तांकों का और परीक्षण फल का सह-सम्बन्ध (Correlation) हो तो परीक्षण प्रामाणिक है।

प्रामाणिकता के प्रकार

परन्तु जैसा कि उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है प्रामाणिकता एक सापेक्ष शब्द है अर्थात् किसी भी परीक्षण में पूर्ण प्रामाणिकता नहीं हो सकती। इसलिए जब किसी परीक्षण को प्रामाणिक कहा जाय अथवा उसमें प्रामाणिकता का अभाव बतलाया जाय तो यह स्पष्ट करना बहुत जरूरी है कि उसमें किस अर्थ में प्रामाणिकता है और किस अर्थ में उसका अभाव है। स्पष्ट है कि प्रामाणिकता कई तरह की होती है। स्थूल रूप से मनोवैज्ञानिकों ने निम्नलिखित चार प्रकार की प्रामाणिकता मानी है :—

(१) रूप प्रामाणिकता (Face Validity)—रूप प्रामाणिकता, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, परीक्षण के रूप से सम्बन्धित प्रामाणिकता है। इस तरह की प्रामाणिकता उसी परीक्षण में कही जायेगी जिसमें दिया हुआ विषय अथवा नग प्रश्न (Item) देखने में प्रामाणिकता मालूम हो।

(२) अन्तर्वस्तु सम्बन्धी प्रामाणिकता (Content Validity)—दूसरी तरह की प्रामाणिकता अन्तर्वस्तु सम्बन्धी प्रामाणिकता है। जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है यह प्रामाणिकता परीक्षण की अन्तर्वस्तु से सम्बन्धित है। इस प्रामाणिकता के लिये परीक्षण इस तरह के होने चाहियें कि उसके विषयों से उस बात की पूरी जांच हो सके। जिसके लिए वह परीक्षण बनाया गया है। उदाहरण के लिये उसी बुद्धि परीक्षण में अन्तर्वस्तु प्रामाणिकता कही जायेगी जो इस प्रकार बनाया गया हो कि उसमें बुद्धि से सम्बन्धित सभी बातों की परीक्षा होती है।

(३) तात्त्विक प्रामाणिकता (Factorial Validity)—इसमें तत्वों की प्रामाणिकता सम्मिलत है।

(४) व्यावहारिक प्रामाणिकता (Empirical Validity)—व्यावहारिक प्रामाणिकता सबसे अधिक प्रचलित प्रामाणिकता है। इसमें उपयुक्त कसौटी (Criterion) के आधार पर फलांकों (Scores) का कसौटी से सह सम्बन्ध (Correlation) निकलता है। इसमें कसौटी के चुनाव में बड़ी सावधानी की जरूरत

है। कसौटी और फलांक के सह सम्बन्ध से जो गुणक प्राप्त होता है उसे प्रामाणिकता गुणक (Validity Coefficient) कहा जाता है। प्रामाणिकता गुणक ·५ से ·८ तक होता है। इसमें कम गुणक आने पर वह बेकार होता है और सामान्य रूप से इससे अधिक गुणक नहीं मिलता।

(ब) विश्वसनीयता
(Reliability)

प्रामाणिकता के साथ-साथ हर बार परीक्षण में विश्वसनीयता होनी भी जरूरी है। तभी उस परीक्षण पर निर्भर किया जा सकता है। विश्वसनीयता का अर्थ किसी परीक्षण के उस गुण से है जिससे कि उस पर विश्वास किया जा सकता हो। यह गुण उसी परीक्षण में माना जायेगा जिसके द्वारा हर बार परीक्षण करने पर वही फलांक प्राप्त हो। उदाहरण के लिए यदि एक बुद्धि परीक्षण से एक बार परीक्षा करने पर किसी व्यक्ति से कुछ फलांक आये और दोबारा करने पर उससे भिन्न फलांक आये तो स्पष्ट है कि वह परीक्षण विश्वसनीय नहीं है। परीक्षण की यह विश्वसनीयता उसके किसी एक अंग पर नहीं बल्कि उसके सभी अंगों पर निर्भर करती है। कोई भी अंग गलत होने पर परीक्षण की विश्वसनीयता कम हो जाती है। इसलिये परीक्षण के विभिन्न अंगों में आन्तरिक संगति (Internal Consistency) और समरूपता (Uniformity) जरूरी है। इसी तरह के विश्वसनीय परीक्षण के आधार पर सही निर्देशन किया जा सकता है।

विश्वसनीयता क्या है ?

विश्वसनीयता की जांच तीन तरह से की जा सकती है। ये तीन तरीके निम्नलिखित हैं:—

(१) विश्वसनीयता की जाँच का एक उपाय यह है कि एक ही समूह पर दो भिन्न भिन्न अवसरों पर परीक्षण का प्रयोग किया जाता है और प्राप्त परिणामों की तुलना की जाती है। उदाहरण के लिये, मान लीजिये कि एक समूह का बिने परीक्षण से बुद्धि का परीक्षण किया गया। अब कुछ समय बाद इसी समूह की फिर बिने परीक्षण से परीक्षा की गई यदि दोनों अवसरों पर बुद्धि-लब्धि में अन्तर आता है तो परीक्षण विश्वसनीय नहीं है।

विश्वसनीयता की जाँच के उपाय

(२) विश्वसनीयता की जाँच का एक अन्य उपाय यह है कि जिस परीक्षण में अनेक प्रकरण हों उनमें विषम और सम प्रकरणों के परिणाम की तुलना करके विश्वसनीयता की परीक्षा की जाती है।

(३) विश्वसनीयता की परीक्षण करने का एक तरीका यह है कि जिस परीक्षण की विश्वसनीयता की परीक्षा करनी हो उससे मिलता-जुलता एक दूसरा परीक्षण तैयार किया जाता है। अब मौलिक और रूपान्तरित परीक्षणों के द्वारा एक ही समूह

की परीक्षा की जाती है। इसके बाद इन दोनों परीक्षणों के परिणामों की तुलना करके परीक्षण की विश्वसनीयता की जाँच कर ली जाती है। गुलिकसन (Gulliksen) ने एक से अधिक समान्तर परीक्षण बनाने की सलाह दी है।

विश्वसनीयता की जाँच की उपरोक्त तीनों विधियों में से दूसरी विधि का सबसे अधिक प्रचार है क्योंकि यह सबसे अधिक आसान भी है। इस विधि में समूह को परीक्षण के लिये बार-बार इकट्ठा नहीं करना पड़ता। विश्वसनीयता अनुबन्ध गुणक (Coefficient of Correlation) से जानी जाती है। इस अनुबन्ध गुणक को विश्वसनीयता गुणक (Reliability coefficient) कहा जाता है।

इस तरह विश्वसनीयता और प्रामाणिकता दोनों ही परीक्षण के आवश्यक गुण हैं। विश्वसनीयता परीक्षण के पैमाने (Scale) या संरचना (Structure) से सम्बन्धित है। प्रामाणिकता उसकी परीक्षण करने की सामर्थ्य से सम्बन्धित है।

३

शैक्षिक, व्यवसायिक और वैयक्तिक निर्देशन

(Educational, Vocational and Personal Guidance)

प्रश्न ११—निर्देशन की क्या आवश्यकता है ? निर्देशन क्या है ? संक्षेप में बतलाइये ।

उत्तर—व्यावहारिक जीवन में अधिक से अधिक सफलता का मूल-मन्त्र यह है कि आदमी अपनी सामर्थ्य के अनुकूल काम का चुनाव करे । यदि काम सामर्थ्य के अनुकूल हुआ तो आदमी उसको आसानी से कर सकता है और उसमें रुचि अनुभव करता है । ऐसी हालत में कम मेहनत करने पर भी अधिक सफलता मिलने की सम्भावना होती है । उदाहरण के लिये एक व्यक्ति जिसमें प्रशासन की योग्यता है आमतौर से अच्छा शासक होता है और मौका मिलने पर अच्छा प्रशासन कर पाता है । यह एक आम बात है कि हर एक व्यवसाय में कुछ खास गुणों की जरूरत होती है । हर एक आदमी अच्छा दूकानदार नहीं हो सकता और न हर एक पढ़ा लिखा व्यक्ति अच्छा अध्यापक ही हो सकता है क्योंकि अच्छा दूकानदार या अच्छा अध्यापक होने के लिये इन कामों से सम्बन्धित कुछ खास गुणों की जरूरत होती है । अत: सवाल यह रह जाता है कि विशेष व्यक्ति के अनुकूल कौन-सा काम है । इस बारे में वैज्ञानिक रूप से कुछ कहने के लिये व्यक्ति की विभिन्न योग्यताओं और प्रवृत्तियों की परीक्षा की जरूरत है । यह काम मनोविज्ञान करता है ।

व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता

विद्यार्थियों के सामने आये दिन यह समस्या उठा करता है कि वे कक्षा में कौन-से विषय लें । अक्सर होता यह है कि विषय के चुनाव में कोई सावधानी नहीं रखी जाती । एक लड़की गणित इसलिये नहीं लेती कि उसकी बहिन गणित में फेल हो चुकी है । एक लड़का संगीत इसलिये ले लेता है कि उसने सुना है कि उसमें पास होना आसान है । किसी ने विज्ञान इसलिये ले रखा है कि उसके माता पिता ने उसको ऐसा करने का हुक्म दिया है । विषय का चुनाव करने के ये सभी ढंग एकदम अवैज्ञानिक हैं । किसी लड़के को सिर्फ इसीलिये विज्ञान नहीं लेना चाहिये कि वह इन्जीनियर बनना चाहता है क्योंकि यह जरूरी नहीं है कि उसमें इन्जीनियर बनने की योग्यता भी हो । अक्सर बालक वही बनना चाहता है जो कि उसको आकर्षित करता है या जिसे वह श्रेय समझता है । इस आकर्षण या रुचि से उसकी भावी सफलता असफलता के बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता ।

शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता

किसी के कहने या ऐसे ही किसी दूसरे के आधार पर विषय का चुनाव करना एकदम गलत है। विषय के चुनाव का आधार विशेष बालक की प्रवृत्तियाँ और योग्यतायें होनी चाहियें। इन प्रवृत्तियों और योग्यताओं को केवल देखने मात्र से नहीं समझा जा सकता। इसमें व्यवस्थित और वैज्ञानिक परीक्षाओं की जरूरत है। यह काम व्यावहारिक मनोविज्ञान करता है।

वैयक्तिक निर्देशन की आवश्यकता

कोई आदमी ऐसा नहीं है जिसकी जिन्दगी मुश्किलों से खाली हो। छोटा हो या बड़ा, निर्धन हो या धनिक, सभी के जीवन में कुछ निजी कठिनाइयाँ बराबर बनी रहती हैं। अधिकतर लोग इन समस्याओं से किसी न किसी प्रकार निबट लेते हैं परन्तु बहुत से लोग ऐसे भी हैं जो इन समस्याओं को खुद नहीं सुलझा सकते। इस तरह कुछ लोगों को अक्सर और बहुत से लोगों को कभी न कभी किसी मनोवैज्ञानिक के निर्देशन की जरूरत होती है जिससे कि वे अपनी निजी समस्याओं को सुलझा सकें। ये समस्यायें व्यवहार की समस्यायें हैं चाहें यह व्यवहार आन्तरिक हो या बाहरी। व्यावहारिक मनोविज्ञान इसी व्यवहार के समंजन के लिए सामान्य मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रयोग करता है। जाहिर है कि निजी समस्याओं को सुलझाने के लिए मनोविज्ञान की जरूरत है।

निर्देशन क्या है ?

निर्देशन की परिभाषा

व्यावसायिक, शिक्षा सम्बन्धी तथा निजी समस्याओं में व्यावहारिक मनोविज्ञान की सहायता के उपरोक्त दिग्दर्शन में निर्देशन शब्द का प्रयोग किया गया है। शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक निर्देशन (Educational Guidance) व्यवसाय के क्षेत्र में व्यावसायिक निर्देशन (Vocational Guidance) तथा निजी जीवन में व्यक्तिगत निर्देशन (Personal Guidance) की जरूरत होती है। इन सबका विस्तारपूर्वक विवेचन करने से पहले यह समझना जरूरी है कि यह निर्देशन क्या है। निर्देशन की परिभाषा मानव क्रियाओं की "शैक्षिक, व्यवसायिक, मनोरंजन सम्बन्धी और सामुदायिक सेवा समूह के विषय में कार्य प्रणालियों में चुनाव करने, तैयारी करने, प्रवेश करने और प्रगति करने में व्यक्ति की सहायता करने की प्रक्रिया"[1] के रूप में की जा सकती है। यह सहायता मनोवैज्ञानिक द्वारा निजी सेवा के रूप में दी जाती है। यह सेवा परामर्श के रूप में होती है। इससे समस्यायें नहीं सुलझतीं बल्कि व्यक्ति को अपनी समस्यायें सुलझाने में सहायता मिलती है। Applied

1. "The process of assisting the individual to choose, prepare to enter upon and progress in courses of action pertaining to the educational, vocational, recreational and community service group of human activities."

Psychology नामक पुस्तक में हुसवैंड (Husband) ने निर्देशन की परिभाषा करते हुये लिखा है, "निर्देशन को व्यक्ति को उसके भावी जीवन के लिये तैयार करने, समाज में उसको उसके स्थान के लिये फिट करने, में सहायता देने के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।" इस तरह निर्देशन व्यक्ति को उसके भावी जीवन के लिए तैयार करता है। उससे व्यक्ति को यह पता चलता है कि उसको किस तरह की शिक्षा की जरूरत है? शिक्षा में उसे कौन से विषय लेने चाहियें? भविष्य में उसको कौन-सा व्यवसाय करना चाहिए और अपनी भिन्न-भिन्न समस्याओं को सुलझाने के लिये उसको क्या उपाय करने चाहियें? हर एक समाज में व्यक्ति की एक स्थिति (Status) होती है और उसके अनुरूप उसके कुछ कार्य (Roles) होते हैं। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति अपने परिवार का अध्यक्ष होता है। इससे उसकी यह जिम्मेदारी हो जाती है कि वह परिवार में सबकी जरूरतें पूरी करे और सबके समुचित विकास का ध्यान रखे। परन्तु एक व्यक्ति हर समय एक ही स्थिति में नहीं रहता। एक समय में या भिन्न-भिन्न समय में एक ही व्यक्ति पिता की स्थिति में, पुत्र की स्थिति में, पति की स्थिति में, अध्यापक तथा वकील की स्थिति में तथा देश के नागरिक की स्थिति इत्यादि अनेक स्थितियों में रहता है। इन सब स्थितियों के अनुरूप उसके अलग-अलग कार्य होते हैं। जो व्यक्ति समाज में अपनी स्थितियों के अनुकूल कार्य करता है उसी को समाज में फिट कहा जा सकता है। इन भिन्न-भिन्न स्थितियों में अपने कर्तव्यों को करने में व्यक्ति को निर्देशन की जरूरत होती है। इस तरह मनोवैज्ञानिक का निर्देशन व्यक्ति को समाज में उसकी स्थिति के उपयुक्त बनने में उसकी सहायता करता है। कुछ स्थितियाँ तो अनिवार्य होती हैं परन्तु कुछ चुनी भी जाती हैं। हर एक व्यक्ति हर एक स्थिति के लिये उपयुक्त नहीं होता। उदाहरण के लिये सभी व्यक्ति डाक्टर, वकील या अध्यापक नहीं बन सकते। किसी व्यक्ति को किसी स्थान के उपयुक्त बनने के दो पहलू हैं एक तो यह कि उसकी योग्यता उस स्थान के उपयुक्त हो और दूसरे यह कि वह उस स्थान के उपयुक्त बनने की कोशिश करे। इसमें दूसरे पहलू की कुछ सीमायें हैं। कितनी भी कोशिश करने पर हर एक व्यक्ति कलाकार या साहित्यकार नहीं बन सकता। केवल यही क्या हर एक व्यक्ति दूकानदार तथा अध्यापक तक नहीं बन सकता क्योंकि हर एक व्यक्ति में हर एक व्यवसाय के लिए जरूरी योग्यता नहीं होती। अतः किसी स्थिति के उपयुक्त सिद्ध होने के लिये व्यक्ति को अपनी सामर्थ्य और योग्यताओं के अनुरूप स्थिति चुननी चाहिये। इस चुनाव में व्यावहारिक मनोविज्ञान व्यक्ति की सहायता करता है। इस तरह निर्देशन से व्यक्ति को ऐच्छिक तथा अनैच्छिक सभी स्थितियों में फिट होने में सहायता मिलती है। जैसा कि पीछे दी गई परिभाषा में कहा गया है निर्देशन व्यक्ति को उसके भावी जीवन के लिये तैयार करता है। भावी जीवन के लिये तैयार करने का मतलब भविष्य की जिम्मेदारियों को निभाने की योग्यता पैदा करना है। ये भावी जिम्मेदारियाँ कई तरह की हो सकती हैं। उदाहरण के लिये आमतौर

से हर एक बालक-बालिका युवा होकर विवाह करते हैं, परिवार बसाते हैं और बच्चे पैदा करते हैं। इस तरह भविष्य में हर एक व्यक्ति पर बालकों से सम्बन्धित, जीवन साथी से सम्बन्धित तथा परिवार से सम्बन्धित जिम्मेदारियाँ आती हैं। साधारण स्थिति में सभी युवकों को और बहुत-सी युवतियों को भी भविष्य में कोई न कोई व्यवसाय करना ही पड़ता है। बड़ा होकर हर एक बालक देश का एक नागरिक बनता है और नागरिकों के अधिकारों के साथ उस पर नागरिक की सारी जिम्मेदारियाँ भी आ जाती हैं। इस तरह किसी व्यक्ति को भावी जीवन के लिये तैयार करने का मतलब उसको जीवन की हर एक स्थिति में, चाहे वह परिवार में हो, आर्थिक क्षेत्र में हो, राजनैतिक क्षेत्र में हो अथवा दूसरे किसी भी क्षेत्र में हो, उन सब के अनुरूप जिम्मेदारियों को निभाने योग्य बनाना है। इसके लिये हर एक बालक-बालिका को अपनी शिक्षा के अनुरूप व्यवसाय का चुनाव करना चाहिये जिससे कि वे भविष्य में अपनी स्थितियों के अनुरूप कार्यों को कर सकें। उनको यह निश्चय कर लेना चाहिये कि उनको किस व्यवसाय में जाना है। उनमें यह सामर्थ्य होना चाहिये कि वे अपनी निजी समस्याओं तथा दूसरों से अपने सम्बन्धों में आने वाली समस्याओं से भली प्रकार निबट सकें। निर्देशन इन सभी कार्यों में व्यक्ति की मदद करता है।

निर्देशन के अर्थ की उपरोक्त विस्तृत व्याख्या से यह स्पष्ट होता है कि उससे जीवन के लक्ष्य निश्चित करने में, जीवन में सामंजस्य स्थापित करने में तथा सब तरह की समस्याओं को सुलझाने में सहायता मिलती है।

निर्देशन निजी सहायता है।

जोन्स (Jones) के शब्दों में, "निर्देशन वह निजी सहायता है जो कि जीवन के लक्ष्यों को विकसित करने में, अनुकूलन करने में और लक्ष्यों की प्राप्ति में उसके सामने आने वाली समस्याओं को सुलझाने में एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को दी जाती है।"[2] इस तरह निर्देशन एक निजी सहायता है। यद्यपि कभी-कभी निर्देशन सामूहिक स्तर पर भी दिया जाता है परन्तु ऐसे मामलों में भी समूह के हर एक व्यक्ति को अलग मशवरा दिया जाता है। व्यावहारिक मनोविज्ञान व्यक्तिगत वैभिन्य (Individual Differences) की धारणा पर आधारित है। सामान्य अनुभव और वैज्ञानिक खोज दोनों से यह सिद्ध हो चुका है कि हर एक व्यक्ति की कुछ अपनी योग्यतायें, अपनी समस्यायें और अपनी कठिनाइयाँ होती हैं जो कि दूसरों से कुछ न कुछ भिन्न होती हैं। जाहिर है कि हर एक व्यक्ति को निजी मशविरे और निजी निर्देशन की जरूरत है। यह निजी सहायता एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को दी जाती है। यदि एक व्यक्ति मनोवैज्ञानिक अथवा मनोविज्ञान को जानने वाला व्यक्ति है और दूसरा

2. "Guidance is the personal help that is given by one person to another in developing life goals, in making adjustment and in solving problems that confront him in the attainment of goals."
—Jones, A. J.

व्यक्ति वह है जिसको मनोवैज्ञानिक सलाह की जरूरत है। इस तरह निर्देशन मनोवैज्ञानिक द्वारा अन्य व्यक्ति को दी जाने वाली सहायता है। विस्तृत अर्थों में निर्देशन में मनोविज्ञान को जानने वाले प्रत्येक व्यक्ति की सलाह को गिना जा सकता है। उदाहरण के लिये यदि पिता अपने पुत्र को उसकी किसी समस्या को सुलझाने में मशवरा देता है तो यह भी एक निर्देशन है चाहे यह निर्देशन मनोविज्ञान के बारे में कितनी ही गलत धारणाओं पर आधारित हो। परन्तु निर्देशन का यह व्यापक अर्थ उसका सामन्य अर्थ है। शास्त्रीय अध्ययन में शब्द को उसके सामान्य अर्थ में न लेकर विशेष अर्थों में लिया जाता है, और इसीलिये सबसे पहले उसकी परिभाषा की जाती है। मनोविज्ञान में निर्देशन विशेष अर्थों में प्रयोग किया गया है। मनोविज्ञान में निर्देशन उस निजी सहायता को कहा जाता है जो एक मनोवैज्ञानिक (साधारण व्यक्ति नहीं) किसी व्यक्ति को देता है। यह निर्देशन एक सलाह के रूप में होता है जिससे कि निर्देशित व्यक्ति को विभिन्न परिस्थितियों में अनुकूलन करने में सहायता मिलती है। यदि देखा जाय तो अनुकूलन ही मानव जीवन में मूल समस्या है। जो व्यक्ति अपनी परिस्थितियों से अनुकूलन नहीं कर पाता वह असफल होता है, स्वयं दुःख उठाता है, दूसरों को दुःख देता है और असामान्य कहा जाता है। इस तरह व्यावहारिक मनोविज्ञान व्यक्ति को उसके अनुकूलन करने में सहायता देकर समाज की सुख, शान्ति और व्यवस्था बढ़ाता है। मानव जीवन की समस्याओं का कभी अन्त नहीं होता क्योंकि समस्यायें बढ़ती रहती हैं। उदाहरण के लिये एक बालक के सामने बहुत कम समस्यायें रहती हैं। उसको यही कठिनाई होती है कि कक्षा का कार्य किस तरह किया जाय, अपने साथियों से किस तरह निबटा जाय इत्यादि। उसके सामने गृहस्थी के झंझटों की कोई समस्या नहीं होती। परन्तु क्रमशः ये समस्यायें सबके सामने आती हैं। सामान्य रूप से सभी की शादियाँ होती हैं, बच्चे होते हैं, बच्चों की पढ़ाई करनी पड़ती है, उनको बीमारियाँ भी होती हैं वे बड़े होते हैं, उनकी शादियाँ होती हैं, उनके बच्चे होते हैं, इस तरह एक से दूसरी नित्य नई समस्या का यह सिलसिला चलता ही रहता है और इन्सान कभी उनसे खाली नहीं बैठता। मानव मनोविज्ञान ही ऐसा है। अभी एक इच्छा उठती है, उसकी पूर्ति के लिये किसी चीज की जरूरत होती है। हम उस चीज की खोज में लग जाते हैं। थोड़ी या बहुत कोशिश के बाद वह चीज मिल जाती है और हमारी इच्छा पूरी हो जाती है। परन्तु यह कहानी यहीं समाप्त नहीं हो जाती। एक इच्छा पूरी होने के बाद दूसरी इच्छा उठती है और फिर वही लक्ष्य, लक्ष्य की खोज, खोज में कठिनाइयाँ, कठिनाइयों का अतिक्रमण, वस्तु की प्राप्ति, इच्छा की सन्तुष्टि और अस्थाई संतोष की अनुभूति परन्तु फिर किसी अन्य इच्छा का उठना और यह क्रम चलता ही रहता है। जाहिर है कि हर एक इन्सान के सामने रोज नये लक्ष्य आते हैं जिनको पूरा करने में उसको रोज नई मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। जैसा कि जोन्स ने अपनी परिभाषा में बतलाया है निर्देशन लक्ष्य की प्राप्ति में आने वाली इन समस्याओं को सुलझाने में सहायता करता है।

प्रश्न १२—कर्मचारी सेवा और निर्देशन सेवा में अन्तर बतलाइये।

उत्तर—कर्मचारी सेवा में कर्मचारियों के कल्याण की सभी बातें जैसे उनके घर, स्वास्थ्य, मनोरंजन, आर्थिक स्थिति, परस्पर सम्बन्धों आदि को ठीक रखना आदि आ जाती हैं। विद्यार्थी कर्मचारी सेवा विद्यार्थियों के सभी तरह के कल्याण के लिये कोशिश करती है। यह कर्मचारी सेवा का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। क्राफर्ड के अनुसार, "विद्यार्थी कर्मचारी सेवा वह साधन है जिसके द्वारा विद्यार्थी की सम्पूर्ण शिक्षा को उसकी शक्ति तथा उसकी योग्यता की सीमा में सर्वोत्तम बनाया जा सकें।" इस तरह विद्यार्थी कर्मचारी सेवा शिक्षा के सभी अंगों के विकास की कोशिश करती है। उसमें शिक्षा का हर पहलू आ जाता है। अमेरिका में इस तरह की सेवा का बड़े पैमाने पर इन्तजाम है। The Students Personnel Point of view नामक पुस्तक में अमेरिकन कौंसिल ऑफ एजूकेशन के अध्यक्ष श्री विलियमसन (E. G. Williamson) ने विद्यार्थी कर्मचारी सेवा के व्यापक क्षेत्र में निम्नलिखित बातें शामिल की हैं:—

कर्मचारी सेवा

१ शिक्षा या काम के प्रति विद्यार्थी में स्वस्थ दृष्टिकोण उत्पन्न करना।
२. जीविकोपार्जन की सन्तोषजनक व्यवस्था प्राप्त करना।
३. अपने काम में सफलता प्राप्त करना।
४. समाज में भ्रातृत्व अथवा सबकी स्वीकृति प्राप्त करना।
५. स्वस्थ शारीरिक और मानसिक आदतें डालना।
६. जीवनप्रद (Lively) शौक (Hobbies) पैदा करना।
७. संवेगों को समाज द्वारा स्वीकृत रीति से जाहिर करना।
८. अपनी योग्यता के अनुकूल व्यावसायिक रुचि पैदा करना।
९. सामाजिक जिम्मेदारी को महसूस करना।
१०. भिन्न लिंगीय (Opposite Sex) व्यक्तियों का समाज द्वारा स्वीकृत रीति से मिलना-जुलना।
११. जीवन के प्रति आदर्शों की स्थापना तथा उनका पालन करना।
१२. अच्छे आचार-विचार तथा मूल्यों (Values) का पालन और आदर करना।

विद्यार्थी कर्मचारी सेवा (Public Personnel Work) के क्षेत्र में उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि उसमें विद्यार्थी जीवन के सभी पक्ष आ जाते हैं। इसी प्रकार की कर्मचारी सेवा व्यवस्था का जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी उपयोग किया जाता है जैसे कारखाने में, विभिन्न व्यवसायों में तथा समाज के विभिन्न क्षेत्रों में।

कर्मचारी सेवा व्यवस्था को समझने के बाद अब निर्देशन सेवा व्यवस्था से उसका अन्तर अच्छी तरह समझा जा सकता है। मोटे तौर से यह अन्तर निम्न-लिखित है :—

कर्मचारी सेवा और निर्देशन सेवा

१. कर्मचारी सेवा निर्देशन सेवा से अधिक व्यापक है। उसमें जीवन के सभी पहलू आ जाते हैं। परन्तु निर्देशन एक निजी सेवा है। उसमें केवल व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान का प्रयास किया जाता है।

२. कर्मचारी सेवा हर एक अध्यापक या कर्मचारी कर सकता है जबकि निर्देशन का कार्य केवल विशेषज्ञ ही कर सकता है।

कर्मचारी सेवा और निर्देशन के उपरोक्त अन्तर को ध्यान में रखते हुए यह भी याद रखना जरूरी है कि निर्देशन सेवा कर्मचारी सेवा का ही मुख्य अंग है। इस तरह कर्मचारी सेवा में निर्देशन सेवा के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ आ जाता है।

★

प्रश्न १३—शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन में क्या सम्बन्ध है? शैक्षिक निर्देशन के कार्यों तथा विभिन्न पहलुओं का वर्णन कीजिये। भारतीय उदाहरण दीजिये।

अथवा

प्रश्न—जूनियर हाई स्कूल स्तर पर शैक्षिक निर्देशन के महत्व का विवेचन कीजिये। उपयुक्त निर्देशन के मार्ग में किन-किन कठिनाइयों का अनुभव होता है?

(यू० पी० बोर्ड १९६४)

शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन
(Educational Guidance)

शैक्षिक या शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन, जैसा कि उनके नाम से जाहिर है शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं को सुलझाने के बारे में विद्यार्थी को मनोवैज्ञानिक द्वारा दी गई निजी सलाह है। शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन ही व्यावसायिक निर्देशन का आधार है। बालक भविष्य में कौन-सा व्यवसाय चुनेगा यह इस पर भी निर्भर है कि उसने किन-किन विषयों की शिक्षा प्राप्त की है। उदाहरण के लिये जिस व्यक्ति ने विज्ञान की शिक्षा कभी नहीं पाई वह ओवरसियर या इन्जीनियर नहीं बन सकता। इसी तरह शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन भी व्यावसायिक निर्देशन पर आधारित है। उदाहरण के लिये बालकों को सामान्य स्तर तक, आमतौर से १०वीं श्रेणी के स्तर तक शिक्षा देने के बाद आगे की कक्षा में

शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन अन्योन्याश्रित हैं

अपने विषय का चुनाव अपने भावी जीवन के व्यवसायों के अनुकूल करना होता है। इस तरह शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन और व्यावसायिक निर्देशन अन्योन्याश्रित है।

शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन का उद्देश्य विद्यार्थी की शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाना, उनके पाठ्यक्रम का चुनाव करना तथा उनको स्कूल की परिस्थितियों से अनुकूलन करने योग्य बनाना है। मुख्य रूप से शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन के कार्य निम्नलिखित कहे जा सकते हैं :—

शैक्षिक निर्देशन के कार्य

१. सामर्थ्य और योग्यता के अनुकूल पाठ्यक्रम का चुनाव।
२. अध्ययन की विधि में सुधार।
३. पिछड़े बालकों के लिये शिक्षा की विशेष विधि की व्यवस्था।
४. प्रतिभाशाली बालकों के लिये विशेष प्रकार के कार्यक्रम की व्यवस्था।
५. परीक्षा की असफलताओं का समाधान।
६. विद्यार्थी की अध्ययन सम्बन्धी प्रेरणा को प्रोत्साहित करना।
७. विशेष विषयों की कमजोरी को दूर करना।

शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन की रूपरेखा स्पष्ट करने के लिए उपरोक्त समस्याओं का विस्तृत विवेचन उपयुक्त होगा।

पाठ्यक्रम सम्बन्धी निर्देशन

(१) सामर्थ्य और योग्यता के अनुकूल पाठ्यक्रम का चुनाव—मनोविज्ञान की खोजों ने यह निश्चित रूप से सिद्ध कर दिया है कि विद्यार्थियों की शिक्षा सम्बन्धी सफलता उनकी सामर्थ्य के अनुरूप पाठ्यक्रम के चुनाव पर निर्भर होती है। इसमें दो बातें जरूरी हैं एक तो विद्यार्थी की योग्यताओं की परीक्षा की जाय और दूसरे यह पता लगाया जाय कि किन-किन योग्यताओं के अनुकूल कौन-कौन-से विषय ऐसे होते हैं? उदाहरण के लिये निर्देशन में यह पता लगाने की जरूरत है कि गणित का अध्ययन करने के लिये विद्यार्थी में कौन-कौन से गुण होने चाहियें। मनोवैज्ञानिक खोजों से भिन्न-भिन्न विषयों के लिए आवश्यक मानसिक योग्यताओं के बारे में बहुत कुछ सही जानकारी प्राप्त की जा चुकी है। अब मुख्य प्रश्न विद्यार्थी की योग्यता की परीक्षा का ही रह जाता है। विद्यार्थी की इस परीक्षा में उसकी स्मरण शक्ति, उसकी बुद्धि, उसकी तर्क शक्ति, कल्पना शक्ति, हस्त कौशल, विशेष रुचियाँ तथा उसके व्यक्तित्व की परीक्षा की जाती है। इन सब परीक्षाओं का वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है। इस परीक्षा में जहाँ कुछ परीक्षणों की सहायता ली जाती है वहाँ विद्यार्थी के परिवेश का भी निरीक्षण किया जाता है। इस तरह मनोवैज्ञानिक हर एक विद्यार्थी की योग्यता की परीक्षा करके उसको उसके उपयुक्त पाठ्यक्रम के चुनाव में मशवरा देता है। प्रयोगों द्वारा यह देखा गया है कि इस तरह के मशवरे के आधार पर पाठ्यक्रम के चुनाव से केवल परीक्षा में सफलता की ही नहीं बल्कि उस विषय में वास्तविक योग्यता प्राप्त करने की भी

सम्भावनायें बहुत अधिक बढ़ जाती हैं। पाठ्यक्रम सम्बन्धी निर्देशन का अवसर विशेषतः ८वीं और १०वीं कक्षाओं में आता है। हाई स्कूल के पाठ्यक्रम में कला, वाणिज्य तथा विज्ञान के पाठ्यक्रम अलग-अलग निश्चित किये गये हैं। विद्यार्थी को कला, वाणिज्य अथवा विज्ञान में से किसको चुनना है इस बारे में उसको ८वीं कक्षा के बाद ही निर्देशन की जरूरत पड़ती है। इसलिये इस कक्षा को डेल्टा क्लास (Delta class) भी कहा गया है। सामान्य रूप से विद्यार्थी १०वीं कक्षा में जो विषय लेता है वही उसके बाद भी चालू रख सकता है परन्तु फिर भी १०वीं कक्षा के बाद फिर से निर्देशन की जरूरत होती है क्योंकि विशेषतः भारत की परिस्थिति में १०वीं कक्षा के बाद विद्यार्थी को यह निश्चय कर लेना चाहिए कि उसको कौनसे व्यवसाय में जाना है और उसी व्यवसाय के अनुरूप पाठ्यक्रम का चुनाव करना चाहिए इस स्तर पर शैक्षिक निर्देशन में मनोवैज्ञानिक विद्यार्थियों को आठवीं कक्षा में दिये गये निर्देशन को भी ध्यान में रखता है।

निर्देशन में विद्यार्थी की योग्यता की परीक्षा के अलावा उसके स्कूल की प्रगति को भी देखने की जरूरत होती है। स्कूल की प्रगति में मुख्य सूचनायें इस तरह होती हैं—परीक्षण फलांक (Test Scores), परीक्षाओं के मासिक, त्रैमासिक, छमाही अथवा वार्षिक परीक्षा फल, खेल-कूद तथा वाद-विवाद में विद्यार्थी की अध्ययन सम्बन्धी आदतें तथा अध्यापक द्वारा विद्यार्थी के व्यक्तित्व और योग्यता का मूल्यांकन। इन सब बातों को संचित वृत्त (Cumulative Record) में इकट्ठा कर लिया जाता है। संचित वृत्त को अध्यापक अथवा स्कूल मनोवैज्ञानिक तैयार करता है।

संचित वृत्त

संचित वृत्त के अलावा महत्वपूर्ण रिकार्ड अभिभावक अनुसूची (Guardian's Schedule) होती है। इसमें विद्यार्थी के अभिभावक या पिता से प्राप्त महत्वपूर्ण सूचनाओं को दर्ज किया जाता है। इसके अलावा विद्यार्थी से उसके अपने बारे में भी जानकारी प्राप्त की जाती है अर्थात् उसे खुद यह बतलाने को कहा जाता है कि वह किन विषयों को आगे पढ़ना चाहता है। इस तरह विद्यार्थी एक स्व-सूची (Self Inventory) तैयार करता है जिसमें कि वह अपनी पसन्द और नापसन्द के विषयों का उल्लेख करता है तथा यह भी बतलाता है कि वह कौन सा व्यवसाय ग्रहण करना पसन्द करेगा। सामान्य रूप से विषय का चुनाव निम्नलिखित विषयों में से होता है:—

अभिभावक सूची और स्व-सूची

१. साहित्यिक (Literary)
२. वैज्ञानिक (Scientific)
३. कृषि (Agricultural)
४. वाणिज्य (Commercial)
५. प्रौद्योगिक (Technical)
६. रचनात्मक (Constructive)
७. कलात्मक (Aesthetic)

संचित वृत्त, अभिभावक अनुसूची और स्व-सूची को लेकर मनोवैज्ञानिक एक सूचना-पत्र तैयार करता है। सूचना-पत्र तैयार हो जाने के बाद विद्यार्थी से साक्षात्कार (Interview) करता है। इस साक्षात्कार में विद्यार्थी के पिता अथवा अभिभावक को भी बुलाया जा सकता है। इस साक्षात्कार के बाद परामर्शदाता विद्यार्थी को पाठ्यक्रम के चुनाव के बारे में अपना मशवरा देता है। डेल्टा क्लास में निर्देशन की व्यवस्था पश्चिमी देशों में लगभग सभी विद्यार्थियों को उपलब्ध होती है। परन्तु खेद है कि भारत में अभी बहुत ही कम विद्यार्थी इसका लाभ उठा पाते हैं। इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उत्तर प्रदेश में केवल २५ स्कूलों में मनोवैज्ञानिकों की व्यवस्था है।

डेल्टा क्लास के बाद निर्देशन

आठवीं कक्षा के बाद और दसवीं कक्षा के बाद शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन में एक मुख्य अन्तर यह है कि आठवीं कक्षा के बाद तो केवल पाठ्यक्रम के बारे में ही निर्देशन दिया जाता है। जबकि दसवीं कक्षा के बाद पाठ्यक्रम के साथ-साथ भावी व्यवसाय के विषय में भी निर्देशन देना जरूरी होता है। इस तरह दसवीं कक्षा के बाद का शैक्षिक निर्देशन वास्तव में शैक्षिक-व्यवसायिक (Educational-Vocational) होता है। जाहिर है कि इसमें अधिक विस्तृत जानकारी की जरूरत है। इसमें विद्यार्थी के शिक्षा सम्बन्धित संचित वृत्त, अभिभावक अनुसूची, स्वसूची के साथ-साथ उसके अध्यापकों का मूल्यांकन (Rating) भी ले लिया जाता है। इसके बाद फिर विद्यार्थी से साक्षात्कार किया जाता है। होता यह है कि विद्यार्थी के सामने इन सब सूचनाओं को परिपार्श्व चित्र के रूप में (In the form of a profile) उपस्थित करने पर आमतौर से विद्यार्थी स्वयं अपना पाठ्यक्रम और व्यवसाय चुन लेता है। परन्तु यदि कुछ कारणों से विद्यार्थी अपना मार्ग खुद नहीं निकाल पाता तो मनोवैज्ञानिक को निर्देशन देना पड़ता है।

दसवीं कक्षा के बाद निर्देशन

२. अध्ययन की विधि में सुधार—शैक्षिक निर्देशन में दूसरा महत्वपूर्ण पहलू अध्ययन की विधि में सुधार का है। अध्ययन की विधि में नोट लेने का ढंग, पढ़ने का ढंग, सारांश निकालने की विधि, याद करने की विधि, समय का उचित विभाजन और विश्राम की व्यवस्था आदि मुख्य बातें हैं। इन मुख्य बातों का विस्तृत विवेचन प्रासंगिक होगा।

चार्ल्स बर्ड (Charles Bird) ने ठीक ही लिखा है कि नोट लेने से अध्ययन अधिक उत्तम होता है। परन्तु नोट लेना सबको नहीं आता। नोट लेने में न तो शिक्षक द्वारा कहे हुए वाक्यों को ज्यों का त्यों नोट करना होता है और न जरूरी बातों को छोड़ना होता है। वास्तव में नोट बनाने का अर्थ संक्षेप में लिखना है।

(१) नोट लेने का ढंग

इसमें संकेत से काम लिया जा सकता है। नोट इतने संक्षिप्त भी न हों कि बाद में पढ़ने में समझ में ही न आयें और इतने विस्तृत भी न हों कि उनको याद करने में कठिनाई हो। नोट इस तरह क्रमबद्ध लिखे जाने चाहियें कि उसमें जरूरी बातें न छूटें और बेकार की बातें न आने पायें।

(२) पढ़ने का ढंग

पढ़ने के ढंग के बारे में मनोविज्ञान में बहुत सी खोजें की गई हैं। उदाहरण के लिये यह पता लगाया गया है कि पूर्ण विधि (Whole Method) और अंश विधि (Part Method) में कौन-सी अधिक उपयोगी है और किन दिशाओं में। इसी तरह बोलकर पढ़ने और चुपचाप पढ़ने के बारे में भी पता लगाया गया है। पढ़ने के समय यह जरूरी है कि काफी रोशनी का इन्तजाम हो और पढ़ाई में कम से कम विघ्न पड़े। पढ़ने की गति (Speed) अभ्यास से बढ़ाई जा सकती है।

(३) याद करने की विधि

याद करने की विधि के बारे में मनोविज्ञान में बहुत सी खोजें की गई हैं। याद करने की विधियों के बारे में स्थूल रूप से कुछ निष्कर्ष निम्नलिखित हैं :—

(अ) आवृत्ति (Recitation)—आवृत्ति का अर्थ किसी विषय को बार-बार पढ़ना नहीं बल्कि उसको दोहराना है।

इसमें रटने अर्थात् बार-बार पढ़ने की अपेक्षा अधिक लाभ होता है। परन्तु इसके अर्थ यह नहीं हैं कि बार-बार पढ़ने का कोई महत्व नहीं है। वास्तव में पुनरावृत्ति और आवृत्ति दोनों को साथ-साथ चलना चाहिये।

(ब) आंशिक और पूर्ण विधियां (Part and whole methods)—आंशिक विधि में पाठ को थोड़ा-थोड़ा करके और पूर्ण विधि में पूरा याद किया जाता है। किसी विषय को याद करने में कौन-सी विधि उपयोगी होगी यह विषय-सामग्री की मात्रा, प्रकार तथा याद करने वाले की सामर्थ्य पर निर्भर है। छोटी कविता को पूर्ण विधि से याद किया जा सकता है परन्तु लम्बी कविता में आंशिक विधि जरूरी है। इसी तरह कठिन विषय में आम तौर से पूर्ण विधि का इस्तेमाल करना अच्छा रहता है क्योंकि उससे विषय के विभिन्न भागों को अलग-अलग समझा जा सकता है। वास्तव में बहुधा दोनों विधियों का उपयोग अधिक अच्छा रहता है। व्यावहारिक जीवन में किस समय, किस विधि से काम लेना चाहिये इसमें विद्यार्थी को अपनी सामर्थ्य का भी ध्यान रखना चाहिये। जो पूर्ण विधि से शीघ्र थक जाते हैं उनके लिये आंशिक विधि ही बेहतर है। जिनको थोड़ी देर पढ़ने के बाद ही पढ़ने की गर्मी आती है उनके लिये पूर्ण विधि ही अच्छी है।

(स) व्यवधान सहित तथा व्यवधान रहित विधियां (Spaced and unspaced Methods)—व्यवधान सहित विधि जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है अन्तर देकर याद करने की विधि है। इसके विरुद्ध व्यवधान रहित विधि में एक ही बैठक में विषय को याद कर लिया जाता है। इन दोनों में कौन-सी विधि अधिक

लाभदायक होगी यह याद करने वाले व्यक्ति की सामर्थ्य और विषय-सामग्री के विस्तार तथा प्रकृति पर निर्भर है। आठ-दस पंक्तियों की कविता को एक ही बैठक में याद किया जा सकता है परन्तु २०० पंक्तियों की लम्बी कविता को याद करने के लिए आमतौर से कई बैठकों की जरूरत पड़ती है। दो बार की बैठकों में कितना अवकाश होना चाहिये इसके बारे में कोई सामान्य नियम नहीं। स्थूल रूप से यही कहा जा सकता है कि अगली बैठक तभी शुरू होनी चाहिये कि जबकि पिछली बैठक की थकान बिल्कुल चली जाय और पिछले स्मृति चिन्ह दृढ़ हो जायें। वास्तव में व्यवधान सहित विधि के बहुत से फ़ायदे हैं। उससे थकान तो मिटती ही रहती है और साथ ही साथ विषय का मानसिक चिन्तन भी करने का मौका मिलता है, अरोचकता (Monotony) मिट जाती है और सीखने में ध्यान लगा रहता है। अवकाश के दौरान में अशुद्ध प्रक्रिया भुला दी जाती है जिससे उनकी पुनरावृत्ति का डर नहीं रहता।

(द) सक्रिय तथा निष्क्रिय विधियां (Active and Passive Methods)—उच्च स्वर में बोलकर याद करना सक्रिय विधि और मन ही मन पढ़कर याद करना निष्क्रिय विधि कहलाती है। प्रयोगों से यह मालूम हुआ है कि निष्क्रिय विधि की अपेक्षा सक्रिय विधि में ध्यान कम विचलित होता है, मस्तिष्क में विषय का प्रतिमान (Pattern) सा बन जाता है, विषय के विभिन्न अंगों में सम्बन्ध जुड़ता चलता है। याद करने वाला यह देखता रहता है कि उसे कितना याद हुआ है और याद करने का प्रयत्न तथा इच्छा बनी रहती है। परन्तु फिर भी कभी-कभी बोल-बोल कर याद करने से पहले एक बार मन ही मन पढ़ना अधिक उपयोगी होता है।

(इ) यान्त्रिक और बौद्धिक विधियां (Rote & Intelligent Methods)—यान्त्रिक अथवा अबौद्धिक विधि में याद करने वाला बिना समझे हुए विषय को रटता है। बौद्धिक विधि में अर्थ समझकर तथा विषय को आत्मसात करते हुए उसको याद किया जाता है। प्रयोगों से यह मालूम हुआ है कि बौद्धिक विधि यांत्रिक विधि से हमेशा अधिक लाभदायक है। उसमें विचारों के साहचर्य (Association) बनते हैं और विषय-सामग्री मस्तिष्क में जम जाती है तथा स्मृति अधिक स्थायी होती है। याद करने में सहायक उपरोक्त विधियों के अलावा समूहीकरण और लय तथा साहचर्य से भी याद करने से उस विषय पर ४-५ पृष्ठ लिखे जा सकते हैं। पद्यों को याद करने में लय से पढ़ने का महत्व सभी जानते हैं। साहचर्य से नई पढ़ी हुई सामग्री मस्तिष्क में पहले से उपस्थित सामग्री से बंध जाती है और अधिक समय तक याद रहती है। इसके अलावा याद करने में आत्म-विश्वास का बड़ा महत्व है। मानसिक तत्परता से स्मृति में सहायता मिलती है। विद्यार्थी के अभिप्राय का भी महत्व कम नहीं है। याद रखने के अभिप्राय से सीखा हुआ विषय निश्चय ही अधिक याद रहता है। ध्यान तो जरूरी है ही। ध्यान की अनुपस्थिति में विषय का याद होना असम्भव है। इसके अलावा मानसिक समीक्षा भी लाभदायक

है। इसमें याद किये हुए विषय को मस्तिष्क में दोहराया जाता है। अन्त में सम्प्रत्यक्ष (Apperception) अर्थात् सीखे हुए विषय को पूर्व संचित ज्ञान से मिलाना भी बड़ा लाभदायक है।

(ई) सारांश निकालने की विधि—अध्ययन की विधि में सारांश निकालने की विधि का भी बड़ा महत्व है। इसमें खास बात यह है कि मतलब की बात को पकड़ लिया जाता है और सारांश बनाने के लिये ऐसे शब्द चुने जाते हैं जिनसे पूरी बात याद आ जाये।

(उ) समय का विभाजन—जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है समय का विभाजन करके पढ़ने से बड़ा लाभ होता है। समय के विभाजन में भी दो बातें हैं। एक तो अध्ययन और विश्राम में समय का विभाजन और दूसरे विषय के अनुसार अध्ययन के समय का विभाजन। ये दोनों ही तरह के विभाजन जरूरी हैं।

(ऊ) विश्राम की व्यवस्था—पढ़ने के बाद विश्राम लेने से पढ़ने की थकावट दूर हो जाती है, उवताहट नहीं होती और जो कुछ पढ़ा है यह मस्तिष्क में जम जाता है। इसलिए पढ़ने के बाद विश्राम बड़ा जरूरी है। प्रयोगों से यह देखा गया है कि पढ़ने के बाद सो जाने से पढ़ी हुई बात देर तक याद रहती हैं क्योंकि सोने में मस्तिष्क को पूरा आराम मिलता है। कितना पढ़ने के बाद कितने आराम की जरूरत है यह विद्यार्थी की अपनी सामर्थ्य तथा पढ़ने के विषय पर निर्भर है। कठिन विषय में थोड़े ही समय पढ़ने के बाद आराम की जरूरत पड़ जाती है जबकि आसान और मनोरंजक विषय देर तक पढ़े जा सकते हैं।

अध्ययन की विधियों के बारे में मनोवैज्ञानिक खोजों के परिणामों के उपरोक्त विश्लेषण से विद्यार्थी अपनी अध्ययन विधि के गुण दोषों को स्वयं परख सकते हैं और उनमें सुधार कर सकते हैं। परन्तु कुछ विद्यार्थी ऐसे भी हैं जो खुद ऐसा नहीं कर सकते। ऐसे विद्यार्थियों को मनोवैज्ञानिक के मशवरे की जरूरत होती है। ऐसा मशवरा देते समय मनोवैज्ञानिक को विद्यार्थी की सामर्थ्य का पूरी तरह पता लगा लेना चाहिए क्योंकि अध्ययन की विधि का उनसे घनिष्ठ सम्बन्ध है।

(२) पिछड़े हुए बालकों के लिये शिक्षा की विशेष विधि की व्यवस्था—शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन का एक खास पहलू पिछड़े हुये विद्यार्थियों के बारे में निर्देशन देना है। इसमें आमतौर से फेल होने वाले बालक या वे बालक आते हैं जिनमें अनुशासनहीनता, स्कूल से भाग जाना, किशोरापराध या इसी तरह का कोई दोष हो। शिक्षा में पिछड़ेपन के कारण निजी भी हो सकते हैं और शिक्षा पद्धति अथवा अन्य बाहरी बातों से सम्बन्धित भी हो सकते है। परामर्शदाता को पिछड़े हुए विद्यार्थियों के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करनी चाहिए इसमें विद्यार्थी के संचित वृत्त तथा शैक्षिक जीवन वृत्त के साथ-साथ उसके अभिभावक तथा अध्यापक से सूचना प्राप्त करनी भी जरूरी है। इन सूचनाओं के आधार पर उनकी समस्याओं को सुलझाने के बारे में निर्देशन दिया जा सकता है। मन्द बुद्धि अथवा किसी अन्य

मानसिक दोष के कारण पिछड़े हुए बालकों के लिये विशेष पाठ्यक्रम तथा विशेष अध्यापन विधि की जरूरत होती है। मनोवैज्ञानिक इस विषय में निर्देशन दे सकता है। यदि यह देखा जाय कि पिछड़ा हुआ बालक किसी भी तरह आगे पढ़ने में असमर्थ है तो अच्छा यह होगा कि उसको किसी व्यवस्था में जाने की सलाह दी जाय। यदि बालक का पिछड़ापन उसकी पारिवारिक परिस्थितियों या स्कूल के परिवेश के कारण है तो मनोवैज्ञानिक को उसके अध्यापक तथा उसके अभिभावक को सुझाव देना चाहिए। कभी-कभी पिछड़ापन किसी मानसिक रोग के कारण भी हो सकता है। ऐसी हालत में बालक को मशवरे की नहीं बल्कि मानसिक उपचार की जरूरत है। संक्षेप में परामर्शदाता को हर एक पिछड़े हुये बालक के बारे में अलग से विचार करना चाहिए और व्यक्तिगत स्तर पर निर्देशन देना चाहिये।

(४) **प्रतिभाशाली बालकों के लिये विशेष प्रकार के कार्यक्रम की व्यवस्था**—जहाँ पिछड़े हुए बालकों को निर्देशन की जरूरत होती है वहाँ प्रतिभाशाली बालकों के लिये भी विशेष व्यवस्था की जरूरत होती है अन्यथा उनके गलत रास्तों पर पड़ जाने का डर रहता है। प्रतिभाशाली बालक के लिये वह कार्यक्रम तथा पाठ्यक्रम काफी नहीं होता जो सामान्य बालकों के लिये बनाया जाता है। मनोवैज्ञानिक इस तरह के प्रतिभाशाली बालकों के बारे में अलग-अलग जानकारी प्राप्त करके उनके अध्यापकों तथा अभिभावकों को निर्देशन देता है। इस निर्देशन में तरह तरह के पाठ्यक्रमेतर कार्यक्रमों (Extra-Curricular Programmes) के बारे में सुझाव दिया जा सकता है। संक्षेप में, मनोवैज्ञानिक प्रतिभाशाली बालक की प्रतिभा के अनुरूप पाठ्यक्रम की व्यवस्था करता है।

(५) **परीक्षा की असफलताओं का समाधान**—उत्तर प्रदेश में हाई स्कूल तथा इण्टरमीडियेट की परीक्षाओं के परीक्षाफल हर साल ५० प्रतिशत से भी कम होते हैं। इस तरह परीक्षा में बैठने वाले लगभग आधे विद्यार्थी असफल होते हैं। इस असफलता से जहाँ कुछ आत्महत्या की घटनायें सुनाई पड़ती हैं वहाँ बहुत से बालक हताश होकर पढ़ाई छोड़ देते हैं। कुछ बालक समाज विरोधी कार्यों में लग जाते हैं, कुछ मानसिक असन्तुलन के शिकार होते हैं और अधिकतर घोर निराशा से भर जाते हैं। सभी शिक्षा शास्त्री इस बात से सहमत हैं कि परीक्षा में असफलता के इस अनुपात से राष्ट्र के धन और शक्ति की भारी हानि हो रही है। वैसे तो यह एक राष्ट्रीय समस्या है अथवा यह समस्या राज्य की शिक्षा पद्धति और शिक्षा संगठन की समस्या है और मनोवैज्ञानिक इसमें बहुत कम दखल दे सकता है परन्तु मनोवैज्ञानिक अपने निर्देश से विभिन्न बालकों की परीक्षा में असफलता के कारणों के सुधार में सहायता कर सकता है।

(६) **विद्यार्थियों में अध्ययन सम्बन्धी प्रेरणा को प्रोत्साहित करना**—शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन के लिये एक समस्या तब आती है जब किसी विद्यार्थी में अध्ययन

की प्रेरणा का अभाव दिखाई पड़े। प्रेरणा के इस अभाव के कारण निजी भी हो सकते हैं और परिवेश से सम्बन्धित भी हो सकते हैं। निजी कारणों में शारीरिक कारण जैसे कि गिरा हुआ स्वास्थ्य आदि भी हो सकते हैं और मानसिक कारण जैसे कोई परेशानी आदि भी हो सकते हैं। परिवेश जनित कारणों में स्कूल से सम्बन्धित कारण और घरेलू कारण आते हैं। स्कूल से सम्वन्धित पाठ्यक्रम का अरुचिकर होना, अध्यापन विधि का मनोवैज्ञानिक न होना पाठ्यक्रम के अतिरिक्त कार्यक्रमों की कमी तथा अन्य अनेक कारण हो सकते हैं। मनोवैज्ञानिक इन सब कारणों की छानबीन करके अध्ययन की प्रेरणा उत्पन्न करने के लिये विद्यार्थी को निर्देशन देता है। वास्तव में यह कार्य निर्देशन से उतना नहीं हो सकता जितना कि प्रेरणा न होने के कारणों को दूर करने से हो सकता है। इसके लिए मनोवैज्ञानिक अध्यापक अथवा अभिभावक को निर्देशन देता है। अभिभावक, अध्यापक और मनोवैज्ञानिक मिलकर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर सकते हैं जिससे कि विद्यार्थी स्वयं पढ़ने में रुचि ले। तभी उसमें अध्ययन के विषय की आर प्रेरणा उत्पन्न की जा सकती है।

(७) विशेष विषय में कमजोरी को दूर करना—शिक्षा सम्वन्धी निर्देशन के लिये एक और समस्या तब उत्पन्न होती है जब कि कोई विद्यार्थी किसी विशेष विषय में कमजोर हो। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश के स्कूलों में बहुधा विद्यार्थी अंग्रेजी में कमजोर होते हैं। कालिज में फेल होने वाले विद्यार्थियों में एक बड़ी संख्या अंग्रेजी में फेल होने वाले विद्यार्थियों की होती है। कुछ विद्यार्थी कुछ विशेष विषयों से ऐसा भागते हैं मानो जान छुड़ाने की कोशिश कर रहे हों। उदाहरण के लिए कुछ लोगों को गणित हौवा मालूम पड़ता है और कुछ लोगों को व्याकरण कठिन लगती है। विशेष विषय में कमजोरी कभी तो इस कारण होती है कि विद्यार्थी में उस विषय से सम्वन्धित योग्यता बहुत कम होती है और कभी वह इसलिये होती है कि विद्यार्थी उस विषय में रुचि नहीं लेता। परीक्षाओं के द्वारा मनोवैज्ञानिक यह पता लगा सकता है कि इनमें से किस कारण से विशेष विद्यार्थी विशेष विषय में कमजोर है। यदि पहला कारण है तो उसमें तो यही हो सकता है कि विद्यार्थी को उस विषय से शीघ्र से शीघ्र छुटकारा दिला दिया जाय अथवा यदि उसमें कुछ योग्यता पैदा की जा सकती है तो पैदा करने की कोशिश की जाय। यदि विषय में कमजोरी का कारण दूसरा हो तो मनोवैज्ञानिक अपने निर्देशन के द्वारा और अभिभावक तथा अध्यापक के सहयोग से उस कारण को दूर कर सकता है।

शिक्षा सम्वन्धी निर्देशन के विभिन्न पहलुओं की उपरोक्त संक्षिप्त रूपरेखा से यह स्पष्ट होता है कि वह शिक्षा की विभिन्न समस्याओं से सम्वन्धित है। वास्तव में जिन समस्याओं का वर्णन पीछे किया गया है वे केवल मुख्य-मुख्य समस्यायें हैं उनके अतिरिक्त शिक्षा के क्षेत्र में और भी कितनी ही समस्यायें ऐसी हो सकती हैं जिनमें मनोवैज्ञानिक के निर्देशन की जरूरत होती है।

प्रश्न १४—व्यावसायिक निर्देशन से क्या अर्थ समझते हैं? व्यावसायिक निर्देशन के लिये किन-किन बातों को जानना आवश्यक है? इस पर प्रकाश डालिये।
(यू० पी० बोर्ड १९६५)

व्यावसायिक निर्देशन
(Vocational Guidance)

व्यावसायिक निर्देशन क्या है?

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (International Labour Organisation) की आम सभा ने १९४९ में अपनी व्यावसायिक निर्देशन सम्बन्धी सिफारिश में व्यावसायिक निर्देशन को "व्यक्ति की विशेषताओं और व्यावसायिक अवसर (Occupational Opportunity) से उसके सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुए व्यावसायिक चुनाव और प्रगति से सम्बन्धित समस्याओं को सुलझाने में एक व्यक्ति को दी गई सहायता" कहा है। इस तरह व्यावसायिक निर्देशन का उद्देश्य व्यक्ति को व्यवसाय के द्वारा अपना निजी विकास करने और सन्तोष प्राप्त करने में सहायता देकर राष्ट्र की जन-शक्ति का पूर्ण और प्रभावशाली उपयोग होने में सहायता देना है।

व्यावसायिक निर्देशन का महत्व

राष्ट्र और व्यक्ति के लाभ के लिये हर एक व्यक्ति को अपनी योग्यताओं के अनुरूप व्यवसाय चुनना चाहिये। सभी लोग सभी तरह के काम नहीं कर सकते। विशेष प्रकार के कामों के लिये विशेष प्रकार की योग्यताओं की जरूरत होती है। यहाँ यह सवाल उठाया जा सकता है कि इसमें निर्देशन की क्या बात है, हर एक व्यक्ति स्वयं यह जान सकता है कि उसकी योग्यता क्या है और उसके अनुरूप व्यवसाय चुन सकता है। परन्तु यदि देखा जाय तो वस्तु स्थिति ऐसी नहीं है। आमतौर से विरले ही लोग यह जानते हैं कि उनकी योग्यता क्या है? अधिकतर व्यक्ति या तो अपनी योग्यता के बारे में गलत अनुमान लगाते हैं, कम अनुमान लगाते हैं या अधिक अनुमान लगा लेते हैं। कहावत है कि मनुष्य को अपनी आँख में पड़ा तिनका नहीं दिखलाई पड़ता। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य की दृष्टि अपने दोषों पर कम जाती है। विश्वविद्यालय में एम० ए० की परीक्षा देने वाले किसी भी विद्यार्थी से यह पूछिये कि आप एम० ए० पास करने के बाद क्या करेंगे तो यही उत्तर मिलेगा कि पहले तो आई० ए० एस० या पी० सी० एस० के कम्पीटीशन में बैठूंगा और अगर बदकिस्मती से उसमें नहीं आया तो फिर रिसर्च करूंगा और कहीं प्रोफेसर बन जाऊँगा। जैसे यह सब उसके अपने ही हाथ की बात हो। आप यदि उससे यह पूछना चाहें कि यदि इनमें से दोनों काम न हुये तो वह क्या करेगा तो यदि वह आपको भला-बुरा न कहने लगे तो समझिये कि शिष्टाचारवश ही ऐसा हुआ है। तात्पर्य यह है कि प्रतियोगिताओं में असफल होने वाले बहुत कम

विद्यार्थी यह सोचते हैं कि उनमें प्रतियोगिता में सफलता के लिये जरूरी योग्यताओं का अभाव है। असफल होने पर भी कुछ लोग परीक्षकों को दोष देते हैं तो कुछ लोग अपनी किस्मत को कोसते हैं। शायद ही कोई विद्यार्थी ऐसा हो जो यह मान ले कि वास्तव में वह उसके योग्य नहीं था। इसके यह अर्थ नहीं हैं कि आज की प्रतियोगितायें व्यक्तियों की योग्यता की वास्तविक परख हैं। इस उदाहरण का तात्पर्य केवल यह है कि व्यवसाय चुनते समय आमतौर से युवक युवतियाँ वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार नहीं करते। व्यावसायिक निर्देशन इसी समस्या के सुलझाव में सहायता करता है।

वैज्ञानिक परीक्षाओं द्वारा परामर्शदाता व्यक्ति की योग्यताओं का सही-सही पता लगाता है और वह सलाह देता है कि उसको किस व्यवसाय में जाना चाहिये।

बुद्धि लब्धि और व्यवसाय का सम्बन्ध

प्रयोगों द्वारा स्थूल रूप से यह भी पता लगा लिया गया है कि किसी व्यवसाय में किस-किस योग्यता की कितनी-कितनी जरूरत है। उदाहरण के लिये विभिन्न व्यवसायों में यह निश्चय करने की कोशिश की गई है कि उनमें कितनी बुद्धि-लब्धि की जरूरत है। नीचे दी हुई तालिका में यह बतलाया गया है कि किस व्यवसाय में जाने के लिये व्यक्ति की बुद्धि-लब्धि कितनी होनी चाहिये :—

संख्या	व्यवसाय-वर्ग	बुद्धि लब्धि
१	शासन कार्य तथा अन्य उच्च व्यावसायिक कार्य	१५० या अधिक
२	निम्न व्यावसायिक और प्रौद्योगिक कार्य	१३० से १५० तक
३	क्लर्की या उच्च श्रेणी का कुशल कार्य	११५ से १३० तक
४	कुशल कार्य	१०० से ११५ तक
५	अर्द्ध-कुशल कार्य	८५ से १०० तक
६	निर्बुद्धि कार्य	७० से ८५ तक
७	मेहनत मजदूरी का कार्य	५० से ७० तक

इसी तरह से अन्य मानसिक योग्यताओं के व्यवसाय से सम्बन्ध के बारे में भी परीक्षा की गई है। उदाहरण के लिये इंजीनियरिंग तथा अन्य प्रौद्योगिक कार्य

मानसिक योग्यतायें और व्यवसाय का सम्बन्ध

में व्यक्ति में यांत्रिक कार्य कुशलता की जरूरत है। जिन लोगों में यह कुशलता बहुत कम होती है उनसे इंजीनियरिंग या कारीगरी के काम में सफलता की आशा नहीं की जा सकती। कुछ कार्यों में जैसे घड़ी की मरम्मत, शल्य क्रिया (Surgery) तथा वैज्ञानिक अनुसन्धान आदि में व्यक्ति में बहुत बारीक कार्य करने की कुशलता होनी चाहिए। इस तरह की कुशलता के

अभाव में कोई भी व्यक्ति सफल डाक्टर, घड़ीसाज या प्रयोगकर्त्ता बनने की आशा नहीं कर सकता। इसी तरह भिन्न-भिन्न व्यवसायों में भिन्न-भिन्न विशेष योग्यताओं की जरूरत होती है।

परामर्श में अभिरुचि और योग्यता दोनों का महत्व हैं

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि व्यावसायिक निर्देशन का कितना अधिक महत्व है। इसका अर्थ यह नहीं है कि परामर्शदाता व्यक्ति की अभिरुचि पर गौर नहीं करता। परामर्श देने में अभिरुचि का भी ख्याल रखा जाता है। परन्तु यह निश्चित है कि केवल अभिरुचि मात्र से किसी व्यक्ति को किसी कार्य में सफलता नहीं मिल सकती। इस तरह परामर्शदाता को व्यक्ति की अभिरुचि तथा योग्यता की विस्तृत जानकारी एकत्र करनी होती है और उनके आधार पर उसको व्यवसाय सम्बन्धी निर्देशन देना होता है। व्यवसाय सम्बन्धी निर्देशन यह नहीं बतलाता कि अमुक व्यक्ति को डाक्टर बनना चाहिए और अमुक व्यक्ति को क्लर्क। वह तो एक सुझाव मात्र है। उसकी भी अपनी सीमायें हैं। परामर्शदाता केवल यह निर्देशन देता है कि अमुक व्यक्ति में अमुक वर्ग के व्यवसाय की आवश्यक योग्यतायें अधिक हैं और इसीलिये यदि वह उस व्यवसाय में जाये तो उसकी सफलता की सम्भावना अधिक है।

व्यावसायिक चुनाव

औद्योगिक मनोविज्ञान के राष्ट्रीय इन्स्टीट्यूट (National Institute of Industrial Psychology) ने व्यावसासिक निर्देशन के सम्बन्ध में सबसे पहले प्रयोग किया। व्यावसायिक निर्देशन का उद्योगों में बड़ा व्यापक प्रयोग किया गया है। हर एक कारखाने में अलग-अलग तरह के बीसों कार्य होते हैं जिनके लिये अलग-अलग योग्यता वाले व्यक्तियों की जरूरत होती है। इन अलग-अलग कार्यों के लिये विशेष व्यक्तियों का चुनाव व्यावसायिक चुनाव (Personnel Selection) कहलाता है। यह व्यावसायिक चुनाव व्यावसायिक निर्देशन पर आधारित है। यहाँ पर व्यावसायिक निर्देशन और व्यावसायिक चुनाव में अन्तर को ध्यान में रखना चाहिए। दोनों में यह मालूम करना जरूरी है कि विशेष व्यवसाय के लिये व्यक्ति में कौन सी योग्यतायें होनी चाहियें। परन्तु व्यावसायिक चुनाव में व्यवसाय की विशेषता समझकर उम्मीदवार व्यक्तियों में से उपयुक्त व्यक्ति को विशेष व्यवसाय के लिये चुना जाता है। व्यावसायिक निर्देशन में व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुकूल व्यावसायिक शिक्षा अथवा व्यावसाय ग्रहण करने का परामर्श दिया जाता है। व्यावसायिक निर्देशन और व्यवसायिक चुनाव व्यावसायिक मनोविज्ञान (Vocational Psychology) की दो शाखायें हैं। ये दोनों ही शाखायें अंन्योन्याश्रित हैं क्योंकि सही काम के लिए सही आदमी और सही आदमी के लिये सही काम की व्यवस्था करने के लिये जहाँ एक ओर व्यक्ति का विश्लेषण करने की जरूरत

होती है वहाँ दूसरी ओर व्यवसाय के विश्लेषण (Job Analysis) की भी जरूरत पड़ती है।

प्रश्न १५—पश्चिम और भारत में व्यावसायिक निर्देशन की प्रगति का संक्षिप्त वर्णन कीजिये। व्यावसायिक निर्देशन की प्रक्रिया बतलाइये।

व्यावसायिक निर्देशन के बारे में पाश्चात्य देशों में बड़ा काम हुआ है। खास तौर से संयुक्त राज्य अमेरिका में व्यावसायिक निर्देशन और व्यावसायिक चुनाव की दिशा में बड़ा काम हुआ है। वहाँ व्यवसायों के बारे में सूचना एकत्र करने तथा व्यावसायिक चुनाव की विधि का विकास करने में महत्वपूर्ण शोध कार्य किया गया है। व्यवसाय के बारे में सूचनायें प्राप्त करने के लिये व्यावसायिक शीर्षकों का एक शब्द कोष (Dictionary of Occupational Titles) बनाया गया है जिससे कि उपलब्ध कार्यों का पता लग सके। फिर इन कार्यों का उनमें आवश्यक योग्यताओं के अनुसार तथा उनके विभिन्न स्तरों के अनुसार वर्गीकरण करके एक व्यावसायिक कोड (Occupational Code) बनाया गया। हर एक व्यवसाय के बारे में विस्तृत कार्य विवरण एकत्रित किया गया। कार्य विवरण (Job description) जो कि व्यवसाय से सम्बन्धित सूचना का एक मुख्य अंग है हर एक व्यवसाय के बारे में उसकी विभिन्न बातें जैसे कार्य की परिस्थितियों, वेतन उत्तरदायित्व इत्यादि का विस्तृत वर्णन करता है। सबसे पहला व्यावसायिक शब्द कोष अमेरिका में १९३९ में प्रकाशित हुआ। इस व्यावसायिक शब्द कोष में ७५ प्रतिशत व्यवसायों का विवरण दिया गया था। इन व्यावसायों में अमेरिका के लगभग ९० प्रतिशत कर्मचारी आ गये। १९४२, १९४४ तथा १९४५ में इस शब्द कोष में बराबर वृद्धि होती रही और १९४९ में उसके परिवर्धित संस्करण में ४०, ४०,०२३ व्यवसायों का विवरण था। कार्य विवरण की दिशा में १९४२ तक १६ उद्योगों का विश्लेषण किया गया।

व्यावसायिक शब्द कोष

भारतवर्ष में अन्य निर्देशन सेवाओं के समान व्यावसायिक निर्देशन सेवा का भी बहुत कम प्रबन्ध है। १९४५ में श्री बी० शिवाराव की अध्यक्षता में स्थापित प्रशिक्षण तथा रोजगार सेवा संगठन समिति (Training and Employment Service Organisation Committee) ने व्यावसायिक सूचनायें एकत्रित करने और उन्हें प्रकाशित करने का सुझाव दिया। परिणामस्वरूप द्वितीय पंचवर्षीय योजना में देश में रोजगार दफ्तरों को व्यक्तिगत परामर्श देने के लिये ५०

भारत में व्यावसायिक निर्देशन

केन्द्र खोलने की योजना बनाई गई। इस बारे में कुछ नियुक्तियाँ जरूर हुई हैं परन्तु वास्तविक कार्य बहुत कम हुआ है। व्यवसायों के बारे में जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं वे वैज्ञानिक ढंग की न होकर व्यवसायों का इतिवृत मात्र हैं। भारत सरकार के अलावा राज्य सरकारों ने भी कई निर्देशन केन्द्र खोले हैं। गैर-सरकारी संस्थाओं ने भी इस दिशा में प्रयत्न किया है। इनमें वाई० एम० सी० ए० तथा रोटरी क्लब ने उल्लेखनीय कार्य किया। जैसा कि उपरोक्त विवरण से मालूम पड़ता है, भारत जैसे विशाल देश में व्यावसायिक निर्देशन की यह प्रगति अभी बहुत कम है। कहना न होगा कि व्यवसाय के क्षेत्र में अव्यवस्था का यह भी एक बड़ा कारण है।

योग्यताओं और विशेषताओं की सूची

किन व्यवसायों में जाने के लिये व्यक्तियों में किन-किन गुणों की जरूरत होती है, इस बारे में बहुत से महत्वपूर्ण शोध कार्य हुए हैं। इंगलैंड के औद्योगिक मनोविज्ञान के राष्ट्रीय संस्थान (National Institute of Industrial Psychology) ने लगभग २० मनोवैज्ञानिक योग्यताओं और विशेषताओं (Abilities and Traits) की सूची बनाई। इस सूची के आधार पर एक व्यावसायिक सर्वेक्षण किया गया। इस सर्वेक्षण में विभिन्न व्यवसायों से लगे हुये विशेषज्ञों तथा अफसरों से उस व्यवसाय के लिये आवश्यक योग्यताओं तथा विशेषताओं के बारे में राय माँगी गई। विभिन्न व्यवसायों के विशेषज्ञों ने ३ तरह से मूल्यांकन (Rating) किया—औसत, उच्च-स्तर का तथा बहुत उच्च-स्तर का। अब राष्ट्रीय औद्योगिक मनोविज्ञान संस्थान के विशेषज्ञ ने लगभग ८० व्यवसायों के मूल्यांकन का औसत निकाला। इस औसत को एक तालिका बनाकर रख लिया गया। इस तालिका के आधार पर यह निश्चित किया जा सकता है कि कौन व्यक्ति किस व्यवसाय के लिये उपयुक्त है। उदाहरण के लिये इस तालिका से यह स्पष्ट होता है कि डॉक्टर और वकील में किन योग्यताओं की जरूरत है और किन की नहीं।

कैटेल का शोध कार्य

विभिन्न व्यवसाओं और मानसिक योग्यताओं के सम्बन्ध के बारे में एक अन्य महत्वपूर्ण शोध कार्य आर० बी० कैटेल (R. B. Cattell) ने किया है। कैटेल ने १००० वयस्क व्यक्तियों की मानसिक परीक्षा करके उनके औसत बुद्धिमान निकाल लिये। इन बुद्धिमानों से यह स्पष्ट होता है कि व्यवसाय में जाने के लिये व्यक्ति में औसत रूप से कितनी बुद्धि-लब्धि होनी चाहिये। अग्र तालिका से यह स्पष्ट होता है :—

संख्या	व्यवसाय	परीक्षित व्यक्तियों की संख्या	औसत बुद्धि-लब्धि
१.	माध्यमिक विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के शिक्षक	३०	१५१
२.	डॉक्टर तथा सर्जन	२५	१४६·५
३.	केन्द्रीय स्कूलों के अध्यापक	५०	१४५
४.	सिविल इन्जीनियर	२०	१४२
५.	मैकेनिकल इन्जीनियर	१८	१४०
६.	प्राइमरी स्कूलों के अध्यापक	६०	१३७
७.	व्यवसायों के मैनेजर	२०	१३७
८.	स्टैनोग्राफर	५७	१२६
९.	क्लर्क	५४	१२७
१०.	ट्रैवलिंग रिप्रैजैंटेटिवस् अर्थात् भ्रमणशील व्यावसायिक प्रतिनिधि	२४	१२३
११.	नर्स	२५०	१२२
१२.	टेलीफून कर्मचारी	१६	११५
१३.	सूक्ष्म कार्य करने वाले कारीगर	५२	११४
१४.	मोटे कार्य करने वाले कारीगर	—	१०६ से ७८ तक

ड्वोरक और डॉज के परीक्षण

ड्वोरक (Dvorak) और डॉज (Dodge) ने भी विभिन्न परीक्षणों के आधार पर अलग-अलग व्यवसायों के कर्मचारियों की, एक व्यवसाय के सफल तथा असफल व्यक्तियों की तथा उसी में भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में काम करने वाले व्यक्तियों की परीक्षा की। इन परीक्षाओं से सामान्य मजदूरों, मोटर मिस्त्रियों, सफल तथा असफल क्लर्कों आदि की योग्यता में काफी अन्तर पाया गया। परन्तु ये प्रयोग न तो इतने व्यापक थे कि उन्हें सभी व्यवसायों में लागू किया जा सके और न उनमें विभिन्न व्यवसायों की योग्यता को पूरी तरह अलग-अलग किया गया था। इस तरह इन परिणामों का उपयोग करने में बड़ी सावधानी की जरूरत है। स्वयं डॉज ने इस बात को माना है।

मिनेसोटा व्यावसायिक मूल्यांकन मान

मिनेसोटा विश्वविद्यालय में ४३० व्यवसायों के लिये ६ मानसिक योग्यताओं की मात्रा निर्धारित की गई। इसमें भी प्रत्येक योग्यता को अ, ब, स, द चार स्तरों में बांटा गया है। ये ६ मानसिक योग्यतायें थीं—१. शिक्षा सम्बन्धी (Verbal), २. यांत्रिक (Mechanical), ३. सामाजिकता (Sociability), ४. आलेखा सम्बन्धी (Clerical), ५. संगीत सम्बन्धो (Muscial) और

६. कलात्मक (Artistic)। इन छः मानसिक योग्यताओं को चार-चार स्तरों में अलग-अलग व्यवसायों में विभाजित किया गया। उदाहरण के लिये शिक्षा सम्बन्धी योग्यता के विषय में मिनेसोटा व्यावसायिक मूल्यांकन मान (Minnesota Occupational Rating Scales) को नीचे दी गई तालिका से समझाया जा सकता है :—

स्तर	बुद्धि की मात्रा	आवश्यक योग्यता	उदाहरण
(अ)	उच्च स्तर	विश्वविद्यालय की ऊच्चतम शिक्षा, सृजनात्मक प्रतिभा तथा तर्क-शक्ति	प्रोफेसर, लेखक, वैज्ञानिक, वकील आदि
(ब)	सामान्य से ऊँचा स्तर	हाई स्कूल तथा कालेज तक की शिक्षा	क्लर्क, फोटोग्राफर, फोरमैन
(स)	सामान्य स्तर	हाई स्कूल तक की शिक्षा	टाइपिस्ट, मिस्त्री आदि
(द)	सामान्य स्तर से कम	आठवीं तक की शिक्षा	मजदूर, कुली इत्यादि

व्यावसायिक निर्देशन की क्रिया

जैसा कि पहले बताया जा चुका है व्यावसायिक निर्देशन में परामर्शदाता व्यक्ति की विभिन्न योग्यताओं के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करता है। योग्यताओं के अलावा व्यक्तित्व का भी परीक्षण किया जाता है। व्यक्ति के विषय में सामान्य रूप से निम्नलिखित बातों की जानकारी हो सकती है :—

(१) शारीरिक विशेषतायें (Physical Traits)—शारीरिक विशेषताओं में सामान्य स्वास्थ्य, आयु, लम्बाई, वजन तथा शारीरिक दोषों की छान-बीन की जाती है।

(२) व्यक्तित्व के आवश्यक अंग (Essential factors of Personality)—परीक्षा किये जाने वाले व्यक्ति के आवश्यक अंग सामाजिक और आर्थिक आकांक्षा (Aspiration) के स्तर, संवेगों में नियन्त्रण और उनकी परिपक्वता तथा व्यक्ति की सामाजिक अर्थात् उसमें सामाजिक अनुकूलन करने, नेतृत्व करने और नेता की आज्ञा का पालन करने आदि की योग्यताओं की परीक्षा की जाती है।

(३) योग्यताओं का स्तर (Level of Abilities)—परीक्षा की जाने वाली विभिन्न योग्ताओं में बुद्धि, शाब्दिक योग्यता अर्थात् भाषा सम्बन्धी योग्यता, आकार प्रत्यक्ष (Form-perception) की योग्यता, अंक योग्यता अर्थात् गणित सम्बन्धी योग्यता, तर्क योग्यता तथा स्मरण शक्ति गिने जाते हैं। उपरोक्त बातों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के अलावा अभिरुचि के विषय में भी विस्तृत जानकारी प्राप्त

की जाती है। अभिरुचि के परीक्षणों में रचनात्मक, यांत्रिक, गणित सम्बन्धी, कलात्मक, हस्तकौशल तथा संगीतात्मक और अन्य अभिरुचियों की परीक्षा की जाती है। इन परीक्षाओं में विभिन्न प्रकार के परीक्षण इस्तेमाल किये जाते हैं। उदाहरण के लिये उत्तर प्रदेश की मनोविज्ञानशाला में यांत्रिक योग्यता के लिये स्टैनक्विस्ट ऐसेम्बली टैस्ट (Stenquist Assembly Test), संगीतात्मक योग्यता के लिये सी-शोर (Sea-shore) का परीक्षण तथा कलात्मक योग्यता के लिये पौफिन वर्जर (Poffenberger) के परीक्षण का प्रयोग किया जाता है। व्यक्तित्व रुचि की परीक्षा के लिये कूडर प्रिफ्रेंस रिकार्ड प्रयोग किया जाता है। उपरोक्त जानकारी के अतिरिक्त व्यावसायिक निर्देशन में विद्यार्थी के संचित वृत्त, स्व-सूची तथा अभिभावक सूची पर आधारित एक परिपार्श्व चित्र बनाया जाता है और फिर विद्यार्थी से साक्षात्कार भी किया जाता है। इस सब का वर्णन पहले शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन के प्रसंग में किया जा चुका है। उत्तर प्रदेश के मनोविज्ञान केन्द्रों में विद्यालय सूची (School Schedule) में विद्यार्थी के व्यक्तिगत गुणों तथा अभिरुचियों और रुचियों के विषय में मूल्यांकन होता है। साथ ही साथ इसमें विद्यार्थी के पहले तीन वर्ष की परीक्षा में प्राप्त अंक भी दर्ज किये जाते हैं। यह जरूरी है कि विद्यार्थी के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त की जाय। वास्तव में व्यावसायिक निर्देशन केवल परीक्षण पर आधारित नहीं किया जा सकता। परामर्शदाता में अपने अनुभव के आधार पर भी विद्यार्थी को समझने की योग्यता होनी चाहिये। इस योग्यता के अभाव में केवल परीक्षणों के आधार पर दिया हुआ निर्देशन ठीक नहीं होगा।

प्रश्न १६—वैयक्तिक निर्देशन क्या है? उसका अन्य प्रकार के निर्देशनों से क्या सम्बन्ध है?

वैयक्तिक निर्देशन
(Personal Guidance)

निर्देशन का एक प्रमुख क्षेत्र वैयक्तिक निर्देशन है। वैयक्तिक निर्देशन, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, परामर्शदाता द्वारा व्यक्ति को उसकी निजी समस्याओं के सुलझाव के बारे में दिया हुआ निर्देशन है। इससे व्यक्ति को विभिन्न परिस्थितियों से अनुकूलन करने में सहायता मिलती है। आमतौर से कुछ न कुछ समस्यायें सभी के जीवन में आती हैं परन्तु सभी लोग सभी समस्याओं को खुद नहीं सुलझा पाते। जिन समस्याओं में व्यक्ति को कोई रास्ता नहीं दिखलाई पड़ता उनमें उसको विशेषज्ञों की राय की जरूरत पड़ती है। मनोवैज्ञानिक ही वह विशेषज्ञ है जो व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक समस्याओं के बारे में सलाह दे सकता है।

निर्देशन के विभिन्न क्षेत्रों को अलग-अलग बांटने का तात्पर्य यह नहीं है कि वे क्षेत्र एक दूसरे से बिलकुल अलग हैं। वास्तव में निर्देशन एक गतिशील और विकास-

विभिन्न निर्देशनों का परस्पर सम्बन्ध

मान प्रत्यय है जिससे मानव जीवन के सभी पक्षों में दी गई सलाह आ जाती है परन्तु फिर भी सुविधा की दृष्टि से निर्देशन को विभिन्न वर्गों में बांट लिया गया है यथा शीर्षक निर्देशन इत्यादि। शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन और व्यावसायिक निर्देशन में बड़ा निकट सम्बन्ध है। इसी तरह इन दोनों का व्यक्तिगत निर्देशन से भा बड़ा निकट सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध का मूलाधार यह है कि मनुष्य की विभिन्न समस्यायें एक दूसरे से सम्बन्धित होती है। उदाहरण के लिये यदि एक व्यक्ति को यह निश्चय करने में कठिनाई होती है कि उसे कौन-सा पाठ्यक्रम चुनना है या कौन सा व्यवसाय ग्रहण करना है आदि तो इसके कारण व्यक्तिगत भी हो सकते हैं। हो सकता है कि कोई युवक किसी युवती के प्रेम में पड़ जाने के कारण अपनी पढ़ाई या कैरियर के बारे में नहीं सोचता। हो सकता है कि किसी निकट सम्बन्धी की मृत्यु के कारण उसको जीवन में अंधेरा ही अंधेरा दिखलाई पड़ता हो। यहाँ पर यह समस्या व्यक्तिगत समस्या है और शिक्षा सम्बन्धी तथा व्यावसायिक निर्देशन इस प्रकार के व्यक्ति के लिये व्यक्तिगत निर्देशन पर आधारित होगा। दूसरी ओर अनेक व्यक्तिगत समस्यायें शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन के अभाव के कारण भी हो सकती हैं। उदाहरण के लिये लड़का स्कूल से भाग जाता है, इधर-उधर आवारागर्दी करता है, उसका पढ़ने में मन नहीं लगता, वह नाना प्रकार के अपराध में पड़ गया है अथवा उसका व्यवहार असामाजिक है, इन सब व्यक्तिगत समस्याओं के मूल में यह कारण भी हो सकता है कि उसने अपने पाठ्यक्रम का ठीक से चुनाव न किया हो। इसी तरह कुछ व्यक्तिगत समस्याओं का कारण व्यावसायिक निर्देशन का अभाव भी हो सकता है। उदाहरण के लिये एक व्यक्ति अपने विद्यार्थी जीवन में बहुत अच्छा खिलाड़ी था। उसको ऐसी नौकरी मिलनी चाहिए कि वह आगे भी खेलों में भाग लेता रहे या कम से कम ऐसी नौकरी करे जिसमें उसे एक जगह जम कर न बैठना पड़े, नेतृत्व करने का अवसर मिले, प्रेरणा, साहस और धैर्य इत्यादि स्पोर्ट्समैन सुलभ गुणों की आवश्यकता हो। परन्तु वह इस तरह की नौकरी नहीं करता या उसके काम करने की परिस्थिति इस तरह की नहीं है। इससे वह चिड़चिड़ा हो जाता है, उसका मानसिक सन्तुलन कम होने लगता है तथा अन्य अनेक व्यक्तिगत समस्यायें पैदा हो जाती हैं। यहाँ पर ये व्यक्तिगत समस्यायें उचित व्यावसायिक निर्देशन के अभाव के कारण हैं। इसी तरह शैक्षिक, व्यावसायिक और व्यक्तिगत निर्देशन भी परस्पर सम्बन्धित हैं।

☆

प्रश्न १७—वैयक्तिक निर्देशन की क्या आवश्यकता और महत्व है ?

वैयक्तिक समस्यायें कौन-कौन सी हैं अथवा कितनी हैं, इस बारे में कोई भी विवेचन पूर्ण नहीं हो सकता क्योंकि जहाँ एक ही व्यक्ति के जीवन में भिन्न-भिन्न

वैयक्तिक निर्देशन की आवश्यकता

समय पर सैकड़ों भिन्न-भिन्न समस्यायें आती हैं वहाँ भिन्न भिन्न व्यक्तियों के जीवन में ये समस्यायें भिन्न रूप लेकर आती हैं। इस तरह व्यक्तिगत समस्यायें और उनके विविध रूप इतने अधिक हैं कि उनका वर्णन करना लगभग असम्भव ही है। फिर भी मनुष्य की मुख्य व्यक्तिगत समस्याओं को अवश्य छांटा जा सकता है। स्थूल रूप से मनुष्य की व्यक्तिगत समस्यायें दो तरह की हो सकती हैं—(१) निजी (२) सामाजिक। निजी समस्याओं के भी स्थूल रूप से दो वर्ग किये जा सकते हैं—(१) शारीरिक समस्यायें (जैसे-स्वास्थ्य, रोग, विकास आदि से सम्बन्धित समस्यायें) और (२) मनोवैज्ञानिक समस्यायें. जैसे यौन समस्यायें तथा अन्य मूलप्रवृत्तियों को संतुष्ट करने की समस्यायें। मनोवैज्ञानिक समस्याओं में संवेगात्मक अनुकूलन की समस्यायें भी बड़ी महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनके न सुलझने से सारे व्यक्तित्व पर बुरा प्रभाव पड़ता है। निजी से अधिक सामाजिक समस्यायें व्यक्ति को परेशान किये रहती हैं। सच पूछिये तो मानव जीवन जन्म से मृत्यु तक सामाजिक तथा अन्य परिस्थितियों से अनुकूलन करने की एक प्रक्रिया है। ये सामाजिक परिस्थितियाँ बराबर बदलती रहती है और बदलती हुई परिस्थितियों में व्यक्ति के सामने नवीन समस्यायें आती रहती हैं। कब कौन-सी समस्या उसके व्यक्तित्व को नितान्त विघटित कर देगी इस बारे में निश्चित रूप से कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। अधिकतर मनोवैज्ञानिक इस बात को मानते हैं कि मनुष्यों में से अधिकतर व्यक्तियों को कभी न कभी, किसी न किसी समस्या के बारे में व्यक्तिक निर्देशन की जरूरत होती है। निर्देशन के बिना भी जीवन चलता जाता है यह दूसरी बात है। जीवन तो गरीबी, बेकारी, रोग, कलह सभी में चलता है। परन्तु विज्ञान की सहायता से मनुष्य जीवन को बेहतर बनाना चाहता है। मनोवैज्ञानिक का निर्देशन उन व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने में सहायक होता है जिनके न सुलझाने पर व्यक्ति का जीवन भार हो जाता है उसका विकास कुंठित हो जाता है चाहे वह जीता भले ही रहे और बाहर से अच्छा-भला भी मालूम पड़े। सामाजिक अनुकूलन के कई पहलू हैं क्योंकि व्यक्ति की सामाजिक परिस्थितियों के अलग-अलग दायरे हैं। स्थूल रूप से सामाजिक समस्याओं में घरेलू समस्यायें, यदि विद्यार्थी अवस्था है तो स्कूल की समस्यायें, व्यवसाय है तो व्यावसायिक समस्यायें तथा नैतिक और आदर्श सम्बन्धी समस्यायें भी आती हैं। इनमें घरेलू समस्यायें सबसे मुख्य और विविध हैं। इनमें माता-पिता और बालकों के सम्बन्ध, पति-पत्नी के सम्बन्ध, भाई-बहन के सम्बन्ध, परिवार की आर्थिक स्थिति, सदस्यों का परस्पर अनुकूलन आदि अनेक समस्यायें आती हैं। इनमें से कोई भी समस्या किसी भी व्यक्ति को परेशान कर देने के लिये काफी है। उदाहरण के लिए पति-पत्नि के परस्पर अनुकूलन की समस्या ही कितने ही लोगों को जीवन भर क्लेश और कलह में घुटने को मजबूर करती है।

अक्सर व्यक्ति समस्याओं में सामान्य व्यक्ति खुद उल्टा सीधा उपाय निकालने की कोशिश करता है या अपने इष्ट मित्रों की सलाह लेता है या बड़ों से या

वैयक्तिक निर्देशन का महत्व

अध्यापकों से परामर्श लेता है। यह परामर्श व्यावहारिक रूप में अक्सर काम चलाऊ होने पर भी वैज्ञानिक दृष्टि से ठीक होना मुश्किल है। यदि पति-पत्नी के अनुकूलन की समस्या को ही लिया जाय तो इसके बारे में इष्ट मित्र, बड़े-बूढ़े या अध्यापक जो बतलायेंगे उससे किसी व्यक्ति को सही मार्ग-दर्शन मिलना कठिन है क्योंकि ये सब लोग अपने-अपने अनुभव के आधार पर राय देते हैं और होता यह है कि किन्हीं भी दो पति-पत्नी के परस्पर सम्बन्ध एक से नहीं होते। एक विशेष पति-पत्नी के सम्बन्ध की समस्या एकदम विशेष और निजी समस्या है। अन्य लोगों के उदाहरण से उसमें कुछ न कुछ सुझाव अवश्य मिल सकता है परन्तु दूसरों के उदाहरण पर आँख बन्द करके अमल करना खतरे से खाली नहीं है। जाहिर है कि ऐसी परिस्थिति में या तो व्यक्ति विस्तृत अध्ययन और मनोवैज्ञानिक ज्ञान के द्वारा खुद अपनी समस्या सुलझाये और यदि उसको इतना विशेष ज्ञान होगा ही तो फिर समस्या उठेगी ही क्यों। अस्तु स्पष्ट है कि इस तरह की समस्या में व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक के विशेष परामर्श की जरूरत है। यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि परामर्श समस्या को पूरी तरह हल नहीं कर सकता। मनोवैज्ञानिक निर्देशन केवल सुझाव के रूप में होता है यद्यपि यह सुझाव ऊँचे वैज्ञानिक स्तर का होता है। इस सुझाव का लाभ उठाने के लिये व्यक्ति में अपनी ही समझदारी, नमनीयता और कौशल की जरूरत है।

प्रश्न १८—वैयक्तिक निर्देशन की प्रक्रिया को विस्तार से समझाइये। इस सम्बन्ध में उत्तरोत्तर अनुशीलन की पद्धतियाँ बतलाइये और वैयक्तिक निर्देशन का एक उदाहरण दीजिये।

वैयक्तिक निर्देशन में सबसे पहली शर्त यह है कि जिस व्यक्ति को निर्देशन देना है उसको पूरी तरह समझ लिया जाये। उस व्यक्ति को खुद यह चाहिये कि वह अपना सारा जीवन वृत, तत्कालिक परिस्थिति, भावनायें, विचार, क्रियायें तथा मुख्य-मुख्य सभी बातें मनोवैज्ञानिक को विस्तार से बतला दे और इस बारे में कुछ भी छिपाने की कोशिश न करे चाहे उसको कहने में उसको कितना भी संकोच लगता हो। क्योंकि वास्तव से यह देखा गया है कि समस्या के मूल कारण अक्सर ऐसी ही बातों में होते हैं जिनसे मनुष्य भागना ही चाहता है, जिनको वह दूसरों को बतलाना तो क्या उनके बारे में सोचना भी नहीं चाहता। संक्षेप में, व्यवितगत निर्देशन में मनोवैज्ञानिक को व्यवित के सहयोग से तथा विभिन्न परीक्षणों की सहायता से उसके बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। स्थूल रूप से व्यक्तिगत निर्देशन में पांच सोपान (Steps) होते हैं :—

वैयक्तिक निर्देशन की प्रक्रिया

१. तथ्यों को एकत्रित करना (Gathering the Facts)।
२. समस्या का निदान (Diagnosis of the Problem)।
३. फलानुमान (Prognosis)।
४. चिकित्सा (Therapy)।
५. उत्तरोत्तर अनुशीलन (Follow-up)।

(१) तथ्यों को एकत्रित करना (Gathering the Facts)—तथ्य एकत्रित करना व्यक्तिगत निर्देशन का सबसे महत्वपूर्ण और पहला कदम है। ये तथ्य दो तरह के हो सकते हैं, एक तो उस विशेष समस्या से सम्बन्धित और दूसरे व्यक्ति के जीवन वृत से सम्बन्धित। समस्या से सम्बन्धित तथ्य भी स्थूल रूप से दो प्रकार के हो सकते हैं—एक तो व्यक्ति तथा उसकी विशेषताओं से सम्बन्धित और दूसरे समस्या की बाहरी परिस्थिति से सम्बन्धित। इन सभी तरह के तथ्यों की जानकारी के लिए मनोवैज्ञानिक को निरीक्षण, साक्षात्कार तथा विभिन्न परीक्षणों से काम लेना पड़ता है। साक्षात्कार केवल विद्यार्थी से ही नहीं किया जाता बल्कि अक्सर उसके अध्यापकों, माता-पिता और अन्य निकट सम्बन्धियों तथा मित्रों आदि से भी साक्षात्कार के द्वारा उसके बारे में बहुत-सी जानकारी प्राप्त की जाती है। साक्षात्कार में यह जरूरी है कि मनोवैज्ञानिक कम से कम बोले, ऐसे सवाल करे जिनसे सही बातें निकाली जा सकती हों और जिस व्यक्ति का साक्षात्कार किया जा रहा है उसे अधिक से अधिक बोलने दे। शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन तथा व्यावसायिक निर्देशन के समान ही व्यक्तिगत निर्देशन में भी साक्षात्कार का मौका सूचनाओं का परिपार्श्व चित्र बनाने के बाद हो आता है। इस परिपार्श्व चित्र में व्यक्ति के परिवार, स्कूल तथा योग्यताओं के बारे में विस्तृत जानकारी इकट्ठी की जाती है। इसमें संचित वृत्त, अभिभावक पत्री और अध्यापक पत्री के अतिरिक्त अनेक परीक्षणों के परिणाम भी शामिल होते हैं। परिपार्श्व चित्र की रूपरेखा कुछ निम्नलिखित विवरण की तरह होती है :—

(अ) शारीरिक विवरण—शारीरिक विवरण में व्यक्ति की आयु, लिंग तथा शारीरिक स्वास्थ्य के बारे में विवरण शामिल है।

(ब) पारिवारिक विवरण—पारिवारिक विवरण में वंश परम्परा, माता-पिता (सगे या सौतेले; जीवित या मृत); भाई-बहिन (संख्या और आपस के सम्बन्ध); परिवार का आर्थिक स्तर, परिवार का सामाजिक स्तर तथा परिवार के सदस्यों के परस्पर सम्बन्ध आदि के बारे में तथ्य इकट्ठे किये जाते हैं।

(स) सामाजिक विकास का इतिहास—इसमें विद्यार्थी का अपनी कक्षा के साथियों से सम्बन्ध तथा स्कूल से बाहर अन्य मित्रों से सम्बन्ध शामिल है। यदि परामर्श चाहने वाला व्यक्ति विद्यार्थी नहीं है तो उसके पड़ोसियों तथा परिवार से बाहर के सम्बन्धियों से उसके सम्बन्ध की भी जांच की जायेगी।

(ह) विद्यालय के जीवन का इतिहास—इसमें विद्यार्थी के प्रारम्भिक, माध्यमिक तथा कालेज और विश्वविद्यालय के जीवन का इतिहास अर्थात् परीक्षाओं के परिणाम तथा पाठ्क्रमेत्तर कार्यक्रम में भाग लेना आदि आता है। यदि व्यक्ति विद्यार्थी नहीं है तो उसके परिवार से बाहर के जीवन के बारे में जानकारी प्राप्त की जानी चाहिए। यदि वह किसी व्यवसाय या नौकरी में लगा हुआ है तो उसके बारे में विस्तृत जानकारी जैसे आय का स्तर, काम करने की परिस्थितियाँ, व्यवसाय अथवा नौकरी में अन्य लोगों से सम्बन्ध आदि के बारे में विस्तृत जानकारी एकत्रित करनी जरूरी है।

(इ) मानसिक योग्यतायें—विभिन्न परीक्षणों द्वारा मनोवैज्ञानिक व्यक्ति की बुद्धि के स्तर, विशेष योग्यताओं तथा अभिरुचियों आदि के बारे में सूचनायें इकट्ठी करता है।

(उ) व्यक्तित्व के गुण—व्यक्तिगत समस्याओं में व्यक्तित्व के गुणों का सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाग होता है। अतः मनोवैज्ञानिक व्यक्ति की रुचियों, संवेगात्मक परिपक्वता, प्रेरणाओं, आकांक्षाओं और लक्ष्यों तथा आदर्शों आदि के बारे में जानकारी प्राप्त करता है।

सूचनायें एकत्रित करने में उनका रिकार्ड रखना बड़ी महत्वपूर्ण बात है। साक्षात्कार में भी मनोवैज्ञानिक को चाहिये कि वह अपनी स्मरण शक्ति पर अत्यधिक निर्भर न रहकर अधिक से अधिक बातों को लिख ले। इस काम में व्यक्ति का सहयोग प्राप्त करना बड़ा जरूरी है। परामर्शदाता को चाहिये कि वह इस तरह नोट करे कि बतलाने वाले व्यक्ति को उसमें कोई असमंजस न पैदा हो। जिन बातों को लिखने से बतलाने वाले को संकोच हो सकता है उनके लिये टेपरिकार्डर (Tape Recorder) का व्यक्ति को बतलाये बिना प्रयोग किया जा सकता है। जो बातें इस तरह की नहीं हैं उनमें व्यक्ति को लिखने का महत्व बतलाकर नोट किया जा सकता है। उदाहरण के लिये परामर्शदाता को चाहिये कि वह व्यक्ति की प्रशंसा करे उसको प्रोत्साहित करे और इस बात पर जोर दे कि उसके द्वारा बतलाई जाने वाली छोटी-छोटी बातें भी इतनीं महत्वपूर्ण हैं कि उनका लिखना जरूरी है।

(२) **समस्या का निदान** (Diagnosis of the Problems)—तथ्य इकट्ठे करने के बाद अब मनोवैज्ञानिक का अपना निजी काम शुरू होता है। उसको इन तथ्यों में सिलसिला ढूंढना है जिससे कि उनमें छिपे प्रतिमान (Patterns) जाहिर हो जायें। इन प्रतिमानों के जाहिर होने से समस्या के विभिन्न कारण मालूम पड़ेंगे इस तरह प्रतिमानों का जाहिर करना ही कारणों का निदान है। यह निदान समस्या के उपचार की पृष्ठ भूमि है। जितना ही अच्छा निदान होगा उतना ही सफल उपचार किया जा सकता है। बल्कि यूँ कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी कि अच्छा निदान हो जाने के बाद मनोवैज्ञानिक का आधा काम खत्म हो जाता है।

(३) फलानुमान (Prognosis)—फलानुमान, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है परामर्श के फल का अनुमान लगाना है। मनोवैज्ञानिक यह अनुमान लगाता है कि वह व्यक्ति कीं समस्या का समाधान कहाँ तक कर सकता है अथवा उसको उस समाधान में कहाँ तक सफलता मिलने की आशा है। उदाहरण के लिये किसी विद्यार्थी के गणित में प्राप्त हुए पिछली कक्षाओं में अंकों को देखकर तथा उसकी मानसिक योग्यताओं के परीक्षण के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भविष्य में गणित में उसकी सफलता कहाँ तक हो सकती है।

(४) चिकित्सा (Therapy)—अब चिकित्सा का मौका आता है अर्थात् मनोवैज्ञानिक को समस्या का संतोषजनक उपचार करना होता है। समस्या के बारे में इकट्ठी की गई सूचनाओं के परिपार्श्व पत्र को देखकर तथा मनोवैज्ञानिक से साक्षात्कार होने के बाद परामर्शेच्छु (Counselee) अपनी समस्या को बहुत कुछ तो खुद ही समझ जाता है और कभी-कभी उसका समाधान भी निकाल लेता है। सच पूछिये तो मनोवैज्ञानिक को यह कोशिश करनी चाहिए कि निदान के प्रतिमानों को देखकर परामर्शेच्छु खुद अपनी समस्याओं को समझने और खुद ही उसका निदान भी खोज निकाले। ऐसा होने पर जहाँ उसको इस बात की खुशी होगी कि उसने खुद अपनी समस्या का हल कर लिया है वहाँ समस्या के सुलझाने में उसका उत्साह भी अधिक होगा और वह पूरे मनोयोग से काम करेगा। मनोविश्लेषण विधि से मानसिक रोगों का उपचार करने में प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रॉयड यही करते थे। जब उनके रोगी अपने रोग के अचेतन कारण को समझ लेते थे तो उनका रोग बहुत कुछ दूर हो जाता था। यदि मनोवैज्ञानिक खुद उपचार के बारे में सलाह देता है तो इसमें यह खतरा है कि विभिन्न अभिवृत्तियों के अनुसार कुछ व्यक्ति उसकी उपेक्षा भी कर सकते हैं। परन्तु फिर भी यदि परामर्शेच्छु खुद समस्या का उपचार समझने में असमर्थ हो तो मनोवैज्ञानिक को ही परामर्श देना होता है। ऐसी परिस्थिति में अच्छा यह है कि यह परामर्श उपदेश-सा न मालूम पड़े, उसमें व्यक्ति की किसी बुराई की ओर इशारा न किया जाये। उसको सफलता की आशा बँधाई जाय और बात इस तरह रखी जाय जैसे कि वह मनोवैज्ञानिक की ओर से नहीं बल्कि परामर्शेच्छु की ओर से ही उसकी अपनी बात है।

(५) उत्तरोत्तर अनुशीलन (Follow-up)—उपचार के साथ ही व्यक्तिगत निर्देशन की समस्या समाप्त नहीं हो जाती क्योंकि मनोवैज्ञानिक का कार्य केवल परामर्श देना ही नहीं है बल्कि यह देखना भी है कि उस परामर्श से वास्तव में कितनी सफलता होती है। अतः उसको उपचार के बाद भी व्यक्ति से बराबर सम्पर्क बनाये रखना पड़ता है और इस बारे में छानबीन करनी पड़ती है कि समस्या कहाँ तक सुलझी है। इससे जहाँ रोगी अपना परामर्शेच्छु व्यक्ति की ओर भी सहायता की जा सकती है वहाँ मनोवैज्ञानिक का अपना अनुभव भी बढ़ता है क्योंकि आखिरकार निर्देशन में बहुत कुछ प्रयत्न और भूल से सीखना पड़ता है। मानव मनोविज्ञान इतना

जटिल है कि उसको कुछ नियमों में नहीं बाँधा जा सकता। निर्देशन में सफलता मनोवैज्ञानिक के अपने अनुभव और अन्तर्दृष्टि पर निर्भर होती है तथा जैसा कि पहले कहा जा चुका है इन दोनों के विकास में उसको उत्तरोत्तर अनुशीलन से सहायता मिलती है। कहना न होगा कि उत्तरोत्तर अनुशीलन के बिना व्यक्तिगत निर्देशन एकदम अधूरा है।

उत्तरोत्तर अनुशीलन में मुख्य रूप से निम्नलिखित पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है :—

उत्तरोत्तर अनुशीलन की पद्धतियाँ

(१) पत्रों द्वारा उत्तरोत्तर अनुशीलन (Follow up through Letters)—जैसा कि इस विधि के नाम से जाहिर है इसमें परामर्शेच्छु से पत्र के द्वारा सम्पर्क स्थापित किया जाता है। इस पत्र से सूचनायें तो वहुत थोड़ी मिलती हैं परन्तु फिर भी कुछ न कुछ सूचनायें तो प्राप्त होती ही हैं। जरूरत पड़ने पर इन पत्रों के आधार पर परामर्शेच्छु को और भी परामर्श किया जा सकता है या उससे मिला जा सकता है।

(२) प्रश्नावली विधि (Questionnaire Method)—प्रश्नावली विधि में जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है परामर्शेच्छु को एक प्रश्नावली भेजी जाती है और उससे उसका जवाब मँगाया जाता है। इसमें प्रश्न वहुधा इस तरह के रखे जाते हैं जिनका उत्तर अल्प, सरल और स्पष्ट हो। बहुधा हाँ-नहीं में ही उत्तर लिया जाता है। यह प्रश्नावली परामर्शेच्छु की समस्या के विभिन्न पहलुओं की प्रगति से सम्वन्धित होती है। मनोवैज्ञानिक यह मालूम करता है कि यह प्रगति कहाँ तक हुई है और यदि नहीं हुई तो क्यों। प्रश्नावली विधि से यह लाभ है कि इससे पत्रों की अपेक्षा विस्तृत जानकारी प्राप्त हो जाती है परन्तु इसमें एक वड़ी कमी यह है कि वहुत कम प्रश्नावलियाँ लौटाई जाती हैं।

(३) कार्ड फाइल विधि (Card File Method)—इस विधि में साक्षात्कार का विवरण अर्थात् परामर्शदाता का नाम तथा पता, परामर्शेच्छु का नाम तथा पता साक्षात्कार के उद्देश्य और समस्या का विवरण लिखा रहता है। इसको निर्देशन विभाग के केन्द्रीय सदन में रखा जाता है जिससे परामर्शेच्छु जव चाहे परामर्शदाता से सम्पर्क स्थापित कर सके। फाइल विधि में टिकलर फाइल (Tickler File) का भी उपयोग किया जाता है। टिकलर फाइल में परामर्शदाता अपनी मेज पर या खुली आलमारी में हर एक परामर्शेच्छु की एक फाइल रखता है और उसमें उससे दोबारा सम्पर्क स्थापित करने की स्थितियाँ लिख ली जाती हैं। यह फाइल परामर्शदाता के लिये है। यह उसको अपने पिछले परामर्शित व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करने को उत्तेजित (Tickler) करती है।

उपरोक्त तीनों विधियाँ विशेष रूप से प्रचलित हैं और लाभदायक हैं। इन मुख्य विधियों के अलावा कुछ और भी विधियाँ हैं जिनसे परामर्शदाता और परा-

मर्शेच्छु में सम्पर्क स्थापित किया जाता है। उदाहरण के लिये अमेरिका में कभी-कभी परामर्शदाता टेलीफून से ही परामर्शेच्छु व्यक्ति से बहुत सी बातें पूछ लेते हैं।

वैयक्तिक निर्देशन का एक उदाहरण

वैयक्तिक निर्देशन के विवरण को खत्म करने से पहले उसका एक वास्तविक उदाहरण भी दे देना प्रासंगिक होगा। इससे यह मालूम होगा कि वास्तविक मामले किस तरह के आते हैं और उत्तर प्रदेश में इन मामलों को सुलझाने का कहाँ तक प्रवन्ध है। इलाहाबाद के एक स्थानीय कालिज का प्रोफेसर स्थानीय केन्द्रीय जेल को देखने गया। वहाँ उसने एक लड़का देखा जो कि सेंध लगाने और चोरी करने के अपराध में छः महीने की सजा काट रहा था। प्रोफेसर ने लड़के को प्रवीक्षण (Probation) पर छुड़वा लिया और उसको अपने साथ रख लिया। लड़के ने प्रोफेसर के साथ बड़ा दुर्व्यवहार किया और अपनी चोरी करने की आदत जारी रखी। बहुधा एक दो दिन के लिये गायब भी हो जाता था। आखिरकार प्रोफेसर ने उस लड़के को उसके माँ बाप को सौंप दिया जो कि कालिज में ही रहते थे। लड़का स्कूल भेज दिया गया जहाँ उसको छटी कक्षा में भर्ती कर लिया गया। परन्तु लड़के की प्रगति किसी भी तरह सन्तोषजनक नहीं थी। मनोवैज्ञानिक परीक्षण करने पर वह बौद्धिक शक्तियों में निश्चित रूप से औसत से कम निकला। परन्तु उसकी व्यावहारिक योग्यता औसत से थोड़ी अच्छी थी। उसकी अन्य शक्तियाँ निश्चित रूप से हीन थीं। वह स्वभावतः ही अपनी पढ़ाई की ओर ध्यान न देता था। उसको सामाजिक कार्यों में बिल्कुल रुचि न थी। कभी-कभी वह खेद और दोष की भावना (Guilt) से भर उठता परन्तु फिर दूसरे समय वह अत्यधिक आक्रामक और असामाजिक दिखाई पड़ता। इस लड़के को व्यक्तिगत निर्देशन के लिये मनोविज्ञान केन्द्र में लाया गया। मनोवैज्ञानिकों ने यह राय दी कि उसके परिवेश को बेहतर बनाने की जरूरत है। एक समझने वाला और सहानुभूतिशील व्यक्ति उसके अनुकूलन को बहुत बेहतर बना सकता है। उसको आगे पढ़ाने से कोई फायदा नहीं है। उसको कोई मशीन का काम सीखना चाहिये। मनोवैज्ञानिकों ने यह भी महसूस किया कि इस लड़के को नियमित मानसिक चिकित्सा की भी जरूरत है। परन्तु मनोविज्ञान केन्द्र में इसका प्रवन्ध न होने के कारण ऐसा न हो सका। फिर भी मनोवैज्ञानिकों के परामर्श से लड़के को कुछ लाभ अवश्य हुआ। वह अपनी कुछ कठिनाइयों को जान गया। इससे उसको अनुकूलन में सहायता मिली।

प्रश्न १९—संक्षिप्त टिप्पणी लिखो—भारत में निर्देशन सेवा व्यवस्था।

भारत में निर्देशन सेवा व्यवस्था

भारत में निर्देशन सेना व्यवस्था १९३८ में कलकत्ता विश्वविद्यालय के व्यावहारिक मनोविज्ञान विभाग की स्थापना से शुरू हुई। १९४५ में पटना विश्वविद्यालय

में मनोवैज्ञानिक सेवा और अनुसंधान का विभाग (Department of Psychological Service and Research) स्थापित हुआ। इसमें शैक्षिक व्यावसायिक और व्यक्तिगत निर्देशन के अलावा परीक्षण रचना द्वारा प्रमाणीकरण तथा दूसरे शोध कार्य किये जाते हैं। १९४७ में स्कूलों में शिक्षा सम्बन्धी तथा व्यावसायिक निर्देशन के लिये बम्बई में पारसी पंचायत वोकेशनल ब्यूरो निर्देशन (ParsiP anchayat Vocational Guidance Bureau) की स्थापना हुई। इसी वर्ष उत्तरप्रदेश में इलाहावाद में तथा अन्य राज्यों जैसे आन्ध्र, आसाम, बम्बई, विहार, केरल, उड़ीसा, मध्य प्रदेश आदि में भी मनोवैज्ञानिक केन्द्र स्थापित हुये। ये मनोवैज्ञानिक केन्द्र राज्य में स्थापित जिलों के मनोवैज्ञानिक केन्द्रों की देखभाल करते हैं और व्यक्तिगत, शिक्षा सम्बन्धी तथा व्यावसायिक निर्देशन का कार्य करते हैं। इन केन्द्रों में परीक्षण रचना और प्रामाणीकरण तथा व्यावसायीकरण की दिशा में अच्छा कार्य हुआ। इन कार्यों के अलावा ये केन्द्र परामर्शदाताओं के प्रशिक्षण तथा वाल निर्देशन का भी काम करते हैं। १९४९ में मद्रास में क्रिश्चियन ट्रेनिंग कालिज में परीक्षण रचना तथा परीक्षणार्थी अध्यापकों के चुनाव का प्रबन्ध किया गया। १९५० में बम्बई में व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो की स्थापना हुई जिसमें व्यावसायिक सूचना संग्रह तथा प्रचार, संचयात्मक वृत्त संग्रह और परीक्षण रचना का प्रबन्ध है। १ मार्च १९५५ में भारत सरकार के स्वास्थ्य मन्त्रालय की ओर से दिल्ली में एक वाल निर्देशन क्लीनिक (Child Guidance Clinic) स्थापित किया गया जो अपने ढंग की पहली सरकारी संस्था है। १९५६ में पटना में शिक्षा सम्बन्धी और व्यावसायिक निर्देशन का ब्यूरो (State Bureau of Educational and Vocational Guidance) स्थापित हुआ। १९५६ में बड़ौदा में अखिल भारतीय व्यावसायिक और शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन का तीसरा वार्षिक सम्मेलन हुआ। यह सम्मेलन डाक्टर पीरेज की देखरेख में हुआ। इसी वर्ष यहीं अखिल भारतीय शैक्षिक एवं व्यावसायिक संघ की भी स्थापना हुई। इस संघ का लक्ष्य देश की विभिन्न निर्देशन सेवा संस्थाओं का संगठन और विकास करना है। संघ के अध्यक्ष भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के श्री के० जी० सैयदेन चुने गये। इसी वर्ष दिल्ली में शिक्षा सम्बन्धी और व्यावसायिक निर्देशन का एक केन्द्रीय ब्यूरो (Central Bureau of Educational and Vocational Guidance) स्थापित हुआ। ब्यूरो का कार्य व्यावसायिक निर्देशन और शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन है। १९५९ में राजस्थान में बीकानेर में शिक्षा सम्बन्धी और व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो स्थापित हुआ। इन सब संस्थाओं के अतिरिक्त अनेक ट्रेनिंग कालिजों और विश्वविद्यालयों में निर्देशन सेवा की दिशा में कार्य होता रहा है। पाश्चात्य देशों में निर्देशन सेवा की प्रगति को देखते हुये भारत में इस दिशा में अभी वहुत कमी है।

प्रश्न २०—संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—उत्तर प्रदेश में निर्देशन सेवायें।

उत्तर प्रदेश में निर्देशन सेवा
(Guidance Service in U. P.)

भारत के स्वतन्त्र होने के साथ उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद में मनोविज्ञान केन्द्र Bureau of Psychology) की स्थापना हुई जो कि अब मनोविज्ञानशाला कहलाती है। इस ब्यूरो की स्थापना का विचार सबसे पहले १९३७ में उत्तर प्रदेश में कांग्रेसी सरकार की स्थापना के बाद नियुक्त की गई आचार्य नरेन्द्र देव रिआर्गनाइजेशन कमेटी ने उपस्थित किया। कमेटी ने इस बात पर जोर दिया कि शिक्षा में आधुनिक मनोविज्ञान के सहयोग की भारी आवश्यकता है। परन्तु इस दिशा में कोई ठोस कदम नहीं उठाया जा सका क्योंकि १९३९ में अंग्रेजी मन्त्री-मण्डल स्थापित हो गया। १९४६ में फिर से कांग्रेसी मन्त्री-मण्डल बनाये जाने पर इस बात को फिर से उठाया गया। तत्कालीन शिक्षा मन्त्री डाक्टर सम्पूर्णानन्द ने पद ग्रहण करने के बाद सबसे पहले इलाहाबाद में ब्यूरो ऑफ साइकालोजी की स्थापना की। यह मनोविज्ञानशाला भारत में अपने ढंग की निराली मनोविज्ञानशाला है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में ब्यूरो का क्षेत्र और भी विस्तृत कर दिया गया है। १९५२ में ५ जिलों में मनोवैज्ञानिक केन्द्रों की स्थापना की गई। ये ५ मनोवैज्ञानिक केन्द्र उत्तर प्रदेश के ५ शैक्षिक प्रदेशों में स्थापित किये गये, थे मेरठ, बरेली, कानपुर, वाराणसी और लखनऊ। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में राज्य में निर्देशन सेवा को और भी प्रोत्साहित करने की योजना बनाई गई। योजनाकाल में प्रदेश के २५ बहुउद्देशीय स्कूलों में से प्रत्येक में एक स्कूल मनोवैज्ञानिक की नियुक्ति का प्रस्ताव किया गया। यह कदम आचार्य नरेन्द्र देव की दूसरी रिपोर्ट और माध्यमिक शिक्षा पर मुदालियर रिपोर्ट पर आधारित था। १९५६ से १९५८ तक २० सरकारी उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में स्कूल मनोवैज्ञानिकों की नियुक्ति की गई। इसका विवरण निम्नलिखित तालिका से जाना जा सकता है :—

सन्	स्कूलों के प्रकार			
	लड़कों के स्कूल	लड़कियों के स्कूल	लड़के और लड़कियों के स्कूल	योग
१९५६	कानपुर	फैजाबाद	झांसी, मुरादाबाद, फैजाबाद	५
१९५७	देवरिया, पीलीभीत, इटावा	बरेली, गोरखपुर		५
१९५८	अलमोड़ा, ऐटा, लैंसडौन, रामपुर	नैनीताल		५
१९५९	मसूरी, बुलन्दशहर बाँदा, औरई	गाजीपुर		५

उपरोक्त सभी स्कूल सरकारी हैं। लड़के और लड़कियों के स्कूल अलग-अलग हैं। तालिका में जो लड़के लड़कियों के स्कूल लिखे गये हैं उसमें एक ही मनोवैज्ञानिक लड़के तथा लड़कियों दोनों के स्कूल में कार्य करता है। पिछले साल में ५ और सरकारी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में विद्यालय मनोवैज्ञानिक नियुक्त किये गये। इस तरह इस समय राज्य में २५ विद्यालय मनोवैज्ञानिक हैं।

इस तरह उत्तरप्रदेश में निर्देशन सेवा व्यवस्था तीन स्तर पर है :—

(१) राज्य का स्तर (२) प्रादेशिक स्तर और (३) स्कूल का स्तर। राज्य में निर्देशन सेवा व्यवस्था का पूरा क्षेत्र स्पष्ट करने के लिये तीनों स्तरों का अलग अलग विवेचन आवश्यक होगा।

(१) राज्य का स्तर

राज्य के स्तर पर इलाहाबाद में मनोविज्ञानशाला है। इस मनोविज्ञानशाला में एक निर्देशक, दो सीनियर रिसर्च मनोवैज्ञानिक, दो मनोवैज्ञानिक, एक व्यावसायिक निर्देशन अधिकारी, दो सीनियर परीक्षण, एक स्टैटीशियन और ६ सहायक मनोवैज्ञानिक हैं।

मनोविज्ञानशाला का मुख्य कार्य सामान्य जनता के लिये और वस्तुतः राज्य के विद्यार्थियों के लिये मनोवैज्ञानिक सेवा की व्यवस्था करना है। उसके मुख्य कार्य हैं— (१) निर्देशन (२) अनुसन्धान (३) मनोवैज्ञानिक परीक्षण (४) वरण कार्य और (५) प्रकाशन।

मनोविज्ञानशाला में व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों आधार पर निर्देशन का प्रबन्ध है।

(अ) वैयक्तिक निर्देशन सेवा—वैयक्तिक निर्देशन सेवा ३ वर्गों में विभाजित की जाती है—(i) शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन (ii) व्यावसायिक निर्देशन (iii) निजी निर्देशन। शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन में सामान्य बालकों को उनके पाठ्यक्रम अथवा पढ़ने के विषयों के चुनाव में निर्देशन दिया जाता है। मन्द बुद्धि और पिछड़े हुये बालकों के सम्बन्ध में भी विशेष मशवरा दिया जाता है। व्यावसायिक निर्देशन में कालेज और विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों को उनके उपयुक्त व्यवसाय के चुनाव में मशवरा दिया जाता है। निजी निर्देशन में वे असामान्य बालक आते हैं जिनको उनकी भावात्मक समस्याओं तथा अनुकूलन की समस्या को सुलझाने के लिये मनोवैज्ञानिक उपचार की जरूरत होती है।

(१) निर्देशन

आमतौर से किसी भी व्यक्ति की पूरी मनोवैज्ञानिक परीक्षा में दो या तीन दिन लग जाते हैं। इस परीक्षा में विभिन्न परीक्षणों के साथ-साथ परीक्षणार्थियों के स्कूल

और घर के बारे में भी जानकारी प्राप्त की जाती है। परीक्षण के लिये प्रयोग किये जाने वाले परीक्षणों में साधारणतया स्टैंफोर्ड बिने परीक्षण का हिन्दी रूप, कार्यात्मक परीक्षण की भाटिया की बैट्री, व्यावसायिक प्रिफ्रेंस रिकार्ड, यान्त्रिक अभिरुचि परीक्षण, व्यक्तित्व पत्री, टी० ए० टी० डब्लू० ए० टी० और रोर्शा आदि सम्मिलित हैं। इसके साथ साथ प्रारम्भ में और अन्त में साक्षात्कार भी किया जाता है। परीक्षा के बाद प्रत्येक परीक्षार्थी को अलग से एक मनोवैज्ञानिक रिपोर्ट भेज दी जाती है।

मनोविज्ञानशाला ने इलाहाबाद के सरकारी उच्चतर माध्यमिक स्कूल में स्कूल के विषय के पिछड़ेपन तथा उसको सुधारने के उपाय के विश्लेपण के लिये एक योजना बनाई है। मनोविज्ञानशाला में कुछ विद्यार्थी और युवकों का मनोवैज्ञानिक उपचार भी सफलता के साथ किया गया है। बालकों की समस्याओं को सुलझाने के लिए मनोविज्ञानशाला ने एक बाल निर्देशन क्लीनिक की स्थापना की है जिसमें स्थानीय परिस्थितियों में चिकित्सा की क्रीड़ा विधि (Play Therepy) का विकास किया गया। मन्द बुद्धि तथा पिछड़े हुये बालकों के सुधार की कोशिश की गई है।

(ब) सामूहिक निर्देशन—मनोविज्ञानशाला कक्षा ८, १० व १२ के विद्यार्थियों को सामूहिक स्तर पर शिक्षा सम्बन्धी तथा व्यावसायिक निर्देशन देती है। आठवीं कक्षा के विद्यार्थियों को शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन देने का उद्देश्य यह है कि वे नवीं कक्षा में प्रवेश करने पर अपने लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम चुन सकें। हाई स्कूल तथा इण्टरमीडिएट के विद्यार्थियों को शिक्षा सम्बन्धी तथा व्यावसायिक निर्देशन देने का उद्देश्य उनको यह निश्चय करने में सहायता देना है कि वे अपनी पढ़ाई आगे जारी रखें या नहीं, यदि जारी रखें तो किस व्यवसाय या कैरियर को ध्यान में रखें और यदि पढ़ाई छोड़ दें तो किस व्यवसाय में प्रवेश करने की कोशिश करें।

सामूहिक निर्देशन का कार्यक्रम विद्यार्थियों के संरक्षक तथा उनके शिक्षक से मिली सूचनाओं और मानसिक योग्यताओं की लगभग आधी दर्जन परीक्षाओं पर आधारित होता है। हाई स्कूल और इण्टरमीडिएट के विद्यार्थियों को व्यावसायिक प्रिफ्रेंस रिकार्ड और व्यक्तित्व पत्री के द्वारा अपने को अभिव्यक्त करने का मौका दिया जाता है। सामूहिक निर्देशन कार्यक्रम में स्कूल में वार्ता तथा कैरियर फिल्में भी शामिल हैं। यद्यपि मनोवैज्ञानिक परीक्षण सामूहिक आधार पर किये जाते हैं तथापि प्रत्येक विद्यार्थी से अलग-अलग साक्षात्कार किया जाता है और उसकी रिपोर्ट भी अलग से भेजी जाती है। निर्देशन रिपोर्ट प्रिंसिपल को भेजी जाती है और उसके द्वारा विद्यार्थी की वार्षिक रिपोर्ट संरक्षकों को भेज दी जाती है। इस रिपोर्ट की प्रतिलिपि उन विद्यार्थियों के लिये रोजगार की व्यवस्था से सम्बन्धित रोजगार दफ्तर को भी भेजी जा सकती है।

राज्य में वैज्ञानिक स्तर पर निर्देशन सेवा की व्यवस्था के लिये मनोविज्ञानशाला में विभिन्न मनोवैज्ञनिक परीक्षाओं की रचना, अनुकूलन और प्रमाणीकरण का

(२) अनुसंधान, मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं की रचना, अनुकूलन और प्रमाणीकरण

काम किया जाता है इसमें सामान्य बुद्धि, मानसिक योग्यताओं, विशेष अभिरुचियों, भावात्मक संरचना और व्यक्तित्व के प्रतिमानों की परीक्षायें शामिल हैं। अब तक मनोविज्ञानशाला ने लगभग दो दर्जन मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की रचना, अनुकूलन और प्रमाणीकरण किये हैं। इसमें १२ जमा, १३ जमा, १४ जमा और व्यस्कों के लिये चार शाब्दिक सामूहिक परीक्षण, पांच अशाब्दिक सामूहिक बुद्धि परीक्षण, दो उपलब्धि परीक्षण हिन्दी में (एक कक्षा ८ के लिए और दूसरा कक्षा १० के लिये); तीन यांत्रिक अभिरुचि परीक्षण; डैटराय शारीरिक सामर्थ्य परीक्षण; ट्वीजर यथार्थता और स्थिरता परीक्षण; तीन व्यक्तित्व परीक्षण (रौर्शा, टी० ए० टी० और डब्लू० ए० टी०)। मनोविज्ञानशाला ने एल० स्केल के स्टैन्फोर्ड बिने बुद्धि परीक्षण का भारतीयकरण किया है और इस सम्बन्ध में कुछ रिसर्च पेपर्स भी प्रकाशित किये हैं। ब्यूरो के बाल निर्देशन क्लीनिक में कुछ परीक्षणों पर कुछ प्रयोग भी किए गये हैं। मनोविज्ञानशाला में एक व्यावसायिक प्रिफ्रेंस रिकार्ड और एक व्यक्तित्व पत्री भी विकसित की गई है। इस परीक्षण के अलावा ११ जमा के लिये सोहनलाल की बुद्धि, गणित और अंग्रेजी में सामूहिक परीक्षायें और ११ जमा तथा व्यस्कों के लिये बुद्धि के क्रियात्मक परीक्षण की भाटिया की बैट्री मनोविज्ञानशाला में प्रयोग की जाती है। १९५९ में मनोविज्ञानशाला ने कक्षा ८ के लिए एक शाब्दिक सामूहिक बुद्धि परीक्षण के दो समानान्तर रूप निर्माण किए।

पिछले ६ वर्षों से मनोविज्ञानशाला राज्य के पुलिस विभाग के मुरादाबाद पुलिस ट्रेनिंग कॉलिज में भर्ती में सहायता देती रहती है। मनोविज्ञानशाला ने राज्य के

(३) वरण कार्य

नियोजन और विकास विभाग को, बी० डी० ओ० ए० डी० ओ० और वी० एल० डब्लू० आदि पदों के लिये चुनाव में सहायता दी है। उत्तर प्रदेश के शिक्षा विभाग के विभिन्न ट्रेनिंग कालिज में सरकारी अध्यापकों के दाखले में भी उन्होंने सहायता दी है। पिछले चार वर्षों से ब्यूरों उत्तर प्रदेश राज्य के पब्लिक स्कूलों में भारतीय मैरिट स्कालरशिप के प्रार्थियों की भी परीक्षा करता रहा है। १९५७–५८ में उसने कानपुर के हरकोर्ट बटलर इन्स्टीट्यूट आफ टेकनोलौजी को दाखिले में सहायता दी।

ब्यूरो ने अब तक एक दर्जन से ऊपर प्रकाशन उपस्थित किये हैं। इनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं:—

(४) प्रकाशन

Year	Name of Publication
1950	Procedure for Personnel Guidance.
1950	Procedure for Vocational Guidance.

Year	Name of Publication
1952	Education Guidance Project.
1953	Stanford-Binet Hindi Adaptation.
1955	Construction and Standardization of Verbal Group Test of Intelligence for Age group 13 Plus.
1956	Group Guidance Project.
1957	School Psychologist.

उपरोक्त प्रकाशनों के अलावा ब्यूरो ने टी० ए० टी० तथा श्वार्ट्ज (Schwartz) के सामाजिक परिस्थिति चित्रों के अनुकूलन भी प्रकाशित किये हैं। इसके अतिरिक्त देशी तथा विदेशी पत्रों में १८ रिसर्च पेपर भी प्रकाशित किये हैं। इसमें मनोविज्ञानशाला के कर्मचारियों के निजी पेपर्स शामिल नहीं हैं।

मनोविज्ञानशाला ने इलाहाबाद में अध्यापकों, संरक्षकों और विद्यार्थियों के लाभ के लिये अनेक भाषण मालाओं की भी व्यवस्था की। इन भाषण मालाओं को प्रकाशित कराने का निश्चय किया गया है।

(५) भाषण मालायें

भविष्य में ब्यूरो अपनी उपरोक्त सभी गतिविधियों को और भी व्यापक बनाना चाहता है तथा उनको और भी वैज्ञानिक स्तर पर लाने की कोशिश की जायेगी। मनोवैज्ञानिक परीक्षण, व्यावसायिक निर्देशन, बालकों की समस्याओं का निर्देशन तथा मानसिक उपचार, परीक्षण का निर्माण, अनुसन्धान आदि दिशाओं में और भी तेजी से काम किये जाने की आशा है।

(१) प्रादेशिक स्तर पर निर्देशन सेवा कार्य

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है उत्तरप्रदेश के पाँचों शैक्षिक प्रदेशों में एक-एक जिला मनोविज्ञान केन्द्र की स्थापना की गई है। प्रत्येक मनोविज्ञान केन्द्र में एक जिला मनोवैज्ञानिक, दो व्यावसायिक निर्देशक तथा दो मनोवैज्ञानिक होते हैं। ये जिला मनोविज्ञान केन्द्र मनोविज्ञानशाला और स्कूल मनोवैज्ञानिकों के बीच में एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं। महत्व के क्रम में जिला मनोविज्ञान केन्द्र के कार्य निम्नलिखित हैं :—

१. निर्देशन कार्य (Guidance)

२. अनुसन्धान (Research)

३. प्रकाशन (Publication)

जिला मनोविज्ञान केन्द्र व्यक्तिगत तथा सामूहिक आधार पर निर्देशन कार्य करता है। वह अपने प्रदेश के कक्षा आठ के विद्यार्थियों को शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन

निर्देशन

देता है। इसमें प्रयोग होने वाले परीक्षण में अन्य मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं के साथ-साथ रुचियाँ, अभिरुचियाँ और व्यक्तित्व की परीक्षाएँ भी शामिल हैं। इन परीक्षाओं के बाद विद्यार्थी का मनोवैज्ञानिक से साक्षात्कार भी होता है। ये केन्द्र पिछड़े हुए बच्चों की शिक्षा में सुधार की भी कोशिश करते हैं और प्रतिभाशाली बालकों के लिये शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम पेश करते हैं। केन्द्र विद्यार्थी में छोटी-मोटी संवेगात्मक समस्याओं का विश्लेषण और इलाज भी करता है। इसके अलावा केन्द्र अपने प्रदेश के स्कूलों में सामूहिक आधार पर हाई स्कूल और इण्टरमीडिएट के विद्यार्थियों के लिये शिक्षा सम्बन्धी व्यावसायिक निर्देशन का प्रबन्ध भी करते हैं। इस बारे में वे अपने नगर के विद्यार्थियों को व्यावसायिक सूचना देने की भी व्यवस्था करते हैं। धीरे-धीरे प्रदेश के अन्य नगरों में भी विद्यार्थियों को व्यावसायिक सूचना देने का प्रयास किया जायेगा। ये केन्द्र स्कूलों में व्यावसायिक निर्देशन को संगठित करेंगे और व्यवसाय सम्बन्धी वार्ता, फिल्म शो तथा कारखाने दिखलाये जाने का भी प्रबन्ध करेंगे जिससे विद्यार्थियों को विभिन्न कार्यों के बारे में यथार्थ व्यावसायिक सूचना मिल सके। ये केन्द्र रोजगार दिलाने वाली संस्थाओं से भी सम्बन्ध बनाए रखेंगे जिससे कि युवाओं को उनके लायक व्यवसाय मिल सके।

ये केन्द्र मनोविज्ञानशाला द्वारा उठाये हुये अनुसन्धान कार्य तथा अन्य कार्यों में भी भाग लेंगे। ये मनोविज्ञानशाला के प्रकाशन कार्य में भी भाग लेंगे।

मनोविज्ञान केन्द्र शाब्दिक सामूहिक परीक्षण के अलावा रेवेन के प्रोग्रेसिव मैट्रीशिस परीक्षण के भारतीय अनुकूलन तथा ब्रिटेन के एन० आई० आई० पी० के

परीक्षण

कुछ विशेष योग्यताओं के परीक्षण के भारतीयकरण का प्रयोग करते हैं। भाषा की योग्यता की परीक्षा की जाती है। विद्यालय अनुसूची में विद्यार्थी के परीक्षा-फल तथा बालक की बुद्धि और व्यक्तित्व के सम्बन्ध में अध्यापकों के मूल्यांकन भी अंकित किये जाते हैं। इसके अलावा व्यक्तित्व सूची और व्यावसायिक रुचि पत्री, अभिभावक पत्री तथा विद्यार्थी की अपनी सम्मति द्वारा निर्मित आत्म पत्री (Self Inventory) भी बनाई जाती है। इन सब सूचनाओं से एक सामूहिक पार्श्व चित्र (Profile) बना लिया जाता है जैसा कि आगे दिखलाया गया है। पार्श्व चित्र बनाने के बाद विद्यार्थी से साक्षात्कार किया जाता है तथा उसको परामर्श दिया जाता है। लगभग सभी सरकारी स्कूलों में और बहु-उद्देशीय विद्यालय तथा पौलीटैकनिक की भर्ती में मनोविज्ञान केन्द्र द्वारा निर्देशन दिए जाते हैं।

(३) स्कूल के स्तर पर निर्देशन

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है। उत्तरप्रदेश में अब तक २५ स्कूल मनोवैज्ञानिक नियुक्त किये जा चुके हैं। स्कूल मनोवैज्ञानिक स्कूल के स्तर पर कार्य

करता है और अपने स्कूल में सभी मनोवैज्ञानिक सेवा के लिये उत्तरदायी होता है। वह उस स्कूल के प्रिन्सिपल की देख-रेख में काम करता है। परन्तु उसको प्राविधिक सहायता और निर्देशन अपने क्षेत्र के प्रादेशिक मनोविज्ञान केन्द्र द्वारा इलाहाबाद की मनोविज्ञानशाला से निर्देशक के मिलते हैं। स्कूल मनोवैज्ञानिक का मुख्य कार्य अपने स्कूल में विद्यार्थियों को मनोवैज्ञानिक निर्देशन अर्थात् शिक्षा सम्बन्धी, व्यावसायिक और निजी निर्देशन देना है। विशेष रूप से उनके कार्य निम्नलिखित हैं :—

(१) **कक्षा आठ के विद्यार्थियों को शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन देना**—सामान्य रूप से यह निर्देशन विद्यार्थियों को आगे की पढ़ाई में अपने विषय का चुनाव करने के लिये दिये जाते हैं परन्तु इनके अतिरिक्त ये पिछड़े हुए और मेधावी तथा असामान्य बालकों की समस्याओं को भी सुलझाते हैं। आठवीं कक्षा के विद्यार्थियों के अलावा जूनियर हाई स्कूल तथा अन्य स्कूलों से आकर नवीं कक्षा में प्रवेश करने वाले विद्यार्थियों को भी वैसा ही निर्देशन दिया जाता है। इसके अलावा उन विद्यार्थियों को निजी आधार पर निर्देशन दिया जाता है जो एक विशेष पाठ्यक्रम चुनने के बाद उसमें कठिनाई महसूस करते हैं। स्कूल मनोवैज्ञानिक विद्यार्थियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के विषयों के विभाजन के सम्बन्ध में अपनी सिफारिशों को प्रिन्सिपल के सामने पेश करता है जो कि उन सिफारिशों का आवश्यक उपयोग करता है।

(२) **हाई स्कूल तथा इन्टरमीडिएट के विद्यार्थियों को शैक्षिक-व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करना**—स्कूल मनोवैज्ञानिक अपने स्कूल के दसवीं और १२वीं कक्षाओं के सभी विद्यार्थियों को शिक्षा सम्बन्धी और व्यावसायिक निर्देशन देता है। इससे उनको भविष्य में अपनी पढ़ाई के विषय अथवा अपने व्यवसाय को चुनने में सहायता मिलती है। इस स्तर पर निर्देशन में स्कूल मनोवैज्ञानिक कक्षा आठ में उन विद्यार्थियों पर किए गए अपने पिछले परीक्षण का भी ध्यान रखता है। व्यावसायिक निर्देशन शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन पर आधारित है। अलग-अलग प्रकार की शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन में बड़ी सावधानी से काम लेता है जिससे विद्यार्थियों को अपनी शिक्षा के विषय के अनुसार व्यवसाय चुनने में आसानी हो।

(३) **पिछड़े बालकों के लिए सुधारात्मक अध्यापन की व्यवस्था करना**—स्कूल में पिछड़ापन कक्षा के अन्य विद्यार्थियों की तुलना में बालक के कक्षा के कार्य से मापा जाता है। परन्तु कुछ विद्यार्थी केवल मन्द बुद्धि के कारण कक्षा से पीछे नहीं होते बल्कि पिछड़ेपन के कारण व्यक्तित्व सम्बन्धी तथा अन्य भी होते हैं। वास्तव में ये ही विद्यार्थी स्कूल मनोवैज्ञानिक के विशेष ध्यान के पात्र हैं। इस तरह स्कूल मनोवैज्ञानिक पिछड़ेपन के बौद्धिक, सम्वेगात्मक जैसे मानसिक असन्तुलन, शारीरिक जैसे ऐन्द्रिक दोष इत्यादि तथा परिवेश सम्बन्धी जैसे बुरे पारिवारिक परिवेश इत्यादि का विश्लेषण करता है और सुधार के उपाय करता है। यह उपचारात्मक भी होता है और शिक्षा सम्बन्धी भी होता है। बालक की योग्यता को समझाने की कोशिश की जाती है। उसकी खास कठिनाई को समझते हुए सबसे अच्छी शिक्षा

पद्धति का चुनाव किया जाता है और पढ़ाई की ओर उसका ध्यान बनायें रखने की कोशिश की जाती है। इस बारे में स्कूल मनोवैज्ञानिक विशेष विषय के अध्यापक को सब तरह की सहायता और निर्देशन देता है।

(४) **प्रतिभाशाली बालक के लिए विशेष शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रबन्ध करना**—जिस तरह पिछड़े हुये बालकों को विशेष पाठ्यक्रम की जरूरत होती है। उसी तरह प्रतिभाशाली बालक को भी औसत से विशेष पाठ्यक्रम की जरूरत होती है। यदि इसका इन्तजाम नहीं किया जाता तो प्रतिभाशाली बालक अपनी प्रतिभा के अनुकूल कार्य न पाकर बुरे नीच कार्यों में पड़ जाता है और अनुशासन भंग करने लगता है। स्कूल मनोवैज्ञानिक इस तरह के बालक के बारे में व्यक्तिगत परीक्षण करता है और उसकी विशेष योग्यताओं का पता लगाने तथा उन योग्यताओं के अनुसार विशेष कार्यक्रमों की योजना बनाने की कोशिश करता है। इस कोशिश में बालक को व्यक्तिगत प्रशिक्षण, उसके पाठ्यक्रम में वृद्धि और उसको नेतृत्व के अवसर देना शामिल है। वास्तव में स्कूल में पिछड़े हुए तथा प्रतिभाशाली बालक के लिए सुधार का कार्यक्रम व्यावहारिक रूप से अध्यापकों का ही कार्य है। स्कूल मनोवैज्ञानिक तो उसमें केवल सहायता और निर्देशन ही देता है।

(५) **आसांमजस्य युक्त बालकों को निजी निर्देशन देना**—हर एक स्कूल में कुछ ऐसे विद्यार्थी होते हैं जो अपने परिवेश से सामंजस्य नहीं कर पाते। इस तरह के विद्यार्थी अपने माता-पिता और शिक्षक के लिए समस्या बन जाते हैं। स्कूल मनोवैज्ञानिक इस तरह के असामंजस्ययुक्त बालकों का मनोवैज्ञानिक परिक्षाओं द्वारा तथा अन्य सूचनाओं की सहायता से विश्लेषण करता है और कठिनाई के मूल स्रोतों को खोज निकालने की कोशिश करता है। यदि समस्या कक्षा के कमरे से सम्बन्धित होती है तो वह अध्यापकों की और यदि परिवार से सम्बन्धित होती है तो विद्यार्थी के घर वालों को सहायता लेता है और बालक के सुधार की कोशिश करता है। मानसिक रोगों के शिकार विद्यार्थियों के मामले मनोविज्ञानशाला को भी भेजे जा सकते हैं।

(६) **मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान में एक फील्ड वर्कर के रूप में कार्य करना**—उपरोक्त कार्यों के अलावा स्कूल मनोवैज्ञानिक मनोविज्ञानशाला द्वारा निर्धारित अनुसंधान योजनाओं में एक फील्ड वर्कर के रूप में कार्य करता है।

उपरोक्त विवरण से पता चलता है कि स्कूल मनोवैज्ञानिक के कार्य निम्नलिखित हैं :—

स्कूल मनोवैज्ञानिक के कार्य

(i) मनोवैज्ञानिक परीक्षण
(ii) निर्देशन और मशविरा
(iii) अध्यापन
(iv) व्यावसायिक सूचनायें देना
(v) कारखाने और शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं में निरीक्षण का प्रबन्ध करना।

(vi) रोजगार दफ्तर से सम्बन्ध बनाये रखना।

(vii) माता पिता से सम्पर्क रखना।

(viii) सामूहिक रिकार्ड बनाये रखना।

इन सब कार्यों में सहायता के लिये स्कूल मनोवैज्ञानिक के पास मनोवैज्ञानिक परीक्षण और तद्विषयक यन्त्र होते हैं। उसके पास एक उपयुक्त कमरा होता है जिसमें वह अपना कार्य भली प्रकार कर सके। उसको प्रादेशिक मनोविज्ञान केन्द्र से तथा मनोविज्ञानशाला से प्राविधिक सलाह भी मिलती है मनोविज्ञानशाला स्कूल मनोवैज्ञानिकों के प्रशिक्षण का भी प्रबन्ध करती है।

उत्तर प्रदेश में मनोविज्ञानशाला से लेकर स्कूल मनोवैज्ञानिक तक निर्देशन सेवा व्यवस्था की रूपरेखा से यह स्पष्ट होता है कि सरकार इस ओर काफी ध्यान देती रही है। निर्देशन सेवा का उद्देश्य राज्य के प्रत्येक माध्यमिक स्कूल के प्रत्येक विद्यार्थी को व्यावसायिक तथा शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन देना है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये अभी निर्देशन सेवा के बहुत विस्तार की जरूरत है। इस बारे में अब तक जो कुछ हुआ है उसको काफी और सन्तोषजनक तो नहीं कहा जा सकता परन्तु वह एक अच्छी शुरुआत है। आशा है कि देश में मनोविज्ञान के प्रचार के साथ-साथ राज्य में निर्देशन सेवा की व्यवस्था भी व्यापक हो जायेगी।

निष्कर्ष

———

३

मानसिक आरोग्य

(Mental Hygiene)

प्रश्न २१—मानसिक आरोग्य का क्या अर्थ है ? उसका उद्देश्य तथा विभिन्न पहलू बतलाइये तथा उसकी परिभाषा कीजिये।

मानसिक आरोग्य का अर्थ

(Meaning of Mental Hygiene)

मानसिक आरोग्य का शाब्दिक अर्थ मानसिक क्रियाओं से सम्बन्धित निरोग या रोग हीन दशा को कायम रखने वाला विज्ञान है। जैसे शारीरिक आरोग्य शरीर को स्वस्थ रखने के नियम तथा उपाय निकालना है उसी तरह मानसिक आरोग्य मन को स्वस्थ रखने के नियम का उपाय निकालना है। इसमें केवल मानसिक रोगों को दूर करना ही शामिल नहीं है बल्कि मानसिक रोगों की रोकथाम भी शामिल है। मानसिक आरोग्य में मानसिक चिकित्सा के साथ-साथ मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखने के लिये उपयुक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न करना भी शामिल है। रयान (Ryan) के शब्दों में "निषेधात्मक (Negative) पहलू में इसका अर्थ मानसिक रोगियों की अधिक उदारता तथा कुशलता से चिकित्सा करना है। परन्तु विधेयात्मक (Positive) पहलू में इसका अर्थ प्रारम्भिक अवस्था में ही मानसिक विकारों का पता लगाना, इस तरह से भावी रोगों की अधिक से अधिक रोकथाम करना तथा समाज में अधिक से अधिक व्यक्तियों के लिए स्वस्थ मानसिक जीवन की व्यवस्था करना है।" इस तरह यद्यपि निषेधात्मक पहलू में मानसिक आरोग्य का अर्थ केवल मानसिक चिकित्सा तक ही सीमित है। विधेयात्मक पहलू में उसमें मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखये के लिये सब तरह की कोशिश आ जाती हैं। जाहिर है कि मानसिक आरोग्य का काम केवल मानसिक चिकित्सकों के ही हाथ में नहीं है। अध्यापक, माता-पिता, संरक्षक तथा समाज सुधारक और साधु-सन्त आदि धार्मिक व्यक्तियों का भी उसमें महत्वपूर्ण योगदान है। सच तो यह है कि मानव मनोविज्ञान का ज्ञान और उसमें अन्तर्दृष्टि होने पर कोई भी व्यक्ति मानसिक आरोग्य में सहायक हो सकता है। बालक का मानसिक स्वास्थ्य उसके माता-पिता के व्यवहार पर बहुत कुछ निर्भर है। स्कूल में शिक्षक बालक की मानसिक क्रियाओं पर भारी प्रभाव डालते हैं। अतः

बालक में मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखने में माता-पिता और शिक्षकों की बड़ी जिम्मेदारी है।

इस तरह मानसिक आरोग्य का उद्देश्य केवल मानसिक रोगों की रोकथाम और उपचार मात्र न होकर समाज के हर एक व्यक्ति में एक ऐसे व्यक्तित्व का विकास है जिसका परिवेश से अच्छी तरह समंजन (Adjustment) हो जिसके बौद्धिक, भावात्मक और शारीरिक पहलू भली प्रकार सन्तुलित हों, जो सन्तुष्ट और आशावादी हो और जिसको अपने साथियों से व्यवहार करने में कम से कम संघर्ष और तनाव महसूस होता है। मानसिक आरोग्य का लक्ष्य एक भली प्रकार समंजित (Adjusted), सुलझा हुआ और सन्तुलित व्यक्तित्व निर्माण करना है। संक्षेप में उसके उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते हैं :—

मानसिक आरोग्य का उद्देश्य

(१) **मानसिक दोषों का निराकरण**—मानसिक आरोग्य की परिभाषा करते हुए लारेंस एफ० शेफर (Lawrence F. Shaffer) ने कहा है कि मानसिक आरोग्य या मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का सम्बन्ध अपर्याप्त समंजनों की रोकथाम (Prevention of inadequate adjustment) तथा उन प्रक्रियाओं या विधियों से है जिनसे असन्तुलित व्यक्तियों को सन्तुलित बनाया जाता है। मानसिक आरोग्य की यह परिभाषा उनके निराकरणात्मक (Curative) पहलू पर जोर देती है। मानसिक आरोग्य का सबसे पहला काम मानसिक व्याधियों (Mental Ailments), दोषों (Defects) और असन्तुलनों को दूर करना है।

(२) **व्यक्तित्व की गड़बड़ियों को रोकना**—परन्तु निराकरणात्मक पहलू मानसिक आरोग्य का पूरा चित्र नहीं पेश करता। मानसिक आरोग्य सब तरह की व्यक्तित्व सम्बन्धी गड़बड़ियों या व्यक्तिमों (Personality Disorders) को रोकता है क्योंकि व्यक्तित्व की गड़बड़ियों से ही मानसिक बीमारियाँ पैदा होती हैं। थॉमस वी० मूर (Thomas V. Moore) के अनुसार, मानसिक आरोग्य वह विज्ञान है जो कि मानव व्यक्तित्व और उसकी भ्रंशताओं (Deviations) का निरोधात्मक दृष्टिकोण से अध्ययन करता है। इस तरह मानसिक आरोग्य का लक्ष्य व्यक्तित्व की असामान्यताओं (Abnormalities) को भी दूर करना है क्योंकि इनसे व्यक्तित्व असन्तुलित हो जाता है और तरह-तरह की मानसिक उलझनें (Conflicts) तथा बीमारियाँ पैदा होती हैं। इस रोकथाम के लिये जहाँ इनको दूर करने की कोशिश की जाती है वहाँ इस तरह के लोगों को सन्तानोत्पत्ति से भी रोका जाता है क्योंकि उनकी सन्तान में अनेक आनुवंशिक दोष आ जाने का डर है।

(३) **मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा**—मानसिक आरोग्य का सबसे व्यापक काम मानसिक आरोग्य की रक्षा करना है। डी० बी० क्लीन (D. B. Klein) के अनुसार मानसिक आरोग्य मानसिक व्याधियों को रोकता और मानसिक स्वास्थ्य की उन्नति करता है। मानसिक आरोग्य व्यक्ति में आशावाद, विश्वास, सहयोग, संवेगात्मक

समंजन तथा परिपक्वता (Emotional Adjustment and Maturity) आदि गुणों के उत्पन्न किये जाने की जोरदार सिफारिश करता है। वह व्यक्ति में अनियोजनशीलता (Adaptability) तथा कार्यक्षमता (Efficiency) बढ़ाने के उपाय बतलाता है।

मानसिक आरोग्य के उद्देश्यों के विवेचन से स्पष्ट है कि उसके तीन मुख्य पहलू हैं—निराकरणात्मक (Curative), निरोधात्मक (Preventive) और संरक्षणात्मक (Preservative)। निराकरणात्मक पहलू में वह मानसिक व्याधियों, दोषों और असन्तुलनों के निराकरण अर्थात् उनको दूर करने के उपाय बतलाता है। निरोधात्मक पहलू में वह उनके विरोध या रोकथाम के उपाय बतलाता है और संरक्षणात्मक पहलू में वह उन नियमों तथा विधियों का विवेचन करता है जिनको अपना कर कोई भी व्यक्ति अपना मानसिक स्वास्थ्य बनाये रख सकता है।

मानसिक आरोग्य के तीन पहलू

मानसिक आरोग्य के अर्थ, उद्देश्य और पहलुओं का विवेचन करने के बाद अब उसकी एक काम चलाऊ परिभाषा बनाई जा सकती है। इससे उसका अर्थ भी स्पष्ट होगा और उसका वैज्ञानिक अध्ययन भी हो सकेगा क्योंकि वैज्ञानिक अध्ययन में विषय की परिभाषा निश्चित करना बड़ा जरूरी है चाहे वह परिभाषा कितनी ही अपूर्ण क्यों न हो। मानसिक आरोग्य की कुछ परिभाषायें पीछे दी जा चुकी हैं। ये परिभाषायें उसके किसी विशेष पहलू पर अधिक जोर देती हैं। एक दो परिभाषायें कुछ अधिक व्यापक हैं जैसे आधुनिक शिक्षा के विश्व कोष (Encyclopaedia of Modern Education) में मानसिक आरोग्य की परिभाषा मानव समंजन तथा निष्पत्ति (Adjustment and achievement) के प्रति उस दृष्टिकोण (Approach) के रूप में की गई है जिसका सम्बन्ध संवेगात्मक असमंजन (Emotional Maladjustment) की रोकथाम (Prevention) और व्यक्ति को कुशलता से काम करने लायक बनाने से है। शिक्षा शब्द कोष (Dictionary of Education) के अनुसार मानसिक आरोग्य वह विज्ञान है जो मानसिक स्वास्थ्य की उन्नति (Promotion of Mental Health) तथा मानसिक गड़बड़ (Mental Disorder) को रोकने के नियमों तथा व्यवहारों (Principles and Practices) का अध्ययन करता है। उपरोक्त दोनों ही परिभाषायें अन्य परिभाषाओं से बेहतर होते हुए भी अपूर्ण हैं क्योंकि इनमें मानसिक आरोग्य के तीनों पहलुओं पर जोर नहीं डाला गया है। अन्त में यह कहा जा सकता है कि मानसिक आरोग्य वह विज्ञान है जोकि मानसिक रोगों, व्यक्तित्व की गड़बड़ियों और व्यतिक्रम के निराकरण और रोकथाम के नियमों तथा उपायों का अध्ययन करता है और व्यक्तित्व के सन्तुलन, समंजन तथा स्वस्थ विकास के रचनात्मक उपायों का पता लगाता है।

मानसिक आरोग्य की परिभाषा

☆

प्रश्न २२—मानसिक आरोग्य के क्षेत्र का वर्णन कीजिये।

मानसिक आरोग्य का क्षेत्र
(Scope of Mental Hygience)

मानसिक आरोग्य में मानसिक दोषों, रोगों और असामान्यताओं के निराकरण के साथ-साथ उनका निरोध और मानसिक स्वास्थ्य, सन्तुलन, आनन्द, समंजन आदि का संरक्षण भी आता है। जाहिर है कि मानसिक आरोग्य का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। उसमें मनुष्य का पूरा जीवन आ जाता है। सभी मनुष्यों को मानसिक आरोग्य की जरूरत है। बालक बालिकायें, युवक-युवतियाँ, नई-नई परिस्थितयों से समंजन करने में अनेक कठिनाइयाँ महसूस करते हैं जिनसे मानसिक उलझनें पैदा होती हैं और मानसिक स्वास्थ्य को हानि पहुँचने की सम्भावना होती है। अतः उनको मानसिक आरोग्य की सबसे अधिक जरूरत होती है। बुढ़ापे में आदमी की शक्ति कम हो जाती है, वक्त गुजारने को कोई काम भी नहीं रहता, लड़के अपने परिवारों को लेकर मग्न हो जाते हैं, लड़कियाँ अपनी ससुराल चली जाती हैं। रिटायर हो जाने से आदमी का रास्ता भी बन्द हो जाता है। मौत अलग मुँह बाये खड़ी रहती है। आये दिन कुछ न कुछ बीमारी लगी रहती है। अतः मानसिक सन्तुलन खो जाने का बड़ा डर रहता है। ऐसी हालत में अगर जीवन-साथी की भी मौत हो जाय तो समझिये की आखिरी सहारा भी गया। बचपन में माँ और बुढ़ापे में पत्नी के मरने से बड़ा धक्का और क्या हो सकता है? अतः बूढ़ों को मानसिक आरोग्य की सबसे अधिक जरूरत रहती है। बच्चों, बूढ़ों के अलावा बहुत से वयस्कों को भी मानसिक आरोग्य की बड़ी जरूरत रहती है क्योंकि किन्हीं कारणों से उनका व्यक्तित्व सन्तुलित नहीं होता। इस वर्ग में आते हैं शराबी, जुआरी, व्यभिचारी, वेश्यागामी आदि। ये स्वयं तो मानसिक रोगी होते ही हैं इनसे समाज के स्वास्थ्य को भी भारी खतरा रहता है। इनके व्यक्तित्व विघटित (Disorganised) होते हैं और ये सामाजिक विघटन (Social Disorganisation) बढ़ाते हैं। अन्त में आते हैं वे लोग जो अपना मानसिक सन्तुलन खो चुके हैं, जो मानसिक दोषों, रोगों अथवा व्याधियों के शिकार हैं। इनकों मानसिक चिकित्सा की जरूरत रहती है।

मानसिक आरोग्य का क्षेत्र बड़ा व्यापक है

मानसिक आरोग्य के क्षेत्र के उपरोक्त विवेचन में उसके निराकरणात्मक और विरोधात्मक पहलू आते हैं। परन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है मानसिक आरोग्य का एक संरक्षणात्मक पहलू भी है। अतः स्वस्थ व्यक्तियों को भी मानसिक आरोग्य की जरूरत है। दूसरे शब्दों में, मानसिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति की मानसिक आरोग्य के क्षेत्र में आते हैं। वास्तव में स्वस्थ और अस्वस्थ सापेक्ष (Relative) शब्द हैं। व्यावहारिक जीवन में किसी

स्वस्थ व्यक्तियों को भी मानसिक आरोग्य की जरूरत है।

भी व्यक्ति को पूरी तरह सामान्य (Normal) और स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। दूसरे यदि कोई व्यक्ति इस समय सन्तुलित है भी तो इससे यह गारन्टी नहीं होती कि वह आगे भी ऐसा ही रहेगा। मानव का परिवेश से समंजन कोई स्थिर दशा (Condition) न होकर एक सतत परिवर्तनशील गत्यात्मक (Dynamic) प्रक्रिया है। समंजन का सवाल बराबर बना रहता है क्योंकि मनुष्य की परिस्थितियों में कुछ न कुछ परिवर्तन बराबर हुआ करता है। अतः जिस व्यक्ति का समंजन इस समय ठीक भी है उसका पता नहीं कब सन्तुलन बिगड़ जाये। इसलिये सन्तुलन बनाये रखने के लिये उसको भी मानसिक आरोग्य की जरूरत है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मानसिक आरोग्य के क्षेत्र में बड़े, वूढ़े, किशोर, स्त्री, पुरुष, स्वस्थ, अस्वस्थ सभी आयु और दशाओं के सभी व्यक्ति आ जाते हैं। उसका क्षेत्र परिवार, स्कूल, कारखाने, आफिस, दुकान, बाजार, सभा सोसाइटी सभी जगह है। उसकी जरूरत सभी मानव सम्बन्धों और क्रियाओं में है।

✲

प्रश्न २३—मानसिक आरोग्य का क्या मूल्य है ? भारत में मानसिक आरोग्य का महत्व बतलाइये।

मानसिक आरोग्य का मूल्य
(Value of Mental Hygiene)

मानसिक आरोग्य के अर्थ और क्षेत्र के विवेचन से उसका मूल्य भी स्पष्ट होता है। मानसिक आरोग्य का मूल्य केवल मानसिक दोषों, रोगों और असन्तुलनों को रोकने और दूर करने में ही नहीं बल्कि मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखने में भी है। मानसिक आरोग्य का मूल्य बच्चे वूढ़े, युवक, युवती, स्त्री, पुरुष, स्वस्थ, पागल सभी के लिये है। सभी को उसकी जरूरत है। जैसे जिसके पास शरीर है उसको शारीरिक आरोग्य की जरूरत है उसी तरह से जिसमें भी मानसिक प्रक्रियायें हैं उसके लिये मानसिक आरोग्य का मूल्य है। इस तरह मानव जीवन के सभी क्षेत्रों में, परिवार, स्कूल, खेल का मैदान, व्यवसाय, आफिस, कारखाने, दुकान सभी जगह मानसिक आरोग्य की जरूरत है एवं उसका महत्व है।

मानसिक आरोग्य का मूल्य सभी जगह है

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि मानसिक आरोग्य का मूल्य सभी जगह एक-सा ही है। जैसे शारीरिक आरोग्य की सबसे ज्यादा जरूरत रोगी या रोग की सम्भावना वाले व्यक्ति को होती है उसी तरह मानसिक आरोग्य की सबसे अधिक जरूरत मानसिक रोगी या मानसिक असन्तुलन की सम्भावना वाले व्यक्ति को होती है। मानसिक रोगियों में असन्तुलित, झक्की तथा विक्षिप्त से लेकर पागल तक सभी वर्ग के मानसिक रोगी आते हैं। मानसिक असन्तुलन की सम्भावना वाले व्यक्ति हैं किशोर, वूढ़े और बदचलन लोग। इसी तरह यूं तो जीवन में सब कहीं, हर किसी

स्थान पर, जहाँ-जहाँ मानव सम्बन्ध हैं वहाँ मानसिक आरोग्य की भी जरूरत है मगर उसकी सबसे अधिक जरूरत परिवार और स्कूल में है क्योंकि ये ही दो संस्थायें मानसिक स्वास्थ्य की सबसे बड़ी संरक्षक हैं। अतः मानसिक आरोग्य के मूल्य को भली प्रकार समझने के लिये परिवार में, स्कूल में तथा मानसिक रोगियों, किशोरों, बूढ़ों और बदचलनों के लिये उसके महत्व को समझना पड़ेगा।

अधिकतर मनोवैज्ञानिक इस बात को मानते हैं कि बालक के व्यक्तित्व पर जीवन के पहले पाँच छः सालों में जो असर पड़ता है उसी से आगे आने वाले तमाम जीवन में उसका व्यवहार निश्चित होता है। परिवार में ही बालक संवेगों, विचारों, भावनाओं आदि को जाहिर करना, रोकना और परिष्कृत करना सीखता है। परिवार में ही वह स्नेह, सहानुभूति, भाईचारा आदि सामाजिक गुणों का विकास करता है। परिवार में ही वह छोटे-बड़े और बराबर वालों के साथ व्यवहार करना सीखता है। अतः यदि परिवार की किसी परिस्थिति का उस पर बुरा प्रभाव पड़ता है तो उससे उसके मानसिक स्वास्थ्य को बड़ी हानि पहुँचेगी। स्पष्ट है कि देश के भावी नागरिकों के मानसिक स्वास्थ्य के संरक्षण के लिये परिवार में मानसिक आरोग्य की भारी जरूरत है। केवल बालक के रूप में ही नहीं बल्कि पति और पिता, पत्नि और माता के रूप में भी मनुष्य के व्यक्तित्व पर परिवार का असर रहता है। परिवार की संस्था मनुष्य के साथ पैदा होने से मरने तक लगी रहती है। परिवार के किसी भी सदस्य के मानसिक रोगी या असन्तुलित होने से पूरे परिवार पर असर पड़ता है। अतः परिवार में मानसिक अस्वस्थता की रोकथाम और निवारण के साथ-साथ मानसिक स्वास्थ्य का संरक्षण जरूरी है। इसके बिना परिवार की सुख-शान्ति कायम नहीं रह सकती। परिवार में मानसिक अस्वस्थता और सुधार रोकथाम के उपायों का वर्णन आगे किया जायेगा।

परिवार में मानसिक आरोग्य

परिवार के बाद व्यक्ति के विकास में उसके स्कूल का महत्व है। स्कूल में बालक के व्यक्तित्व पर उसके अध्यापकों और सहपाठियों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। स्कूल में वह आत्म-निर्भरता, आत्मविश्वास और स्वावलम्बन का पाठ पढ़ता है। यहाँ वह मुस्किलों से भाग कर अपनी माँ की गोद में नहीं छिप सकता, न ही उसका पिता उसको बचाने आता है। अतः उसे स्वयं सबसे यथायोग्य व्यवहार करना पड़ता है, स्वयं अपना स्थान ढूंढना पड़ता है। इस प्रयत्न में हताशायें (Frustrations) आना स्वाभाविक है और बालक के व्यक्तित्व के सन्तुलन के बिगड़ने तथा उसमें मानसिक उलझने पैदा होने का डर है। इस अस्वस्थ विकास की रोकथाम के लिये तथा मानसिक स्वास्थ्य के संरक्षण के लिये स्कूल में मानसिक आरोग्य का बड़ा भारी महत्व है।

स्कूल में मानसिक आरोग्य

यूँ तो मानसिक आरोग्य की जरूरत मनुष्य को हमेशा रहती है परन्तु किशोरावस्था में उसका मूल्य सबसे अधिक है। किशोरावस्था (Adolescence)

किशोरावस्था में मानसिक आरोग्य

व्यक्तित्व के विकास में सबसे अधिक परिवर्तनशील अवस्था है। इसमें शारीरिक, मानसिक सभी तरह का विकास बड़ी तेजी से होता है। बालक बालिका में तरुण होने के शारीरिक लक्षण प्रकट होने लगते हैं। लड़के के दाढ़ी-मूंछ आने लगती है और आवाज भारी हो जाती है। लड़कियों के स्तन बढ़ने लगते हैं और अंगों में गोलाई आने लगती है। इस शारीरिक परिवर्तन के साथ-साथ मानसिक परिवर्तन भी दिखाई देने लगते हैं। अब वे अपने को बच्चा समझा जाना पसन्द नहीं करते। वे चाहते हैं कि उनकी गिनती भी बड़ों में की जाय। इसकी जल्दबाजी में कुछ लड़के समय से पहले ही ब्लेड इस्तेमाल करके कृत्रिम रूप से दाढ़ी-मूंछ बढ़ाने की कोशिश करते भी देखे जाते हैं। इस उम्र में कल्पनाशीलता तथा भावुकता अत्यधिक बढ़ जाती है। भिन्न लिंगीय व्यक्तियों के प्रति आकर्षण बढ़ जाता है और यौन सम्बन्धी जिज्ञासा असाधारण रूप से तीव्र हो जाती है। किशोर के सामने भविष्य की चिन्ता भी आने लगती है और वह अपने भविष्य के बारे में सोचना तथा कल्पना करना शुरू कर देता है। किशोरावस्था की इन विविध समस्याओं के दिग्दर्शन से स्पष्ट है कि इस अवस्था में मानसिक स्वास्थ्य के संरक्षण और मानसिक दोषों तथा व्यक्तित्व के असन्तुलन की रोकथाम की सबसे अधिक जरूरत है।

वृद्धों और बदचलन लोगों के लिये मानसिक आरोग्य का महत्व

जैसा कि पहले कहा जा चुका है बुढ़ापे में व्यक्ति का मानसिक सन्तुलन ठीक रहना एक समस्या बन जाती है अतः बूढ़ों को मानसिक आरोग्य के नियमों तथा विधियों से बड़ा लाभ हो सकता है। बदचलन लोगों में शराबी, अपराधी, वेश्यागामी, वेश्यायें तथा समाज विरुद्ध काम करने वाले लोग आते हैं। इनके दोषों का बहुत कुछ निराकरण मानसिक आरोग्य के नियमों तथा विधियों से किया जा सकता है। इस प्रकार मानव जीवन में मानसिक आरोग्य का महत्व सर्वव्यापी है। उसका सब कहीं प्रयोग किया जा सकता है यद्यपि उससे समुचित लाभ उसको प्रयोग करने वालों की कुशलता और परिस्थितियों के काबू में आने पर निर्भर है।

विज्ञान के रूप में मानसिक आरोग्य का महत्व

मानसिक आरोग्य एक विज्ञान है। वह मानसिक स्वास्थ्य के संरक्षण तथा मानसिक अस्वस्थता की रोक-थाम और निराकरण के नियमों और विधियों का अध्ययन करता है। अतः व्यक्तिगत, घरेलू, सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन में, विभिन्न वर्गों, लिंगों, उम्रों, रंगों, समुदायों तथा जातियों के लोगों अन्तर्सम्बन्धों में, दूकानों, कारखानों, आफिसों और व्यवसायों में सब कहीं सब समय मानसिक आरोग्य से फायदा उठाया जा सकता है। यहीं मानसिक आरोग्य का मूल्य है। उससे वास्तव में कितना कम लाभ उठाया जाता है इससे उसका मूल्य कम नहीं होता। विज्ञान तटस्थ (Neutral) होता है।

वह स्वयं किसी को लाभ पहुँचाने नहीं आता। मनुष्य को ही उससे फायदा उठाना होता है। मनुष्य उसका फायदा ले या न ले इससे उसका मूल्य नहीं घटता। अस्तु मानसिक आरोग्य का मूल्य स्वयं सिद्ध है।

यहाँ पर भारत में मानसिक आरोग्य के विशेष महत्व का जिक्र करना प्रासंगिक होगा। भारत में राष्ट्रीय स्तर पर अनेक ऐसी समस्यायें हैं जिनका सुलझाव मानसिक आरोग्य पर बहुत कुछ निर्भर है। इस तरह की एक समस्या हिन्दू-मुस्लिम तथा अन्य सम्प्रदायों में साम्प्रदायिक तनावों (Communal tensions) की समस्या है। एक दूसरी बड़ी समस्या कालेजों और विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता की समस्या है। इधर प्रदेशवाद (Regionalism) की समस्या उग्र हो गई है जिसका एक उदाहरण पंजाबी सूबा आन्दोलन है। भाषा के प्रश्न को लेकर भी भयंकर तनाव दिखाई पड़ रहे हैं। आसाम के दंगे इस बात के प्रमाण हैं। जातिवाद की समस्या भी मूल रूप से मानसिक ही है। देश में अपराधों, विशेषतः किशोरापराधों की वृद्धि में मानसिक पहलू भी महत्वपूर्ण है। जनतन्त्र की राह में सबसे बड़े रोड़े भ्रष्टाचार और दलबन्दी मानसिक विकारों के परिणाम हैं। इस विवेचन का मतलब यह नहीं है कि मानसिक आरोग्य इन समस्याओं का एकमात्र और पूर्ण हल है। इस विवेचन का तात्पर्य केवल यह बतलाना है कि इन सभी तथा मानव सम्बन्धों की अन्य समस्याओं में एक मानसिक पहलू भी होता है जिसमें मानसिक आरोग्य के सिवा किसी अन्य का प्रवेश नहीं है। अतः जहाँ तक उस पहलू का सवाल है मानसिक आरोग्य का महत्व जाहिर है। इस दृष्टि से विचार करने पर समाज सुधारक, राजनैतिक नेता और देश के कर्णधार इन समस्याओं को अधिक सफलतापूर्वक सुलझा सकेंगे।

भारत में मानसिक आरोग्य का महत्व

*

प्रश्न ३४—मानसिक स्वास्थ्य क्या है? उसका मानसिक आरोग्य से क्या सम्बन्ध है? मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति के लक्षण बतलाइए।

मानसिक स्वास्थ्य क्या है?

(What is Mental Health?)

Mental Hygiene in Public Health नामक पुस्तक में पी० वी० ल्यूकन (P. V. Lewken) ने लिखा है "मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति वह है जो स्वयं सुखी है, अपने पड़ोसियों में शान्तिपूर्वक रहता है, अपने बच्चों को स्वस्थ नागरिक बनाता है और इन आधारभूत कर्त्तव्यों को करने के बाद भी जिसमें इतनी शक्ति बच जाती है कि वह समाज के हित के लिये भी कुछ कर सके।"

मानसिक स्वास्थ्य की परिभाषा

मानसिक स्वास्थ्य रहने पर व्यक्ति अपने परिवेश से भली प्रकार समंजन कर पाता है

और अपनी, अपने परिवार की तथा अपने समाज की उन्नति के लिये कोशिश करता है। The Human Mind नामक पुस्तक में मैनिंगर (K. A. Menninger) लिखता है "हम मानसिक स्वास्थ्य की परिभाषा अधिकतम प्रभावोत्पादकता और आनन्द के साथ मानव प्राणियों का दुनिया से और परस्पर समंजन के रूप में कर सकते हैं।··· वह एक सम स्वभाव, एक तीव्र बुद्धि, सामाजिक रूप से संतुलित व्यवहार और एक आनन्दमय स्नायुविन्यास बनाये रखने की योग्यता है।"* जैसा कि इस परिभाषा से स्पष्ट है समंजन मानसिक स्वास्थ्य का मुख्य लक्षण है। वह जितना अधिक होगा मानसिक स्वास्थ्य भी उतना ही अधिक माना जा सकता है। वह जितना कम होगा उतनी ही मानसिक अस्वस्थता होगी। स्वस्थ व्यक्ति हर नई परिस्थिति को समझकर अपने को उसके अनुकूलन बना लेता है या फिर परिस्थिति को ही बदल देता है। वह हर परिस्थिति का खुशी से स्वागत करता है। वह जीवन के प्रति स्वस्थ और उदार दृष्टिकोण रखता है। वह जानता है कि मुश्किलें सभी की जिन्दगी में आती हैं, इसलिये उनसे भागना कायरता है, उनका मुकाबला करने से ही उनको सुलझाया जा सकता है।

मानसिक स्वास्थ्य और मानसिक आरोग्य

इस प्रकार मानसिक जीवन का एक ऐसा तरीका है जिससे व्यक्ति का परिवेश से भली प्रकार समंजन बना रहता है। कट्स और मोसले (N. E. Cutts and N. Moseley) ने भी मानसिक स्वास्थ्य की परिभाषा में समंजन के तत्व पर जोर दिया है। उनके अनुसार "हम कह सकते हैं कि मानसिक स्वास्थ्य वह योग्यता है जिससे हम जीवन की कठिन परिस्थितियों से अपना सामंजस्य स्थापित करते हैं और मानसिक आरोग्य वह साधन है जो इस सामंजस्य को सम्भव बनाता है।" इस परिभाषा से मानसिक स्वास्थ्य और मानसिक आरोग्य का सम्बन्ध तथा अन्तर भी मालूम पड़ता है। मानसिक आरोग्य मानसिक स्वास्थ्य का साधन है। दूसरे शब्दों में, मानसिक आरोग्य वह विज्ञान है जो कि मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त करने, बनाये रखने तथा मानसिक अस्वस्थता दूर करने के नियमों और साधनों का अध्ययन करता है। मानसिक स्वास्थ्य साध्य है और मानसिक आरोग्य साधन है।

मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति के लक्षण

मानसिक स्वास्थ्य को भली प्रकार समझने के लिये मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति के मुख्य लक्षणों को जान लेना लाभदायक होगा। वास्तव में शारीरिक स्वास्थ्य की तरह मानसिक स्वास्थ्य भी एक दशा (Condition) है। इस दशा को उसके लक्षणों से ही पहचाना जा सकता है। स्थूल रूप से मानसिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति के मुख्य लक्षण अग्रलिखित हैं—

---

*"Let us define mental health as the adjustment of human beings to the world and to each other with a maximum of effectiveness and happiness...... It is the ability to maintain an even temper, an altert intelligence, socially considerate behaviour and a happy disposition." —K. A. Menninger.

(१) आत्म-मूल्यांकन (Self-Evaluation)—मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति को अपनी सीमाओं का पता रहता है। वह स्वयं अपना सही मूल्यांकन करता है। वह अपने दोषों को सहज ही मान लेता है और उनको दूर करने की कोशिश करता है। वह अपने ऊपर नजर रखता है ताकि अपनी प्रवृत्तियों को जानता रहे और उनको सही दिशा में मोड़ सके। वह अन्तःपेक्षण (Introspection) करता है ताकि अपनी उलझनों, पूर्वधारणाओं, कठिनाइयों आदि का विश्लेषण करके उन्हें कम से कम कर सके।

(२) समंजनशीलता (Adjustibility)—जैसा कि पहले बताया जा चुका है मानसिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति की एक खास पहचान यह है कि कम से कम क्षोभ के साथ नई परिस्थितियों से समंजन कर लेता है। उसको बीते हुए दिनों की याद नहीं सताती। वह बुढ़ापे में जवानी को और जवानी में बचपन को याद करके नहीं रोता। बीती हुई बातों की यादें उसको परेशान नहीं करतीं। वह वर्तमान का पूर्ण उपयोग करता है और नई परिस्थितियों से समंजन कर लेता है। इसका अर्थ यह नहीं कि वह बेपेंदी का लोटा है जब चाहे जिधर लुढ़का दिया जाये। उसके अपने विचार, अपनी रायें होती हैं परन्तु वह परिस्थितियों से शान्तिपूर्वक निबटता है, उनसे डरता नहीं, उनसे घबराता नहीं, उनसे भागता नहीं और उनकी शिकायत भी नहीं करता। वह जानता है कि परिवर्तन जीवन का नियम है और इसलिये वह हर परिवर्तन के लिये तैयार रहता है और उसमें से अपना रास्ता निकाल लेता है। वह समाज का हित करना चाहता है और यदि इसके लिये उसको समाज का विरोध भी सहन करना पड़े तो घबराता नहीं। वह बड़ी से बड़ी आफतों में अडिग रहता है। वह सदैव परिस्थितियों के अनुसार बदलता नहीं रहता बल्कि बहुधा उनको अपने अनुसार बदल देता है। महात्मा गांधी, ईसा, मुहम्मद आदि ऐसे ही लोग थे। परिस्थितियों से असंतोष कोई बुराई नहीं है। बुराई है परिस्थितियों से भाग जाना और उनके लिये रोना। कमजोर व्यक्ति परिस्थितियों से संतुष्ट होकर मानसिक उलझनों और रोगों का शिकार हो जाता है। महापुरुष परिस्थितियों से असन्तुष्ट होकर भी जी जान से उनको बदलने में लग जाते हैं। सच पूछिये तो समंजन में इतना अधिक महत्व बाहरी परिस्थिति का नहीं जितना अपनी मनःस्थिति का है। मनःस्थिति ठीक रहने पर बाहरी परिस्थिति व्यक्ति की सुखशान्ति और सन्तुलन पर बहुत कम असर कर सकती है।

(२) परिपक्वता (Maturity)—बौद्धिक तथा संवेगात्मक (Emotional) परिपक्वता मानसिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति की एक विशेष पहचान है। परिपक्व मस्तिष्क (Mature Mind) वाला व्यक्ति अपने ज्ञान को बढ़ाता रहता है, जिम्मेदारी से व्यवहार करता है, अपने विचारों और भावनाओं को स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है, और दूसरे के विचारों और भावनाओं से सहानुभूति प्रकट कर सकता है। परिपक्वता में लैंगिक ररिपक्वता (Sexual Maturity) का बड़ा महत्व है। स्वस्थ व्यक्ति

लैंगिक विषयों में एक वयस्क, संतुलित और सुसंस्कृत व्यक्ति की तरह व्यवहार करता है।

(४) नियमित जीवन (Regular Life)—मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने में आदतों का बड़ा महत्व है। रहने-सहने, खाने-पीने, सोने-जागने आदि में निश्चित आदतें बन जाने से वे नियमित हो जाते हैं और उनमें व्यर्थ शक्ति और समय नष्ट नहीं होता। बहुत से लोग छोटी-छोटी दैनिक बातों को लेकर परेशान रहते हैं। कुछ स्त्रियों को बाहर जाने के लिए अपनी साड़ी ब्लाउज का चुनाव करने में इतनी कठिनाई होती है कि एक खासी मानसिक उलझन पैदा हो जाती है। कुछ लोगों को हमेशा यह शक रहता है कि उनकी टाई ठीक नहीं बंधी है और उसे बांधने में काफी वक्त खराब करने के बाद भी वे जब देखो तब उसे ठीक ही करते रहते हैं। ये मानसिक स्वास्थ्य के लक्षण नहीं हैं। स्वस्थ व्यक्ति जीवन के हर एक काम को बड़े स्वाभाविक तरीके से तथा बगैर किसी उलझन के कर लेते हैं। उनका जीवन बड़ा सधा हुआ और सुलझा हुआ दिखाई पड़ता है।

(५) एकांगिता का अभाव (Absense of Extremism)—अरस्तू ने आदर्श व्यक्ति में सब तरह की अति का अभाव माना है। 'अति सर्वत्र वर्जयेत' मानसिक स्वास्थ्य के लिये एक उत्तम सिद्धान्त है। किसी भी वासना को हद से ज्यादा बढ़ा लेने पर वह मनुष्य का मानसिक स्वास्थ्य खतरे में डाल सकती है। कुछ स्त्रियाँ चटोरपन के कारण हर तरह की तकलीफें उठाती हैं, अपमान सहती हैं मगर अपनी आदत से बाज नहीं आतीं। जरूरत से ज्यादा साहसिक व्यक्ति अक्सर दुर्घटना के शिकार होते हैं। अत्यधिक बोलने वाले व्यक्ति को बहुधा पछताने का मौका आ जाता है। अत्यधिक कामुक व्यक्ति अपना स्वास्थ्य शीघ्र खो बैठते हैं। अत्यधिक महत्वाकांक्षा आदमी को कभी चैन से नहीं सोने देती। अतः मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखने के लिये जीवन सर्वांगीण (Integral) होना चाहिए, रुचियाँ विविध और व्यक्तित्व संतुलित होना चाहिए। एकांगिता मानसिक स्वास्थ्य का सबसे बड़ा खतरा है।

(६) सन्तोषजनक सामाजिक समंजन (Satisfactory Social Adjustment)—जैसा कि पहले कहा जा चुका है मानसिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति समाज में अच्छा समंजन रखता है और समाज की भलाई के लिये भी कुछ न कुछ करता है क्योंकि आधुनिक समाज में परस्पर सहयोग से हर एक के व्यक्तित्व का विकास हो सकता है। सामाजिक सम्बन्ध हर एक व्यक्ति के जीवन में होते हैं। ये सम्बन्ध जितने ही सन्तुलित और सुलझे हुए होंगे, मानसिक स्वास्थ्य उतना ही अच्छा रह सकेगा। दूसरों के साथ दुर्व्यवहार तथा दूसरों द्वारा दुर्व्यवहार दोनों ही मानसिक उलझनों और रोगों के कारण हो सकते हैं। अतः सद्व्यवहार और सद्भाव सभी के लिये जरूरी हैं।

(७) मुख्य कार्य में सन्तोष (Satisfaction from Chief Occupation)—मानसिक स्वास्थ्य के लिये यह जरूरी है कि हर एक व्यक्ति अपने मुख्य कार्य में संतोष

अनुभव करे। जो विद्यार्थी केवल पास होने के लिए पढ़ता है जिसे पढ़ाई में कोई आनन्द नहीं आता, वह न तो अच्छा विद्यार्थी है और न स्वस्थ व्यक्ति है। रुपये की परवाह किये बिना स्वस्थ प्रोफेसर पढ़ाने में, स्वस्थ लेखक लिखने में, स्वस्थ दूकानदार व्यापार में तथा स्वस्थ मजदूर काम करने में रुचि लेता है। रुपया तो काम से मिलना ही है यदि उसी के लिये काम किया तो उतना वक्त व्यर्थ बर्बाद हुआ। यदि काम में रुचि हो तो रुपया भी अधिक मिलेगा और समय का सही इस्तेमाल होगा तथा आनन्द और सन्तोष बढ़ेगा। बल्कि काम में रुचि होने से व्यापार में हानि होने पर भी कुछ न कुछ आनन्द और सन्तोष तो बना ही रहता है, कम से कम उतनी ग्लानि नहीं होती।

मानसिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति के उपरोक्त लक्षणों में सभी बातें नहीं आतीं परन्तु फिर भी इससे मानसिक स्वास्थ्य की बहुत कुछ सही कल्पना हो सकती है। इस प्रकार मानसिक स्वास्थ्य वह मानसिक दशा है जिसमें व्यक्ति में आत्म मूल्यांकन, समंजनशीलता, परिपक्वता, नियमित जीवन, एकांगिता का अभाव, सन्तोषजनक सामाजिक समंजन तथा मुख्य कार्य अथवा व्यवसाय में सन्तोष आदि लक्षण दिखलाई पड़ते हैं। पूर्ण मानसिक स्वास्थ्य एक आदर्श है। जिस व्यक्ति में उपरोक्त गुण जितने अधिक होंगे वह इस आदर्श के उतना ही निकट होगा।

☆

प्रश्न २५—मानसिक अस्वस्थता के कारणों की संक्षेप में विवेचना कीजिए।
(यू० पी० बोर्ड १९६५)

मानसिक अस्वस्थता मानसिक स्वास्थ्य की विपरीत अवस्था है। अतः मानसिक अस्वस्थता के शिकार व्यक्ति में उन लक्षणों का अभाव दिखलाई पड़ेगा जो कि मानसिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति में दिखलाई पड़ते हैं। ऐसा व्यक्ति अपने दोषों को नहीं समझ पाता और अपनी कमियों के लिये दुनिया भर को दोष दिया करता है। वह अपनी घरेलू, व्यावसायिक और सामाजिक परिस्थितियों में समंजन नहीं कर पाता। बौद्धिक और संवेगात्मक पहलुओं से वह बड़ा अपरिपक्व दिखलाई पड़ता है। उसका लैंगिक जीवन सामान्य नहीं होता, उसका जीवन बड़ा अनियमित होता है। वह कब क्या करे, इसके बारे में पहले से कुछ नहीं कहा जा सकता। उसका जीवन बड़ा एकांगी होता है। वह अत्यधिक कामुक, चटोरा या क्रोधी होता है। उसके संवेग बड़े तीव्र होते हैं और उनको जाहिर करने में वह दूसरों की बिल्कुल परवाह नहीं करता। उसको अपने व्यवसाय या जीवन के मुख्य कार्य में कोई रुचि नहीं होती। यह जरूरी नहीं है कि हर एक मानसिक अस्वस्थ व्यक्ति में ये सब लक्षण दिखलाई पड़ें परन्तु इसमें से किसी भी लक्षण के दिखलाई पड़ने पर मानसिक अस्वस्थता का सन्देह किया जा सकता है। इनके अलावा भी और कितने ही लक्षण

मानसिक अस्वस्थता क्या है ?

मानसिक अस्वस्थता के परिचायक हैं। इन सब का संक्षिप्त वर्णन करने के लिये भी एक पूरी पुस्तक की जरूरत होगी मगर स्थूल रूप से ऊपर दिये गए लक्षणों से मानसिक अस्वस्थता को पहचाना जा सकता है।

मानसिक अस्वस्थता एक सापेक्ष शब्द है। इसमें कितनी ही प्रकार की विकृतियाँ आती हैं। असामान्य व्यवहार से लेकर पागलपन (Insanity) तक मानसिक अस्वस्थता के कितने ही स्तर हैं। मानसिक अस्वस्थता के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

मानसिक अस्वस्थता के कुछ उदाहरण

(१) लैंगिक विकृतियाँ (Sexual Perversions)—जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है मानसिक अस्वस्थता में व्यक्ति का लैंगिक व्यवहार सामान्य नहीं होता। सामान्य रूप से लैंगिक विकास में व्यक्ति वयस्कावस्था में भिन्नलिंगीय व्यक्ति के साथ प्रेम करके आनन्द प्राप्त करता है। लैंगिक विकृतियाँ स्वयं मानसिक अस्वस्थता की सूचक हैं और मानसिक अस्वस्थता को बढ़ाती है। हस्तमैथुन (Masturbation) गुदाद्वार (Anal) से लैंगिक सुख लेना, दूसरों को पीड़ा पहुँचाने में लैंगिक आनन्द लेना (Sadism), अपने को पीड़ा पहुँचाने में लैंगिक आनन्द लेना (Masochism), दूसरों को नंगा देखने में ही रुचि लेना (Scaptophilia), दूसरों के स्पर्श से ही लैंगिक सुख लेना (Frotteurism), दूसरों को अपने लैंगिक अंग दिखलाना (Exhibitionism), समलिंगीय व्यक्ति से लैंगिक आनन्द लेना (Homosexuality), भिन्न लिंगीय व्यक्ति के कपड़े पहनना (Transvestism), बच्चों से लैंगिक सुख लेना (Infanto Sexuality), पशुओं से लगिक सुख लेना (Betio Sexuality) तथा शव में लैंगिक सुख लेना (Nacrophilia) आदि लैंगिक विकृतियाँ मानसिक दोषों के सूचक हैं। बहुत से राज्यों में इनमें से अनेक विकृतियों के लिये सख्त सजा का नियम है। परन्तु सजा से अधिक इस प्रकार के व्यक्तियों के मानसिक उपचार की जरूरत है।

(२) दैनिक मनोविकृतियाँ (Psychopathology of Everyday life)—यूँ तो बोलने, लिखने तथा काम करने आदि की भूलों को मानसिक अस्वस्थता का सूचक नहीं माना जा सकता मगर यदि ये अत्यधिक बढ़ जायें या बहुत ही असामान्य प्रकृति की हों तो वे न केवल मानसिक अस्वस्थता की सूचक हैं बल्कि उनसे व्यक्ति के समंजन में भारी बाधायें आ सकती हैं। इनके विश्लेषण से अनेक मानसिक दोषों का पता लगाया जा सकता है। फ्रॉयड (Freud) ने इनका विस्तृत वर्णन किया है।

(३) मनोस्नायु विकृतियाँ (Psychoneurosis)—कभी आपने किसी ऐसी स्त्री को देखा होगा जिसको समय-समय पर दौरे से पड़ते हैं और वह अण्ड-बण्ड बकने लगती है परन्तु थोड़ी देर बाद वह अपने आप स्वस्थ हो जाती है तथा स्वस्थ हालत में एकदम सामान्य मालूम पड़ती हैं। यह पागल नहीं है। यह मनोस्नायु विकृति की शिकार है। मनोस्नायु विकृति एक प्रकार का मानसिक रोग है। मानसिक रोग दो प्रकार के होते हैं—मनोस्नायु विकृति और मनोविकृति (Psychosis)। अत्यधिक

और व्यर्थ की चिन्ता, किसी बेकार के काम जैसे खुण्डी खटखटाने, हाथ माँजने आदि को बार-बार करने को मजबूर होना तथा हिस्टीरिया (Hysteria) आदि मनोस्नायु विकृति के कुछ उदाहरण हैं।

(४) मनोविकृतियाँ (Psychoses)—मनोविकृति मनोस्नायु विकृति से बदतर मानसिक अस्वस्थता है। बहुधा इसका इलाज करना कठिन हो जाता है। इसमें व्यक्ति पागल जैसा मालूम पड़ता है। उसकी भाषा और चिन्तन क्रियायें तर्कहीन, असंगत और निरर्थक होती हैं। वह अपने काम भी खुद नहीं कर सकता। उसमें आत्म संयम नहीं होता और बहुधा आत्महत्या की प्रवृत्ति पाई जाती है। उसका व्यक्तित्व पूरी तरह असामान्य बन जाता है। वह अपने रोग तक को नहीं जानता। मनोविकृतियों में अक्सर शीघ्र मृत्यु हो जाती है।

मानसिक अस्वस्था के लक्षणों को जान लेने के बाद अब उसके कारणों की जांच की जा सकती है। स्थूल रूप से इसके कारणों को निम्नलिखित तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है :—

मानसिक अस्वस्थता के कारणों का वर्गीकरण

(१) समंजन में बाधक कारक (Factors thwarting Adjustment)—जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है मानसिक स्वास्थ्य का मूल समंजन है। इसमें बाधा पड़ने पर मानसिक स्वास्थ्य नहीं बना रह सकता। अतः समंजन में बाधक कारक मानसिक अस्वस्थता के कारण हैं।

(२) मानसिक अस्वस्थता की प्रवृत्ति उत्पन्न करने वाले कारक (Factors Predisposing Mental Illness)—इनमें ऐसे कारक आते हैं जो सीधे मानसिक रोग तो नहीं उत्पन्न करते परन्तु जिनके कारण मानसिक अस्वस्थता की ओर प्रवृत्ति अवश्य उत्पन्न हो जाती है और यदि इन कारकों को हटाया न गया तो यह प्रवृत्ति मानसिक रोग में बदल जाती है।

(३) मानसिक अस्वस्थता उत्पन्न करने वाले कारक (Factors Creating Mental Illness)—इस वर्ग में वे कारक आते हैं जो कि वास्तव में मानसिक अस्वस्थता को आयोजित करते हैं और जिनके कारण मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं।

यूँ तो समंजन में बाधक कारकों को पूरी तरह गिनाना बड़ा कठिन है परन्तु फिर भी निम्नलिखित वर्गों में लगभग सभी मुख्य कारक आ जाते हैं :—

(१) परिवेशजनित कारक (Environmental Factors)—हमारे चारों ओर की परिस्थितियाँ और परिवेश अक्सर हमारे समंजन में नई-नई बाधायें, नई-नई समस्यायें खड़ी कर देते हैं। उदाहरण के लिये १९४७ के उपद्रवों के कारण लाखों व्यक्तियों को अपने घर-बार छोड़कर नई-नई जगहों पर बसना पड़ा। बहुतों के संगी-साथी, नाते-रिश्ते के लोग भी छूट गये, बहुतों की सारी

(१) समंजन में बाधक कारक

सम्पत्ति नष्ट हो गई। परिवेश के इस तरह बदल जाने से समंजन में अवश्य ही भारी बाधा उत्पन्न हो जाती है।

(२) रुचियों और चालकों का संघर्ष और विरोध (Conflict and Antegonism of Interests and Drives)—मनुष्य की रुचियाँ और महत्वाकांक्षायें बड़ी विविध हैं। मनुष्य एक ही समय में धनी, विद्वान, भोगी, नामी सब कुछ बन जाना चाहता है। परन्तु क्या ऐसा हो सकता है ? नहीं। क्योंकि वहुधा इनमें अनेक लक्ष्य परस्पर विरुद्ध होते हैं। उदाहरण के लिए विद्वान और भोगी दोनों एक साथ बनना कठिन होगा। जाहिर है कि मनुष्य की अनेक रुचियों में संघर्ष होता है। इस संघर्ष में जो भी असन्तुष्टि रह जाती है वही उसके समंजन में बाधा डालती है। इसी तरह एक ही समय में एक से अधिक चालकों के उत्तेजित हो जाने से भी व्यक्ति का सन्तुलन टूट जाता है और जीवन अस्तव्यस्त हो जाता है। उदाहरण के लिये यदि किसी विद्यार्थी में इन्द्रिय सुख-भोग और पढ़ाई दोनों के चालक समान रूप से बलवान हों तो उनकी उलझन उसका सन्तुलन अवश्य बिगाड़ देगी। आधुनिक सभ्यता में विभिन्न मूल्यों (Values) के संघर्ष ने यही परिस्थिति पैदा कर दी है। किस बात को किससे अधिक महत्वपूर्ण माना जाना चाहिये यह समझने की असमर्थता के कारण अधिकतर लोग भटक जाते हैं। एक ओर सादगी दूसरी ओर फैशन, एक ओर काम दूसरी ओर भोग, एक ओर अनुशासन दूसरी ओर स्वच्छन्दता दोनों का समर्थन करने वालों की कमी नहीं है। लड़के लड़कियों की समझ में नहीं आता किसकी बात मानें और मूल्यों के इस संघर्ष से तनाव, असमंजन तथा मानसिक अस्वस्थता बढ़ते जाते हैं।

(३) यथार्थ अथवा काल्पनिक व्यक्तिगत दोष (Real or Imagined Individual Defects)—समंजन में बाधक तीसरी तरह के कारक यथार्थ अथवा काल्पनिक व्यक्तिगत दोष हैं। कुछ लोग यह मान बैठे हैं कि उनमें अक्ल की कमी है और अक्ल से काम लेने की कोशिश नहीं करते। नतीजा यह होता है कि उनका समंजन बिगड़ जाता है। स्कूल और कालिजों में कुछ लड़के जो पढ़ाई, खेल, शारीरिक सुन्दरता किसी में भी औरों से आगे नहीं होते और इसलिये इसमें से किसी के भी द्वारा लड़कियों का ध्यान नहीं खींच पाते, 'चचा' 'दादा' या मसखरे बन जाते हैं और शैतानी, साहस या मसखरेपन से लड़कियों का ध्यान अपनी ओर खींचने की कोशिश करते हैं। इस कोशिश में नाकामयाबी ही उनके हाथ लगती है क्योंकि आमतौर से कोई भी लड़की इस तरह के लड़कों का साथ पसन्द नहीं करती। इस नाकामयाबी से उनके अवगुण और भी बढ़ जाते हैं और वहुधा वे असामाजिक तथा अपराधी कामों में पकड़कर अपना समंजन खो बैठते हैं। काने व्यक्ति अक्सर बड़े खतरनाक होते हैं। कुरूप लड़की यदि पढ़ने में न लग जाये तो शीघ्र सन्तुलन खो बैठती है। इस प्रकार यथार्थ और काल्पनिक सभी तरह के व्यक्तिगत दोष समंजन में बाधा उपस्थित करते हैं।

समंजन में बाधक उपरोक्त सभी कारक व्यक्ति में तनाव (Tensions) उत्पन्न करते हैं। यदि इन तनावों को किसी उपाय से निकाल दिया जाय तो वे स्वस्थ बने रहते हैं अन्यथा समंजन की कठिनाइयाँ पेश होने लगती हैं और शीघ्र ही व्यक्तित्व का सन्तुलन बिगड़ जाता है।

समंजन में बाधक कारकों के अलावा मानसिक अस्वस्थता के कुछ कारण ऐसे हैं जो इस दिशा में प्रवृत्ति उत्पन्न करते हैं। इस वर्ग में मुख्य कारक निम्नलिखित हैं :—

(२) मानसिक अस्वस्थता की प्रवृत्ति उत्पन्न करने वाले कारक

(१) परिवेश—परिवेश का मनुष्य पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। परिवार और स्कूल के प्रभाव का इस अध्याय में पीछे जिक्र किया जा चुका है। इसके अलावा स्थानीय जीवन का प्रतिमान (Pattern) अर्थात् ग्रामीण या नागरिक परिवेश भी व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते हैं। अमरीका (U. S. A.) में मानसिक चिकित्सालयों में आने वाले लोगों में नागरिक लोगों की संख्या गाँव वालों से लगभग दुगनी है। इसके अलावा गाँव से आने वाले मानसिक रोगियों के रोगों में परिवेश का बहुत ही कम हाथ रहता है। उनमें अधिकतर थकान या दुर्बलता के शिकार होते हैं जबकि शहर के आने वाले लोगों में एक बड़ी संख्या शराबियों, नशेबाजों तथा गर्मी से पीड़ित (Syphilitic) लोगों की होती है। इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि शहर के जीवन में मानसिक अस्वस्थता की अधिक संभावनायें हैं। उसमें संघर्ष के मौके अधिक आते हैं। शहर का भड़कीला वातावरण असंख्य इच्छायें उत्पन्न करता रहता है जिनमें बहुत-सी परस्पर विरोधी होती हैं। इससे मानसिक उलझनें पैदा होती हैं, संघर्ष बढ़ता है और वेश्या, व्यभिचार, शराब, जुआ आदि के द्वारा इस संघर्ष को निकालने की कोशिश की जाती है परन्तु इससे वह कम होने के स्थान पर उल्टे बढ़ जाता है और मानसिक रोग उत्पन्न करता है। संक्षेप में, जिस तरह शहरों की गन्दगी, भीड़-भाड़, शोर, तड़क-भड़क और जीवन की दौड़ अनेक शारीरिक बीमारियों को पैदा करते हैं उसी तरह वे अनेक मानसिक रोग भी उत्पन्न करते हैं।

(२) शारीरिक रचना और स्वास्थ्य—व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारकों में परिवेश के बाद शारीरिक रचना और स्वास्थ्य का महत्व माना जाता है। शारीरिक रचना का व्यक्तित्व पर कितना प्रभाव पड़ता है, इस बारे में सभी मनोवैज्ञानिक एकमत नहीं हैं परन्तु फिर भी इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि शारीरिक रचना का व्यक्तित्व पर अवश्य प्रभाव पड़ता है। शारीरिक रचना का जहाँ व्यक्ति के अपने आत्म-विश्वास, स्वभाव, दृष्टिकोण, आदतों आदि पर प्रभाव पड़ता है वहाँ इसका व्यक्ति के प्रति दूसरों के व्यवहार पर भी असर पड़ता है। इन दोनों ही बातों से व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है। जाहिर है कि अत्यधिक कुरूप या अत्यधिक लम्बे-चौड़े व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य पर इनका प्रभाव अधिक पड़ेगा

क्योंकि दोनों ही दशाओं में तनाव उत्पन्न होता है। शारीरिक रचना के साथ-साथ शारीरिक स्वास्थ्य का भी मानसिक स्वास्थ्य पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। कहावत है Healthy Mind in a Healthy Body अर्थात् स्वस्थ शरीर में ही मन स्वस्थ रहता है। शारीरिक स्वास्थ्य खराब होने पर हीनता की भावना (Inferiority Complex), चिड़चिड़ापन, खिन्नता आदि बढ़ने की सम्भावना है। वास्तव में जैसा कि पहले संकेत कर दिया गया है शारीरिक रचना और स्वास्थ्य सम्बन्धी असमानतायें और दोष मानसिक अस्वस्थता को सीधे उत्पन्न नहीं करते बल्कि इस दिशा में प्रवृत्ति उत्पन्न करते हैं।

(३) आनुवंशिकता (Heredity)—किसी समय आनुवंशिकता को समस्त मानसिक विकारों का मूल कारण माना जाता था परन्तु पिछले तीस-पैंतीस सालों से यह स्पष्ट हो गया है कि आनुवंशिकता का मानसिक विकारों पर अप्रत्यक्ष तथा सीमित प्रभाव पड़ता है। इसके साथ-साथ यह पता लगाया गया है कि मानसिक विकारों के अधिकतर कारण बाल्यावस्था के अनुभवों में खोजे जा सकते हैं। यह सर्वविदित है कि व्यक्ति अनेक शारीरिक दोष तथा दुर्बलतायें आनुवंशिकता से ग्रहण करता है। इन शारीरिक दोषों का व्यक्तित्व पर अवश्य प्रभाव पड़ता है और यदि वह इनसे ठीक प्रकार से समंजन नहीं कर पाता तो मानसिक अस्वस्थता उत्पन्न हो सकती है। अनेक विद्वानों ने अपनी खोजों से यह दिखलाया है कि मनोविकृतियों (Psychosis) में आनुवंशिकता का महत्वपूर्ण हाथ होता है। ब्राउन (R. R. Brown) ने मिर्गी के रोगियों के परिवारों का अध्ययन करके यह पता लगाया कि उनके ६४ प्रतिशत सम्बन्धी मिर्गी के शिकार थे और ७८ प्रतिशत को कोई न कोई मानसिक रोग था। Principles of Heredity नामक पुस्तक में सीडर (L. H. Syder) ने लिखा है कि समान युग्म (Identical Twin) बालकों में एक को मनोविकार होने पर दूसरे को भी जरूर होता है। असमान युग्म (Fraternal Twin) बालकों में एक को मनोविकार होने पर ४ में १ की दर से दूसरे को भी मनोविकार होता है। इसी तरह मानसिक दुर्बलता भी जन्मजात होती है। मानसिक रोगों के आनुवंशिकता से इस प्रत्यक्ष सम्बन्ध को सभी विद्वान् नहीं मानते क्योंकि इस विषय में निश्चित रूप से कुछ कहने के लिये अभी पर्याप्त सामग्री उपलब्ध नहीं है। अतः आनुवंशिकता को मानसिक अस्वस्थता की प्रवृत्ति उत्पन्न करने वाले कारकों में मानना ही अधिक उपयुक्त होगा।

मानसिक अस्वस्थता को उत्पन्न करने वाले कारकों में उन कारकों को लिया गया है जो सीधे मानसिक रोग का कारण होते हैं।

(३) मानसिक अस्वस्थता उत्पन्न करने वाले कारक

(१) तीव्र मानसिक संघर्ष—मानव जीवन में संघर्ष कोई असाधारण बात नहीं परन्तु यदि यही संघर्ष स्थायी और तीव्र हो जाता है और किसी प्रकार से भी खत्म होने में नहीं आता तो मानसिक अस्वस्थता उत्पन्न करता है। मानसिक संघर्ष अनेक प्रकार के मनोविकारों का मूल कारण है।

(२) अत्यधिक थकान—अत्यधिक थकान चाहे वह अत्यधिक परिश्रम के कारण हो या अन्य किसी कारण से हो मानसिक रोगों को उत्तेजित करती है।

(३) तीव्र संवेगात्मक तनाव—संवेगात्मक तनाव व्यक्ति को अत्यधिक क्षुब्ध कर देते हैं। जब ये तनाव अत्यन्त तीव्र और न्यूनाधिक स्थायी हो जाते हैं तो मानसिक विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं।

(४) लैंगिक हताशायें (Sexual Frustrations)—फ्रॉयड (Freud) के अनुसार अधिकांश मानसिक रोगों में मूल कारण तीव्र लैंगिक हताशा होती है। लैंगिक इच्छाओं के सन्तुष्ट न होने तथा अत्यधिक दमन से मानसिक संघर्ष होता है। अनेक मानसिक रोग इसी से मुक्त होने का एक उपाय हैं।

(५) दमित भावना ग्रन्थियाँ (Repressed Complexes)—भावना ग्रन्थि किसी वस्तु या व्यक्ति की ओर एक असामान्य भाव है। इसके दमन से यह खत्म नहीं हो जाती बल्कि मानसिक विकारों की शक्ल में जाहिर होती है।

(६) आनुवंशिकता—किन-किन मानसिक रोगों में आनुवंशिकता का कितना हाथ है इस बारे में सभी लोग एकमत नहीं हैं परन्तु फिर भी कम से कम कुछ मामलों में आनुवंशिकता ही मानसिक विकारों का मुख्य कारण होती है।

(७) मानसिक दुर्बलता (Mental Deficiency)—मानसिक दुर्बलता का अर्थ मन में ज्ञानात्मक (Cognitive) योग्यता की कमी है। मानसिक दृष्टि से दुर्बल व्यक्तियों में अन्य लोगों की अपेक्षा बहुत अधिक मानसिक रोगी दिखलाई पड़ते हैं।

(८) हीनता भावना ग्रन्थि (Inferiority Complex)—जैसे फ्रॉयड (Freud) ने अधिकतर मानसिक रोगों का कारण लैंगिक हताशा को माना है वैसे ही एडलर (Adler) ने हीनता भावना ग्रन्थि को अधिकतर मानसिक विकारों का कारण माना है।

मानसिक रोगों को उत्पन्न करने वाले उपरोक्त कारणों में केवल थोड़े से मुख्य कारण ही गिनाये गये हैं। इनके अलावा और भी कितने ही कारण मानसिक रोग उत्पन्न करते हैं। कितने ही मानसिक रोगों के कारण अभी पूरी तरह मालूम भी नहीं हो सके हैं। कितने ही कारणों के विषय में विद्वानों में मतभेद है। फिर भी जितने कारण मालूम हो सके हैं उनका वर्णन करने के लिए एक पूरा ग्रन्थ चाहिए। यह असामान्य मनोविज्ञान (Abnormal Psychology) और मानसिक चिकित्सा Psycho-therepy) का विषय है।

प्रश्न २६—मानसिक अस्वस्थता के विभिन्न उपचार बतलाइए।

उत्तर—मानसिक अस्वस्थता के उदाहरणों में अनेक प्रकार के मानसिक विकारों का वर्णन किया गया है। इनमें कुछ सरल हैं और कुछ अत्यधिक जटिल हैं।

जटिल में भी कुछ का उपचार किया जा सकता है परन्तु कुछ लगभग असाध्य होते हैं। लैंगिक विकृतियाँ (Sexual Parversions) और दैनिक जीवन की विकृतियाँ (Psychopathologies of Everyday life) सरल मानसिक विकार हैं। ये असमंजन या गलत समंजन के परिणाम हैं। इनको पूरा करने के लिये पुनर्शिक्षण विधि और मनोअभिनय विधि से काम लिया जा सकता है। जटिल मानसिक रोगों के उपचार के लिये इनके अलावा कुछ अन्य विधियाँ भी अपनाई जाती हैं जैसे आघात चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, मनोविश्लेषण, संसूचन तथा सम्मोहन इत्यादि। यहाँ पर इन दोनों ही प्रकार की विधियों का संक्षिप्त वर्णन किया जायेगा।

(१) मनो-अभिनय

मनो-अभिनय (Psycho-drama) में जैसा कि उसके नाम से प्रकट है रोगी अपनी समस्याओं का अभिनय करते हैं। इसरो वे अनेक प्रकार की व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं तथा असामान्यताओं को व्यक्त करते हैं। व्यक्त करने से उनका इन पर कुछ नियन्त्रण हो जाता है जिससे क्रमशः इनको निकाला जा सकता है।

(२) सामूहिक चिकित्सा

सामूहिक चिकित्सा (Group Therepy) में दस से तीस तक रोगी एकत्रित होकर अपनी समस्याओं को व्यक्त करते हैं और उन पर विचार-विमर्श करते हैं। इससे रोगी को अपनी और दूसरों की समस्यायें समझने का मौका मिलता है, उसमें आत्म-विश्वास बढ़ता है, सामाजिक असुरक्षा का भाव जाता रहता है और वह अपनी समस्याओं को सुलझा सकता है।

(३) व्यावसायिक चिकित्सा

व्यावसायिक चिकित्सा (Occupational Therepy) में रोगियों से चटाई बुनना, लकड़ी का काम, कपड़ा बनाना आदि अनेक प्रकार के काम कराये जाते हैं। काम में लगकर वह अपनी मानसिक व्याधियों को धीरे-धीरे भूलने लगता है। उसको जीवन सामान्य मालूम होने लगता है और उसकी हालत सुधरने लगती है।

(४) अंगुली चित्रण विधि

अंगुली-चित्रण चिकित्सा (Finger Painting Therepy) में जैसा कि उसके नाम से जाहिर है, रोगी कागज पर अपनी उंगलियों से स्याही के द्वारा अपनी इच्छानुसार चित्रण करता है। इस चित्रण के द्वारा वह अपनी दमित भावनाओं को जाहिर करता है। इससे उसका मानसिक स्वास्थ्य सुधरता है।

(५) निद्रा-चिकित्सा

निद्रा-चिकित्सा (Sleep Therepy) में निद्रा के द्वारा रोगी को चंगा करने की कोशिश की जाती है। इसमें दवाओं की सहायता से रोगी को कई दिनों के लिये सुला दिया जाता है। केवल खाने के समय उसको जगाया जाता है या इन्जेक्शन से ही उसे खिला दिया जाता है। इससे रोगी अपने आघातिक (Shocking) अनुभव भूल जाता है और स्वस्थ होने लगता है।

(६) पुनर्शिक्षण

पुनर्शिक्षण (Re-education) में रोगी में आत्मविश्वास उत्पन्न करके उस को समझ कर तथा उचित परामर्श और निर्देशन देकर उसको अपने व्यवहारों तथा संवेगों पर नियन्त्रण करना सिखाया जाता है। जिनमें आत्मविश्वास पैदा हो जाता है, वे अवश्य अच्छे होने लगते हैं।

(७) मनोविश्लेषण

मनोविश्लेषण (Psycho-Analysis) विधि में स्वप्न विश्लेषण (Dream Analysis) तथा मुक्त साहचर्य (Free Association) आदि विधियों से रोगी को उसके रोग के कारण जाहिर कर दिये जाते हैं। इसमें प्रशिक्षित विश्लेपक की जरूरत है। फ्रॉयड ने इस विधि से बहुत से रोगियों को चंगा कर दिया था।

(८) संसूचन

कहा जाता है कि रोगी का आधा रोग तो इसी विश्वास से ठीक हो जाता है कि वह अच्छा हो रहा है। संसूचन (Suggestion) विधि में चिकित्सक रोगी को संसूचन देता है कि वह अच्छा होता जा रहा है, या रोगी स्वयं अपने को आत्म संसूचन देता है। इस विधि से लाभ संसूचन में आस्था (Faith) पर आधारित है।

(९) सम्मोहन

सम्मोहन (Hypnosis) में रोगी को संसूचन के द्वारा अचेतन बना दिया जाता है। अब रोगी को उसकी विस्मृत अनुभूतियों को याद करने का और उन्हें याद रखने का आदेश दिया जाता है। फिर से चेतन होने पर रोगी चंगा हो जाता है परन्तु इस विधि का प्रयोग केवल उन्हीं पर किया जा सकता है जो सम्मोहित हो सकते हैं।

(१०) आघात चिकित्सा

आघात चिकित्सा (Shock Therepy) में जैसा कि उसके नाम से प्रकट है रोगी को विभिन्न औषधियों के प्रयोग से आघात दिये जाते हैं। इन आघातों से रोगी के मानसिक विकार छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और अनेक रोगी बिल्कुल चंगे हो जाते हैं। विद्युत आघातों से भी कुछ रोगों को दूर किया जाता है।

(११) शल्य चिकित्सा

कुछ चिकित्सों ने शल्य चिकित्सा (Surgery) का प्रयोग करके भी कुछ मानसिक रोगों को दूर किया है। इस तरह की चिकित्सा में व्यक्तित्व में अनेक अवांछनीय परिवर्तन देखने में आते हैं। अतः इस विधि का तभी प्रयोग किया जाता है जबकि रोगी किसी अन्य विधि से अच्छा नहीं होता।

मानसिक अस्वस्थता दूर करने की उपरोक्त विधियों के अलावा कुछ और विधियाँ भी प्रचलित हैं। उदाहरण के लिये संगीत चिकित्सा (Music Therepy)

अन्य विधियाँ

जिसमें संगीत द्वारा मानसिक व्याधि को दूर करने की कोशिश की जाती है, ग्रन्थ-चिकित्सा (Bibliotherepy) जिसमें विशेष समस्याओं से सम्बन्धित पुस्तकें पढ़ा कर उन समस्याओं को दूर करने की कोशिश की जाती है इत्यादि। वास्तव में जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है किस विधि से कौन-सा मानसिक रोग दूर किया जा सकता है यह इस बात पर निर्भर है कि वह रोग नया है या पुराना, सरल है या जटिल तथा उसके कारण कौन-से हैं। कुछ मानसिक रोग रोगी को रोग के कारण मालूम हो जाने से दूर हो जाते हैं, कुछ आत्म-विश्वास से दूर होते हैं, कुछ भूलने से दूर होते हैं और कुछ में कुछ मनःस्नायु सम्बन्धों (Connections) को तोड़ देना पड़ता है। मानसिक रोगों के लक्षण तथा उपचार के उपाय पूरी तरह निश्चित न होने के कारण इनके इलाज के लिये बड़े कुशल चिकित्सक की आवश्यकता होती है। मानव मनोविज्ञान में अन्तर्दृष्टि होने के साथ-साथ मानसिक चिकित्सक में एक सहानुभूतिमय और प्रभावशाली व्यक्तित्व होना भी बड़ा जरूरी है। फ्रॉयड जैसे कुशल चिकित्सक अपने अधिकतर उपचारों में पूरी तरह सफल होते हैं।

✻

प्रश्न २७—मानसिक अस्वस्थता की रोकथाम के उपाय बताइए।

अंग्रेजी में एक कहावत है Prevention is better than cure अर्थात् इलाज से रोकथाम करना अधिक अच्छा है। केवल अधिक अच्छा नहीं बल्कि

रोकथाम का महत्व

रोकथाम करना अधिक जरूरी भी है क्योंकि रोग बढ़ जाने पर रोगी की हानि भी अधिक होती है और रोग को दूर करना भी कठिन होता है। यह बात मानसिक रोगों के बारे में और भी सच है। निरोधात्मक पहलू मानसिक आरोग्य का एक महत्वपूर्ण पहलू है। मानसिक रोगों की रोकथाम केवल चेतन प्रक्रिया ही नहीं है अर्थात् वह केवल जान-बूझ कर ही नहीं की जाती बल्कि अनजाने भी होती रहती है। समंजन (Adjustment) मनुष्य पर कोई बाहर से लादा हुआ कर्तव्य नहीं है। वह स्वयं समंजन करना चाहता है। समंजन के अभाव में उसे खुद तकलीफ होती है। बल्कि एक दृष्टि से तो मानसिक रोग भी परिवेश से समंजन करने का एक तरीका ही है यद्यपि यह तरीका व्यक्ति को और समाज को बड़ा महँगा बैठता है। मानसिक अस्वस्थता की रोकथाम के क्या उपाय किये जाने चाहियें इससे पहले इन स्वाभाविक उपायों को जानना अधिक अच्छा होगा।

ये उपाय संरक्षण प्रक्रियायें (Protective Mechanisms) हैं। जब व्यक्ति की किसी इच्छा की पूर्ति में कोई बाधा आती है तो पहले तो वह और भी जोर लगा

संरक्षण प्रक्रियायें

कर कोशिश करता है मगर जब देखता है कि कोशिश करने से कुछ नहीं हो पा रहा हो तो अपने लक्ष्य को कुछ नीचा कर लेता है। अगर यह भी सम्भव नहीं हो पाता तो वह

कोई स्थानापन्न (Substitute) लक्ष्य बनाता है। जब इसमें भी सफलता नहीं मिलती तो वह संरक्षक प्रक्रियाओं की शरण लेता है। कुछ लोग असफलता होने पर लक्ष्य न बनाकर सीधे संरक्षक प्रक्रियाओं की शरण लेते हैं। एक उदाहरण लीजिये—एक युवक क्रिकेट का अखिल भारतीय खिलाड़ी बनना चाहता है। वह खेल में खूब मेहनत करता है परन्तु फिर भी उसकी आकांक्षा पूरी नहीं होती। अतः वह जिले का ही नम्बर एक का खिलाड़ी बनने का लक्ष्य बनाता है। परन्तु जब यह भी होता नहीं दिखलाई पड़ता तो खेल छोड़कर जी जान से अच्छी नौकरी की प्रतियोगिताओं में लग जाता है। वह सोचता है कि क्रिकेट में समय वर्बाद करना बेकार है, जिले में नम्बर सक के खिलाड़ी होने से भी कौन पूछता है। इज्जत ओहदे और पैसे से होती है। क्रिकेट तो रोटी दे नहीं देगी। आखिर नौकरी करनी ही पड़ेगी। अच्छा हुआ जो मैंने खेल छोड़ दिया इत्यादि।

इस उदाहरण में त्रुटि-पूर्ति (Compensation) और विवेकीकरण (Rataion-alisation) दोनों हैं। मुख्य संरक्षक प्रक्रियायें निम्नलिखित हैं :—

संरक्षण प्रक्रियाओं के रूप

(१) प्रक्षेपण (Projection)
(२) विवेकीकरण (Rationalisation)
(३) त्रुटिपूर्ति (Campensation)
(४) तादात्म्य (Identification)
(५) अन्तक्षेपण (Introjection)
(६) परावर्तन (Regression)
(७) विस्थापन (Displacement)
(८) दमन (Repression)

अब इन संरक्षण प्रक्रियाओं को जरा विस्तार से जानना उपयुक्त होगा।

(१) प्रक्षेपण (Projection)—किसी काम में असफल होने पर दुःखी होने की बजाय हम उसका दोष दूसरों पर डाल देते हैं। फेल होने पर विद्यार्थी परीक्षक का दोष बतलाते हैं। यह अपने दोष का दूसरों पर प्रक्षेपण है।

(२) विवेकीकरण (Rationalisation)—हम अपनी असफलताओं का कुछ न कुछ कारण निकाल कर सन्तुष्ट हो जाते हैं और सोचते हैं कि चलो अच्छा ही हुआ। सुन्दर पत्नी न मिलने पर पति सोचता है चलो अच्छा ही हुआ कौन-सी मुझे नुमायश में रखना है खामखाँ राह चलने वाले घूरते।

(३) त्रूटि-पूर्ति (Compensation)—एक दिशा में असफल होने पर व्यक्ति किसी अन्य दिशा में उसकी कमी पूरी कर लेता है। कहते हैं कि काने में एक गुण ज्यादा होता है। ठीक भी है क्योंकि एक आँख की कमी को उसे कहीं न कहीं तो पूरा करना ही है। फिसड्डी विद्यार्थी नेता बन जाता है।

(४) तादात्म्य (Identification)—कभी-कभी लोग स्वयं कोई काम न करके अन्य लोगों से तादात्म्य द्वारा उनकी सफलताओं से खुश हुआ करते हैं। अनेक पत्नियाँ स्वयं कुछ न करके पास-पड़ौसियों से अपने पति के कारनामों की ही डींगें मारा करती हैं।

(५) अन्तःक्षेपण (Introjection)—यह प्रक्षेपण की विरोधी प्रक्रिया है। प्रक्षेपण में हम अपनी बात दूसरों में देखते हैं। अन्तःक्षेपण में हम दूसरों की बात, इच्छा, विचार अपने में देखते हैं। इस तरह का नौकर अपने मालिक की इच्छा को अपनी इच्छा समझता है और उससे कभी नहीं झगड़ता। मालिक से अलग उसकी अपनी कोई इच्छायें, कोई विचार नहीं होते।

(६) परावर्तन (Regression)—असफल होने पर कुछ लोग बच्चों का सा व्यवहार करने लगते हैं, यह परावर्तन है, यह संघर्ष से भागने का एक तरीका है।

(७) विस्थापन (Displacement)—विस्थापन में जो प्रतिक्रिया जहाँ दिखाई जानी चाहिए उसको वहाँ न दिखाकर कहीं और दिखाया जाता है। अफसर से डांट खाने के बाद घर आकर अनेक लोग अपनी स्त्री बच्चों पर उबल पड़ते हैं, यह विस्थापन है।

(८) दमन (Repression)—किसी इच्छा के सन्तुष्ट न होने पर अनेक लोग उसको अत्यधिक दबा देते हैं। दबाने से वह इच्छा निकल नहीं जाती बल्कि अचेतन (Unconscious) मन में रहती है और स्वप्न आदि किसी अप्रत्यक्ष उपाय से व्यक्त होने की कोशिश करती है, यह दमन है।

संरक्षक प्रक्रियाओं के उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि इनमें से कुछ तो मानसिक अस्वस्थता की रोकथाम करती हैं परन्तु कुछ उसको बढ़ाने की प्रवृत्ति रखती हैं। त्रुटिपूर्ति मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा में सबसे अधिक सहायक है। प्रक्षेपण अपनी जिम्मेदारियों को टालना है। विवेकीकरण से सामान्यरूप में कोई हानि नहीं है बल्कि बहुधा वह सन्तोष बनाये रखता है। परन्तु अत्यधिक विवेकीकरण अपने आप को धोका देना है।

कुछ संरक्षक प्रक्रियायें मानसिक अस्वस्थता बढ़ाती हैं

तादात्म्य अकर्मण्यता बढ़ाता है। अन्तःक्षेपण मानसिक गुलामी पैदा करता है। विस्थापन कोई खास बुराई नहीं पैदा करता परन्तु कभी-कभी असामान्यताओं का कारण हो सकता है। परावर्तन मानसिक सन्तुलन के लिए हानिकारक है। दमन मानसिक स्वास्थ्य के लिए घातक है। उपरोक्त विश्लेषण से जाहिर है कि त्रुटिपूर्ति के अलावा इन संरक्षक प्रक्रियाओं से बचना ही बेहतर है और दमन तो होना ही नहीं चाहिए।

अब सवाल यह है कि मानसिक विकारों की रोकथाम कैसे हो। अनेक व्यक्ति विशेषतः बालक और किशोर बहुधा अपनी कठिनाइयों और उलझनों को खुद नहीं

मानसिक अस्वस्थता की रोकथाम के लिये निर्देशन

सुलझा सकते । अतः उन्हें माता-पिता, संरक्षक, अध्यापक या मनोवैज्ञानिकों से निर्देशन मिलना चाहिये । निर्देशक को बालक अथवा किशोर की कठिनाई को सहानुभूतिपूर्वक समझने की कोशिश करनी चाहिये और उसको प्रेमपूर्वक परामर्श देना चाहिये । उनको डांटना या झिड़कना ठीक नहीं है । उनको अपनी इच्छाओं तथा मनोवृत्तियों को जाहिर करने का मौका दिया जाना चाहिये ।

मानसिक अस्वस्थता की रोकथाम में परिवार का सबसे अधिक महत्व है और माता-पिता की सबसे अधिक जिम्मेदारी है । सबसे अधिक जरूरत इस बात की है कि

रोकथाम में परिवार का महत्व

परिवार में ऐसा स्वस्थ वातावरण बनाया जाय जिनमें बालक के व्यक्तित्व का ठीक विकास हो सके । बालक के व्यक्तित्व पर माता-पिता के चरित्र, आपस के सम्बन्ध, बच्चों से उनका व्यवहार, भाई-बहनों तथा परिवार के अन्य सम्बन्धियों से बालक का सम्बन्ध आदि सभी बातों का प्रभाव पड़ता है । अतः इन सभी के स्वस्थ होने की जरूरत है । माता-पिता को कब, किस बालक से, कैसे व्यवहार करना चाहिए इसके बारे में कोई कठोर नियम नहीं बनाया जा सकता केवल इतना कहा जा सकता है कि वे बालक के व्यक्तित्व को उन्मुक्त रूप से विकसित होने का पूरा मौका दें । उसको गलत रास्तों से रोकें परन्तु उसको सब बातों में अपनी राय पर चलाने की कोशिश न करें और कम से कम दमन के मौके न आने दें । बाकी बातें तो माता-पिता की बालक अथवा किशोर के मनोविज्ञान में अन्तर्दृष्टि, उनके धैर्य, परिश्रम और अनुभव पर निर्भर है ।

परिवार के बाद मानसिक अस्वस्थता की रोकथाम की जिम्मेदारी स्कूल पर है क्योंकि व्यक्तित्व के विकास में परिवार के बाद सबसे अधिक प्रभाव स्कूल का

रोकथाम में स्कूल का महत्व

पड़ता है । स्कूल में भी सबसे अधिक महत्व स्कूल के वातावरण का है । स्वस्थ वातावरण में बालक स्वयं अनुशासन तथा अन्य गुण ग्रहण कर लेते हैं । स्कूल में कुछ बालकों के विगड़ जाने का अधिक डर होता है । ऐसे बालकों पर विशेष ध्यान रखा जाना चाहिये, उनको निर्देशन दिया जाना चाहिये । सबसे बड़ी जरूरत इस बात की है कि अलग-अलग बालक को उसके व्यक्तित्व के अनुसार उपयुक्त और पर्याप्त काम दिया जाये । अतः पिछड़े हुये और मेधावी बालकों के लिये विशेष व्यवस्था की जरूरत है । शिक्षक बालक के सामने आदर्श होते हैं । अतः उन का चरित्र और व्यवहार अनुकरणीय होना चाहिये । स्कूल में विद्यार्थियों की कठिनाइयों को दूर करने के लिये विद्यार्थी कर्मचारी सेवा (Pupil Personnel Work) का जिक्र पिछले अध्याय में किया जा चुका है ।

अन्त में, मानसिक अस्वस्थता की रोकथाम पूरे समाज और पूरे देश की समस्या है। इसके लिये सामाजिक विघटन की परिस्थितियों, शोषण, भ्रष्टाचार, विभिन्न तनावों तथा संघर्षों, अपराध, नशाखोरी आदि को उखाड़ फेंकने की कोशिश करनी पड़ेगी। शहरी जीवन के दोष, भीड़भाड़, गन्दगी, छोटे मकान, अत्यधिक शोर आदि को दूर करना पड़ेगा। सब के लिये उपयुक्त और रुचिकर काम तथा स्वस्थ मनोरंजन का प्रबन्ध करना पड़ेगा। राष्ट्रीय स्तर पर इस प्रकार के प्रयत्नों से ही मानसिक अस्वस्थता की भली प्रकार रोकथाम की जा सकती है। इसके लिये सरकार शिक्षक गण, सामाजिक कार्यकर्त्ता और जनता के सभी समझदार लोगों को सहयोग से काम करना पड़ेगा।

मानसिक अस्वस्थता की समस्या पूरे समाज की समस्या है

✱

प्रश्न २८—मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान (Mental Hygiene) तथा मानसिक स्वास्थ्य में क्या अन्तर है ? पाठशाला के बालकों में मानसिक स्वास्थ्य के संवर्धन के लिये आप सामान्यतः क्या उपाय करेंगे ? (यू० पी० बोर्ड १९६४)

उत्तर—प्रश्नोत्तर २४ व २७ देखिये।

———

५

किशोरापराध
(Juvenile Delinquency)

प्रश्न २९—बाल अपराध (Juvenile delinquency) किसे कहते हैं ? बाल अपराध के मनोवैज्ञानिक कारणों पर प्रकाश डालिये। (यू० पी० बोर्ड १९६५)

अथवा

प्रश्न—बाल अपराध किसे कहते हैं ? इनके सामाजिक तथा आर्थिक कारणों की व्याख्या कीजिये। (यू० पी० बोर्ड १९६३)

आधुनिक सभ्य देशों में अपराधी को पापी या बुरा व्यक्ति न समझकर एक मानसिक रोगी और परिस्थिति से मजबूर व्यक्ति समझा जाता है। एक समय था जबकि अपराध करने पर छोटे-छोटे बालकों को भी कठोर दण्ड दिया जाता था। परन्तु जैसे-जैसे मनोविज्ञान ने किशोर अपराध के कारणों की ओर सभ्य जगत का ध्यान आकर्षित किया, वैसे-वैसे किशोर अपराधी को दण्ड देने का रिवाज कम हुआ और उसके सुधार का रिवाज बढ़ा। आजकल सभी सभ्य देशों में किशोर अपराधी के सुधार की कोशिश की जाती है। रिफार्मेटरी स्कूल, प्रोबेशन तथा अन्य उपायों से किशोर अपराधियों को फिर से समाज के स्वस्थ नागरिक बनाने का प्रयत्न किया जाता है।

किशोरापराध की ओर नया दृष्टिकोण

किशोर अपराध की कानूनी परिभाषा उसकी मनोवैज्ञानिक परिभाषा से भिन्न है। कानून की दृष्टि के किशोर अपराधी १५ से १७ वर्ष का वह बालक है जो कि समाज विरोधी काम करता है। ओहायो कोड (Ohio Code U. S. A.) ने किशोर अपराध की परिभाषा इस तरह की है "किशोर अपराधी वह है जो कानून भंग करता है, आवारागर्दी करता है, आज्ञा का उल्लंघन करने में अभ्यस्त है, जिसके व्यवहार से उसका अपना तथा दूसरों का नैतिक जीवन खतरे में पड़ता है, अथवा जो अपने माता-पिता या अभिभावकों की अनुमति के बिना विवाह करने की कोशिश करता है।" यहाँ पर ध्यान रखने की बात है कि किशोर अपराधी कहलाने वाले बालकों की आयु सभी देशों में एक सी निश्चित नहीं की गई है। कहीं यह आयु १८ वर्ष है तो कहीं १६ वर्ष, कहीं २० है तो कहीं २१ वर्ष है। साधारणतया १७ वर्ष की आयु के बालक किशोर अपराधी माने जाते हैं। भारतवर्ष में प्रचलित अधिनियमों में किशोर अपराधी की अधिकतम आयु १६ वर्ष

किशोरापराध की कानूनी परिभाषा

निश्चित की गई है ये अधिनियम उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बम्बई, मद्रास, मैसूर, देहली, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा तथा पूर्वी पंजाब में बनाये जा चुके हैं। जिन राज्यों में किशोर अधिनियम नहीं बना या लागू नहीं हुआ है, उनमें १८९७ का रिफार्मेटरी स्कूल अधिनियम लागू है। इनमें किशोर अपराधी की अधिकतम आयु १५ वर्ष निश्चित की गई है। बम्बई तथा मध्य प्रदेश में यह आयु १६ वर्ष है। रिफार्मेटरी स्कूल अधिनियम के अनुसार १५ वर्ष से कम आयु का बालक जिसे किसी अपराध के कारण कारावास या काले पानी की सजा मिली है, युवक अपराधी (Youthful Offender) कहा जायेगा।

किशोरापराध की मनोवैज्ञानिक परिभाषा

जैसा कि पहले बतलाया गया है कि किशोर अपराध की मनोवैज्ञानिक परिभाषा उसकी कानूनी परिभाषा से भिन्न है क्योंकि मनोविज्ञान ने किशोर अपराध के कारणों पर जोर दिया है। कानून की दृष्टि से ऐसे अपराध छूट जाते हैं जो पकड़े न जायें, परन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ये सभी अपराधी हैं। इस तरह किशोर अपराध की मनोवैज्ञानिक परिभाषा उसकी कानूनी परिभाषा से अधिक विस्तृत है। मनोविज्ञान के अनुसार १५ से १८ वर्ष के वे सभी किशोर बालक-बालिकायें किशोर अपराधी कहे जायेंगे जिन्होंने कोई अपराध किया है चाहे वे पकड़े जायें या कानून से बच निकलें। इस तरह किशोर अपराधी वह बालक है जो दूसरों की सम्पत्ति छीनता है, या उसे हानि पहुँचाता है, असामाजिक कार्य करता है, दूसरों की जिन्दगी के लिये खतरा पैदा करता है या दूसरों के कार्यों में बाधा डालता है। इस तरह किसी मोटर के शीशों में पत्थर मारकर भाग जाने वाला, कहीं आग लगा देने वाला, केवल हंसी से लिये किसी की जान को खतरा पैदा कर देने वाला, ये सभी बालक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अपराधी हैं।

किशोर अपराध की परिभाषा करते हुए डॉ० सेथना (Sethna) ने लिखा है "किशोर अपराध में एक स्थान विशेष पर उस समय लागू कानून द्वारा निर्धारित एक निश्चित आयु के बालक अथवा युवक व्यक्ति द्वारा किये गये अनुचित कार्य सम्मिलित हैं।"[1]

न्यूमेयर (Newmeyer) ने इसी बात को इन शब्दों में लिखा है "एक किशोर अपराधी निर्धारित आयु से कम आयु वाला व्यक्ति है जो समाज विरोधी कार्य करने का दोषी है और जिसका दुराचरण कानून का उल्लंघन है।'[2]

---

1. "Juvenile delinquency involves wrong doing by a child or a young person who is under an age specified by the law (for the time being in force) of the place concerned." —Dr. Sethna.

2. "A delinquent is a person under age who is guilty of anti-social act and whose misconduct is an infraction of law." —Newmeyer.

अपराध और किशोर अपराध में अन्तर

किशोर अपराधी की उपरोक्त व्याख्या से जाहिर होता है कि किशोर अपराधी और अपराधी में खासतौर से उम्र का अन्तर है। दोनों ही समान विरोधी काम करते हैं। दोनों ही के काम सामाजिक सम्बन्धों तथा कार्यों में बाधा डालते हैं। डॉ० हैकरवाल (Haikerwal) के शब्दों में सामाजिक दृष्टिकोण से अपराध या किशोर अपराध व्यक्ति का ऐसा व्यवहार है जो उन मानवीय सम्बन्धों की व्यवस्था में बाधा डालता है जिनको समाज अपने अस्तित्व की मौलिक दशा मानता है।" इस तरह यदि अपराधी एक निश्चित आयु से कम है तो वह किशोर अपराधी कहा जायेगा।

आयु का अन्तर

परन्तु कभी-कभी अपराधी और किशोर अपराधी में केवल आयु का नहीं बल्कि कुछ विशेष कामों का भी अन्तर होता है। इस तरह कानून विरोधी काम न करने पर भी कुछ खास तरह के काम करने वाले बालक और नौजवान किशोर अपराधी मान लिये जाते हैं। आवारा, दुष्ट, उद्दंड और चोर, डाकू, गुण्डे तथा आवाराओं, वेश्याओं, शराबियों, जुआरियों आदि के साथ घूमने वाले तथा माता-पिता की आज्ञा के बिना घर से बहुत समय तक गायब रहने वाले अथवा बहुत रात बीते तक सड़कों पर घूमने वाले बालक और युवक बहुधा किशोर अपराधी मान लिये जाते हैं। यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि ये सब काम कानून के विरुद्ध नहीं हैं। अतः ऐसे काम करने वाला किशोर अपराधी सामान्य अपराधियों की श्रेणी में नहीं आता। कभी-कभी तो बेघरबार और बेकार घूमने वाला या भीख माँगने वाला बालक भी किशोर अपराधियों में शामिल कर लिया जाता है और उसको किशोर न्यायालयों के सामने पेश करके उसके सुधार की कोशिश की जाती है।

कामों का अन्तर

कोहेन ने कुछ विशेषताओं के आधार पर अपराधियों और किशोर अपराधियों में अन्तर किया है। ये विशेषतायें निम्नलिखित हैं :—

विशेषताओं का अन्तर

(१) किशोर अपराध निरुपयोगी होता है। किशोर अपराधी ऐसे-ऐसे काम करता है जिनसे उसका कोई लाभ नहीं होता जैसे सड़कों पर व्यर्थ घूमना फिरना। दूसरी ओर अपराधी केवल ऐसे ही काम करता है जिनसे उसे लाभ हो। कभी-कभी किशोर अपराधी अपने कार्य के लक्ष्य तक को नहीं जानता।

(२) कभी-कभी किशोर अपराधी केवल हँसी के लिए अपराध करता है जैसे किसी मोटर का शीशा तोड़ देना, रेल की पटरी पर पत्थर रख देना या किसी को छल से पानी में ढकेल देना। अपराधी इस तरह के कार्य नहीं करता।

(३) किशोर अपराधी अधिकतर योजना बनाकर अथवा संगठित रूप से कार्य नहीं करता। दूसरी ओर अपराधी योजना बनाकर तथा संगठित रूप से कार्य करता है।

संक्षेप में, अपराधियों और किशोर अपराधियों में मुख्य अन्तर उम्र, कार्यों के प्रकार, कार्यों के उद्देश्य, कार्यों की विधि आदि का है। परन्तु आमतौर से उम्र के भेद से ही अपराधियों और किशोर अपराधियों में अन्तर किया जाता है।

नोट—प्रश्न के दूसरे भाग के लिये प्रश्नोत्तर सं० ३० देखिये।

प्रश्न ३०—किशोरापराध के कारण क्या हैं? सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक कारणों का वर्णन कीजिये।

अथवा

प्रश्न—बाल अपराध के मनोवैज्ञानिक कारणों पर प्रकाश डालिये। अपने उत्तर की पुष्टि उदाहरणों से कीजिये। (यू० पी० बोर्ड १९६४)

किशोर अपराध के कारण
(Causes of Juvenile Delinquency)

आधुनिक अपराध शास्त्र की नई विचारधारा के अनुसार किशोरापराध के कारणों को दो भागों में बांटा गया है—व्यक्तिगत कारण और सामाजिक कारण।

किशोरापराध के कारणों का वर्गीकरण

अपराध में दो विशेष कारक काम करते हैं—आन्तरिक और बाहरी। आन्तरिक कारकों में शारीरिक और मनोवैज्ञानिक कारक आते हैं तथा बाहरी कारकों में सामाजिक कारक गिने जाते हैं। अमरीकी अपराध शास्त्री लिण्ड स्मिथ (Lynd Smith) और डुनहैम (Dunhem) ने अपराधियों को दो भागों में बांटा है—(१) सामाजिक अपराधी, (२) व्यक्तिगत अपराधी। सामाजिक अपराधी खासतौर से सामाजिक परिस्थिति के कारण पैदा होते हैं। वाल्टर रैकलेस (Walter Recklace) ने अपराध के दो विशेष कारण बतलाये हैं—(१) रचनात्मक और (२) परिस्थिति सम्बन्धी। कुछ अन्य अपराध-शास्त्रियों ने अपराध के कारणों को दो भागों में बांटा है—(१) समाज प्रेरित (Sociogenic) (२) मनोविज्ञान प्रेरित (Psychogenic)। यहाँ पर किशोरापराध के कारणों को तीन वर्गों में बांट कर उनका अध्ययन किया जायेगा—(१) सामाजिक कारण, (२) मनोवैज्ञानिक कारण और (३) आर्थिक कारण।

(१) सामाजिक कारण
(Social Causes)

किशोरापराध के कारणों में से सबसे अधिक व्यापक सामाजिक कारण हैं। इनमें मुख्य कारण हैं—(१) परिवार, (२) स्कूल, (३) अपराधी क्षेत्र, (४) बुरी संगति, (५) मनोरंजन, (६) युद्ध, (७) सामाजिक विघटन, (८) स्थानान्तरण।

किशोरापराध के कारणों में इलियट और मैरिल ने दूषित पारिवारिक प्रभाव को सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना है। हीली और ब्रोनर ने शिकागो तथा बोस्टन के ४००० किशोरापराधियों में ५० प्रतिशत विशृंखलित घरों से आये हुये किशोरों को पाया। परिवार के सम्बन्ध में मुख्य परिस्थितियाँ हैं—(अ) भग्न परिवार (ब) माता-पिता का रुख (स) माता-पिता का चरित्र व आचार (द) अपराधी भाई बहिनों का प्रभाव। किशोरापराध में परिवार के महत्व को पूरी तरह समझनेके लिये इन सभी कारकों को समझना जरूरी है।

(१) परिवार के दोष

(अ) भग्न परिवार (Broken Families)—किशोरापराध के अध्ययन से पता चलता है कि अधिकतर किशोरापराधी भग्न परिवारों से आते हैं। भग्न परिवार जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है ऐसा परिवार है जिसमें पारिवारिक सम्बन्ध टूट चुके हैं। परिवार का अर्थ केवल कुछ व्यक्तियों का इकट्ठा रहना मात्र नहीं है बल्कि उनका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस घनिष्ठता की अनुपस्थिति में परिवार विशृंखलित हो जाता है और विशृंखलित परिवार में किशोर अपराधी उत्पन्न होते हैं। भग्न परिवार में बालक की देखभाल नहीं हो पाती। कुछ विशेषज्ञों के अनुसार विशृंखलित परिवार लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में अपराधवृत्ति के लिये अधिक सहायक होता है। १९४७ में बम्बई के बाल सहायता समाज के आधीन ३८६ लड़के तथा १६६ अन्धी लड़कियाँ थीं। इनमें २ लड़के और २ लड़कियों के माता-पिता किसी न किसी अपराध के कारण जेल में सजा काट रहे थे, २ लड़के और पाँच लड़कियाँ कठोर व्यवहार से ग्रसित थीं, ६ लड़के और ९ लड़कियाँ अनैतिक असुरक्षा के शिकार थे। भग्न परिवार में पति-पत्नी, माता-पिता और बालक तथा भाई-बहिन के सम्बन्ध स्वस्थ नहीं रहते। अतः यह स्वाभाविक है कि बालक बालिकायें गलत रास्ते पर पड़ें।

(ब) माता-पिता का रुख—किशोरापराध की पारिवारिक परिस्थिति में बालक और माता-पिता के सम्बन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। लन्दन की वेश्याओं पर किये गये Women of the Street नामक भूमिका लेखक के एक खोजपूर्ण प्रबन्ध के अनुसार वेश्या की समस्या माता-पिता और बालक के सम्बन्ध से शुरू होती है। बहुधा जब बालक को माता-पिता का प्रेम नहीं मिलता और बात-बात में कठोर दंड मिलता है तो उसमें विद्रोह और क्षोभ बढ़ता जाता है जिससे अवसर मिलने पर वह घर से भाग जाता है और अपराध में पड़ जाता है। माता-पिता के तिरस्कार से बच्चे असहाय और अकेलापन महसूस करते हैं जिससे उनमें अनेक मानसिक ग्रन्थियाँ बन जाती हैं। यदि माता-पिता अपनी बहुत-सी बातों को बालक से छिपाने की कोशिश करते हैं तो इससे भी बालक में अपराधवृत्ति बढ़ती है। उदाहरण के लिये अधिकतर बालक बहुधा अपने माता-पिता से यह पूछते हैं कि वे कहाँ से आये अथवा उनके छोटे भाई-बहन कहाँ से आये। जब माता-पिता उनसे झूंठ बोलते हैं और वे

अपने साथियों अथवा घर के नौकरों से सही बात का पता पा जाते हैं तो उनमें असुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है, उनको यह जानकर जबर्दस्त धक्का लगता है कि उनके माता-पिता बहुत से ऐसे काम करते हैं जो वे उनको बतलाना नहीं चाहते। यह असुरक्षा की भावना बहुधा बालकों को यौन अपराध की ओर ले जाती है।

(स) माता-पिता का चरित्र व आचार—माता-पिता के चरित्र व आचार का बालकों के व्यक्तित्व पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। ऐसे बालक बहुत कम हैं जो अपने माता-पिता को झूँठ बोलते और मक्कारीपूर्ण व्यवहार, यौन अनैतिकता तथा चोरी करते देखते हुये भी अपना व्यवहार सामाजिक मूल्यों और मान्यताओं के अनुसार बना पाते हों। मिस इलियट के अध्ययन में ६७ प्रतिशत विश्रृंखलित और ४४ प्रतिशत अविश्रृंखलित परिवारों में माता-पिता अनैतिक व्यवहार में लगे हुये थे। यदि परिवार में माता वेश्यावृत्ति में लिप्त हो तो उसकी लड़कियों को भी उसका अनुसरण करने में संकोच न होगा और वे व्यभिचार की ओर बढ़ेंगी।

(द) भाई-बहनों का प्रभाव—केवल माता-पिता और बालकों के सम्बन्ध का ही नहीं बल्कि भाई-बहनों के व्यक्तित्व का भी बालकों के व्यक्तित्व पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव लड़कियों पर अधिक देखा जाता है क्योंकि उन पर लड़कों की अपेक्षा बाहर के कारकों का प्रभाव पड़ने का मौका बहुत कम आता है। यदि घर के बड़े बालक अपराधी व्यवहार करते हैं तो उसका असर छोटे भाई बहनों पर जरूर पड़ता है। यदि बड़ी बहिन अपराधी हो या अनैतिक व्यवहार में लगी हुई हो तो उसकी छोटी बहिन भी उसके अनुसार चलने लगती है।

उपरोक्त विस्तृत विवेचन से यह जाहिर है कि पारिवारिक परिस्थिति का बालकों को अपराधी बनाने में भारी हाथ है। परन्तु जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिये कि भग्न परिवार के सभी बालक अपराधी होते हैं। हीली और ब्रोनर के अध्ययन में ३७२ भग्न परिवारों में केवल २० प्रतिशत परिवारों में २ में से एक बालक अपराधी था। ६ बच्चे वाले ३३६ परिवारों में केवल १२ प्रतिशत बालक अपराधी व्यवहार में लगे हुये थे। इस अध्ययन में यह तो मालूम पड़ता है कि परिवार का विश्रृंखलन किशोरापराध का एक मात्र कारण नहीं है परन्तु कोई अपराध शास्त्री इस बात से इंकार नहीं करता कि वह निश्चय ही सबसे बड़ा कारण है।

परिवार के बाद बालक के व्यक्तित्व पर उसके स्कूल का प्रभाव पड़ता है। स्कूल से भाग जाना एक मुख्य किशोरापराध है। विलियमसन ने १९४७ में अपने अध्ययन में यह देखा कि किशोरापराध में स्कूल से भागना, चोरियाँ तथा यौन अपराध सबसे मुख्य थे और इसमें भी स्कूल छोड़कर भाग जाना और स्कूल के बाहर शहर में घूमना फिरना सबसे अधिक पाए गए। विलियमसन ने

(२) स्कूल सम्बन्धी दोष

स्कूल से भागने के मुख्य कारण माता-पिता द्वारा उपेक्षा, अपराधियों के गिरोह में, शामिल होना, अध्यापक द्वारा दण्ड, विषय में कमजोरी तथा शिक्षा स्तर योग्यता से अधिक होना पाये हैं। स्कूल से भागने वाले बालक अपना सारा समय बुरी संगति में बिताते हैं और तरह-तरह के अपराध करते हैं। आजकल अध्यापक के सामने यह एक बड़ी समस्या है। इसके लिये बड़े-बड़े नगरों में विद्यार्थियों को सिनेमा में मैटनी शो में जाने से रोक दिया गया है। परन्तु इस प्रकार रोकने मात्र से समस्या हल नहीं होती। आजकल की बढ़ी हुई अनुशासनहीनता का मुख्य कारण यह है कि शिक्षा न तो मनोरंजक है और न रुचिकर तथा वह चरित्र निर्माण करने की अपेक्षा सूचनाओं को मस्तिष्क में भरने पर अधिक जोर देती है। कहना न होगा कि इन्हीं कारणों से बालक का स्कूल में मन नहीं लगता और वह स्कूल जाने से डरता है तथा नाना प्रकार के अपराधों में फँस जाता है।

क्लिफोर्ड, शा और मैक्के (Clifford, Shaw and Mckay) के अध्ययन के अनुसार कुछ क्षेत्र बालकों के स्वस्थ विकास के लिये उपयुक्त नहीं होते। यह एक सामान्य बात है कि पड़ौस और मुहल्लों का बालकों पर बड़ा असर पड़ता है। सांख्यिकीय विधि का प्रयोग करके मालर ने यह निष्कर्ष निकाला कि न्यूयार्क शहर में किशोरापराधी उस क्षेत्र में अधिक थे जहाँ रहन-सहन का स्तर बहुत नीचा था, बाल मृत्यु अधिक होती थी, मनोरंजन का कोई साधन नहीं था, बस्ती अस्थिर थी, अस्थिर बस्तियों में कोई स्थाई सामाजिक नियम नहीं होता। उदाहरण के लिए धर्मशालाओं, सरायों तथा होटलों के आस-पास पाकेटमार अधिक पाये जाते हैं क्योंकि वहाँ आने-जाने वालों का सिलसिला बराबर लगा रहता है। क्लिफोर्ड, शा और मैक्के ने लगभग १५ शहरों में किशोरापराध का अध्ययन करके यह देखा कि अपराध की दरें नगर के केन्द्रीय भाग में सबसे अधिक और आखिरी छोर पर सबसे कम थीं। इससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि पिछड़े हुए और निम्न आर्थिक स्तर वाले क्षेत्र की सामाजिक परम्परायें अपराध के प्रतिमानों को साधारण समूह से अलग करती हैं। ये प्रतिमान किशोरापराधी समूह में बनाये रखे जाते हैं। इस तरह बड़े-बड़े शहरों में कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ अपराधियों की भरमार होती है। ये ही क्षेत्र अपराधी क्षेत्र कहलाते हैं। अपराधी क्षेत्र किशोर अपराध का महत्वपूर्ण कारण है। यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि शा और उसके सहयोगी हेनरी मैक्के ने निवास स्थान को अपराध का कारण नहीं माना है बल्कि यह दिखलाने की चेष्टा की है कि अपराधी वहाँ अधिक पाये जाते हैं जहाँ निर्धनता, मानसिक विकार, पारिवारिक विघटन, रोग, शिशु मृत्यु आदि विघटन की परिस्थितियां बराबर बनी रहती हैं। अपराधी क्षेत्र में स्थानान्तरण की प्रवृत्ति भी अधिक पाई जाती है। शा और मैक्के ने शिकागो तथा अन्य नगरों के अध्ययन के आधार पर अग्रलिखित निष्कर्ष निकाले :—

(३) अपराधी क्षेत्र

१. भिन्न-भिन्न बस्तियों में किशोरापराध की दरें भिन्न-भिन्न रहती हैं। कुछ क्षेत्रों में लड़के गिरफ्तार नहीं होते जबकि कुछ क्षेत्रों में वर्ष भर में कुल लड़कों की संख्या का पाँचवा भाग पकड़ा जाता है।

२. सर्दियों में अपराध की दरें नगर के छोर के निकट कम और कारखाने वाले क्षेत्रों में सबसे अधिक पाई जाती हैं। केन्द्र से दूरी के अनुपात से अपराध की दर घटती जाती है।

३. जिन क्षेत्रों में स्कूल छोड़कर भागने की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है वहाँ किशोरापराध की दरें भी अधिक होती हैं।

४. सन् १९३० में जिन क्षेत्रों में अपराध की दरें अधिक थीं वहाँ सन् १९०० में भी अधिक अपराधी दर थी यद्यपि इन वर्षों में जनसंख्या के आकार और स्वरूप में बहुत परिवर्तन हुए हैं।

(४) बुरी संगत

प्रमुख अपराध शास्त्री एकविन० एच० सदरलैंड (E. H. Sutherland) के अनुसार अपराधी व्यवहार दूसरे व्यक्ति से अन्तःक्रिया द्वारा सीखे जाते हैं। सदरलैंड के शब्दों में "कानून के उल्लंघन करने में सहायक परिभाषाओं की कानून के उल्लंघन में बाधक परिभाषाओं की अपेक्षा अधिकता हो जाने के कारण एक व्यक्ति अपराधी हो जाता है।" बालकों में किसी को बुरी और किसी को अच्छी संगति मिलती है। बुरी संगति में पड़ने पर बालक अपराध की ओर बढ़ता है जबकि अच्छी संगति से वह आगे चलकर समाज का योग्य सदस्य बनता है। मनुष्य के व्यवहार पर उनके साथियों का काफी असर पड़ता है। बालकों में वृहद समुदाय की मान्यताओं और मूल्यों को मानने की भावना उत्पन्न करने के लिये उनके चारों ओर एक ऐसे वातावरण की जरूरत है जहाँ उन्हें समाज के विरुद्ध काम करने की प्रेरणा कम से कम मिले।

(५) मनोरंजन का अभाव

बालकों के विकास के लिये मनोरंजन के साधनों का भी बड़ा महत्व है। स्कूल के बाद के शेष समय में स्वस्थ क्रियायें करने की प्रेरणा उन्हें अच्छे वातावरण में ही मिल सकती है। खाली समय का सदुपयोग न होना भी अपराधी व्यवहार को प्रेरित करता है। बालकों के समाजीकरण और नैतिक प्रशिक्षण में खेल-कूद प्रमुख तत्व है। अपर्याप्त और अनियंत्रित मनोरंजन नगर में किशोरापराध का महत्वपूर्ण कारण है। थर्सटन के एक अध्ययन में २५०७ किशोरापराधियों के खाली समय का दुरुपयोग हुआ था।

आधुनिक नगरों में छोटे बड़े सभी के मनोरंजन का प्रमुख साधन सिनेमा है। सिनेमा किशोरापराध और समाज विरोधी व्यवहार के लिये बहुत कुछ उत्तरदायी

(६) दूषित मनोरंजन

है। एडवेंचर (Adventure) और रोमांस (Romance) के दृश्यों के द्वारा सिनेमा अपराध के नये-नये प्रतिमान (Patterns) प्रस्तुत करता है। कुछ फिल्मों का किशोर बालकों पर इतना प्रभाव देखा गया कि उनको दिखाये जाने के बाद नगर में तरह-तरह के किशोरापराधों की दरें अत्यधिक बढ़ गईं। परन्तु सिनेमा के प्रति बालकों की प्रतिक्रिया अधिकतर उनके पड़ौस के तथा घरेलू प्रतिमानों द्वारा निर्देशित होती हैं। भिन्न-भिन्न बालकों पर उसका प्रभाव भी भिन्न-भिन्न मात्रा में पड़ता है। वैज्ञानिक अध्ययनों से यह प्रमाणित हो चुका है कि बालकों के व्यवहार पर सिनेमा का प्रत्यक्ष प्रभाव बहुत कम होता है। वास्तव में सिनेमा से अधिक महत्वपूर्ण बालक की सिनेमा के प्रति प्रतिक्रिया (Reaction) होती है जो उसके पिछले अनुभवों और सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया के आधार पर काम करती रहती है।

(७) युद्ध और उसके बाद की परिस्थितियां

युद्धकाल और युद्धोत्तर काल में किशोरापराध की दरें बढ़ी पाई गई हैं। युद्ध में सम्मिलित होने वाले देशों के बालकों की स्कूल की पढ़ाई में बहुत सी बाधायें पड़ती हैं। बहुधा पिता लड़ाई के मैदान में रहता है और माता कारखानों में काम करती है। अतः बच्चे की देखभाल ठीक तरह से नहीं हो पाती। नियन्त्रण के अभाव के कारण लड़के लड़कियों को मिलने-जुलने की बहुत स्वतन्त्रता होती है जिसके कारण यौन अपराध बढ़ते हैं। युद्धकाल में जहाँ बम गिराये आते थे वहाँ टूटे-फूटे मकानों में किशोर व्यक्ति ही अधिक लूट मार करते थे। अतः युद्धकाल की स्थिति अपराधी प्रवृत्तियों को स्पष्ट रूप से बढ़ाती है।

(८) सामाजिक विघटन

सामाजिक विघटन से व्यक्ति का विघटन होता है। समाज के विघटित होने पर अपराधियों की संख्या बढ़ जाती है। अतः सामाजिक विघटन भी किशोरापराध का एक कारण है। आधुनिक औद्योगिक समाज में समन्वय और समानता का बड़ा अभाव होता है। इससे तनाव बढ़ता है और युवक-युवतियाँ अपराधों की ओर बढ़ते हैं।

(९) स्थानान्तरण

स्थानान्तरण का भी किशोरापराध पर प्रभाव पड़ता है। स्टुअर्ट ने बर्कले नगर के अध्ययन में देखा कि किशोरापराधी ऐसे क्षेत्र में अधिक रहते थे जहाँ स्थानान्तरण अधिक था परन्तु अपने परिवार की अपेक्षा वे स्वयं बहुत कम गतिशील होते थे।

(२) मनोवैज्ञानिक कारण
(Psychological Causes)

अब तक किशोरापराध के सामाजिक कारणों का वर्णन किया गया था। इस विषय पर अधिकतर खोज सांख्यकीय विधि के आधार पर की गई है। किशोरापराध

के कारणों की खोज करने की अन्य दो विधियों जीवनवृत्त विधि तथा मनोविश्लेषण विधि के आधार पर खोज से किशोरापराध के मनोवैज्ञानिक कारणों पर प्रकाश पड़ा है। अपराध के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक कारणों में मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :—

(१) बौद्धिक दुर्बलता, (२) मानसिक रोग, (३) व्यक्तित्व के लक्षण, (४) संवेगात्मक अस्थिरता।

इन मनोवैज्ञानिक कारणों का वर्णन करने से पहले इस मत की परीक्षा भी मनोरंजक होगी कि शारीरिक विशेषतायें अपराध का कारण हैं।

क्या अपराधी एक विशेष शारीरिक टाइप होता है ?

इटली के सैनिक डा० सीजर लोम्ब्रोसो ने कुछ शारीरिक विकारों के आधार पर अपराधी को एक विशेष टाइप या आदर्श माना है। लोम्ब्रोसो ने ५६०७ अपराधियों के शारीरिक अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि अपराधों का कारण अपराधियों की शारीरिक विशेषतायें होती हैं जो कि उन्हें वंश परम्परा से प्राप्त होती हैं। लोम्ब्रोसो के अनुसार ये शारीरिक लक्षण निम्नलिखित हैं :—

(अ) दबा हुआ तथा पीछे की ओर झुका हुआ ललाट।
(ब) मोटी गोल पीठ।
(स) भारी जबड़ा।
(द) वन जातियों जैसी ठुड्डी।
(इ) शरीर पर अधिक बाल।

लोम्ब्रोसो के इस मत का परीक्षण और खण्डन किया जा चुका है। ब्रिटेन की राजकीय जेल के डॉ० चार्ल्स गोरिंग ने लगभग ३००० कैदियों के शारीरिक निरीक्षण द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि शारीरिक बनावट अथवा लक्षणों को अपराध का कारण नहीं ठहराया जा सकता। १६३६ में हूटन (Hooton) ने अपनी पुस्तक Crime and the man में लोम्ब्रोसो के सिद्धान्त को फिर से सिद्ध करने की चेष्टा की परन्तु उसका मत माननीय न हो सका। सदरलैंड ने इस मत का खण्डन करते हुए संकेत किया है कि इस परीक्षण में जिस प्रकार का नमूना लिया गया था वह ठीक नहीं था और व्यक्तित्व के गुणों का वर्गीकरण भी दोषपूर्ण था।

डाक्टर गोरिंग ने लोम्ब्रोसो के मत का खण्डन करके यह मत उपस्थित किया कि अपराध का कारण बुद्धि दोष है। परन्तु बौद्धिक दुर्बलता को अपराध का कारण

(१) बौद्धिक दुर्बलता

मानने वाले मत के मुख्य प्रवर्तक गोडार्ड (Goddard) थे। उन्होंने अपनी पुस्तक Mental, Efficiency and Levels of Intelligence में लिखा है "अपराध का सबसे बड़ा एक

मात्र कारण बौद्धिक दुर्बलता है। हीली तथा ब्रोनर ने ४००० बालकों की बुद्धि परीक्षा के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि १३ प्रतिशत बालकों की बुद्धि-लब्धि ७० से नीची थी। Unravling Juvenile Delinquency नामक पुस्तक में ग्ल्यूक और ग्ल्यूक (Glueck, S. S and Glueck, E. T.) ने १९३४ में १००० अपराधी बालकों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला कि १३ प्रतिशत बालकों की बुद्धि-लब्धि ७० से कम थी।

बौद्धिक दुर्बलता को किशोर अपराध का कारण मानने की सीमायें

उपरोक्त मत में यह दोष अथवा सीमा (Limit tion) दिखलाई गई है कि वह उन्हीं किशोरापराधियों के अध्ययन पर आधारित है जो न्यायालयों में उपस्थित किये जाते थे। कहना न होगा कि चतुर और बुद्धिमान किशोरापराधी मन्द बुद्धि किशोरापराधियों की अपेक्षा बहुत कम पकड़े जायेंगे। मैन और मैन (Mann, C. W. and Mann, N. P.) ने अपने एक अध्ययन में इस तथ्य का समर्थन करते हुए यह दिखलाया है कि ९० से कम बुद्धि-लब्धि वाले बालकों की तीव्र बुद्धि वाले बालकों की अपेक्षा पकड़े जाने की अधिक सम्भावना होती है। इन्होंने १०६१ अपराधियों की बुद्धि-लब्धि का माध्यमान निकाला। इसमें लड़कों की बुद्धि-लब्धि ९४·८८, लड़कियों की बुद्धि-लब्धि ८३·७७ पाई गई। १९४७ में मैरिल ने अपनी पुस्तक Problems of Child Delinquency में ५०० अपराध बालकों की बुद्धि-लब्धि का संशोधित बिने परीक्षण के आधार पर मध्यमान निकाला। यह मध्यमान ९२·५ था। २९०४ स्वस्थ बालकों की बुद्धि परीक्षा करने पर बुद्धि-लब्धि १०१·८ पाई गई। इन दोनों अध्ययनों से मैरिल ने यह निष्कर्ष निकाला कि कम बुद्धि को अपराध का कारण नहीं माना जा सकता क्योंकि अपराधियों का बौद्धिक स्तर सामान्य बालकों से स्पष्ट रूप से अलग नहीं होता है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि मन्द बुद्धि वाले बालक आसानी से बहकाए जा सकते हैं परन्तु बुद्धिमान और चतुर बालक भी अपराधों में पड़ सकते हैं।

(२) मानसिक रोग

कुछ अपराध शास्त्रियों ने मानसिक रोग और अपराध में घनिष्ठ सम्बन्ध दिखाने की कोशिश की है। किशोरापराधियों पर किए गए कुछ अध्ययनों में अनेक मानसिक रोगी भी पाये गये। इस मत के अनुसार अपराधी एक प्रकार का मानसिक रोगी है और इसको दंड की नहीं बल्कि इलाज की जरूरत है। कुछ मानसिक चिकित्सक साइकोपैथिक व्यक्तित्व (Psycho-pathic Personality) को अपराध का कारण मानते हैं। साइकोपैथिक बालक ऐसे परिवार में पैदा होते हैं जहाँ प्रेम और स्नेह और नियन्त्रण का पूर्ण अभाव है। साइकोपैथिक बालक के लिये टप्पन ने लिखा है" वह अत्यधिक समाजीकृत, झगड़ालू प्रकृति तथा निर्दय, उद्दण्ड, शक्की, आत्म-केन्द्रित (Self-centred), मित्रता रहित, बदले की भावना से पूर्ण, पिछड़ा हुआ

तथा जाति यौनिक (Hyper-sexual) अथवा यौन व्यवहार में अनियन्त्रित बालक होता है। अत्यधिक बढ़े हुए दोष में वह सहानुभूति की क्षमता में पूर्ण असमर्थता रखता है अपने निर्दय कार्यों तथा दूसरों के कष्ट के प्रति वह पूर्ण रूप से पश्चाताप रहित होता है।" यह साइकोपैथिक बालक अपने घर में एक बिना बुलाए मेहमान की तरह रहता है। उससे कोई प्रेम नहीं करता बल्कि सभी सदैव उसका तिरस्कार करते रहते हैं। ऐसे व्यवहार से यह स्वाभाविक ही है कि बालक में निर्बाध उद्दंडता और हिंसात्मकता के रूप में प्रतिक्रिया जाग्रत होती है। Juvenile Delinquency में टप्पन ने आइसाक नामक एक साइकोपैथिक बालक का वर्णन किया है। आइसाक १४ वर्ष का एक अत्यन्त बुद्धिमान बालक था। उस पर चोरी करने, स्कूल से भागने (Truancy), अप्राकृतिक यौन व्यवहार तथा सामान्य अनुशासनहीनता के दोष लगाये गए। वह एक सुन्दर बालक था जो पूर्णतया अजनबी व्यक्तियों को भी प्रभावित करता था। वह अपने परिवार में अकेला बालक था उसके बचपन में ही उसकी माता की मृत्यु हो गई थी। उसके पिता ने उसे २ वर्ष की उम्र में ही छोड़ दिया था। कुछ समय तक वह एक सम्बन्धी से दूसरे सम्बन्धी के पास निरुत्साह से पाला जाता रहा। अन्त में वह एक अनाथालय में भर्ती कर दिया गया। इन सब कारणों से उसमें बाल्य अवस्था में ही बहुत से विकार दिखाई पड़ने लगे।

आइसाक का उदाहरण

आइसाक ने दैनिक कार्यक्रम और अनुशासन का कभी पालन नहीं किया। अपने व्यवहार में वह सदैव कटुता और उद्दंडता का परिचय देता था। उसने बहुत-सी असम्भव और असंगत मांगें पेश कीं। जिन दो व्यक्तियों को वह बहुत पसन्द करता था उनके प्रति भी उसका व्यवहार इसी तरह का था। इन दो व्यक्तियों में एक किसान और एक सामाजिक कार्यकर्त्ता ने उसके सुधार के लिये बहुत कोशिश की। धीरे-धीरे उसको उसके व्यवहार के बारे में सचेत किया गया। खेती में उसकी अभिरुचि को बढ़ावा दिया गया। कुछ समय के सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से ये दो व्यक्ति उसके बहुत निकट आ गये। ये किसान और सामाजिक कार्यकर्त्ता आगे चलकर उसके आदर्श बन गये, यहाँ तक कि उन्होंने उसकी आत्मचेतना का रूप ले लिया। उसमें ग्लानि की भावना पैदा हो गई तथा उसने हर एक काम में इन दोनों व्यक्तियों की सलाह लेना शुरू कर दिया। जब आइसाक ने इस तरह समंजन (Adjustment) की प्रवृत्ति दिखानी शुरू की तो उसके सामने क्रमशः उच्चतर व्यवहार के आदर्शों को रखा जाने लगा। सुधारकों के आत्मविश्वास और लगे रहने के परिणामस्वरूप आइसाक अपने भविष्य का पुनर्गठन करने में क्रियाशील हो गया। २१ वर्ष की आयु में १९४१ में वह संयुक्त राज्य की वायु सेना में भर्ती कर लिया गया।

कुछ अपराध शास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों ने साइकोपैथिक अपराधियों के अध्ययन की आलोचना की है। सदरलैंड लिखता है कि एक मानसिक चिकित्सक ने

इलीनोज राज्य के बन्दीगृह के कैदियों का अध्ययन किया। चिन्हों के आधार पर उसने ९८ प्रतिशत कैदियों को साइकोपैथिक पाया। जब इसी बन्दीगृह का कुछ दूसरे मानसिक चिकित्सकों ने अध्ययन किया तो उन्होंने केवल ५ प्रतिशत बन्दी ही साइकोपैथिक पाए। वास्तव में विभिन्न मानसिक चिकित्सकों ने इस शब्द का प्रयोग इतने अधिक भिन्न-भिन्न रूगों और भिन्न-भिन्न चिन्हों के आधार पर किया है कि इसका कोई विशिष्ट अर्थ नहीं रह गया है जो वैज्ञानिक व्याख्याओं में प्रयोग किया जा सकें।

साइकोपैथिक अपराधियों के अध्ययन की आलोचना

व्यक्तित्व के लक्षणों तथा अपराध की प्रवृत्ति में भी बहुत निकट सम्बन्ध पाया गया। व्यक्तित्व व्यक्ति के परिवेश से अनुकूलन करने का ढंग है। अपराधी बालक इस अनुकूलन में अपराधी कार्यों का प्रयोग करते हैं। अतः अपराधी बालकों में व्यक्तित्व के कुछ विशेष लक्षण पाये गये हैं जिनसे किशोरापराध के कारणों पर प्रकाश पड़ता है। ग्ल्यूक ने अपनी पुस्तक Unraveling Juvenile Delinquency में किशोरापराधियों में सामान्य बालक की अपेक्षा स्वच्छंदता, विद्रोह हिंसात्मक प्रवृत्ति, सन्देहशीलता, असंयम, दूसरों को दुःख देने में सुख लेना, संवेगात्मक और सामाजिक असमंजन, वहिर्मुखी स्वभाव आदि कहीं अधिक पाये। संवेग की अपरिपक्वता अथवा संवेगात्मक असंतुलन आदि सामान्य बालक की अपेक्षा आठ गुना अधिक पाया गया। सामान्य बालक नम्र, शान्त, नियम पालन करने वाला तथा सामाजिक होता है। इसके विपरीत अपराधी बालक उद्दण्ड, अशान्त, नियम भंग करने वाला और असामाजिक पाया गया। ग्ल्यूक ने किशोरापराधी और सामान्य बालकों के मनोरंजन के साधनों में भी काफी अन्तर पाया। अपराधी बालक अधिकतर साहसिक कार्यों में रुचि लेता था। उसमें सिनेमा देखने की लत बहुत अधिक पाई गई। उसके मनोरंजन के प्रमुख साधन सिगरेट पीना; जुआ खेलना, घर से बाहर रहना, तोड़-फोड़ करना तथा सरकारी गाड़ियों में चुपके से चढ़ जाना आदि पाये गये। बहुधा वह किसी न किसी गिरोह का सदस्य होता था। इसके विपरीत सामान्य बालक खेलों से मनोरंजन करते देखे गये। ड्यूरिया और असम ने भी अपने अध्ययन से यह सिद्ध किया कि अपराधी बालकों में संवेगात्मक अपरिपक्वता बहुत अधिक पाई गई।

(३) व्यक्तित्व के लक्षण

इस प्रकार संवेगात्मक अस्थिरता अपराध के मनोवैज्ञानिक कारणों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। प्रेम और सहानुभूति की कमी, संवेगात्मक असुरक्षा, कठोर अनुशासन, अपर्याप्तता (Insufficiency) तथा हीनता की भावना और विद्रोह की प्रतिक्रिया बालक के व्यक्तित्व को असन्तुलित बना देती है जिससे उसे अपराधी व्यवहार की प्रेरणा मिलती है। हीली और ब्रेनर ने अपने अध्ययनों में

(४) संवेगात्मक अस्थिरता

किशोरापराध के कारण
सामाजिक
आर्थिक
मनोवैज्ञानिक
बेरोजगारी
गरीबी
बौद्धिक दुर्बलता
मानसिक रोग
व्यक्तित्व के लक्षण
संवेगात्मक अस्थिरता
परिवार
स्कूल
अपराधी क्षेत्र
बुरी संगत
मनोरंजन
युद्ध
सामाजिक विघटन
स्थानान्तरण
मनोरंजन का अभाव
दूषित मनोरंजन
विशृंखलित घर
माता-पिता द्वारा तिरस्कार
माता-पिता की चरित्रहीनता
अपराधी भाई-बहिन
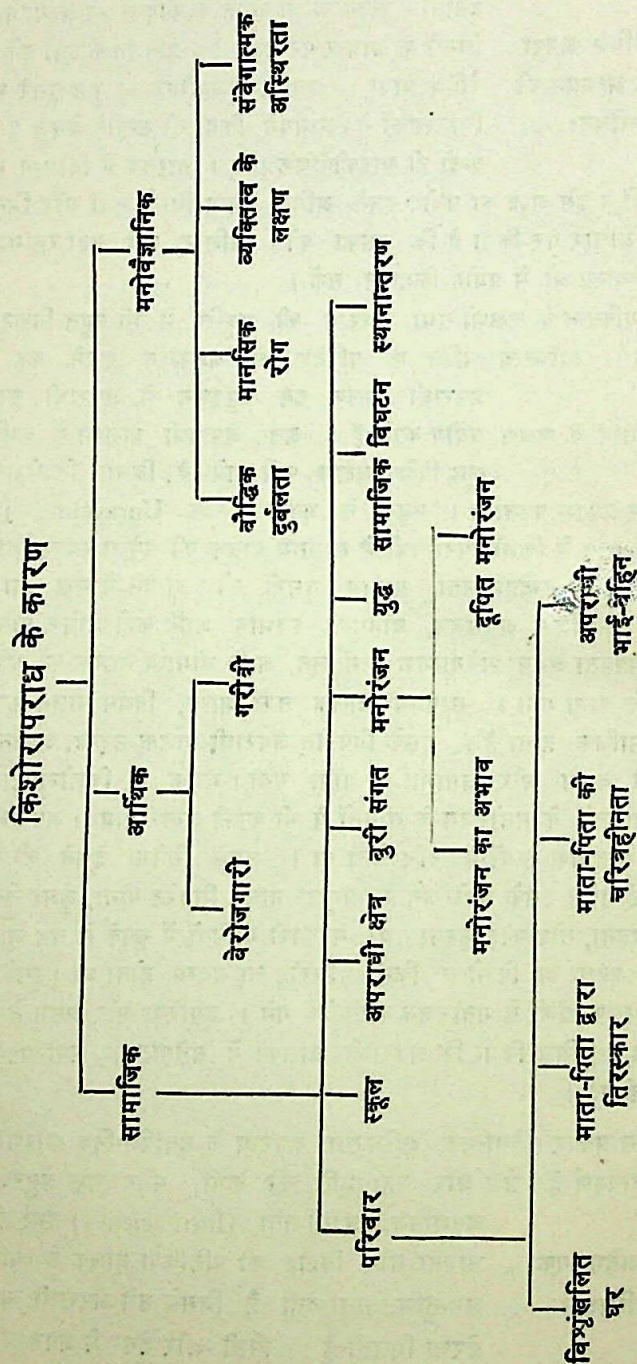
९३ प्रतिशत किशोरापराधी ऐसे देखे जिनमें संवेगात्मक असन्तुलन उपस्थित था। इन अपराधियों का विस्तार से विश्लेषण करने पर उन्हें जो संवेगात्मक प्रभाव देखने को मिले वे निम्नलिखित हैं :—

(१) ४६ अपराधियों में असुरक्षित, अस्वीकृत, अत्यधिक तिरस्कृत, हीनता की तथा ठीक न समझे जाने की भावना मौजूद थी।

(२) २८ अपराधियों में स्नेह की कमी के कारण उनकी सामान्य और असामान्य इच्छाओं का निरोध किये जाने की भावना उपस्थित थी।

(३) ३४ अपराधियों में स्कूल, पारिवारिक जीवन, साथियों या खेल-कूद में हीनता अथवा अपर्याप्तता की भावना उपस्थित थी।

(४) ३४ अपराधियों में माता-पिता के बुरे व्यवहार, पारिवारिक जीवन की परिस्थितियों अथवा माता-पिता की गलतियों और पारिवारिक असन्तुलन के कारण संवेगात्मक असंतुलन पाया गया।

(५) ३१ अपराधियों में अन्य साथी बालकों के प्रति द्वेष की कटु भावना उपस्थित थी।

(६) १७ अपराधियों में अप्रसन्न जीवन की भ्रान्ति पाई गई जिसके कारण कुछ पिछले अनुभव ही हो सकते हैं।

(७) ९ अपराधियों में पहले के अपराधी व्यवहार के कारण चेतन या अचेतन रूप में आत्मग्लानि अथवा अपराधी भावना मौजूद थी।

(३) आर्थिक कारण
(Economic Causes)

निर्धनता और अपराध का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। शा और मैक्के तथा इलियट के अध्ययन से यह मालूम हुआ कि किशोरापराधियों में अकुशल मजदूरों की सन्तान की संख्या बहुत अधिक थी। बौंगर (Bonger) तथा फोर्नासिरी डिवर्सी ने भी इस मत का समर्थन किया कि निर्धनता अपराध की प्रवृत्तियों को बढ़ावा देती है। इन किशोरापराधियों के बारे में मैरिल (Merrill) ने लिखा है कि परिवार की आय कम होने के कारण बालकों को भी काम करना पड़ता है और उनकी शिक्षा नहीं हो पाती। कारखानों का परिवेश बालक बालिकाओं को अपराध की राह पर ले जाता है। कभी-कभी बालकों को दूसरे के घर पर सन्देश ले जाने का कार्य सौंपा जाता है जिनसे उनको नाना-प्रकार के यौन व्यवहार देखने को मिलते हैं। इसका उन पर बुरा असर पड़ता है और वे अपराध की ओर प्रवृत्त होते हैं। गणना से देखा गया है कि अपराधी बालकों में काम करने वालों की संख्या काम न करने वालों से लगभग १० गुनी होती है। होटलों या उपहारगृहों में काम करने वाली लड़कियाँ यौन अपराध की ओर शीघ्र प्रवृत्त हो जाती हैं क्योंकि एक तो उनको वेतन बहुत कम मिलता है, दूसरे उनका निवास स्थान गन्दा तथा काम के घण्टे अधिक

निर्धनता और अपराध में सम्बन्ध है

होते हैं तथा तीसरे उनको यौन अपराधों की ओर ले जाने वालों की संख्या कम नहीं होती। वास्तव में गरीब घर के बालक बालिकाओं की अनेक इच्छायें अतृप्त रह जाती हैं जिनको तृप्त करने के लिये वे अपराधों का सहारा लेते हैं। निर्धनता से असन्तोष और हीनता की भावना भी पैदा होती है, जिससे व्यक्ति अपराध की ओर बढ़ता है।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं निकाला जा सकता कि निर्धनता और अपराध में अनिवार्य सम्बन्ध है। वास्तव में अपराध का कारण निर्धनता नहीं है बल्कि उसमें उत्पन्न वे मनोवैज्ञानिक कारक है जो बालक या बालिकाओं को अपराध की ओर ले जाते हैं। Juvenile Delinquency में टप्पन ने लिखा है "निर्धनता अपराध से सम्बन्धित है, परन्तु मुख्यतः इस कारण से कि सामान्य निरन्तर (Subnormal) आर्थिक परिस्थितियों के साथ-साथ बालक के प्रशिक्षण और अनुभवों के अन्य तत्व भी क्रियाशील रहते हैं जो चरित्र मूल्यों और कानूनों के प्रति अनुक्रियाओं को निर्धारित करने में अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। घरेलू लड़ाई झगड़े, अपराधी समूह (Delinquent gangs), अपर्याप्त शिक्षा और मनोरंजन की असुविधा, अवैधानिकता के उपस्थित प्रलोभन ये अधिकाधिक क्रियाशील तत्व होते हैं। साइरिल बर्ट ने अपने अध्ययन से यह दिखलाया है कि पकड़े हुये अपराधियों में निर्धनों की बहुत बड़ी संख्या होने का एक कारण यह है कि गरीब होने के कारण वे पुलिस तथा कानून से नहीं बच सकते जबकि धनिक अपराधी आसानी बच सकते हैं। साइरिल बर्ट के अध्ययन में केवल १९ प्रतिशत किशोरापराधी ही बहुत अधिक निर्धन परिवार के सदस्य पाये गये। ३७ प्रतिशत किशोरापराधी औसत रूप से निर्धन परिवारों के सदस्य थे। इस प्रकार आधे से अधिक किशोरापराधी निर्धन परिवारों से आये थे। परन्तु बर्ट के अनुसार इस बड़ी संख्या का मुख्य कारण निर्धनता न होकर यह था कि धनिक परिवारों के बालक अपनी सम्पन्नता के कारण पकड़े जाने से बच जाते हैं। निर्धन बालकों में किशोरापराधियों की अधिक संख्या के पाये जाने का चाहे कुछ भी कारण माना जाय परन्तु इस बात पर सभी अपराधशास्त्री और मनोवैज्ञानिक एक मत हैं कि किशोरापराध का निर्धनता से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब निर्धन परिवार के बालक धनिक परिवार के बालकों को तरह-तरह की चीजों का इस्तेमाल करते देखते हैं तो वे भी वैसा ही करना चाहते हैं परन्तु धन की कमी के कारण वे उन चीजों को प्राप्त नहीं कर सकते। फलस्वरूप उनमें द्वेष, लालच और जलन की भावनायें पैदा होती हैं जो उनको अपराधों की ओर ले जाती हैं।

निर्धनता से उत्पन्न अनेक मनोवैज्ञानिक कारक अपराध के कारण होते हैं

किशोर अपराधों के सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और आर्थिक कारणों के उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि इस विषय में विशिष्ट कारणवाद का

किशोरापराध के विविध कारण और उनके निवारण की आवश्यकता

सिद्धान्त ठीक नहीं है। वास्तव में आजकल कोई भी अपराध-शास्त्री अथवा मनोवैज्ञानिक इस तथ्य से इन्कार नहीं कर सकता कि अपराध के कारण विविध हैं। व्यक्ति की क्रियायें परिवेश के प्रति समंजन करने का ढंग है। इस समंजन में जो व्यक्ति सामाजिक उपाय अपनाते हैं वे स्वस्थ कहलाते हैं। इसके विपरीत जो व्यक्ति इस अनुकूलन में असामाजिक अथवा असामान्य उपायों का प्रयोग करते हैं वे अपराधी कहलाते हैं। इस तरह किसी बालक के अपराधी बनाने में सामाजिक और व्यक्तिगत, घरेलू, मनोवैज्ञानिक और आर्थिक सभी कारणों का हाथ है। अंत: किशोरापराधी को फिर से समाज का स्वस्थ नागरिक बनाने के लिये इन सब कारणों को समझकर इनको दूर करने की जरूरत है। हर्ष है कि इस तथ्य को आजकल सभी प्रगतिशील देशों में अनुभव किया गया है और इसलिये सब कहीं किशोरापराधी को दण्ड देने के स्थान पर उसके सुधार करने की कोशिश की जाती है।

प्रश्न ३१—आधुनिक सभ्य देशों में किशोरापराध के सुधार के क्या उपाय किये जाते हैं? इस प्रसंग में प्रवीक्षण सुधार संस्थाओं और मनोवैज्ञानिक उपचार का वर्णन कीजिये।

किशोरापराध के सुधार के उपाय

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है कि आधुनिक प्रगतिशील देशों में किशोर अपराधियों को दण्ड नहीं दिया जाता बल्कि उनके सुधार का उपाय किया जाता है। इस विषय में ३ उपाय सबसे अधिक प्रचलित हैं—(१) प्रवीक्षण (Probation), (२) सुधार स्कूल (Reformatory School), (३) मनोवैज्ञानिक उपचार (Psycho-therepy)।

(१) प्रवीक्षण
(Probation)

किशोरापराध के सुधार की सबसे अधिक प्रचलित विधि प्रवीक्षण है। इसमें किशोरापराधी को एक प्रवीक्षण अधिकारी (Probation officer) की संरक्षकता में रख दिया जाता है। अमेरिका में सन् १८४१ ई० से १८६९ ई० तक जान आगस्टस ने २०३ युवकों तथा १४९ युवतियों को यह विश्वास दिलाकर जमानत पर छुड़ाया कि वे दोबारा अपराध नहीं करेंगे और वास्तव में न तो उनमें से किसी ने दोबारा अपराध किया और न प्रोबेशन की शर्तों को तोड़ा। उस समय तक प्रोबेशन का

प्रवीक्षण का इतिहास

कानून नहीं था। अतः इसको वेल ,बोंडिग (Bail Bonding) कहा गया जिससे जमानत का तात्पर्य होता है। अमेरिका में सबसे पहला प्रोवेशन कानून १८७६ में साच्यूसैट्स राज्य में पास हुआ। उसके बाद में धीरे-धीरे सभी सभ्य देशों में प्रोवेशन या प्रवीक्षण का रिवाज हो गया।

प्रवीक्षण के उद्देश्य

प्रवीक्षण के उद्देश्य के बारे में अनेक प्रकार के मत मिलते हैं। अधिकतर लोग प्रवीक्षण को पहली बार अपराध करने वालों के प्रति नर्मी बरतने की एक विधि मानते हैं। एक अन्य मत यह है कि प्रवीक्षण का उद्देश्य चेतावनी देकर अथवा दण्ड का भय दिखलाकर अपराधी का सुधार करना है। कुछ नये अपराधशास्त्रियों के अनुसार प्रवीक्षण का उद्देश्य बालक की सामाजिक और मनोवैज्ञानिक जरूरतों को पूरा करना है। कुछ लोगों ने प्रवीक्षण को एक उपचार विधि ही मान लिया है, जिसमें कि बालक की मनोवृत्तियों और परिस्थितियों का अध्ययन करके उसके सुधार के उपाय किये जाते हैं। वास्तव में प्रवीक्षण के उद्देश्य में उपरोक्त सभी बातें आ जाती हैं। प्रवीक्षण का उद्देश्य अपराधी की मानसिक प्रवृत्तियों तथा उसकी परि-स्थितियों का सूक्ष्म अध्ययन करके, कभी उसे दण्ड का भय दिखलाकर और कभी नर्मी से समझाकर तथा उनकी सामाजिक और मनोवैज्ञानिक जरूरतों को यथा संभव पूरा करने की कोशिश करते हुए अपराधी को सही रास्ते पर लाना है।

उत्तर प्रदेश में प्रवीक्षण अधिनियम

भारत में सन् १९३८ में उत्तर प्रदेश का प्रथम अपराधी प्रवीक्षण अधिनियम (First Offender's Probation Act) पास हुआ। इस नियम के अनुसार पहली बार अपराध करने वाले बालक-बालिकाओं को प्रोवेशन पर रखने की व्यवस्था की गई। बड़े-बड़े नगरों में प्रोवेशन अधिकारियों की नियुक्ति की गई यद्यपि अभी हर एक जिले में प्रोवेशन का इन्तजाम नहीं है। उत्तर प्रदेश के इस अधि-नियम के अनुसार ७ वर्ष से लेकर २४ वर्ष की आयु तक अपराध करने वाले युवकों को प्रवीक्षण अधिकारी की देखरेख में रखा जाता है।

प्रवीक्षण अधिकारी के काम

उत्तर प्रदेश के अलावा भारत में मद्रास और बम्बई की सरकारों ने भी प्रोवेशन के बारे में अधिनियम बनाये। कुछ अन्य राज्यों ने भी इस दिशा में कदम उठाये हैं, परन्तु सारे देश में प्रोवेशन की व्यवस्था होना अभी दूर की बात है। बम्बई, उत्तर प्रदेश और मद्रास के प्रवीक्षण अधिनियम में प्रवीक्षण अधिकारी के कामों के बारे में मुख्य निर्देश निम्नलिखित हैं :—

१. प्रोवेशनर (Probationer) से मित्रता स्थापित करना और उससे सहानुभूति का व्यवहार रखना।

२. समय-समय पर प्रोवेशनर के घर जाकर उससे मिलना और कभी-कभी उसे अपने घर भी आमन्त्रित करना।

३. इस बात की देखरेख रखना कि प्रोवेशनर अदालत में दाखिल किये गये बौंड (Bond) की शर्तों का पालन कर रहा है या नहीं।

४. अदालत को प्रोवेशनर के व्यवहार के बारे में सूचित करते रहना।

५. प्रोवेशनर को सलाह मशविरा देना और उसके व्यवहार को उचित दिशा में ले जाने की कोशिश करना।

६. प्रोवेशनर को काम-धंधा दिलाने में मदद देना।

आजकल उत्तर प्रदेश के ५१ जिलों में से लगभग १७ जिलों में प्रवीक्षण का इन्तजाम है। उत्तर प्रदेश के सूचना विभाग के अनुसार १९५७ में लगभग ३००० अपराधियों को प्रवीक्षण अधिकारियों के संरक्षण में छोड़ा गया। भारत में प्रवीक्षण व्यवस्था का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। अकेले बम्बई राज्य में १९५१ में प्रवीक्षण पर छोड़े गये अपराधियों की संख्या केवल ११ थी जबकि १९५२ में यह संख्या बढ़कर ६६३ हो गई। मद्रास में १९५२ में ५२५० अपराधी प्रोवेशन पर छोड़े गये।

भारत में प्रवीक्षण व्यवस्था का विस्तार

प्रोवेशन व्यवस्था अपराधियों को और अधिक अपराधों से रोकने में बहुत अधिक लाभदायक सिद्ध हुई है। मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं :—

प्रवीक्षण व्यवस्था से लाभ

(१) प्रवीक्षण व्यवस्था अपराधी को सुधारने का मौका देती है।

(२) प्रवीक्षण अधिकारी अपराधी को सहायता और निर्देशन देता है।

(३) प्रोवेशन व्यवस्था अपराधी को जेल के दूषित वातावरण से बचाती है जिससे वह अनेक असामान्य प्रवृत्तियों का शिकार होने से बच जाता है।

(४) प्रवीक्षण व्यवस्था अपराध रोकने की अन्य व्यवस्थाओं से सस्ती भी है। उदाहरण के लिये १९५२ में मद्रास राज्य में प्रोवेशन पर छोड़े हुए ५२०० अपराधियों पर लगभग २,२८,००० रु० खर्च किया गया। जेल भेजे जाने पर लगभग १६ लाख रुपया खर्च होता है।

(५) प्रोवेशन व्यवस्था केवल अपराधी को अपराध करने से ही नहीं रोकती बल्कि उसे समाज का एक उपयोगी अंग बनाने में भी सहायता करती है। उत्तर प्रदेश में १९५३ में प्रवीक्षण पर छोड़े गये १७०० अपराधियों में से केवल ८ को छोड़कर बाकी अपराध करना छोड़कर उत्तम नागरिक बन गये।

(२) सुधार संस्थायें
(Reformatory Schools)

भारत में १८१७ के रिफोर्मेट्री स्कूल अधिनियम (Reformatory Schools' Act) के अनुसार सुधार स्कूल स्थापित किये गये। आजकल भारत में इस तरह के निम्नलिखित ४ स्कूल हैं :—

(१) सुधार स्कूल

(१) हिसार रिफोर्मेट्री स्कूल—इसमें दिल्ली और पंजाब के १५ वर्ष से कम उम्र के किशोरापराधी भेजे जाते हैं। ये ३ से ५ वर्ष तक स्कूल में रखे जाते हैं। इन्हें मिडिल स्कूल तक की शिक्षा दी जाती है और साथ में प्रौद्योगिक शिक्षा भी दी जाती है। इसमें चमड़े का काम, सिलाई, लुहार का काम, बैंत का काम, बढ़ई-गिरी आदि आते हैं। इसके अलावा स्काउटिंग, प्राथमिक चिकित्सा, मनोरंजन आदि का भी प्रबन्ध है। आचरण अच्छा होने पर बालक को इनाम दिया जाता है और घर जाने के लिये १५ दिन की छुट्टी भी दी जाती है।

(२) लखनऊ रिफार्मेट्री स्कूल—इसमें उत्तर प्रदेश के ९ वर्ष से १५ वर्ष की आयु तक के किशोरापराधी रखे जाते हैं। ये ४ से ७ वर्ष तक स्कूल में रहते हैं। स्कूल में इनकी सामान्य और प्रौद्योगिक शिक्षा का प्रबन्ध है। बालकों को जेब खर्च मिलता है और सादे कपड़ों में स्कूल से बाहर जाने दिया जाता है। स्कूल के बालकों का एक अपना बैंड भी है जो शहर में भेजा जाता है।

(३) जबलपुर रिफोर्मेट्री स्कूल—इसमें मध्य प्रदेश के किशोर अपराधी रखे जाते हैं। स्कूल में बालकों को पूरी स्वतन्त्रता दी जाती है और उन्हें आत्म-निर्भरता सिखाई जाती है। स्कूल में सामान्य और औद्योगिक दोनों प्रकार की शिक्षा दी जाती है।

(४) हजारी बाग रिफोर्मेट्री स्कूल—इसमें पश्चिमी बंगाल, बिहार, आसाम और उड़ीसा के किशोर अपराधियों को प्राथमिक शिक्षा (Primary Education) दी जाती है। स्कूल से लगे औद्योगिक कक्ष में स्कूल के अलावा बाहर के विद्यार्थियों को भी प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रतिभाशाली बालकों को बाहर की शिक्षा-संस्थाओं में भेजा जाता है।

(२) सर्टीफाइड स्कूल

रिफोर्मेट्री स्कूलों में भयंकर अपराध वाले किशोर अपराधियों को रखा जाता है। छोटे अपराध वाले बालक सर्टीफाइड स्कूलों में रखे जाते हैं। ये स्कूल भारत में उन सब राज्यों में पाये जाते हैं जिनमें बाल अधिनियम (Children Acts) पास किये जा चुके हैं। १४ वर्ष तक के बालक जूनियर सर्टीफाइड स्कूलों में रखे जाते हैं। १४ से १६ वर्ष के बाल अपराधी सर्टीफाइड स्कूलों में रखे जाते हैं। इन स्कूलों में ५ से

८ वीं कक्षा तक की शिक्षा दी जाती है। मद्रास राज्य में लड़कों के एक सीनियर और दो जूनियर तथा लड़कियों का एक सम्मिलित स्कूल है। राज्य द्वारा संचालित इन स्कूलों के अलावा ८ सर्टीफाइड स्कूल सार्वजनिक समितियों द्वारा संचालित हैं। बम्बई राज्य में राज्य सरकार द्वारा संचालित १९ सर्टीफाइड स्कूल हैं। केरल राज्य में एक सर्टीफाइड स्कूल है। इन सर्टीफाइड स्कूलों के अलावा बम्बई राज्य की ८९ उपयुक्त व्यक्ति संस्थायें (Fit Person Institutions), बंगाल का आवारा बच्चों का शरणालय (Vagrant Children's Home), कलकत्ता का कलकत्ता विजिलेंस समिति शरणालय (Calcutta Vigilance Association Home), आन्ध्र प्रदेश में कुट्टी नेल्लोड़ी का बाल शरणालय तथा दिल्ली का बाल शरणालय और मैसूर राज्य में वेलारी का सर्टीफाइड स्कूल आदि संस्थायें किशोर अपराधियों के सुधार की दिशा में महत्वपूर्ण काम कर रही हैं।

सर्टीफाइड स्कूलों के लिये बच्चे लेने वाली संस्थायें सहायक गृह (Auxiliary homes) कहलाती हैं। सहायक गृह सरकारी और गैर-सरकारी दोनों प्रकार के होते हैं। इनमें सातवें दर्जे तक की सामान्य शिक्षा और बढ़ई-गिरी, कताई, बुनाई, जिल्दसाजी, चटाई बुनना, राज और दर्जी का काम आदि की औद्योगिक शिक्षा दी जाती है।

(३) सहायक गृह

इसके अलावा स्काउटिंग, प्राथमिक चिकित्सा (First Aid), संगीत तथा खेती आदि की शिक्षा का भी प्रवन्ध होता है। सहायक गृहों से निकले हुये बालक बहुत कम संख्या में दुबारा अपराध करते हैं।

Juvenile Delinquency के लेखक टप्पन (Tappan) के अनुसार इंगलैंड के गृह विभाग ने बोर्स्टल व्यवस्था के सिद्धान्तों की इस प्रकार व्याख्या की है—"इस व्यवस्था का लक्ष्य चरित्र और नैतिक, मानसिक, शारीरिक तथा व्यवसाय सम्बन्धी क्षमताओं का, विशेष रूप से उत्तर-दायित्व और आत्मनियन्त्रण के विकास पर जोर देते हुये प्रगति के साथ बढ़ते हुये विश्वास के द्वारा सर्वांगीण विकास करना है।"[3] बोर्स्टल

(४) बोर्स्टल स्कूल

संस्था में सदस्यों को दिन-भर रुचिकर तथा मेहनत के कामों में लगाये रखा जाता है। सामान्य शिक्षा के साथ-साथ इनमें शारीरिक प्रशिक्षण तथा औद्योगिक प्रशिक्षण का विशेष ध्यान रखा जाता है। इस प्रकार का प्रशिक्षण सबसे पहले १९०२ में इंगलैंड में केन्ट प्रान्त में मैनचेस्टर के निकट बोर्स्टल नामक स्थान पर स्थापित किया गया। अतः इसका नाम बोर्स्टल स्कूल पड़ा। बोर्स्टल स्कूल भारत में सबसे पहले मद्रास राज्य में १९२६ में बने एक अधिनियम के अनुसार स्थापित हुआ। पश्चिमी

---

3. "The object of the system is the round development of character and capacities, moral, physical and vocational with particular emphasis of the development of responsibility and self-control, trust increasing with progress."

बंगाल में बेहरामपुर में और बम्बई में धारवाड़ में भी मद्रास के समान बोर्स्टल स्कूल स्थापित किया गया। मैसूर और मध्य प्रदेश में भी इस प्रकार का एक-एक स्कूल बना।

बोर्स्टल स्कूल में १६ से २१ वर्ष की आयु के अपराधी रखे जाते हैं। ३२ वर्ष की आयु के बाद इनको स्कूल से छोड़ दिया जाता है। आमतौर से बोर्स्टल स्कूल राज्य के जेल विभाग के आधीन होते हैं। मद्रास राज्य का बोर्स्टल स्कूल कई खण्डों में विभाजित है। इन खण्डों का निरीक्षक एक हाऊस मास्टर (House Master) होता है। हाऊस मास्टर खण्ड के काम और अनुशासन का जिम्मेदार होता है। हाऊस समूहों (Groups) में बंटा होता है। बोर्स्टल स्कूल में अच्छा आचरण दिखलाने वाले अपराधी को स्टार श्रेणी दी जाती है। इस श्रेणी के बन्दी को उसकी पसन्द का काम मिलता है और साथ ही साथ बैज धन राशि (Badge Money) के रूप में कुछ धन भी दिया जाता है। स्टार श्रेणी में अच्छा आचरण दिखलाने वाले सदस्यों को विशेष स्टार श्रेणी में रखा जाता है। विशेष स्टार श्रेणी के सदस्यों को बिना निगरानी के बाहर जाने की सुविधा दी जाती है। वे परेड, वर्कशाप तथा मनोरंजन कक्ष आदि की देख-रेख करते हैं और सन्तरी आदि का काम करते हैं। वे संस्था से बाहर खेल-कूद प्रतियोगिताओं में और स्काउट शिविरों में भाग लेने को भी भेजे जा सकते हैं।

उत्तर प्रदेश में बरेली में बोर्स्टल व्यवस्था के अनुकूल एक किशोर बन्दीगृह (Juvenile Jail) स्थापित किया गया है। उड़ीसा में अंगुल और बिहार में पटना में भी इसी प्रकार के किशोर बन्दीगृह स्थापित किये गये हैं।

(५) किशोर बन्दीगृह

किशोर बन्दीगृह में उन्नीस वर्ष की आयु तक के या अधिक से अधिक २१ वर्ष की आयु के अपराधी रखे जा सकते हैं। किशोर बन्दीगृह साधारण जेलों से भिन्न हैं। यह एक सुधार संस्था है। इसमें बन्दियों को सामान्य शिक्षा और औद्योगिक शिक्षा दी जाती है। बन्दी जेल से बाहर जाकर भी काम कर सकते हैं। वे समय-समय पर अपने परिवार से मिलने घर भी जा सकते हैं। जेल की पढ़ाई खत्म करने के बाद सदस्य आगे पढ़ने के लिये जेल के बाहर के स्कूलों में भी जा सकते हैं। बरेली जेल में कैदियों की अपनी देख-रेख में एक कैंटीन भी है जिससे उनको अपनी आवश्यकता की वस्तुयें मिल जाती हैं। जेल में बन्दियों द्वारा चुनी हुई एक पंचायत भी होती है। यह पंचायत सफाई तथा भोजन की व्यवस्था की देख-रेख करती है। यह कैदियों के अनुशासन भंग के मामलों में निर्णय देती है। किशोर बन्दीगृह अपराधियों के सुधार में बड़े सफल सिद्ध हुये हैं। बरेली के किशोर बन्दीगृह से पिछले बारह वर्षों में केवल एक ही कैदी भागा है। बन्दीगृह के सदस्यों की कमाई का धन उनके नाम जमा कर दिया जाता है और जेल छोड़ते समय उन्हें दे दिया जाता है ताकि वे कोई स्वतन्त्र व्यवसाय स्थापित कर सकें। जेल में

खिलौने बनाने, चमड़े का काम, बुनाई, सिलाई, गलीचा बनाना, खेती, मुर्गीपालन, बैंड बजाना आदि विभिन्न उपयोगी काम सिखाये जाते हैं।

देश में विभिन्न प्रकार की सुधार संस्थाओं के उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि भारत सरकार तथा राज्य सरकारें इस ओर ध्यान दे रही हैं। यद्यपि यह काम खासतौर से राज्यों का ही है परन्तु भारत सरकार ने भी इस दिशा में काफी सहायता दी है। भारत के केन्द्रीय सरकार के Care Programme के अन्तर्गत राज्यों में खोली जाने वाली सुधार संस्थाओं की वर्तमान संख्या निम्न दी गई तालिका से मालूम होती है :—

भारत में सुधार संस्थायें

भारत में सुधार संस्थायें

क्रम संख्या	राज्य/केन्द्रीय प्रदेश	लड़कों के क्लब	रिमाण्ड होम	बोर्स्टल स्कूल	प्रोबेशन होस्टल	सर्टीफाइड स्कूल	किशोर निशर्देन ब्यूरो
१.	आन्ध्र प्रदेश	१	—	—	—	—	—
२.	बिहार	—	७	१	२	—	—
३.	गुजरात	—	१	—	—	१	—
४.	केरल	५	६	१	—	—	—
५.	मध्य प्रदेश	—	२	—	२	२	—
६.	मद्रास	५	१	—	—	१	—
७.	महाराष्ट्र	—	४	—	—	४	—
८.	मैसूर	—	१०	—	१	७	—
९.	राजस्थान	४	१	—	—	१	—
१०.	दिल्ली	—	१	—	१	१	१
११.	हिमाचल प्रदेश	—	—	—	—	१	—
१२.	त्रिपुरा	—	—	—	—	१	—

(३) मनोवैज्ञानिक उपचार

(Psycho-therepy)

किशोर अपराधियों के सुधार में मनोवैज्ञानिक खोज से बड़ी सहायता मिली है। प्रवीक्षण व्यवस्था तथा सुधार संस्थाओं में किशोरापराध के सामाजिक कारण दूर

किए जा सकते हैं परन्तु उसके व्यक्तित्व के दोषों को दूर करना कठिन है। बहुधा किशोरापराधियों में मानसिक असन्तुलन अथवा ऐसे ही अनेक मनोवैज्ञानिक दोष होते हैं जिनको दूर करने के लिए विशेष उपायों की जरूरत है। अतः आजकल अपराधियों के सुधार की सबसे अधिक प्रचलित वैज्ञानिक विधि मनोवैज्ञानिक उपचार है। इस तरह के उपचार का पाश्चात्य देशों में अधिक अच्छा प्रबन्ध है। भारत में अभी इस विषय की बड़ी कमी है परन्तु फिर भी सुधार संस्थाओं में और प्रवीक्षण व्यवस्था में अपराधियों के जीवनवृत्त को जानकर उनके मनोवैज्ञानिक उपचार का प्रबन्ध किया जाता है। मनोवैज्ञानिक उपचार में विशेषतः निम्नलिखित तीन तरह की विधियाँ आती हैं :—

(१) क्रीड़ा चिकित्सा (Play-therepy)।
(२) अंगुलि चित्रण (Finger Painting)।
(३) मनो-अभिनय (Psycho-drama)।

(१) क्रीड़ा चिकित्सा

क्रीड़ा चिकित्सा मनोवैज्ञानिक उपचार की सबसे अधिक स्वाभाविक विधि है। किशोरापराध का एक बड़ा कारण यह है कि बालक की रचनात्मक प्रवृत्तियों को स्वाभाविक रूप से उभरने नहीं दिया जाता जिससे कि वे विनाशात्मक मार्ग में निकल पड़तीं हैं और बालक अपराधी बन जाते हैं। क्रीड़ा चिकित्सा में बालक को इस प्रकार के खेल खिलाये जाते हैं जिनसे उसको अपनी रचनात्मक शक्ति के विकास करने का समुचित अवसर मिल सके जैसे किला बनाना, घर बनाना आदि। इन खेलों का विशेष प्रयोजन बालकों को कुछ सिखाने का नहीं होता बल्कि उनकी मानसिक प्रवृत्तियों को जाहिर होने का मौका दिया जाता है। इससे बालकों को सन्तोष मिलता है और मन में विकार नहीं आ पाते। खेल का एक बड़ा लाभ यह भी है कि इससे बालकों के सामाजिक गुण विकसित होते हैं। उनमें भ्रातृत्व और सहयोग की भावना आती है और असामाजिक प्रवृत्तियाँ नहीं आ पातीं। क्रीड़ा चिकित्सा में व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों ही तरह के खेलों का प्रयोग किया जाता है।

(२) अंगुलि चित्रण

मनोवैज्ञानिक उपचार की दूसरी विधि अंगुलि चित्रण की विधि कहलाती है। जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है इसमें बालक अंगुलियों से चित्रण करता है। उसके सामने लाल, पीला, नीला, हरा आदि अनेक रंग रख दिये जाते हैं और उसको एक कोरा कागज दे दिया जाता है। अब बालक को उस कागज पर उंगली से उन्हीं रंगों के द्वारा कोई भी चित्र बनाने को कहा जाता है। बालक मनचाहे रंग से मनचाहे ढंग से कागज पर चित्र बनाता है। वास्तव में इसमें प्रयोजन चित्र बनवाने का बिल्कुल नहीं होता बल्कि चित्र बनवाने के बहाने बालक के संवेगात्मक तनावों को निकलने का मौका दिया जाता है। अक्सर बालक अंगुली चित्रण में बहुत-

सा रंग कागज पर फैला देता है और कभी-कभी अपने हाथ-पैर और कपड़े तक रंग डालता है। इस तरह जहाँ उसको मनचाही करने का आनन्द मिलता है वहाँ उसका संवेगात्मक तनाव भी निकल जाता है और वह फिर से स्वस्थ बालक हो जाता है।

मनोवैज्ञानिक उपचार की तीसरी प्रसिद्ध विधि मनो-अभिनय है। इस विधि को सबसे पहले मोरैनो (Moreno) नामक मनोवैज्ञानिक ने प्रारम्भ किया था। इस विधि में बालक को एक काल्पनिक भूमिका में भाग लेने का मौका दिया जाता है। जैसा कि इस विधि के नाम से स्पष्ट है यह अभिनय मनोवैज्ञानिक होता है। इसका प्रयोजन बालक को अभिनय करना सिखाना नहीं होता बल्कि अभिनय के सहारे उसके संवेग को जाहिर होने का मौका दिया जाता है। इस विधि में बालक अभिनय की भूमिका भी अपनी इच्छानुसार ही चुनता है तथा अपनी इच्छा से ही क्रोध, हर्ष, घृणा अथवा संघर्ष के भाव व्यक्त करता है। अत: बालक अभिनय में इतना तन्मय हो जाता है कि उसे अपने किसी भी संवेग को जाहिर करने में कोई भी संकोच नहीं होता। स्पष्ट है कि इससे उसका दमित संवेग अभिव्यक्त हो जाता है और मन शान्त हो जाता है। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक अभिनय से बालक का संवेगात्मक रेचन हो जाता है और उसका मस्तिष्क फिर से सन्तुलित हो जाता है। मनोवैज्ञानिक अभिनय व्यक्तिगत भी होता है और सामूहिक रूप में भी किया जाता है। सामूहिक अभिनय में सभी तरह की भूमिकायें होती हैं जिससे कि बालक अपनी इच्छा के अनुसार मनचाही भूमिका चुन सके। बहुधा इसमें ऐसी स्थिति की कल्पना की जा सकती है जिसमें किसी किले को जीता जाये या किसी राक्षस को मारा जाये। इससे बालकों को अपनी ध्वंसात्मक (Destructive) अथवा आक्रामक (Aggressive) प्रवृत्तियों को व्यक्त करने का अवसर मिलता है।

(३) मनो-अभिनय

प्रश्न ३२—किशोरापराध की रोकथाम के उपाय बताइये।

किशोरापराध की रोकथाम

(Prevention of Delinquency)

वास्तव में किशोरापराधियों को सुधारने के लिये केवल उपरोक्त उपाय ही पर्याप्त नहीं हैं। सच पूछा जाये तो सुधार से रोकथाम का अधिक महत्व होता है। अंग्रेजी में एक कहावत है "Prevention is Better than cure" अर्थात् चिकित्सा से रोकथाम बेहतर है। यह कथन जितना शारीरिक रोग के बारे में सही है उतना ही

रोकथाम का महत्व

मानसिक रोग के बारे में भी ठीक है और क्योंकि अपराध भी एक प्रकार का असामान्य व्यवहार या रोग की सी अवस्था है इसलिये उसमें भी यह सिद्धान्त शत-प्रतिशत काम करेगा। रोकथाम इसलिये भी जरूरी है कि उससे बालकों को किशोरापराधी बनने से पहले ही रोका जा सकता है। यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि अपराधी बनने के बाद बालक में चाहे कितना भी सुधार क्यों न किया जाय सभी किशोरापराधी फिर से स्वस्थ नहीं बन पाते।

रोकथाम में ध्यान रखने योग्य बातें

इस रोकथाम में यह पहले ही पता लगा लेना जरूरी है कि कौन-से बालक ऐसे हैं जिनके अपराधी बन जाने की सम्भावना हो सकती है। ग्ल्यूक ने अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकाला कि भावी अपराधियों का ठीक-ठीक वर्गीकरण किया जा सकता है। प्रश्नावलियों, परीक्षणों तथा निरीक्षण की सहायता से भावी अपराधियों का पता लगाया जाता है। इसमें उसके व्यक्तित्व का परीक्षण बड़ा जरूरी है। यह परीक्षण केवल प्रयोगशाला में नहीं हो सकता। इसके लिये मनोवैज्ञानिक के साथ बालक के शिक्षक और उसके संरक्षक अथवा माता-पिता के सक्रिय सहयोग की जरूरत है। इन सबके सहयोग से परीक्षण किये जाने पर बालक की अपराधी प्रवृत्तियों का बड़ी सफलता से पता लगाया जा सकता है। भावी अपराधियों की यह रोकथाम किशोरावस्था में नहीं बल्कि बचपन में शुरू होनी चाहिये। ग्ल्यूक ने १००० किशोरापराधियों के अध्ययन में ३ प्रतिशत को ४ वर्ष की आयु से पहले, १२ प्रतिशत को ६ वर्ष की आयु से पहले, ३६ प्रतिशत को ८ वर्ष की आयु से पहले, ६२ प्रतिशत को १० वर्ष की आयु से पहले तथा ८४ प्रतिशत को १२ वर्ष की आयु से पहले पहली बार अपराध करते हुए पाया। इससे स्पष्ट है कि अपराध की रोकथाम ४–५ वर्ष की आयु से होनी जरूरी है। प्रसिद्ध मनोविश्लेषणवादी फ्रॉयड के अनुसार बालक के जीवन में प्रारम्भ के ७ वर्ष का बड़ा महत्व होता है और उसके भावी व्यक्तित्व का सारा ढांचा इन्हीं ७ वर्षों में तैयार हो जाता है। फ्रॉयड के इस मत को चाहे न भी माना जाये परन्तु किशोर अपराधियों से सम्बन्धित आंकड़ों से यह जरूर सिद्ध होता है कि उनकी अपराधी प्रवृत्तियों की रोकथाम छोटी आयु से ही होनी जरूरी हैं। इस रोकथाम में सबसे पहले उनके घर का परिवेश स्वस्थ होना चाहिये और माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धियों का सम्बन्ध प्रेमपूर्ण होना चाहिये। स्कूल में बालक का पाठ्यक्रम रुचिकर हो और उनको पाठ्यक्रम के अतिरिक्त कार्यक्रम, संगीत, खेलकूद, पिकनिक, स्काउटिंग आदि में पर्याप्त रूप से भाग लेने का अवसर मिले। बालक में अनुशासन उत्पन्न करना आवश्यक जरूर है परन्तु चेष्टा यह होनी चाहिये कि यह अनुशासन बाहर से न लादा जाकर स्वयं उनमें से ही उत्पन्न हो। घर और स्कूल के अतिरिक्त बालकों को तरह-तरह के खेलों के अवसर मिलने चाहियें। इस प्रसंग में यह संकेत करना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि चल-चित्र यथासम्भव स्वस्थ हों और बालकों को समाजविरोधी अथवा

वयस्कोचित चल-चित्र न ही देखने दिये जायें तो अच्छा है। संक्षेप में, अपराधी प्रवृत्तियों की रोकथाम में बालकों के पूरे व्यक्तित्व पर दृष्टि रखने की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में जो कुछ पहले कहा गया है उससे केवल सुझाव मात्र मिल सकता है विस्तृत रूपरेखा तो प्रत्येक बालक के लिये अलग-अलग उसके संरक्षक और माता-पिता मनोवैज्ञानिक के सहयोग से बना सकते हैं। इस सम्बन्ध में बालक का समुचित पालन-पोषण, समुचित शिक्षा, स्वस्थ मनोरंजन तथा मनोवैज्ञानिक दोनों प्रकार का उपचार महत्वपूर्ण तत्व हैं। अब इन तत्वों का जरा विस्तृत विवेचन प्रासंगिक होगा।

किशोर अपराध के निरोध का मूल मन्त्र उन कारणों की रोकथाम है जिनसे बालक अपराधी बनते हैं। विभिन्न अध्ययनों से यह देखा गया है कि अपराध की ओर जाने का मूल कारण बालक का समुचित पालन-पोषण न होना है। अतः किशोर अपराध को रोकने के लिये सबसे पहले परिवारों का पुनर्संगठन करना होगा। माता या पिता बनने से पहले प्रत्येक स्त्री और पुरुष को बाल मनोविज्ञान और बालकों के पालन-पोषण सम्बन्धी बातों का ज्ञान होना आवश्यक है। बालक का पालन-पोषण एक कला और एक विज्ञान है। इस कला की आवश्यक शर्तें माता-पिता का चरित्र तथा व्यवहार और घर का वातावरण है। आवश्यकता से अधिक लाड़ प्यार से बालक बिगड़ जाते हैं। आवश्यकता से कम स्नेह और प्यार पाने पर उनका भावनात्मक विकास नहीं हो पाता। अतः प्यार का बालक के जीवन में बड़ा महत्व है। मारपीट और अपमान बहुधा बालक को अपराध की राह पर ले जाते हैं। घर का अनुशासन प्रेमपूर्ण होना चाहिये। दूसरे, बालक की जिज्ञासाओं के समाधान में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। कोई बात पूछने पर बालक को झिड़क देने या उससे झूठ बोल देने का प्रभाव बड़ा बुरा पड़ता है। बहुधा बालकों से यौन जिज्ञासाओं के विषय में झूठ बोल दिया जाता है। बालक जब अपने साथियों या घर के नौकरों से सही बात का पता पा जाता है तब उस पर माता-पिता का झूठ खुल जाता है। बहुधा स्त्री-पुरुष के परस्पर प्रेम व्यवहार के समय बालक के आ जाने से वे अपराधी की सी मुद्रा बना लेते हैं या बालक को फटकार देते हैं। इससे बालक में अपराध ग्रन्थि बन जाती है। आवश्यक यौन शिक्षा के अभाव के अनेक लड़के-लड़कियां यौन अपराध की राह पर अग्रसर हो जाते हैं। माता-पिता बालक के सामने आदर्श होते हैं। उनके आपस के झगड़ों का और उन के चरित्र के दोषों का भी बालक पर उतना ही बुरा प्रभाव पड़ता है जिनका कि दुर्व्यवहार का। अतः, माता-पिता को अपने आचरण तथा चरित्र को ठीक रखने के विषय में बालक के प्रति जिम्मेदारी महसूस करनी चाहिये। वास्तव में बालक को अपराध से बचाने का तरीका उसकी बुरी आदतों को रोकना नहीं बल्कि उसमें अच्छी आदत डालना है। दण्ड और पुरस्कार का बालक पर बड़ा प्रभाव

(१) समुचित पालन पोषण

पड़ता है। अतः उसको अच्छी आदतें सिखाने में सावधानीपूर्वक इनका उपयोग किया जाना चाहिये। किस बात में कितनी सजा अथवा पुरस्कार किस तरह दिया जाय यह महत्वपूर्ण प्रश्न है। बालक को उपदेश से अधिक उदाहरण और आदर्श से सिखाना चाहिये।

परिवार के बाद बालक पर स्कूल का प्रभाव पड़ता है। अतः किशोर अपराध रोकने के लिये बालक का समुचित शिक्षा का प्रबन्ध होना बड़ा जरूरी है।

(२) समुचित शिक्षा

समुचित शिक्षा में शिक्षक का व्यक्तित्व, स्कूल का पाठ्यक्रम शिक्षा की विविधता और पाठ्यक्रम के अलावा कार्यक्रमों का बड़ा महत्व है। शिक्षकों को बाल मनोविज्ञान का विशेष ज्ञान होना चाहिये ताकि वे अपने विषय को मनोरंजक ढंग से उपस्थित कर सकें और बालक में विषय के प्रति रुचि उत्पन्न कर सकें। शिक्षक का आचरण और व्यवहार बड़ा सुधरा हुआ होना चाहिये क्योंकि बालक उसके उदाहरण से बहुत कुछ सीखता है। शिक्षक को भी उपदेश से अधिक उदाहरण से शिक्षा देनी चाहिये। बालक का अपमान बड़ा ही घातक सिद्ध होता है। शारीरिक दण्ड का यथासम्भव प्रयोग नहीं होना चाहिये। पढ़ने लिखने में कमजोर बालकों की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये क्योंकि उनके अपराधी बनने की सम्भावना अधिक रहती है। विद्यार्थियों को अपनी रुचि के अनुसार विषय चुनने तथा आपस के मामलों को स्वयं निपटाने की स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये। खेल-कूद, नाटक, वादविवाद, स्काउटिंग तथा नाना प्रकार की प्रतियोगिताओं के द्वारा बालक की विभिन्न प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त होने का अवसर मिलने से उसकी अपराध की ओर जाने की सम्भावना कम हो जाती है। सामान्य शिक्षा के साथ-साथ बालकों की शारीरिक शिक्षा, औद्योगिक शिक्षा तथा नैतिक शिक्षा भी आवश्यक है। स्कूल से भागना अपराध की पहली सीढ़ी है। स्कूल का वातावरण तथा शिक्षा पद्धति ऐसी होनी चाहिये कि बालक स्कूल से न भागे।

मनोरंजन का व्यक्ति के जीवन में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान होता है। स्वस्थ

(३) स्वस्थ मनोरंजन

मनोरंजन के अभाव में बालक की अपराधी वृत्तियों को प्रोत्साहन मिलता है। अतः अपराधों को रोकने के लिये स्वस्थ और सुसंस्कृत मनोरंजन की सामग्रियों का उपलब्ध होना अत्यन्त आवश्यक है।

मनोवैज्ञानिक दोष अपराध के महत्वपूर्ण कारण हैं। अतः बालकों के अपराधों को रोकने के लिये उनके मनोवैज्ञानिक दोषों का उपचार अत्यन्त आवश्यक

(४) मनोवैज्ञानिक दोषों का उपचार

है। इसके लिये स्कूलों से लगे हुये मनोवैज्ञानिक क्लीनिक (Psychological Clinics) होने चाहियें जो बालकों के विषय में उचित देख-भाल कर सकें और परामर्श दे सकें।

वास्तव में बालक को अपराध से रोकने का कार्य माता-पिता, शिक्षक तथा सरकार पर निर्भर है। इन सभी के सम्मिलित सहयोग से इस कठिन कार्य में सफलता मिल सकती है। इन सबको समय-समय पर मिलकर बालक की समस्याओं के विषय में परामर्श करना और उन समस्याओं को सुलझाने के उपाय सोचना आवश्यक है। इसके लिये शिक्षकों, अभिभावकों तथा मनोवैज्ञानिकों और प्रोबेशन अधिकारी आदि सरकारी कर्मचारियों की संयुक्त परिषदें होनी चाहियें। सरकार को परिवार तथा स्कूलों के सुधार में सहायता करनी चाहिये और परिवार नियोजन, स्कूलों और परिवारों को आर्थिक स्वावलम्बन में सहायता देना, शिक्षा का सुधार आदि अपराध निरोध में सहायक सिद्ध होंगे।

६

भीड़ तथा श्रोता समूह
(Crowds & Audiences)

प्रश्न ३३—भीड़ की परिभाषा कीजिये। एक श्रोता समूह भीड़ का रूप कैसे धारण कर लेता है?

अथवा

प्रश्न—भीड़ तथा श्रोता समूह में क्या अन्तर है? उदाहरण सहित समझाइये। भीड़ को किस प्रकार नियन्त्रण में लाया जा सकता है? (यू० पी० बोर्ड १९६३)

चौराहे पर कहीं साइकिल लड़ जाये, दो लोगों में कहा सुनी होने लगे या कोई मदारी तमाशा दिखाने लगे अथवा कोई उत्साही नेता ही जोर से बोलने लगे तो देखते-देखते आदमी के बाद आदमी इकट्ठा होता चला जाता है। साधारण बोलचाल की भाषा में आदमियों के इस जमघट को भीड़ (Crowd) कहते हैं। परन्तु मनोविज्ञान में प्रत्येक शब्द को प्रयोग करने से पूर्व उसकी शास्त्रीय परिभाषा करनी पड़ती है। अतः भीड़ जैसे रोजाना की बोलचाल के शब्द की भी परिभाषा की गई है जिससे कि उसका प्रयोग करने में गलती न हो। भीड़ की कुछ परिभाषायें निम्नलिखित हैं :—

भीड़ की परिभाषा

(१) मैकाइवर (MacIver) का मत—"भीड़ एक दूसरे के साथ प्रत्यक्ष, अस्थायी और असंगठित सम्बन्ध में लाये गये लोगों का शारीरिक रूप से घना संगठन है।"[1] भीड़ की यह परिभाषा बिल्कुल सामान्य है। इसके अनुसार यदि कुछ लोग कहीं भी पास-पास थोड़ी देर के लिए एकत्रित हो जायें तो वह समूह भीड़ कहलायेगा।

(२) किम्बाल यंग (Kimball Young) का मत—"एक भीड़ बहुत से लोगों का एक केन्द्र अथवा ध्यान में सामान्य विन्दु के चारों ओर इकट्ठा होना है।"[2] इस परिभाषा में भीड़ की एक यह विशेषता बतलाई गई है कि उसमें लोगों के ध्यान का एक केन्द्र होता है। अतः समाज मनोविज्ञान की दृष्टि से यह परिभाषा अधिक उपयुक्त है। मैक्डूगल (Mcdougall) ने भी लिखा है "एक स्थान पर एकत्र हुआ प्रत्येक

---

1 "Crowd is a physically compact organisation of human beings brought into direct, temporary and unorganised contact, with one another."
—MacIver.

2. "A crowd is a gathering of a considerable number of persons around a center or point of common attention."
—Kimball Young.

ऐसा समूह मनोवैज्ञानिक अर्थ में भीड़ नहीं बन जाता, जिससे सदस्यों का एक दूसरे को देखना और सुनना सम्भव हो।"[3] गिलिन (Gillin) ने इसका एक बड़ा ही मनोरंजक दृष्टान्त दिया है। आप बहुत में लोगों के गुजरने वाले किसी मार्ग पर खड़े हो जाइये और किसी ऊँची इमारत की ओर टकटकी लगाकर देखने लगिये, यह जरूरी नहीं कि वहाँ देखने लायक कोई चीज हो परन्तु यह जरूरी है कि आप उस ओर बराबर देखते रहें। थोड़ी देर में आपके चारों ओर कौतूहलवश बहुत से लोग आकर खड़े हो जायेंगे और एक दूसरे से पूछने लगेंगे कि क्या बात है और ऊपर आकाश की ओर देखने लगेंगे। एक ही जिज्ञासा को लेकर इकट्ठा हुआ इन लोगों का समूह भीड़ है। जैसे ही यह जिज्ञासा पूरी हो जायेगी वे वहाँ से अपने कामों पर चले जायेंगे और भीड़ खत्म हो जायेगी। इस दृष्टान्त से भीड़ का स्वरूप बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है।

(३) ब्रिट (Britt) का मत—"तब एक भीड़ में समान उत्तेजनाओं (Stimuli) से प्रतिक्रियाओं का अनुभव करने वाले लोगों का एक अस्थायी रूप से एकत्रित होना सम्मिलित है।"[4] इस परिभाषा के अनुसार भीड़ में एक सामान्य वस्तु के प्रति प्रतिक्रियायें होती हैं। थाउलस (Thouless) ने भी भीड़ में सामान्य रुचि को आवश्यक माना है। उसके अनुसार "भीड़ एक अस्थिर और एक दूसरे को छूता हुआ समूह है जो कि किसी सामान्य रुचि के कारण अपने आप बन जाता है और यहाँ तक असंगठित होता है कि उसकी सीमायें पूरी तरह से पारगम्य होती है।"[5] कैन्ट्रिल के अनुसार भीड़ में सामान्य मूल्य और सामान्य उद्वेग होते हैं। उसके अपने शब्दों में "भीड़ ऐसे व्यक्तियों को सम्मिलित समूह है जिन्होंने अस्थायी रूप से सामान्य मूल्यों से अपने को एक समझा है और जो कुछ ही तरह के संवेग (Emotions) दिखा रहे हैं।"[6]

इस प्रकार संक्षेप में, भीड़ कुछ ऐसे लोगों का अस्थायी प्रत्यक्ष और असंगठित समूह है जिनकी जिज्ञासा, मूल्य तथा उद्वेग अस्थायी रूप से सामान्य हों

---

3. "Not every mass of human beings gathered together in one place within sight and sound of one another constitutes a crowd in the psychological sense of the word." —Mcdougall.

4. "A crowd then, involves a temporary physical gathering of people experiencing much the same reactions from the same stimuli." —Britt.

5. "A crowd is a transitory contiguous group organised with completely permeable boundaries, spontaneously formed as a result some common interest." —Thouless.

6. "Crowd is a congregate group of individuals who have temporarily identified themselves with common values and who are expressing similar emotions." —Cantril.

और जो सामान्य रुचि या सामान्य उत्तेजनाओं (Stimuli) के कारण बन गया हो।

श्रोता समूह भीड़ का रूप कैसे धारण कर लेता है यह जानने के लिये श्रोता समूह की परिभाषा और विशेषतायें तथा भीड़ से उसका अन्तर जानना जरूरी है।

श्रोता समूह की परिभाषा

किम्बाल यंग (Kimball Young) के अनुसार "श्रोता समूह संस्थागत भीड़ का एक रूप है।"[7] इस प्रकार श्रोता समूह कुछ निश्चित समय के लिये, कुछ निश्चित नियमों पर आधारित एक भीड़ है। स्प्रोट (Sprott) ने लिखा है "हमने श्रोता समूह को एक संस्थागत भीड़ कहा है क्योंकि अधिकतर ऐसी परिस्थितियों में, जिनको कि हम श्रोता समूह कहते हैं व्यवहार का माना हुआ प्रतिमान होता है, एक औपचारिक अन्त का एक औपचारिक प्रारम्भ होता हैं।"[8]

किम्बाल यंग (Kimball Young) ने श्रोता समूह में निम्नलिखित तीन विशेषतायें वतलाई हैं :—

श्रोता समूह की विशेषतायें

(१) विशेष प्रयोजन (Specific purpose)—प्रत्येक श्रोता समूह का एक विशेष प्रयोजन होता है जैसे गीता. रामायण सुनना या मुशायरा सुनना इत्यादि।

(२) पूर्व निर्धारित समय और स्थान (Pre-determined time and place)—प्रत्येक श्रोता समूह एक निश्चित स्थान पर निश्चित समय के लिये एकत्रित होता है।

(३) वक्ता और श्रोता के बीच विशेष प्रकार की अभिमुखता और अन्तर्क्रिया (Standard form of polarization and interaction between the performer and the audience)—श्रोता समूह वक्ता की ओर ध्यान देता है और उस पर वक्ता या कर्ता के हाव-भाव, बोलने आदि का प्रभाव पड़ता है। नाटक देखते समय श्रोता समूह अभिनेताओं के साथ-साथ रोता और हंसता देखा जा सकता है।

श्रोता समूह के भेद

किम्वाल यंग दो प्रकार के श्रोता समूह मानता है :—

(१) सूचना प्राप्त करने वाला (Information Seeking)।

(२) मनोरंजन चाहने वाला (Recreation Seeking)।

---

7. "The audience is a form of institutionalized crowd."
—Kimball Young.

8. "We have called the audience an institutionalized crowd, because in the vast majority of situations, which we should call audiences there is an accepted pattern of conduct, a formal beginning of a formal end."
—Sprott.

लेपियर ने श्रोता समूह के तीन भेद माने हैं :—

(१) नाटकीय (Dramatic).

(२) भाषण (Lecture).

(३) विचार परिवर्तन हेतु (Conversational)।

कार्य और उद्देश्य के अनुसार मनोविज्ञान में पाँच प्रकार के श्रोता समूह माने गये हैं—साँस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक और मनोरंजक।

भीड़ और श्रोता समूह में अन्तर

भीड़ (Crowd)	श्रोता समूह (Audience)
१. पहले से निश्चित उद्देश्य नहीं।	१. पहले से निश्चित उद्देश्य।
२. स्वयं एकत्रित हो जाती है।	२. बुलाया जाता है।
३. समय और स्थान निश्चित नहीं होता।	३. समय और स्थान निश्चित होता है।
४. व्यवहार अनिश्चित रहता है।	४. व्यवहार निश्चित रीतियों के अनुसार होता है।
५. इनमें कन्धे से कन्धा मिला रहता है और एक दूसरे को उत्तेजना देता है।	५. इसमें सदस्यों की परिस्थिति से व्यवहार की कोई उत्तेजना नहीं मिलती।
६. भीड़ के किसी आन्तरिक उत्तेजक के प्रभाव से सदस्यों में प्रतिक्रिया होती है।	६. उत्तेजक कारक समूह से बाहर होता है।
७. सदस्य संवेगों से संचलित होते हैं और बहुत शीघ्र अनियन्त्रित हो जाते हैं।	७. लोग विवेकशील रहते हैं और उचित अनुचित का विचार भी रखते हैं।
८. सभी सदस्यों की बुद्धि बेकाम सी हो जाती है।	८. सदस्य विवेक नहीं खोते।
९. अनियन्त्रित, असंगठित और अव्यवस्थित।	९. नियंत्रित, संगठित और व्यवस्थित।
१०. अभिमुखता और अन्तर्क्रिया का निश्चित स्वरूप नहीं।	१०. अभिमुखता और अन्तर्क्रिया का निश्चित स्वरूप।
११. भीड़ का आकर्षण बिन्दु कोई घटना होती है।	११. आकर्षण बिन्दु भौतिक, आध्यात्मिक, प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष कुछ भी हो सकता है।
१२. संख्या बढ़ने से बल बढ़ता है।	१२. संख्या का इतना अधिक प्रभाव नहीं पड़ता।

श्रोता समूह और भीड़ में उपरोक्त अन्तर होते हुये भी श्रोता समूह और भीड़ में बहुत-सी समानतायें भी हैं। दोनों में एक स्थान पर बहुत से लोग एक दूसरे के पास एकत्रित होते हैं। दोनों में रुचि तथा ध्यान का कुछ न कुछ केन्द्र अवश्य होता है। दोनों में कुछ न कुछ उद्वेग होते हैं। आवश्यक नहीं है कि श्रोता समूह संगठित ही हो या उसके सदस्य बुद्धिपूर्वक ही काम करें या उनकी अभिमुखता एक ही ओर हो। एक सिनेमा हाल में श्रोतागणों के व्यवहार को भीड़ के व्यवहार में बदलने में देर नहीं लगती। यदि सिनेमा हाल में कुछ लोगों में मार-पीट हो जाय तो श्रोतागण भयंकर से भयंकर भीड़ का रूप धारण कर सकते हैं, कुर्सियाँ उठा-उठा कर एक दूसरे पर फेंक सकते हैं, पर्दा फाड़ सकते हैं, सिनेमा घर में आग लगा सकते हैं। सिनेमा घर में रील जब तक ठीक से चलती है श्रोतागण नियन्त्रित रहते हैं परन्तु यदि रील कट जाय या बिजली चली जाय तब उनका व्यवहार भीड़ से किसी प्रकार कम नहीं होता। तरह-तरह की आवाजें आने लगती हैं, सीटियाँ बजने लगती हैं, शोर होने लगता है। कांग्रेस जैसी संगठित पार्टी के श्रोतागणों का १९०५ में सूरत सम्मेलन में व्यवहार भीड़ से किसी प्रकार कम न था। नरम दल और गरम दल में तनातनी हुई, गाली-गलौज हुई और जूते तक उछाले गये। वास्तव में श्रोतागणों में सभी तरह के लोग रहते हैं। कुछ लोग तो दंगा करने के इरादे से ही पहुँचे रहते हैं और कोई की मौका पाने पर दंगा शुरू कर देते हैं। इससे संगठित श्रोता समूह में भी खलबली पड़ जाती है और वह भीड़ का रूप धारण का लेता है।

श्रोता समूह और भीड़ में समानतायें

☆

प्रश्न ३४—आप भीड़ के सामूहिक व्यवहार को कैसे समझायेंगे ?

भीड़ का व्यवहार व्यक्ति के व्यवहार से भिन्न क्यों होता है ? इस प्रश्न को लेकर मनोवैज्ञानिकों ने भीड़ के व्यवहार की व्याख्या करने के अनेक सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं। भीड़ के सामूहिक व्यवहार की व्याख्या भी इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर की गई है। इनमें चार सिद्धान्त मुख्य हैं :—

सामूहिक व्यवहार की व्याख्या के सिद्धान्त

समूह मन का सिद्धान्त (The Group mind Thesis) निरुद्ध चालकों की मुक्ति का सिद्धान्त (The thesis of the release of repressed drives), सामाजिक दशा का सिद्धान्त (The thesis of the social situation) तथा बहुकारक सिद्धान्त (Theory of multiple factors)।

अपनी पुस्तक 'Crowd' में लेबोन (Lebon) ने लिखा है, "भीड़ के सारे व्यक्तियों के उद्वेग और विचार एक ही दिशा में बहने लगते हैं और उनका चेतन

(१) समूह-मन का सिद्धान्त

व्यक्तित्व गायब हो जाता है। एक सामूहिक मन बन जाता है, यह निस्संदेह अस्थिर होता है और स्पष्ट विशेषताओं को उपस्थित करता है।"[9] लेबोन के साथ मैक्डूगल (Mcdougall) तथा कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों ने भी सामूहिक चेतना (Group Consciousness) के रूप में एक समूह-मन की कल्पना की है जो कि भीड़ के सदस्य व्यक्तियों के अपने-अपने निजी मनों से भिन्न होता है।

समूह-मन के सिद्धान्त को आधुनिक समाजशास्त्र और मनोविज्ञान में नहीं माना गया है। रेनहार्ट (Reinhardt) के शब्दों में "यह मान लिया गया है कि कोई भी स्वस्थ मस्तिष्क वाला व्यक्ति यह विश्वास नहीं करता कि वातनाड़ी मण्डल से भिन्न और अलग महत्वपूर्ण अहं के रूप में किसी भीड़ मन का भी अस्तित्व है।"[10] व्यक्तियों की अपनी बुद्धि और अपने मस्तिष्क में अलग और भिन्न किसी समूह-बुद्धि अथवा समूह-मन की कल्पना सर्वथा निराधार है। तर्क अथवा अनुभव किसी तरह से यह मत सिद्ध नहीं होता।

भीड़ के व्यवहार के व्यक्ति के व्यवहार से अलग होने की व्याख्या करने वाला दूसरा सिद्धान्त निरुद्ध चालकों की मुक्ति का सिद्धान्त (The Thesis of the release of repressed drives) है। फ्रॉयड (Freud) तथा अन्य मनोविश्लेषणवादी मनोवैज्ञानिकों ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इस मत के अनुसार भीड़ में मनुष्य की प्रवृत्तियों और चालकों (Drives) पर से प्रतिबंध टूट जाता है। साधारण चेतन अवस्था में व्यक्ति अपने व्यवहार पर नियन्त्रण रखता है और असामाजिक चालकों तथा वासनाओं को दबा देता है। मनोविश्लेषणवादियों के अनुसार ये दमित वासनायें तथा चालक समाप्त नहीं हो जाते बल्कि अचेतन मस्तिष्क (Unconscious mind) में चले जाते हैं। भीड़ की सामाजिक परिस्थिति में अचेतन नियन्त्रण के हट जाने से ये दमित या निरुद्ध चालक मुक्त हो जाते हैं और व्यक्तियों का व्यवहार बुद्धि के स्थान पर भावनाओं से नियन्त्रित होने लगता है।

(२) निरुद्ध चालकों की मुक्ति का सिद्धान्त

यह सिद्धान्त भीड़ के व्यवहार पर प्रकाश अवश्य डालता है परन्तु इससे यह नहीं साबित होता है कि भीड़ में मनुष्य के व्यवहार को निरुद्ध चालकों से क्यों नियन्त्रित होना चाहिए।

---

9. "The sentiment and ideas of all the persons in the gathering take one and the same direction and their conscious personality vanishes. A collective mind is formed, doubtless transitory, but presenting very clearly defined characteristics. —Lebon.

10. "It is assumed that no sane individual belives that a mob mind exists as a form of transcendent ego separate and apart from nervous tissue." —Reinhardt.

सामाजिक दशा के सिद्धान्त के अनुसार भीड़ के व्यवहार पर सामाजिक और सांस्कृतिक दशा का बड़ा प्रभाव पड़ता है। जैसा समाज होगा, उसकी जैसी संस्कृति होगी उसी के अनुसार भीड़ व्यवहार भी बदल जायेगा। यह सिद्धान्त भीड़ के व्यवहार की व्याख्या करने के लिये पर्याप्त नहीं है।

(३) सामाजिक दशा का सिद्धान्त

वास्तव में भीड़ का व्यवहार एक जटिल व्यवहार है। उसको किसी एक बात से पूरी तरह नहीं समझाया जा सकता। उसमें सामाजिक और सांस्कृतिक दशा, निरुद्ध चालकों तथा उत्तरदायित्वहीनता की भावना आदि कितने ही कारक काम करते हैं। उद्वेग और भीड़ शक्ति की भावना से भीड़ में मनुष्य का व्यवहार कभी-कभी बिल्कुल पागलों का सा दिखाई पड़ता है। वास्तव में भीड़ का व्यवहार व्यक्ति के व्यवहार के उन सब कारकों से विभिन्न होता है जो भीड़ की विशेषतायें हैं।

(४) बहुकारक सिद्धान्त

❦

प्रश्न ३५—साधारण भीड़ (Crowd) और आक्रामक भीड़ (mob) में क्या भेद है? साधारण भीड़ की क्या विशेषतायें हैं? (यू० पी० बोर्ड १९६५)

नोट—साधारण भीड़ और आक्रामक भीड़ में भेद के लिये प्रश्नोत्तर सं० ३६ देखिए।

साधारण भीड़ की आवश्यक विशेषतायें (Essential Characteristics) निम्नलिखित हैं:—

(१) अस्थायी स्वरूप (Transitory Nature)—किम्बाल यंग, ब्रिट तथा मैक्डूगल आदि और मनोवैज्ञानिकों के अनुसार भीड़ अस्थायी होती है। ब्रिट (Britt) ने लिखा है कि तब भीड़ व्यवहार में तीन पहलू होते हैं—(१) मनोवैज्ञानिक क्रम, (२) हित और ध्यान की अभिमुखता और (३) अस्थायित्व।"[11] भीड़ किसी विशेष रुचि, जिज्ञासा या अन्य अस्थायी कारण से इकट्ठा होती है और उस कारण के हटते ही खत्म हो जाती है। सड़क पर दो आदमी मारपीट करने लगें तो भीड़ इकट्ठी हो जायेगी। यदि वे लोग लड़ना छोड़कर चल दें तो भीड़ तितर-बितर हो जायेगी।

भीड़ की आवश्यक विशेषतायें या लक्षण

(२) हित और ध्यान की अभिमुखता (Polarisation of Interest and Attention)—भीड़ के लोगों में रुचि और उद्देश्यों की समानता होती है। उनका ध्यान किसी एक व्यक्ति या वस्तु या घटना में केन्द्रित होता है जिसके हटते ही भीड़ बिखर जाती है। लेबोन (Lebon) के शब्दों में "व्यक्तियों का कोई भी समूह भीड़

11. "The Crowd behaviour then involves three aspects—(1) Psychological continuity, (2) Polarization of interest and attention, and (3) Transitoriness or temporary character." —H. Britt.

नहीं है बल्कि पूरे समूह में केन्द्रित महत्व की कोई चीज अवश्य होनी चाहिये।"[12] रॉस (Ross) ने लिखा है "जब तक अवधान की अभिमुखता, आशा तथा विचलित करने वाले अनुभवों को निकालने वाला चेतना के क्षेत्र का संकुचन न हो तब तक भीड़ नहीं बन सकती।"[13]

(३) असंगठित (Unorganised)—भीड़ असंगठित होती है क्योंकि उसके नेता, उद्देश्य, नियम, स्थान, कार्य कुछ भी निश्चित नहीं होते।

(४) विचारों, भावनाओं तथा व्यवहार की समानता (Similarity in thoughts, emotions and actions)—परन्तु फिर भी भीड़ में विचारों, भावनाओं और व्यवहार की दशा एक ही होती है।

(५) पारस्परिक प्रभाव—भीड़ में मनुष्य एक दूसरे के व्यवहारों और भावनाओं को उत्तेजित करते हैं और उत्तेजित होते हैं। सुझावग्रहण की क्षमता (Capacity of suggestibility) कभी-कभी भयंकर रूप धारण कर लेती है।

(६) सामूहिक शक्ति का अनुभव (Sense of Mass strength)—भीड़ में लोगों का आत्मविश्वास कई गुना बढ़ जाता है क्योंकि वे सामूहिक शक्ति का अनुभव करने लगते हैं।

(७) पर्याप्त व्यक्तियों का एक स्थान पर एकत्रित होना (Gathering of sufficient persons at one place)—भीड़ की एक अनिवार्य विशेषता पर्याप्त व्यक्तियों का एक स्थान पर होना है।

मनोवैज्ञानिक विशेषतायें

भीड़ की सामाजिक परिस्थिति के मनोवैज्ञानिक कारण अथवा मनोवैज्ञानिक विशेषतायें ही उसके व्यवहार को व्यक्ति के व्यवहार से भिन्न बना देती हैं। इन्हीं के कारण भीड़ में विचारों के स्थान पर भावनायें तेजी से फैलती हैं। ये भीड़ के व्यवहार के प्रमुख कारक हैं। इनमें से मुख्य मनोवैज्ञानिक विशेषतायें निम्नलिखित हैं :—

(१) उत्तरदायित्व की भावना का अभाव (Lack of the sense of responsibility)—भीड़ में सुझावग्रहणशीलता (Suggestibility) सामूहिक शक्ति का अनुभव आदि के कारण लोगों में उत्तरदायित्व की भावना बिल्कुल नहीं रहती और वे बहुत से ऐसे काम कर डालते हैं जो वे व्यक्तिगत रूप में कभी नहीं कर सकते, जैसे आग लगाना, लूटना, विध्वंस, रक्तपात आदि। भीड़ में अपराधी अज्ञात रहता

---

12. "Not just any group of individuals is a crowd, but that there must be something of central importance to the group as a whole." —Lebon.

13. "A crowd itself will not arise unless there is an orientation of attention, expectancy, a narrowing of the field of consciousness that excludes disturbing expressions." —Ross.

हैं, अतः कोई भी व्यक्ति कुछ भी काम कर सकता है। रॉस (Ross) ने लिखा है, "अज्ञात होने की अवस्था के आवरण से ढ़के हुये लोग अपनी भावनाओं को खुली छूट देने की स्वतन्त्रता अनुभव करते है।"[14] मैक्डूगल (Mcdougall) के अनुसार भीड़ में उत्तरदायित्व की भावना के अभाव का कारण आत्मसम्मान (Self-Respect) की भावना का लोप होना भी है। लेबोन (Lebon) ने लिखा है कि "उत्तरदायित्व की भावना जो सदैव उन पर नियन्त्रण रखती है पूरी तरह गायब हो जाती है।"[15]

(२) बुद्धि का निम्न स्तर (Low Degree of Intelligence)—भीड़ में सदस्यों की बुद्धि का स्तर बहुत निम्न हो जाता है। रस्किन (Ruskin) ने इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का वर्णन करते हुए लिखा है "आप किसी भीड़ से बात करके कुछ भी करवा सकते हैं······वह अधिकतर एक राय को जुकाम की तरह दूसरों से ग्रहण करती है और संसर्गजन्य प्रभाव से सोचती है। जब खब्त सवार होता है तब छोटी से छोटी बात भी ऐसी नहीं है जिस पर वह जंगली पशु के समान गर्जना न करने लगे। जब खब्त उतर जाता है तब कोई भी चीज इतनी बड़ी नहीं कि वह उसको घण्टे भर में भूल न जाय।"[16] भीड़ में बुद्धि के स्तर के निम्न होने का कारण अनुकरणवृत्ति, ग्रहणशीलता, संवेगों का उत्तेजित होना, चिन्तन का अभाव आदि हैं।

(३) संकल्प शक्ति का अभाव (Lack of Volition)—भीड़ में आत्म-सम्मान तथा उत्तरदायित्व की भावना का अभाव तथा बुद्धि का स्तर निम्न होने के कारण और उद्वेगों के प्रभाव से शक्ति समाप्त हो जाती है।

(४) तीव्र सुझावग्रहणशीलता (Heightened Suggestibility)—भीड़ में लोगों की सुझाव ग्रहण करने की क्षमता बहुत अधिक बढ़ जाती है। लोग अपनी विचार शक्ति खो बैठते हैं। उनके संवेग उत्तेजित हो उठते हैं और वे जैसा दूसरे कहते या करते हैं बिना सोचे समझे वैसा ही कहने या करने लगते हैं।

(५) तीव्र संवेगात्मकता (Heightened Emotionality)-बर्नार्ड (Bernard) के शब्दों में "आमतौर से कोई तीव्र संवेग या जिज्ञासा की प्रवृत्ति भीड़ को संगठित

---

14. "Masked by their anonymity, people feel free to give reign to the expression of their feelings." —Ross E. A.

15. "The sentiment of responsibility which always controls individuals disappears entirely." —Lebon.

16. "You can talk a mob into anything........it thinks by infection for the most part, catching an opinion like cold and there is nothing so little that it will not roar itself wild about, when the fit is on, nothing so great but it will forget in an hour when the fit is past." —Ruskin.

करती है।"[17] इस प्रकार संवेगात्मकता में वृद्धि भीड़ व्यवस्था की एक प्रमुख और अनिवार्य विशेषता है।

(६) विश्वासशीलता (Credulity)—सुझाव ग्रहण करने की क्षमता और संवेगशीलता बढ़ने के साथ-साथ भीड़ की विश्वासशीलता (Credulity) भी बढ़ जाती है। रॉस के अनुसार "भीड़ में तार्किक विश्लेषण और परीक्षा का सवाल ही नहीं उठता, जिन शक्तियों से हम संदेह करते है वे सो जाती हैं।"[18] भीड़ किसी भी अफवाह पर आसानी से विश्वास नहीं कर लेती।

(७) अचेतन प्रेरणायें (Unconscious Impulses)—फ्रॉयड (Freud) इत्यादि मनोविश्लेषणवादियों के अनुसार भीड़ के व्यवहार का निर्देश व्यक्तियों की अचेतन प्रेरणायें करती हैं। भीड़ में नियन्त्रण टूटने के कारण व्यक्तियों की दमित प्रवृत्तियाँ भड़क उठती हैं और वे पागलों की तरह व्यवहार करने लगते हैं।

(८) उद्वेगों और विचारों का अस्थायित्व (Instability of Emotions and Ideas)—भीड़ के उद्वेग और विचार बड़ी जल्दी बदलते हैं। वह किस वक्त क्या कर बैठें इसका कुछ पता नहीं रहता। रॉस (Ross) ने लिखा है "एक क्षण में उसका नेता अगले क्षण उसका शिकार हो सकता है।"[19]

(९) पारस्परिक उत्तेजना (Inter Stimulation)—भीड़ में लोग एक दूसरे को उत्तेजित करते हैं। प्रत्येक विचार या उत्तेजना भीड़ में संक्रामक रोग की तरह फैलते हैं। डर, क्रोध, शोक, हर्ष आदि भीड़ में बड़ी तेजी से फैलते हैं क्योंकि भीड़ के सदस्यों में सुझाव ग्रहणशीलता बढ़ जाती है।

(१०) नेता का प्रभाव (Influence of the Leader)—भीड़ पर नेता का बड़ा प्रभाव होता है। वह भीड़ को हँसा सकता है, रुला सकता है, उत्तेजित कर सकता है, क्रोधित कर सकता है, उससे आग लगवा सकता है, लूट-मार करा सकता है और खून तक करा सकता है। कुशल नेता भीड़ से चाहे जैसा काम ले सकता है। टीपू सुलतान के भाषण से उसका पीछा करती हुई सेना की तोपों के मुख उसके दुश्मनों की ओर घूम गये। जूलियर सीजर नामक नाटक में ऐन्टोनी के भाषण से जो भीड़ पहले ब्रूटस की भक्ति करने लगी थी वही उसके खून की प्यासी बन जाती है।

(११) सामाजिक सौकार्य (Social facilitation)—ऑगबर्न और किम्बाल यंग के अनुसार "सामाजिक सौकार्य वह प्रक्रिया है जिससे भीड़ में व्यक्ति की प्रति-

---

17. "It is usually some strong emotion or curiosity impulse which integrates the crowd." —Bernard.

18. "Rational analysis and test are out of question. The faculties we doubt with, are asleep." —Ross, E. A.

19. "Its hero one moment may be its victim the next." —Ross.

क्रियायें दूसरे व्यक्तियों की उपस्थिति या क्रियाओं के कारण अधिक तीव्र हो जाती है।"[20] मिलर (M. E. Miller) और जौन डोलर्ड (Jhon Dollard) ने इस प्रक्रिया को भीड़ की प्रेरणा (Crowd Stimuli) कहा है।

(१२) भीड़ की अनैतिकता (Immorality of the crowd)—भीड़ को नैतिकता-अनैतिकता, शुभ-अशुभ का विवेक नहीं रहता और भावनाओं के जोश में तथा नेताओं के भड़काने पर यह गिरे से गिरा काम करने पर उतारू हो जाती है। सन् १९४७ में भारतवर्ष में साम्प्रदायिक दंगों में भीड़ ने ऐसे ऐसे काम किये जिन पर आसानी से विश्वास नहीं किया जा सकता। शक्ति की भावना में अन्धी होकर भीड़ सारे सामाजिक निषेधों (Social taboos) को भूल जाती है। बर्नार्ड (Bernard) ने ठीक ही कहा है "वे निम्न पशुओं के झुण्डों और रेवड़ों से बहुत अधिक मिलते जुलते हैं।"[21] भीड़ की अनैतिकता उसके नेता पर निर्भर है। वास्तव में जैसा कि गिन्सबर्ग (Ginsberg) ने ठीक ही लिखा है, "भीड़ स्वयं न तो अच्छी ही है और न बुरी, परन्तु वह उत्तेजना के अनुसार अलग-अलग अवसरों पर एक या दूसरे प्रकार की हो सकती है।"[22]

भीड़ व्यवहार मूल प्रवृत्तियों, स्थायी भावों और उद्वेगों से परिचालित होता है

भीड़ के व्यवहार के उपरोक्त मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से यह जाहिर है कि भीड़ में मनुष्य का व्यवहार मूल प्रवृत्तियों (Instincts), स्थायी भावों (Sentiments) और उद्वेगों (Emotions) से परिचालित होता है। उसमें व्यक्ति की सुझाव ग्रहणशीलता, भावुकता, उद्वेगशीलता बढ़ जाती है और अचेतन प्रवृत्तियों को छूट मिल जाती है। सामाजिक सौकार्य, नेता के प्रभाव तथा बुद्धि के निम्न स्तर और इच्छा शक्ति के अभाव में भीड़ में व्यक्ति वे काम कर बैठता है जो वह निजी तौर पर कभी नहीं कर सकता। संक्षेप में, मैक्डूगल (Mcdougall) के शब्दों में "भीड़ अत्यन्त संवेगात्मक, आतुर, अस्थिर, असंगठित, अनिश्चित तथा कार्य करने में अतिवादी निम्न संवेगों तथा अपरिमार्जित भावनाओं को प्रदर्शित करने वाली, संकेतग्रहण करने में तेज,

---

20. "Social facilitation may by defined as the enhancement of one's response by the presence or activity of other person."
—Ogburn & Kimball Young.

21. "They approximate most closely to the packs and herds of the lower animals." —Bernard, L. L.

22. "Crowds are in themselves neither good nor evil, but they may be either the one or the other on occasions according to the stimulas." —Ginsberg, M,

विचार-विमर्श में उदासीन, फैसले में जल्दबाज, सुगम और अपूर्ण तर्कों को छोड़कर अन्य तर्क करने में असमर्थ, सरलता से बहकाई जाने वाली, आत्म-चेतना से रहित, आत्म-सम्मान तथा उत्तरदायित्व की भावना से हीन और अपनी शक्ति की चेतना में बह जाने वाली है, जिससे कि वह किसी भी अनुत्तरदायी और निरंकुश शक्ति की अभिव्यक्ति प्रकट करती है। अतः उसका व्यवहार एक चपल बालक या एक विचित्र परिस्थिति में एक अनुशासनहीन उत्तेजित जंगली, व्यक्ति और सबसे बुरी हालतों में एक जंगली पशु के समान होता है।"[23]

✱

प्रश्न ३६—भीड़ के प्रमुख रूपों को बताइए। इनमें से प्रत्येक प्रकार की भीड़ के मनोवैज्ञानिक लक्षणों का वर्णन कीजिये। (यू० पी० बोर्ड १९६४)

स्थूल रूप से भीड़ को निम्नलिखित दो प्रकारों में बांटा जा सकता है—(१) क्रियाशील (Active), (२) निष्क्रिय (Inactive)।

सक्रिय भीड़

क्रियाशील भीड़ अथवा सक्रिय भीड़ जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है क्रियाशील या सक्रिय होती है। बर्गेस (Burgess) के अनुसार, सक्रिय भीड़ आकस्मिक होती है। उदाहरण के लिये सड़क पर कोई मदारी तमाशा दिखाने लगे तो एक के बाद एक आदमी इकट्ठा होता चला जाता है। ये आदमी मदारी के आकर्षण से अनायास ही खिंचे से चले आते हैं। इसी प्रकार यदि कहीं दो बैल लड़ जायें या गोली चल जाये तो देखते ही देखते लोग भीड़ के रूप में भागने लग पड़ते हैं, लेबौं (Lebon) ने सक्रिय भीड़ का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उसके अनुसार। इस तरह की भीड़ में व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व नहीं रहता। वह भीड़ के दूसरे लोगों जैसा सोचने समझने और व्यवहार करने लगता है। सम्पूर्ण सक्रिय भीड़ एक इकाई बन जाती है जिसमें एक ही तरह की प्रेरणा और एक ही तरह का तथा एक ही दिशा में व्यवहार दिखाई

---

23. "A crowd is excessively emotional, impulsive,fickle inconsistent, irresolute and extreme in action, displaying the coarse emotions and the less refined sentiments, extremely suggestible, careless in deliberation, hasty in judgement, incapable of any but the simpler and imperfect forms of reasoning, easily swayed and led, lacking in self consciousness, devoid of self respect and a sense of responsibility, and apt to be carried away by the consciousness of its force, so that it tends to reproduce all the manifestations.......of any irresponsible and absolute power. Hence its behaviour is like that of an unruly child or an untutored passionate savage in a strange situation.......and in the worst cases it is like that of a wild beast." —Mcdougall.

पड़ता है। लेवौं के अनुसार इस तरह की भीड़ का व्यवहार एक सामूहिक मन से संचालित होता है। मैक्डूगल ने अपनी पुस्तक Group Mind में लेवौं की विचार-धारा को माना है। इस विचारधारा के अनुसार सक्रीय भीड़ का एक अलग व्यक्तित्व है और एक अपना मन है। सन् १९२४ में एच० एच० आलपोर्ट (H. H. Allport) ने समूह मन की इस धारणा की आलोचना की। आधुनिक समाज मनोविज्ञान में समूह मन की इस धारणा को नहीं माना जाता। आलपोर्ट के शब्दों में "व्यक्ति भीड़ में ठीक उसी तरह व्यवहार करता है जैसे वह अकेले में करता है। केवल उसमें थोड़ी विशेषता अवश्य आ जाती है।" सक्रिय भीड़ को मनोवैज्ञानिकों ने चार भागों में विभाजित किया है :—

१—आक्रामक भीड़ (Aggressive Crowd)
२—भयग्रस्त भीड़ (Panicky Crowd)
३—अर्जनशील भीड़ (Acquisitive Crowd)
४—प्रदर्शनकारी भीड़ (Expressive Crowd)

अब सक्रिय भीड़ के इन विभागों का क्रमशः विस्तार से वर्णन किया जायेगा—

निष्क्रिय भीड़

कोई भी भीड़ पूरी तरह से निष्क्रिय नहीं होती। रामायण सुनने के लिये इकट्ठे हुये लोग भी कुछ न कुछ क्रिया तो करते ही रहते हैं। ऐसे किसी निष्क्रिय श्रोता समूह को देखिये। विशेष तौर से स्त्रियाँ आपको कुछ न कुछ जरूर करती दिखाई पड़ेंगी। कोई स्वेटर बुन रही होगी तो कोई छालियाँ कतर रही होगी। कोई कथा सुनने के साथ-साथ अपने घर की कथा भी सुना रही होगी। कोई अपने बच्चों को बहलाने या सुलाने में ही लगी होगी। इस प्रकार ऐसी सभा में इकट्ठे हुये पुरुष भी रामायण सुनने के अलावा कुछ न कुछ करते ही रहते हैं। परन्तु यदि इस श्रोता समूह की तुलना किसी प्रदर्शनकारी, भयग्रस्त या आक्रमणकारी भीड़ से की जाय तो निष्क्रिय और सक्रिय भीड़ का अन्तर स्पष्ट हो जायेगा। एक दो घण्टे रामायण पाठ हो चुकने के बाद भी श्रोतागणों की क्रियाओं में अधिक अन्तर नहीं दिखाई पड़ेगा। परन्तु दंगाइयों की भीड़ मिनट-मिनट में अपनी क्रियायें बदलती रहती हैं। अभी उसमें लोग भागते नजर आयेंगे तो थोड़ी देर बाद कुछ लोग आग लगाते नजर आयेंगे, सभी वे लोग किसी को पीट रहे होंगे, कुछ ही देर बाद वे सर पर पाँव रखकर भागते दिखाई पड़ेंगे। स्पष्ट है कि सक्रिय और निष्क्रिय भीड़ में अपेक्षाकृत अन्तर है। सक्रिय भीड़ अपेक्षाकृत (Relatively) अधिक सक्रिय है। निष्क्रिय भीड़ अपेक्षाकृत अधिक निष्क्रिय मालूम पड़ती है। निष्क्रिय भीड़ को श्रोता समूह भी कहा जाता है। श्रोता समूह को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है—(१) आकस्मिक (Casual) (२) ऐच्छिक (Intentional)।

(१) **आकस्मिक श्रोता समूह**—सड़क पर भाषण देने वाले किसी नेता की बातों को सुनने के लिये अकस्मात एकत्रित होने वाला श्रोता समूह आकस्मिक श्रोता समूह है।

२—ऐच्छिक श्रोता समूह—किसी चलचित्र को देखने के लिये एकत्रित हुआ श्रोता समूह ऐच्छिक श्रोता समूह है। इसमें लोग अक्स्मात इकट्ठे नहीं हो जाते बल्कि इकट्ठे होने का स्थान और समय पहले से जाने रहते हैं।

ऐच्छिक श्रोता समूह को भी दो भागों में बांटा गया है :—

(१) मनोरंजनात्मक (Recreational) (२) ज्ञानार्जनशील (Information Seeking)।

१—मनोरंजनात्मक श्रोता समूह—जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है मनोरंजनात्मक श्रोता समूह, मनोरंजन के लिये एकत्रित होता है। उपरोक्त दिये गये उदाहरण में चलचित्र देखने के लिये एकत्रित हुआ समूह मनोरंजनात्मक ऐच्छिक श्रोता समूह है।

२—ज्ञानार्जनशील श्रोता समूह—जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है इस तरह का श्रोता समूह मनोरंजन के लिए नहीं बल्कि जानकारी अथवा ज्ञान प्राप्त करने के लिये एकत्रित होता है। कक्षा में विद्यार्थियों का श्रोता समूह इसी वर्ग में आता है। स्पष्ट है कि इसमें उतनी स्वतन्त्रता नहीं हो सकती जितनी कि मनोरंजनात्मक श्रोता समूह में होती है। कक्षा से उठकर जाना बुरा माना जाता है। कक्षा में उठने बैठने में भी कुछ तौर-तरीकों का ध्यान रक्खा जाता है। दूसरी ओर न तो सिनेमा हाल से उठकर जाना कोई बुरा समझता है और न ही वहाँ उठने बैठने में मर्यादा की इतनी जरूरत पड़ती है।

भीड़ के उपरोक्त प्रकार निम्न दिये हुये चार्ट से स्पष्ट होते हैं।
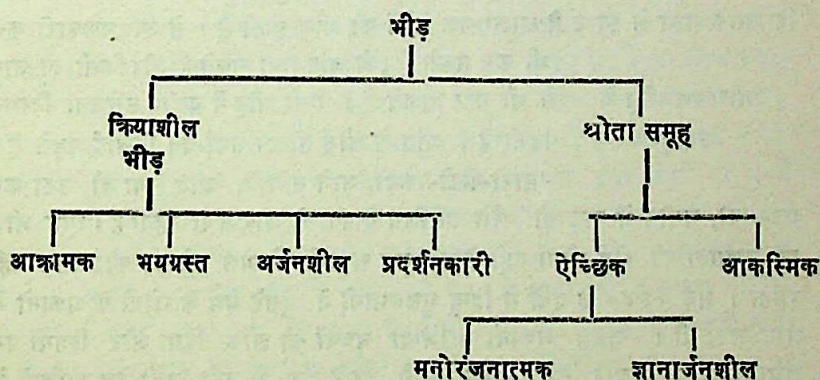
नोट—सक्रिय भीड़ के विभिन्न प्रकारों में सदस्यों के अनुभव और व्यवहार के विवेचन के लिये अगला प्रश्नोत्तर देखिये।

प्रश्न ३७—विभिन्न प्रकार की सक्रिय भीड़ में सदस्य के अनुभव तथा व्यवहार का संक्षेप में वर्णन कीजिये और उनकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या कीजिए।

इस चौराहे पर ये इतने लोग क्यों जमा हैं? जरा भीड़ के अन्दर घुस कर देखिये। अरे यहाँ तो सब लोग मिल कर किसी को पीट रहे हैं। जो आता है वही हाथ छोड़ता चला आता है जिसके हाथ जो लग गया है वह उसी से पीट रहा है। ये पंडित जी अपने जूते से पीट रहे हैं। ये महाशय अपनी छड़ी इस्तेमाल कर रहे हैं। वह विद्यार्थी अपनी किताब ही जमाये चला जा रहा है। आखिर बात क्या है? इस बेचारे ने क्या किया है? अरे यह बेचारा नहीं है इसने उस ओर खड़ी उस लड़की को छेड़ा है। लड़की के शोर मचाते ही आदमी इकट्ठे होते गये और जिसको देखिये वही छेड़ने वाले को पीटने लगा है। यह एक सक्रिय भीड़ है। यह भीड़ आक्रामक है। यह एक आक्रामक सक्रिय भीड़ है। सन् १९४७ के हिन्दू मुस्लिम दंगों के दिनों में इस तरह की भीड़ कहीं भी देखी जा सकती थी। यूं भी शहरों के गर्म वातावरण में इस तरह की भीड़ कोई नई बात नहीं है।

(हाशिया: सक्रिय भीड़ का उदाहरण)

सक्रिय भीड़ स्थूल रूप से चार प्रकार की मानी गई है। ये मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैं:—

(हाशिया: सक्रिय भीड़ के प्रकार)

१—आक्रामक भीड़ (Aggressive Crowd)
२—भय ग्रस्त भीड़ (Panicky Crowd)
३—अर्जन शील भीड़ (Acquisitive Crowd)
४—प्रदर्शनकारी भीड़ (Expressive Crowd)

पीछे आक्रामक भीड़ का उदाहरण दिया जा चुका है। आक्रामक भीड़ जैसा, कि उसके नाम से स्पष्ट है आक्रमणकारियों की भीड़ होती है। ये आक्रमणकारी कुछ भी कर सकते हैं। वे आग लगा सकते हैं और किसी को जान से भी मार सकते हैं। ऐसी भीड़ में बड़ी उत्तेजना दिखाई पड़ती है। बहुत से लोग तो गालियाँ देते दिखाई पड़ते हैं। "मारो-पीटो-पकड़ो, जाने न पावे, आग लगा दो, उठा कर पटक दो, जमीन में गाड़ दो" जैसे उत्तेजित वाक्यों से शोर मचा रहता है। ऐसी भीड़ की नृशंसता की कोई सीमा नहीं है। इसमें सदस्यों को भले बुरे का कोई ज्ञान नहीं रहता। सन् १९४७ के दंगों में हिन्दू मुसलमानों ने दूसरे धर्म के लोगों के मकानों में आग लगा दी। जलते मकानों में जिन्दा बच्चों को झोंक दिया और स्त्रियों पर अमानवीय अत्याचार किये। एक देश से दूसरे देश में जाने वाली रेल गाड़ियों में सैंकड़ों यात्री मौत के घाट उतार दिये गए। तार काट दिये गये। रेल की पटरियाँ उखाड़ दी गईं। गाँव के गाँव जला दिये गये और लाखों लोग बेघरबार हो गये। सन् १९४२ में अंग्रेज सरकार के विरुद्ध स्वतन्त्रता आन्दोलन में भी आक्रामक भीड़ एक सामान्य बात थी। 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास होने के साथ ही साथ अंग्रेज सर-

(हाशिया: आक्रामक भीड़ के उदाहरण)

कार ने देश के नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। अपने प्रिय नेताओं की गिरफ्तारी की खबर सुनकर जनता पागल हो उठी और स्थान-स्थान पर उसने आक्रामक भीड़ का रूप धारण कर लिया। जगह-जगह पर आक्रामक भीड़ ने पुलिस चौकियों में आग लगा दी। सरकारी दुकानें लूट ली गईं। सरकारी इमारतों में खूब तोड़-फोड़ की गई। स्थान-स्थान पर ब्रिटिश सरकार का यूनियन जैक उतार कर जला दिया गया और उसके स्थान पर तिरंगा झण्डा फहरा दिया गया।

आक्रामक भीड़ के जो उदाहरण पीछे दिये गये हैं। उनसे आक्रामक भीड़ की कुछ विशेषतायें ज्ञात होती हैं। स्थूल रूप से ये विशेषतायें निम्नलिखित हैं। इन विशेषताओं से इस तरह की भीड़ में सदस्यों का अनुभव और व्यवहार भी स्पष्ट होता है।

आक्रामक भीड़ के सदस्यों का अनुभव और व्यवहार

(१) तीव्र संवेगात्मकता (Intense Emotionality)—आक्रामक भीड़ में सबसे स्पष्ट दिखाई देने वाली विशेषता उसकी तीव्र संवेगात्मकता है। इस तरह की भीड़ में सभी सदस्य उत्तेजित रहते हैं। ऐसी किसी भीड़ को देखिये। कोई चिल्ला रहा होगा, कोई मुक्के तान रहा होगा, कोई उछल रहा होगा, कोई भाग रहा होगा, कोई आँखें निकाल रहा होगा तो कोई दाँत पीस रहा होगा। ऐसी भीड़ में अधिकतर क्रोध का संवेग दिखाई पड़ता है।

(२) निर्देशशीलता (Suggestibility)—आक्रामक भीड़ में प्रत्येक सदस्य की निर्देशशीलता बढ़ जाती है। एक को देखकर दूसरा वैसा ही करने लग पड़ता है। सड़क पर तेजी से जाती हुई एक मोटर से एक बच्चा कुचल गया। देखने वाले दौड़ पड़े। ड्राइवर ने मोटर लेकर भाग जाना चाहा। परन्तु एक खम्बे से लड़कर मोटर रुक गई। अब क्या था, दो चार लोगों ने ड्राइवर को मोटर से बाहर खींच लिया और पीटना शुरू किया। धीरे-धीरे पीटने वालों की एक भीड़ इकट्ठी हो गई जिसमें सभी चिल्ला रहे हैं, सभी क्रोधित हैं और सभी पीटते जा रहे हैं। बच्चे को कुचले जाते तो बहुत कम लोगों ने देखा। अधिकतर पीटने वाले तो दूसरे लोगों को पीटते देखकर पीटने लगे। उन्हें इस बात से कोई मतलब नहीं कि दूसरे क्यों पीट रहे हैं। दूसरों को गुस्सा होते देखकर उनमें क्रोध आ जाता है। दूसरों को पीटते देखकर वे पीटने लगते हैं। आक्रामक भीड़ में सदस्यों की इस निर्देशशीलता के कारण भीड़ के व्यवहार को बड़ी आसानी से किसी भी दिशा में मोड़ा जा सकता है। कभी-कभी किसी राजनैतिक दल की सभा में विरोधी दल के कुछ लोग दंगा करने के लिये जा पहुँचते हैं। सभा शुरू हुई। वक्ता ने अपना भाषण अभी शुरू ही किया था कि एक तरफ से कुछ आवाजें लगीं। वह देखिये कुछ लोग उठकर खड़े हो गये। यह लीजिये एक आदमी ने वक्ता महोदय को जूता फेंक कर मारा। अब क्या था, कूद-कूद कर लोग मंच पर आ गये। मुक्के चलने लगे। फिर जूतों पर नौबत आई। किसी ने माइक्रोफोन ही उठाकर घुमाना शुरू कर दिया। इतने में किसी ने पुलिस को सूचना

दे दी। जैसे ही दंगाइयों ने पुलिस को आते देखा वे भाग निकले। उनके भागते ही भीड़ भी तित्तर-बित्तर हो गई। इस घटना में दंगा करने वाले तो केवल दो चार लोग थे जबकि पचासों लोगों ने उनका अनुकरण किया। यह निर्देशशीलता के कारण हुआ। आक्रामक भीड़ में इस निर्देशशीलता के कारण व्यक्ति का विवेक बहुत मन्द पड़ जाता है।

(३) तात्कालिक कारण का प्रभाव (Effect of Precipitating Cause)—उपरोक्त उदाहरण में वक्ता को जूता लगना था कि दंगा शुरू हो गया क्योंकि उसके दल के लोग इस अपमान को सहन नहीं कर सकते थे जबकि विरोधी दल के लोग वक्ता का अपमान करने और सभा भंग करने पर तुले हुए थे। इस प्रकार दो विरोधी दलों की उपस्थिति के कारण इस भीड़ में आक्रामक भीड़ के लिये पृष्ठ भूमि तो पहले ही तैयार थी। जूते ने भुस में चिंगारी का काम किया और आग भड़क उठी।

(४) सामाजिक प्रोत्साहन (Social Facilitiation)—किसी सभा में दंगा करना कोई हंसी-खेल नहीं है। जरा-सी देर में पिटने की नौवत आ जाती है। उपरोक्त घटना में एक नवयुवक ने हिम्मत की और मंच पर जूता फेंका। बस फिर क्या था, विरोधी दल के उपस्थित लोगों को जोश आ गया और वे मंच पर कूद पड़े। इस तरह दूसरे लोगों की अनुक्रिया को देखकर आक्रामक भीड़ के सदस्यों का प्रोत्साहन बढ़ता है। इसका कारण सामाजिक प्रोत्साहन है। इस सामाजिक प्रोत्साहन में नारे आवाजें और हाथ पैर की क्रियायें सभी काम करती हैं।

(५) अफवाह का महत्व (Influence of Rumour)—वहुधा किसी अफवाह के फैलने से आक्रामक भीड़ एकत्रित हो जाती है। खवर मिली कि मुसलमानों ने एक हिन्दू को मार दिया। अब क्या था, देखते ही देखते हिन्दू नौजवान इकट्टे हो गये, जिसके जो हाथ लगा लाठी, हाकी, बैंत, भाला वही लेकर निकल पड़ा। बात की बात में भीड़ इकट्ठी हो गई और क्रोधित भीड़ मुसलमानों के मौहल्ले की ओर बढ़ गई। ऐसी हालत में यदि कोई सामने आया तो उसकी खैर नहीं। इस विचारे गरीब रिक्शे वाले ने क्या बिगाड़ा था। कौन पूछता है? कोई चिल्लाया "अरे कटल्ला है काटो" और पलक मारते ही वेचारा काट दिया गया। इस घटना में भीड़ के एक भी आदमी ने इस अफवाह की सच्चाई की जाँच नहीं करनी चाही कि कोई हिन्दू वास्तव में मारा गया है या नहीं। अफवाहों के उड़ने में इस तरह की दुर्घटनाओं के कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं।

(६) अनुकरणशीलता (Tendency of Imitation)—उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि आक्रामक भीड़ में सदस्य एक दूसरे का अनुकरण करते हैं और सोच समझ से कोई काम नहीं लेते। दो चार के भाग निकलने पर सव भाग निकलते हैं। दो चार के नारा लगाने पर सब चिल्लाने लगते हैं।

(७) पहले से उपस्थित परिस्थितियों का प्रभाव (Influence of Pre-existing Conditions)—परन्तु चाहे जिस तरह की परिस्थितियों से आक्रामक भीड़ नहीं बन सकती। यदि १९४७ में भारत में स्थान-स्थान पर हिन्दुओं और मुसलमानों की

आक्रामक भीड़ भयंकर रक्तपात करती देखी गई तो इसका कारण राजनैतिक दलों द्वारा फैलाया गया साम्प्रदायिकता का विष था जोकि धीरे-धीरे दोनों सम्प्रदायों में बढ़ता जा रहा था। इस तरह की पहले से उपस्थित पृष्ठ-भूमि के न होने पर आक्रामक भीड़ एकाएक नहीं बन जाती।

(८) एकांगी व्यवहार (Single Line of Behaviour)—जैसा कि पीछे दिये गये उदाहरणों से मालूम पड़ता है आक्रामक भीड़ के सदस्यों का व्यवहार एकांगी होता है। दूसरे पक्ष की बात तो वे सुनते ही नहीं और न उसकी बात को जानने की कोशिश करते हैं। वे किसी बात का समर्थन करेंगे तो उसके विरोध में कोई भी बात नहीं सुनेंगे। वे किसी का विरोध करेंगे तो उसके पक्ष में कोई भी बात कहना वेकार है। पक्षपात या विरोध दोनों ही हालतों में आक्रामक भीड़ के सदस्यों का व्यवहार एकांगी होता है।

(९) निम्न आर्थिक स्तर का प्रभाव (Influence of Low Economic Level)—किसी आक्रामक भीड़ के सदस्यों पर नजर डालने से उसमें से अधिकांश निम्न आर्थिक वर्ग के दिखाई पड़ेंगे। उच्च अथवा मध्यम आर्थिक वर्ग के लोगों को आसानी से भड़काया नहीं जा सकता। निम्न आर्थिक वर्ग के लोग रिक्शे-तांगे वाले, मजदूर आदि शीघ्र आक्रामक बनाये जा सकते हैं। वेकार लोग आसानी से भड़काये जा सकते हैं।

(१०) निम्न शैक्षिक स्तर का प्रभाव (Effect of Low Educational Level)—आक्रामक भीड़ में वहुधा कम पढ़े लिखे या वे पढ़े लिखे लोग दिखाई पड़ेंगे। विद्यार्थियों की आक्रामक भीड़ में भी अधिकतर वे ही विद्यार्थी दिखाई पड़ते हैं जिन्हें अध्ययन की अपेक्षा और कामों का अधिक शौक होता है। दंगा करने वाले विद्यार्थियों में गम्भीर और मेधावी छात्र वहुत कम दिखाई पड़ते हैं। अशिक्षित लोगों को या अन्य शिक्षित लोगों को आसानी से भड़काया जा सकता है क्योंकि उनमें सोचने समझने की शक्ति कम होती है और वे अपने उद्वेगों का अधिक नियन्त्रण नहीं कर सकते।

(११) नेता का महत्व (Importance of Leader)—आक्रामक भीड़ के सदस्यों में नेता का महत्व सवसे अधिक होता है। यह आवश्यक नहीं है कि नेता एक ही व्यक्ति हो। एक आक्रामक भीड़ में दो चार लोग भी नेतृत्व करने वाले हो सकते हैं। यह नेता जैसा करता है भीड़ वैसा ही करने लग जाती है। नेता के कारण भीड़ का व्यवहार संगठित हो जाता है। नेता भीड़ के व्यक्तियों का ध्यान केन्द्रित कर देता है। भाषण और हाव-भाव से वह लोगों को भड़काता है और उनके संवेगों को उकसाता है। वह वतलाता है कि लोगों को क्या करना है और उस काम को वह सवसे आगे वढ़कर करता भी है। यह जरूरी नहीं है कि वह नेता ऊँचे ही वर्ग का हो या कोई वहुत ही बुद्धिमान व्यक्ति हो। किसी विशेष समय पर विशेष तरह की भीड़ को जो भी व्यक्ति प्रभावित कर लेता है, जो भी उसको उकसा सकता है उसके संवेगों का संचालन कर सकता है, वह उससे मनचाहे काम करा लेता है और नेता

बन जाता है। इस तरह की सामर्थ्य सभी लोगों में नहीं होती जबकि कुछ लोगों में इसकी आश्चर्यजनक शक्ति होती है। भारत के स्वाधीनता संग्राम में तात्या टोपे ने कितनी ही बार अपना पीछा करती हुई फौज की दिशा को बदल दिया था और उसकी तोपों के मुंह उसी के अफसरों की तरफ मुड़वा दिये थे।

सक्रिय भीड़ का एक अन्य मुख्य प्रकार भयग्रस्त भीड़ है। भयग्रस्त भीड़, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है एक ऐसी भीड़ है, जिसके सदस्य भयभीत हों। गोली चलने पर जो उसकी खबर सुनता है वही डर जाता है और शीघ्र ही लोगों की भीड़ की भीड़ भागती दिखाई पड़ती है। युद्ध के दिनों में भयग्रस्त भीड़ आमतौर से देखी जा सकती है। भारत में हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगों के दिनों में भयग्रस्त भीड़ एक आम बात थी। पश्चिमी पंजाब से हजारों लोगों की भीड़ मुसलमानों के डर से गाँव के गाँव पार करके भारत पहुँची। इसी प्रकार भारत से भी भयग्रस्त मुसलमानों की भीड़ की भीड़ पाकिस्तान में पहुँची। अभी कुछ वर्षों पहले प्रयाग में कुम्भ के अवसर पर जहाँ लाखों की भीड़ एकत्रित होती है, भयग्रस्त भीड़ का उदाहरण दिखाई पड़ा। मेले में एक स्थान पर बड़ा तेज ढलाव था। इस ढाल पर एक ओर बड़ा गहरा दलदल था जिसके किनारे केवल बाँस से रोक लगाई गई थी। लोगों की भीड़ की भीड़ इस ढाल पर बढ़ रही थी। ढाल को जाने वाली सड़क पर दोनों ओर ६-६ फिट ऊँचे तख्तों से चहार दीवारी बनाई गई थी जिसको पार करना कठिन था। शीघ्र ही पीछे से एक जोर का धक्का आया और ढाल पर जाते हुए कुछ लोग गिर पड़े। उनको उठने का अवसर नहीं मिला कि पीछे वाले लोग भीड़ के धक्के के कारण उन पर आ गिरे। भगदड़ मच गई जिससे कुछ लोग ढाल के बाँई तरफ के दलदल में जा गिरे और उनकी जिन्दा ही कब्र बन गई। मौत के इस खेल को जिसने भी देखा उसके प्राण नहों में समा गये। इस भयग्रस्त भीड़ में किसी को किसी की परवाह नहीं थी। स्त्रियों और बच्चों को कुचलते हुए लोगों ने अपनी जान बचाने की कोशिश की और कुछ ही मिनटों में सैंकड़ों आदमी कुचलकर या दलदल में फंस कर मर गये।

भयग्रस्त भीड़ के उदाहरण

भयग्रस्त भीड़ में कुछ बातें स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। एक तो इसके सभी सदस्य भयभीत होते हैं। उनको कुछ नहीं सूझता, उनकी सोचने समझने की शक्ति कुंठित हो जाती है। उनके सामने बस एक ही सवाल रहता है कि कैसे भी जान बचाई जाय। ऐसी हालत में कुछ लोग आश्चर्यजनक साहस दिखाते हैं जबकि कुछ लोग अन्धाधुन्ध भागने के कारण व्यर्थ ही मारे जाते हैं। ऐसी भीड़ में हर आदमी संकट महसूस करता है। छूत की तरह से भय की भावना चारों ओर फैल जाती है। एक आदमी मरता है तो दस के मरने की अफवाह फैलती है। चारों ओर

भयग्रस्त भीड़ की विशेषतायें

अव्यवस्था दिखाई पड़ती है। बिना किसी सोच विचार के जिसका जिधर मुंह उठता है, भाग निकलता है।

परन्तु भयग्रस्त भीड़ का संगठित होना आवश्यक नहीं है। कुम्भ के मेले के उदाहरण में भयग्रस्त भीड़ असंगठित थी, परन्तु जब कोई सेना पीछे हटती या भागती है तो उसमें सैनिक लोग जिधर मुँह उठता है उधर ही नहीं भाग निकलते, उनके भागने में भी एक व्यवस्था और संगठन होता है। इस प्रकार कुछ मनोवैज्ञानिक भयग्रस्त भीड़ के दो प्रकार मानते हैं—(१) संगठित, (२) असंगठित।

भयग्रस्त भीड़ के प्रकार

भयग्रस्त भीड़ के उपरोक्त विवरण से उसकी कुछ सामान्य विशेषतायें स्पष्ट होती हैं। इन लक्षणों से भयग्रस्त भीड़ में व्यक्ति का अनुभव और व्यवहार भी स्पष्ट होता है। स्थूल रूप से ये लक्षण निम्नलिखित हैं :—

भयग्रस्त भीड़ में सदस्यों का अनुभव और व्यवहार

(१) भय की भावना (Emotion of Fear)—जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है भयग्रस्त भीड़ के सदस्य भयभीत होते हैं। उनमें भय के सभी चिह्न दिखाई पड़ते हैं। वे उत्तेजित होते हैं। उनकी हृदय की गति तीव्र हो जाती है। चेहरे विकृत हो जाते हैं। उचित अनुचित का विचार खत्म हो जाता है।

(२) संकट की अनुभूति (Sense of Crisis)—इस भय का कारण संकट की अनुभूति है। आग लगने पर, गोली चलने पर, बम फटने पर या कुछ लोगों के मारे जाने पर उस स्थान के आस पास उपस्थित सभी लोगों में संकट की अनुभूति दिखाई पड़ती है।

(३) पलायनशीलता (Tendency to Escape)—भय और संकट की अनुभूति के कारण भयग्रस्त भीड़ के सदस्य पलायनशील हो जाते हैं। वे जिधर मुँह उठता है, उधर जान लेकर भाग निकलते हैं। उन्हें यह भी परवाह नहीं होती कि कौन साथ है और कौन छूट गया, कौन बच गया और कौन मारा गया।

(४) अव्यवस्था (Disorder)—आमतौर से भयग्रस्त भीड़ के सदस्यों में कोई व्यवस्था अथवा संगठन नहीं रहता। संगठित भयग्रस्त भीड़ भी केवल अपेक्षाकृत ही संगठित होती है। अनुशासन की शिक्षा के कारण भागती हुई सेना के सदस्यों में कुछ संगठन दिखाई पड़ता है। यह संगठन बहुत कम होता है।

(५) अविवेकशीलता (Irrationality)—जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है भयग्रस्त भीड़ में सदस्य अपना विवेक खो बैठते हैं। उनकी बुद्धि काम नहीं करती।

(६) संवेगात्मकता (Emotionality)—अविवेकशीलता का एक मुख्य कारण भयग्रस्त भीड़ के सदस्यों का उत्तेजित हो जाना है। जैसा कि रॉस (Ross) ने लिखा है "जिस अंश तक भावना उत्तेजित हो जाती है उस अंश तक बुद्धि को

लकवा मार जाता है।"[24] एक अन्य स्थान पर रॉस लिखता है "अनामता के आवरण के कारण लोग अपनी भावनाओं को उन्मुक्त छोड़ देते हैं। अपनी बात सुनाने के लिये वे बोलते नहीं बल्कि चिल्लाते हैं। दिखाई देने के लिये वे केवल अपने को दिखाते ही नहीं बल्कि इशारे करते हैं।"[25]

(७) उत्तरदायित्वहीनता (Lack of Responsibility)—इस प्रकार भयभीत भीड़ में जिम्मेदारी की कोई भावना नहीं होती। कोई किसी की परवाह नहीं करता। हर एक को अपनी-अपनी फिक्र होती है। जीवित स्त्रियों व बच्चों के शरीर पर पैर रख कर उनको कुचलकर अपनी जान बचाते हुए भी लोग देखे गये हैं।

(८) अफवाह का प्रभाव (Effect of Rumour)—भय उत्पन्न करने में अफवाह का बड़ा प्रभाव होता है। खबर मिली कि कहीं गोली चल गई है और बाजार में लोग सर पर पांव रखकर भाग निकलते हैं। अफवाह फैली कि हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो गया और बात ही बात में बाजार जनशून्य हो जाते हैं।

भयग्रस्त भीड़ के लक्षणों के उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि अनेक बातों में आक्रामक भीड़ के समान होते हुये भी इन दोनों में काफी अन्तर होता है। आक्रामक और भयग्रस्त भीड़ में निम्नलिखित समानतायें हैं:—

आक्रामक और भयग्रस्त भीड़ में समानता

(१) दोनों में सदस्य उत्तेजित और संवेगशील होते हैं।
(२) दोनों में व्यवहार में विवेकशीलता नहीं रहती।
(३) दोनों में उचित अनुचित का विचार समाप्त हो जाता है।
(४) दोनों में अनुकरण तथा सुझाव की प्रवृत्ति बढ़ जाती है।
(५) दोनों में अफवाह का स्थान प्रबल होता है।

उपरोक्त समानताओं के होते हुये भी आक्रामक और भयग्रस्त भीड़ में निम्नलिखित अन्तर है:—

आक्रामक और भयग्रस्त भीड़ में अन्तर

(१) आक्रामक भीड़ में सदस्य उत्तेजित होते हैं जबकि भयग्रस्त भीड़ में सदस्य भय भीत होते हैं।

(२) आक्रामक भीड़ में सदस्य विध्वंस करना चाहते हैं जबकि भयग्रस्त भीड़ में सदस्य अपनी जान बचाना जानते हैं।

(३) आक्रामक भीड़ में नेता का महत्व होता है। भयग्रस्त भीड़ में नेता की बात कोई नही सुनता।

(४) आक्रामक भीड़ संगठित होती है जबकि भयग्रस्त भीड़ अधिकतर विघटित होती है।

---

24. "To the degree that feeling is intensified, reason is paralysed.' —Ross

25. "Masked by their anonimity, people feel free to give rein to the expression of their feelings. To be heard, one does not speak one shouts. To be seen, one does not simply show ones self, one gesticulates." —Ross.

सक्रिय भीड़ का तीसरा मुख्य प्रकार अर्जनशील भीड़ है। अर्जनशील भीड़ के सदस्यों का उद्देश्य कुछ न कुछ अर्जन करना अथवा प्राप्त करना होता है। दिल्ली के इस पलाई बैंक (Palai Bank) के सामने यह इतनी भीड़ क्यों एकत्रित है? ये सब लोग हैं जिनका कुछ न कुछ रुपया बैंक में जमा है। बैंक का दिवाला निकलने का समाचार सुन कर ये सब यहाँ अपना-अपना रुपया वापस लेने आये हैं। जरा इस सिनेमाघर में तीसरे दर्जे की खिड़की के पास इस भीड़ को देखिये, कितने लोग इकट्ठा हैं! आदमी से आदमी भिड़ रहा है। अरे वह देखिये एक आदमी कितने पीछे से लोगों के सिरों पर खिसकता हुआ खिड़की की तरफ बढ़ रहा है। इधर धक्का-मुक्की होने लगी। उस रिक्शा वाले का कुरता फट गया है। आखिर क्या परेशानी है? ये सब लोग इतने उत्तेजित और परेशान क्यों दिखाई पड़ते हैं? शायद आपको मालूम नहीं इस सिनेमाघर में 'गंगा जमना' फिल्म आज पहली बार दिखाई जा रही है। ये सब लोग टिकट लेने के लिये संघर्ष कर रहे हैं। अगर आपको राशन के जमाने की याद हो तो आपको अर्जनशील भीड़ को समझने में कठिनाई नहीं होगी। उस जमाने में जगह-जगह पर राशन की दुकानों पर गेहूँ, चीनी या मिट्टी का तेल लेने वालों की भीड़ दिखाई पड़ती थी। अर्जनशील भीड़ के उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि इसमें भीड़ के सदस्य कुछ न कुछ लेने के लिये इकट्ठा होते हैं जैसे सिनेमा या रेल का टिकट, गेहूँ, चीनी, मिट्टी का तेल, रुपया पैसा आदि।

अर्जनशील भीड़ के उदाहरण

सक्रिय भीड़ का चौथा मुख्य प्रकार प्रदर्शनकारी भीड़ है। इसके व्यंजक भीड़ भी कहा जाता है। जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है इसमें कुछ लोग अपनी माँगों या भावनाओं का प्रदर्शन अथवा अभिव्यंजना करने के लिये इकट्ठे होते हैं। आज जनतन्त्र के जमाने में इस तरह की भीड़ कोई नई बात नहीं है। कलकत्ता विश्वविद्यालय में किसी परीक्षा में परचे बड़े कठिन आये। अब क्या था, एक-एक करके परीक्षार्थी परीक्षा भवन से उठ आये और बाहर मैदान में एकत्रित हो गए। देखते ही देखते एक भीड़ लग गई। जलूस के रूप में यह भीड़ वाइस चान्सलर के निवास स्थान की ओर चल पड़ी। कुछ लोग नारे लगाने लगे। वाइस चान्सलर के निवास स्थान पर पहुँच कर इस भीड़ के नेताओं ने उनके सामने प्रश्न-पत्रों के दोबारा बनाये जाने की माँग पेश की। पिछले चुनावों में राजनैतिक प्रचार के सिलसिले में गाँव-गाँव और शहर-शहर में इस तरह की प्रदर्शनकारी भीड़ देखी जा सकती है। हर तरह के जलूस प्रदर्शनकारी भीड़ में आते हैं चाहे वे मजदूरों के जलूस हों या विद्यार्थियों के, किसी अर्थी का जलूस हो या किसी नेता की सवारी। प्रदर्शनकारी भीड़ के सदस्यों में हिंसा की भावना अपेक्षाकृत कम हो जाती है यद्यपि जलूस को जबर्दस्ती तित्तर-बित्तर करने की कोशिश करने

प्रदर्शनकारी भीड़ के उदाहरण

पर वह आक्रामक भी हो सकती है। आमतौर से यदि इस तरह की भीड़ की गति-विधि में कोई बाधा न डाली जाय तो वह अपनी भावना को अभिव्यक्त करके अपनी बात को लोगों के सामने रखकर खत्म हो जाती है। ऐसी भीड़ में लोग थोड़े बहुत उत्तेजित तो हो जाते हैं परन्तु वे अपना विवेक नहीं खोते। इस भीड़ में न तो आक्रामक की भावना होती है, न पलायन की और न कुछ प्राप्त करने की। इसमें तो सदस्य अपना रोष, विरोध, हर्ष अथवा दुःख आदि प्रकट करना चाहते हैं। यदि इसमें कुछ बाधा पड़ती है तो यह भीड़ आक्रामक हो सकती है और लाठी चार्ज आदि होने पर भय ग्रस्त भी हो सकती है।

*

प्रश्न ३८—श्रोता समूह का वर्गीकरण कीजिये और विभिन्न प्रकार के श्रोता समूहों में सदस्यों के अनुभव तथा व्यवहार का वर्णन कीजिये।

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने श्रोता समूह को भिन्न भिन्न प्रकारों में विभाजित किया है। इस वर्गीकरण में किम्बाल यंग (Kimball Young) लेपियर (Lapiere) और ब्रिट (Britt) का वर्गीकरण अधिक महत्वपूर्ण है। यहाँ पर इन्हीं का संक्षिप्त वर्णन किया जायेगा।

किम्बाल यंग ने श्रोता समूह के निम्नलिखित तीन प्रकार बताये हैं :—

किम्बाल यंग का मत

(१) **ज्ञानार्जनशील श्रोता समूह** (Information Seeking Audience)—ज्ञानार्जनशील श्रोता समूह, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है ऐसे लोगों की भीड़ है जो कि कुछ जानकारी अथवा ज्ञान प्राप्त करने के लिये एकत्रित हुये हैं। आजकल संध्या समय बाजारों में पान की दुकानों पर खबरें सुनने के लिये एकत्रित लोग स्थान-स्थान पर दिखाई पड़ते हैं। जब कभी शहर में कोई नेता आता है तो उसकी बात सुनने के लिये बड़ी संख्या में लोग एकत्रित होते हैं। शिक्षा संस्थाओं में समय-समय पर विद्वानों के भाषण सुनने के लिये विद्यार्थी तथा अन्य लोग एकत्रित होते हैं। ये सब ज्ञानार्जनशील श्रोता समूह के उदाहरण हैं।

(२) **मनोरंजनशील श्रोता समूह** (Recreation Seeking Audience)—जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, इस श्रोता समूह के सदस्य जानकारी प्राप्त करने के लिये नहीं बल्कि मनोरंजन के लिये एकत्रित होते हैं। सिनेमा, सरकस, नाटक, नाच गाना आदि देखने के लिये एकत्रित श्रोता समूह के सदस्यों का उद्देश्य मनोरंजन होता है। मनोरंजन का उद्देश्य ज्ञानार्जन से कम गम्भीर होने के कारण इसमें सदस्यों का व्यवहार कम संयमित और व्यवस्थित रहता है। कुछ लोकप्रिय चलचित्रों में तो श्रोता समूह के सदस्य न केवल सीटी बजाते, आवाजें लगाते और ठहाके लगाते देखे जा सकते हैं बल्कि कुछ लोग तो गाने की ताल में ताल मिलाते हैं और नाचने तक में साथ देने को तैयार दिखाई पड़ते हैं।

(३) परिवर्तनात्मक श्रोता समूह (Conversional Audience)—कुछ श्रोता समूह न तो जानकारी प्राप्त करने के लिये एकत्रित होते हैं और न मनोरंजन के लिये उनका उद्देश्य विचारों और भावनाओं में परिष्कार या परिवर्तन लाना होता है। धार्मिक श्रोता समूह इसी वर्ग में आते हैं। चुनावों के दिनों में हर एक राजनैतिक दल के नेता स्थान-स्थान पर भाषण देकर श्रोता समूह के विचारों को परिवर्तित करने की चेष्टा करते हैं। यह परिवर्तनात्मक श्रोता समूह का एक उदाहरण है।

लेपियर (Lapiere) ने श्रोता समूह को निम्नलिखित दो भागों में बाँटा है :—

(१) नाटकीय श्रोता समूह (Dramatic Audience)—इस वर्ग में वे श्रोता समूह आते हैं जो नाटक देखने अथवा मनोरंजन के लिए एकत्रित हुए हैं।

लेपियर का मत

(२) भाषण श्रोता समूह (Lecture Audience)—इस वर्ग में वे श्रोता समूह आते हैं जिनके सदस्यों का उद्देश्य भाषण सुनना होता है। इस वर्ग में किम्बाल यंग के ज्ञानार्जन शील और परिवर्तनात्मक दोनों श्रोता समूह आ जाते हैं। लेपियर ने परिवर्तनात्मक श्रोता समूह को भाषण श्रोता समूह का उप-प्रकार (Sub-Type) माना है।

समाज मनोवैज्ञानिक ब्रिट (Britt) के अनुसार श्रोता समूहों को निम्नलिखित पाँच वर्गों में बांटा जा सकता है :—

ब्रिट का मत

(१) पैदल श्रोता समूह (Pedestrian Audience)—इस वर्ग में वह श्रोता समूह आता है जिसके सदस्य राह चलते किसी वस्तु से आकर्षित होकर उसको देखने के लिये खड़े हो जाते हैं। बाजारों में मदारियों, सपेरों और बाजीगरों के चारों ओर इस तरह का पैदल श्रोता समूह देखा जाता है। इसके सदस्य जब तक उनको आकर्षण की वस्तु में विशेष आकर्षण रहता है तब तक तो खड़े रहते हैं और जैसे ही यह आकर्षक कम होता है या उनको किसी काम की याद आती है वैसे ही वे चल पड़ते हैं।

(२) निष्क्रिय श्रोता समूह (Passive Audience)—निष्क्रिय श्रोता समूह में सदस्य शान्त और मौन बैठे रहते हैं। ऐसा नहीं है कि वे बिल्कुल ही निष्क्रिय हों कुछ न कुछ क्रिया तो उनमें भी होती रहती है परन्तु वे अपेक्षाकृत कम सक्रिय होते हैं।

(३) चुना हुआ श्रोता समूह (Selected Audience)—इस वर्ग में जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है उन लोगों का श्रोता समूह आता है जो कि विशेष रूप में आमन्त्रित किये जाते हैं। उदाहरण के लिए किसी बड़े नेता के आने पर विशेष सभा में हर किसी को नहीं जाने दिया जाता बल्कि कुछ हुए लोग आमन्त्रित

किये जाते हैं। स्पष्ट है कि इस तरह का श्रोता समूह अधिक संगठित और व्यवस्थित होगा।

(४) संगठित श्रोता समूह (Organised Audience)—इस वर्ग में वे श्रोता समूह आते हैं जिसके सदस्य संगठित तथा व्यवस्थित व्यवहार दिखाते हैं।

(५) समूह्य श्रोता समूह (Concerted Audenice)—श्रोता समूह के इस वर्ग में किसी विशेष समूह के व्यक्तियों को ही बुलाया जाता है जैसे आर्य समाज की सभा में आर्य समाजी, सनातन धर्म की सभा में सनातन धर्मी, मुसलमानों की सभा में मुसलमान और विद्यार्थियों की सभा में विद्यार्थी एकत्रित होते हैं।

श्रोता समूह के विभिन्न प्रकारों के उपरोक्त वर्णनों के साथ-साथ उसके सदस्यों के अनुभव और व्यवहार के विषय में भी संकेत किया गया है। इसको और भी अच्छी तरह समझने के लिये यहाँ व्याख्यान अथवा

धर्मोपदेश अथवा भाषण के श्रोता समूह में सदस्यों के अनुभव और व्यवहार

धर्मोपदेश के श्रोता समूह के अनुभव और व्यवहार का विवेचन प्रासंगिक होगा। ऐसे श्रोता समूह में सदस्यों का ध्यान वक्ता की ओर लगा रहता है। वक्ता के शब्दों के साथ-साथ उसके हाव-भाव का भी उन पर काफी प्रभाव पड़ता है। कुछ धार्मिक सभाओं में तो लोग वक्ता के साथ हंसते और रोते भी देखे जा सकते हैं। साधारण भाषण और धर्मोपदेश के श्रोता समूह में कुछ अन्तर होता है। साधारण भाषण में वक्ता को अधिक महत्व दिया जाता है। इसमें वक्ता के व्यक्तित्व और बुद्धि का बड़ा प्रभाव पड़ता है। इन दोनों का स्तर ऊँचा होने पर श्रोता लोग प्रभावित होते हैं। इन श्रोताओं में श्रद्धा कम और विवेक अधिक होता है। वे वक्ता की बात को ज्यों का त्यों न मानकर कुछ न कुछ परखते भी हैं यद्यपि उनके संवेगों को प्रभावित करके वक्ता उनके विचारों को बदल सकता है। दूसरी ओर धार्मिक श्रोता समूह में वक्ता का इतना अधिक महत्व नहीं होता। यह ठीक है कि यदि कथा वाचक विद्वान और आकर्षक व्यक्तित्व का हुआ और उसके गले में मिठास हुई तो वह श्रोताओं को अधिक प्रभावित करता है और लोग घन्टों मन्त्र-मुग्ध से बैठे रहते हैं। परन्तु यदि पण्डित जी अल्प बुद्धि और भोंदू भी हुये तो भी काफी लोग उनका प्रवचन सुनते रहते हैं क्योंकि उनकी रुचि पण्डित जी में नहीं बल्कि उस कथा में है जो पण्डित जी सुना रहे हैं। धर्मोपदेश में वक्ता का महत्व अवश्य होता है परन्तु साथ ही साथ विशिष्ट उपदेश का भी महत्व कम नहीं होता। यह उपदेश बहुधा वक्ता का अपना मत न होकर किसी महापुरुष या ईश्वर का मत कहा जाता है। ईसा, बुद्ध या कृष्ण के वचनों का उपदेश देने वाला वक्ता अपने विचार नहीं देता बल्कि इन्हीं के विचार देता है और चाहे उसके अपने विचार कैसे भी हों उसकी कोई भी परवाह न करके श्रोतागण इन महापुरुषों के विचारों से प्रभावित होते हैं। धर्मोपदेश का वक्ता साधारण भाषण में उतना सफल सिद्ध नहीं हो सकता। अपने मोहल्ले के पण्डित जी जब कथा कहते हैं तो मोहल्ले की आधी से

ज्यादा औरतें और बूढ़े लोग घन्टों तक उनकी बात सुनते रहते हैं परन्तु उस दिन जब वे चुनाव के दिनों में हिन्दू महासभा की तरफ से कुछ कहने को खड़े हो गए तो मोहल्ले के लड़कों ने आवाजें कसनी शुरू कीं। "बैठ जाओ! बैठ जाओ" की आवाजें आने लगीं। उपस्थित बुजुर्ग भी मुस्कराये। किसी ने कहा "यह रामायण का पाठ नहीं है पण्डित जी!" पण्डित जी को पसीना आ गया। सच ही तो है, राजनैतिक सभा में भाषण देना रामायण पाठ तो है नहीं। पण्डित जी वेचारे क्या करते, हार मानकर बैठ गये। फिर उस दिन शाम को जब पण्डित जी ने मोहल्ले में रामायण की कथा छेड़ी तो सुनने वाले किसी भी दिन से कम नहीं थे। न किसी ने मजाक उड़ाया, न आवाजें कसीं क्योंकि यहाँ के लोग सत्संग करने के लिये आये थे, विचार परिवर्तन के लिए नहीं और पण्डित जी भी अपनी कथा न कहकर भगवान रामचन्द्र जी की कथा कह रहे थे। इस प्रकार धर्मोपदेश सुनने वाले श्रोता समूह में सदस्यों की बुद्धि का स्तर नीचा हो जाता है। तर्क का स्थान श्रद्धा ले लेती है। हर एक बात पर आँखे मूंद कर विश्वास कर लिया जाता है। व्याख्यानदाता का बड़ा आदर होता है। ऐसे समूह में संवेग भी आमतौर पर अच्छे और ऊँचे होते हैं। दया, प्रेम, सहयोग, सहानुभूति आदि ऊंची भावनाओं को प्रोत्साहन मिलने के कारण ही ऐसी सभाओं को सत्संग कहा जाता है। इनमें सदस्य बड़े सन्तुलित और मर्यादित रहते हैं। अन्य व्याख्यान सभाओं की तरह वे वक्ता की आलोचना नहीं करते बल्कि उसकी बात को मान लेते हैं। यहाँ तक कि जिन बातों को कोई आदमी अपने जीवन के अन्य क्षेत्रों में मानने को तैयार नहीं होता ऐसी अवैज्ञानिक बातों को भी वह धर्मोपदेशक के मुँह से सुनकर चुपचाप मान लेता है।

श्रोता समूह का पीछे दिया गया वर्गीकरण नीचे दिये गये चार्ट से स्पष्ट हो जायेगा :—

७
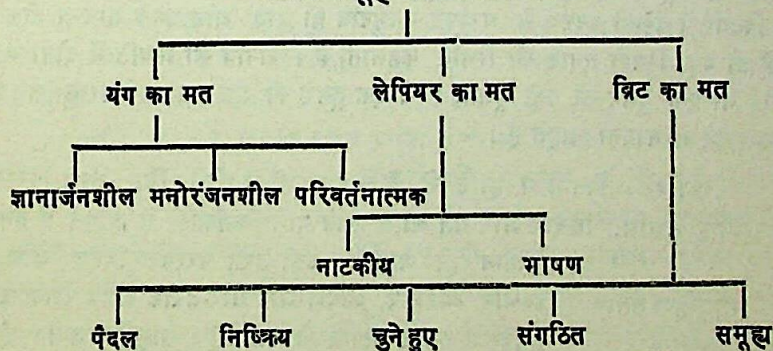
सामूहिक तनाव
(Group Tension)

प्रश्न ३९—सामूहिक तनाव क्या हैं ? उनका विकास किस तरह होता है ?

अथवा

प्रश्न—पूर्वधारणा (Prejudice) से क्या तात्पर्य है ? पूर्वधारणा किस प्रकार सामूहिक तनाव उत्पन्न करती हैं ? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिये।

(यू० पी० बोर्ड १९६४)

अथवा

प्रश्न—पूर्वधारणा से क्या अभिप्राय है ? उदाहरण देकर समझाइये। पूर्वधारणा को दूर करने के लिये क्या उपाय हैं ? **(यू० पी० बोर्ड १९६५)**

तनाव क्या है ?

रामू और श्यामू पहले बड़े दोस्त थे। वाद में एक वार उनमें किसी बात को लेकर झगड़ा हो गया। अब दोनों ने एक दूसरे पर दोषारोपण करना शुरू कर दिया। अब वे एक दूसरे को देखकर नजरें बचा जाते और एक दूसरे की बुराई करते फिरते। इस प्रकार उनके सम्बन्ध जो पहले बड़े ही संतुलित और अनुकूल थे धीरे धीरे असंतुलित और विषम हो गये। वे एक दूसरे से खिंचने लगे। यह तनाव का स्थिति है। यूँ भी तनाव का शाब्दिक अर्थ खिचना होता है। इस प्रकार जब कभी दो व्यक्तियों में किसी कारण से परस्पर मनमुटाव हो जाय और उनके सम्बन्ध ठीक न रहें तो यह स्थिति तनाव की स्थिति कहलाती है। तनाव की स्थिति में दोनों में से कोई भी एक दूसरे को नहीं भूलता। वे एक दूसरे की याद रखते हैं परन्तु फिर भी एक दूसरे से भागना चाहते हैं।

सामूहिक तनाव क्या है ?

तनाव व्यक्तियों में हो सकते हैं और समूहों में भी। जिस तरह परस्पर विरोधी दृष्टिकोण, विचार और मत आदि रखने वाले व्यक्तियों में आपस में तनाव उत्पन्न हो जाता है उसी तरह परस्पर विरुद्ध आचार, विचार, व्यवहार, आदर्श और तौर-तरीके आदि रखने वाले समूहों में तनाव उत्पन्न हो जाता है। सामूहिक तनाव जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है दो या अधिक समूहों के बीच का तनाव है। उदाहरण के लिये भारत में विभिन्न जातीय समूह में एक दूसरे से

घृणा, भय और ऊँच-नीच की भावना देखी जाती है। स्थान-स्थान पर बनिये और ब्राह्मण, ब्राह्मण और कायस्थ, ब्राह्मण और अब्राह्मण, ऊँची जातियों तथा नीची जातियों में परस्पर वैर-भाव दिखाई पड़ता है। यह जातिवाद (Casteism) जातीय तनाव के कारण हैं। भारत में सैकड़ों सालों से हिन्दू-मुसलमानों के एक साथ रहने पर भी उनके आचार-विचार, आदर्श, रीति-रिवाज, दृष्टिकोण तथा अन्य बातों में अब भी पर्याप्त अन्तर है। इस कारण भारत में हिन्दू-मुसलमानों में साम्प्रदायिक तनाव देखा जाता है। इसी प्रकार देश के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में रहने वाले लोगों में परस्पर कुछ न कुछ भेद-भाव पाया जा सकता है। पंजाबी पंजाबी को और बंगालीबंगाली को फायदा पहुँचाने की कोशिश करता है। आसामवाले यह समझते हैं कि आसाम आसामियों के लिए है और उसमें बंगालियों की कोई जगह नहीं होनी चाहिए। इतना ही नहीं बल्कि कुछ संस्थाओं ने उत्तर और दक्षिण के अन्तर की ओर संकेत करके दक्षिणी भारत को एक बिलकुल पृथक् राज्य बनाने की माँग की है। इस प्रकार के दल का अस्तित्व ही यह सिद्ध करता है कि भारत में क्षेत्रगत तनाव (Regional Tension) इतना बढ़ा हुआ है। दक्षिण वाले यह समझते हैं कि केन्द्रीय सरकार में उत्तर वाले ही अधिक पदों पर कब्जा किये हुये हैं। बहुत से दक्षिण निवासियों के सामने सदैव देश का पिछला इतिहास रहता है जबकि उत्तर भारत के शासकों ने दक्षिणी भारत पर बारम्बार आक्रमण किये। उनको उत्तर की तलवारों की झनकार अब भी सुनाई पड़ती है। इससे उनमें उत्तर के प्रति वैर-भाव बना रहता है। केवल जातिगत, साम्प्रदायिक और क्षेत्रगत तनाव ही नहीं बल्कि भारत में आजकल भाषा सम्बन्धी तनाव भी देखे जा सकते हैं। भाषा के प्रश्न को लेकर पिछले दिनों आसाम में भयंकर दंगे हुए। हिन्दी पंजाबी के प्रश्न को लेकर पंजाब में कितने ही दिनों भारी अशान्ति छाई रही। उर्दू और हिन्दी के प्रश्न को लेकर देश में कितनी ही गर्मागर्मी बनी रही। भाषा व्यक्तियों के परस्पर व्यवहार का माध्यम है। अन्य भाषा बोलने वाला और अपनी भाषा न जानने वाला स्वभावतया ही विदेशी मालूम पड़ता है। अतः भिन्न भाषा-भाषी लोगों में तनाव देखा जाना स्वाभाविक है।

परन्तु जाति, धर्म, निवास स्थान अथवा भाषा की विविधता से विभिन्न समूहों में संघर्ष होना आवश्यक नहीं है। भारतीय संस्कृति में सदा से ही विविधता में एकता देखी जा सकती है। अतः देश में इन सब प्रकार के
भिन्नता से तनाव तनावों के रहते हुए भी राष्ट्रीय संगठन असम्भव नहीं
आवश्यक नहीं है समझा जाता। अभी पिछले दिनों परस्पर विरोधी मत
रखने वाले देश के भिन्न-भिन्न राजनैतिक दलों ने एकत्रित होकर राष्ट्रीय संगठन के विषय में विचार-विमर्श किया और इस विषय में कार्यक्रम की एक मोटी रूपरेखा तैयार की। इस योजना से राष्ट्रीय संगठन कहाँ तक हो सकता है यह दूसरी बात है, परन्तु महत्वपूर्ण बात यह है कि विभिन्न दल एक स्थान पर एकत्रित होकर राष्ट्रीय संगठन के विषय में कुछ सोच सकें और एकमत से निर्णय

कर सकें। राष्ट्रीय संगठन कैसे होना चाहिए, इस विषय में मतभेद हो सकता है, परन्तु आज इस तथ्य के विषय में दो मत नहीं हो सकते कि भारत एक इकाई है, एक राष्ट्र है और उसमें जातियों, धर्मों, भाषाओं, रीति-रिवाजों और संस्कृतियों आदि की विविधता कायम रखते हुए भी राष्ट्रीय एकता उत्पन्न की जा सकती है।

सामूहिक तनाव का मूल पूर्वाग्रह

सामूहिक तनाव की धारणा को स्पष्ट करने के लिये उसके मनोवैज्ञानिक मूल तत्वों का विश्लेषण आवश्यक है। सामूहिक तनाव के मूल में मनोवैज्ञानिक कारण है पूर्व आग्रह (Prejudice)। ऊँची जाति के लोग नीची जातियों के लोगों का स्पर्श तक अपवित्र करने वाला समझते है। यह एक पूर्व आग्रह है। पूर्व आग्रह जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है किसी बात की जाँच या परीक्षा करने से पहले ही उसके सम्बन्ध में कोई निश्चित विश्वास या अभिवृत्ति बना लेना है। जाहिर है कि पूर्व आग्रह सरासर अनुचित और अविवेकपूर्ण होते हैं। निम्नलिखित कुछ परिभाषाओं से पूर्व आग्रह का स्वरूप समझने में आसानी होगी :—

(१) जेम्स ड्रेवर (James Drever) द्वारा परिभाषा—जेम्स ड्रेवर के अनुसार "पूर्व आग्रह एक निश्चित प्रकार के कार्यों अथवा वस्तुओं, कुछ व्यक्तियों और कुछ सिद्धान्तों के विरुद्ध अथवा पक्ष में एक अभिवृत्ति है जिससे प्रायः कुछ संवेग भी जुड़े रहते हैं।"[1] पूर्व आग्रह की इस परिभाषा में उसको एक अभिवृत्ति (Attitude) बतलाया गया है जिसमें किसी न किसी तरह का संवेग (Emotion) जुड़ा रहता है। साम्प्रदायिक पूर्व आग्रह रखने वाले हिन्दू लोग मुसलमानों को मलेच्छ कहते हैं और उनसे दूर भागते हैं। ऊँची जाति के लोग नीची जाति के लोगों से घृणा करते हैं। अमरीका में गोरे लोग हब्शी लोगों को देखकर नाक-भौं सिकोड़ते हैं और उनको पास नहीं बैठने देना चाहते। इन सब उदाहरणों में कुछ व्यक्तियों की ओर या समूहों की ओर एक विशेष प्रकार की अभिवृत्ति दिखलाई पड़ती है जिसके साथ घृणा और भय भी लगा हुआ है।

(२) ऑगबर्न (Ogburn) द्वारा परिभाषा—ऑगबर्न के अनुसार "पूर्व आग्रह एक जल्दी में किया हुआ निर्णय या उपयुक्त परीक्षा के बिना बनाई हुई राय है।"[2] जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है पूर्व आग्रह में व्यक्ति जाँच करने से पहले ही कोई धारणा बना लेता है। उदाहरण के लिए बहुत से हिन्दू यह मान बैठते हैं कि मुसलमान स्वभाव से ही देशद्रोही होते हैं और वे इस बात की जाँच करना जरूरी नहीं, समझते कि वास्तव में ऐसा है भी या नहीं। इसी प्रकार बहुत से मुसलमान हर एक 'विधर्मी'

---

1. "Prejudice is an attitude, usually with an emotional colouring, hostile to, or in favour of, actions or objects of a certain kind, certain persons and certain doctrines." —James Drever.

2. "Prejudice is a hasty judgement or an opininon formed without due examination." —Ogburn.

को काफिर कहते हैं और उसको 'कुफ्र' करने वाला या पापी मानते हैं। यह एक परीक्षा के विना वनाई हुई राय है।

(३) किम्वाल यंग (Kimball Young) द्वारा परिभाषा—किम्वाल यंग ने पूर्व आग्रह की एक अधिक विस्तृत परिभाषा उपस्थित की है। उसके अनुसार "एक पूर्व आग्रह रूढ़ युक्तियों, पौराणिक कथाओं और कहानियों का एक समग्र है जिसमें कि एक व्यक्ति अथवा एक समूह को पूर्ण रूप से लेकर उसका वर्गीकरण करने, उसके लक्षण वतलाने अथवा उसकी परिभाषा करने के लिये एक समूह लेबिल या प्रतीक का इस्तेमाल किया जाता है। इसका अर्थ है कि पूर्व निर्णय, एक निर्णय देना अथवा एक अभिवृत्ति ग्रहण करना अथवा पहले से ही एक विश्वास वना लेना। वह आत्महित या समूह के हित से वौद्धिक निर्णय को विकृत कर देना है। प्रायः उसके साथ राग और द्वेष के दृढ़ संवेग जुड़े रहते हैं।"[3] पूर्व आग्रह की इस परिभाषा में उसको एक रूढ़ युक्ति (Stereotype), एक पूर्व निर्णय (Pre-judgment), एक वुद्धि हीन निर्णय (Irrational judgement) कहा गया है जिसके साथ राग-द्वेष के दृढ़ संवेग लगे रहते हैं। पूर्व आग्रह की इस परिभाषा में लगभग सभी वातें आ जाती हैं।

पूर्व आग्रह की उपरोक्त परिभाषाओं में अभिवृत्ति और विश्वास शब्द का इस्तेमाल किया गया है। अतः इनको भी भली प्रकार समझना आवश्यक है। क्रेच

विश्वास क्या है ?

और क्रचफील्ड (Krech & Crutchfield) के अनुसार, "विश्वास व्यक्ति के जगत के किसी पहलू के बारे में प्रत्यक्षों और ज्ञान का एक स्थाई संगठन है।"[4] हर एक व्यक्ति की अपनी एक दुनिया होती है जिसमें अपनी देखी हुई और जानी हुई बातों के आधार पर वह कुछ विश्वास वना लेता है। ये विश्वास अच्छे भी हो सकते हैं और वुरे भी, सही भी हो सकते हैं और गलत भी, परन्तु इनसे व्यक्ति का व्यवहार वहुत कुछ निश्चित होता है।

अभिवृत्ति (Attitude) की परिभाषा करते हुए आलपोर्ट (Allport) ने लिखा है—"एक अभिवृत्ति समस्त सम्वन्धित वस्तुओं और परिस्थितियों के प्रति

3. "A prejudice is a composite of stereotypes, myths and legends in which a group label or symbol is used to classify, characterize and define an individual or a group considered as a totality..... It means 'prejudgment', the making of a decision or the adoption of an attitude or a belief in advance. It is a perversion of rational judgment by self-interest or group interest. It is usually accompanied by strong emotional likes and dislikes." —K. Young.

4. "A belief is an enduring organisation of perceptions and cognitions about some aspect of the individual's world." —Krech and Crutchfield.

अभिवृत्ति क्या है ?

व्यक्ति की अनुक्रिया पर एक निर्देशात्मक और गत्यात्मक प्रभाव डालने वाली एक मानसिक और स्नायविक तत्परता का रुख है।"[5] जैसा कि इस परिभाषा से स्पष्ट है, अभिवृत्ति एक मानसिक और स्नायविक तत्परता है। इसका व्यक्ति के सभी व्यवहारों पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिये हिन्दू और मुसलमानों की परस्पर अभिवृत्तियों का एक दूसरे के व्यवहार पर स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। जो लोग एक दूसरे से शत्रुता की अभिवृत्ति रखते हैं उनके सभी व्यवहारों में शत्रुता दिखाई पड़ती है। मित्रता की अभिवृत्ति रखने वाले को सभी बातों से मैत्री की गन्ध आती है।

अभिवृत्ति और विश्वास में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। बहुधा हर एक अभिवृत्ति के पीछे एक विश्वास रहता है यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि हर एक विश्वास के पीछे एक अभिवृत्ति भी हो। उदाहरण के लिये पृथ्वी गोल है यह एक विश्वास है परन्तु बहुधा इस विश्वास से व्यक्ति में कोई अभिवृत्ति नहीं बनती। दूसरी ओर यदि रामू खुदाबख्श से घृणा करता है तो इसके पीछे खुदाबख्श के विषय में किसी न किसी तरह का विश्वास अवश्य है। बहुधा जैसी मनोवृत्ति होती है उसकी पृष्ठभूमि में वैसा ही विश्वास भी रहता है।

अभिवृत्ति और विश्वास में सम्बन्ध

तनाव के उपरोक्त विस्तृत विवेचन से तनाव की प्रकृति स्पष्ट होती है। इस प्रकार तनाव कुछ पूर्वाग्रहों, विश्वासों और अभिवृत्तियों के परिणामस्वरूप विभिन्न व्यक्तियों या समूहों के परस्पर सम्बन्ध में एक प्रकार की विषमता, असन्तुलन और असमायोजन है।

सामूहिक तनाव के विकास के कारण

(Causes of the Growth of Group Tensions)

सामूहिक तनाव के विकास के बहुत से कारण होते हैं। भाषा, धर्म, सम्प्रदाय, निवास स्थान, संस्कृति और सामाजिक व आर्थिक स्थिति आदि किसी भी पहलू में परस्पर विरोध होने पर विरोधी समूहों में सामूहिक तनाव उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार सामूहिक तनाव के भौतिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक अनेक प्रकार के कारण देखे जा सकते हैं। इनमें विषमता होने से तनाव बढ़ते हैं। गार्डनर मर्फी (Gardner Murphy) ने इसको "भिन्न होने का पाप" कहकर संक्षेप में व्यक्त किया है। यहाँ यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि भिन्नता मात्र को तनाव का कारण नहीं माना जा सकता। यह

सामूहिक तनाव के कारण अनेक हैं

5. "An attitude is a mental and neural set of readiness, exerting a directive dynamic influence upon the individual's response to all objects and situations with which it is related." —G. W. Allport.

आवश्यक नहीं है कि भिन्न समूहों में तनाव भी अवश्य हो। तनाव होने के लिये भिन्नता के अलावा कुछ मनोवैज्ञानिक कारणों का भी महत्व है। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है अनेक पूर्वाग्रह, विश्वास और अभिवृत्तियां तनाव के मूल कारण हैं। क्रेच और क्रचफील्ड ने तनाव के भौतिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कारण माने हैं। किम्बाल यंग ने तनाव में सांस्कृतिक कारकों को अधिक महत्व दिया है। स्थूल रूप से सामूहिक तनाव के विकास के निम्नलिखित कारण माने जा सकते हैं:—

(१) भौतिक कारण (Physical Causes)
(२) सामाजिक कारण (Social Causes)
(३) सांस्कृतिक कारण (Cultural Causes)
(४) धार्मिक कारण (Religious Causes)
(५) आर्थिक कारण (Economic Causes)
(६) राजनैतिक कारण (Political Causes)
(७) मनोवैज्ञानिक कारण। (Psychological Causes)।

अब इन विभिन्न कारणों का विस्तार से वर्णन प्रासंगिक होगा :—

(१) भौतिक कारण (Physical Causes)—भौतिक कारणों को भौगोलिक कारण (Geographical Causes) भी कहा जा सकता है। भिन्न-भिन्न स्थानों पर रहने वाले लोगों के पहनावे, खान-पान, रहन-सहन, शारीरिक बनावट आदि में काफी अन्तर हो जाता है। इस अन्तर के कारण वे एक दूसरे को विदेशी समझने लगते हैं। स्वाभाविक है कि हर एक व्यक्ति को स्वदेशियों से प्रेम और विदेशियों से भय होता है। अब यदि कुछ और बातें भी मिल जाती हैं तो विभिन्न क्षेत्रों के निवासियों में तनाव उत्पन्न हो जाते हैं। भारतवर्ष में इस प्रकार के क्षेत्रगत तनावों का जिक्र पीछे किया जा चुका है।

(२) सामाजिक कारण (Social Causes)—सामाजिक सम्बन्धों में सामाजिक दूरी (Social Distance) का बड़ा महत्व होता है। हर एक समाज में भिन्न-भिन्न समूहों की एक विशेष स्थिति (Status) होती है और उस स्थिति के अनुरूप कुछ विशेष कार्य (Roles) होते हैं। इसी स्थिति से ही अन्य समूहों से उसके सम्बन्ध, मिलना-जुलना, शादी विवाह और सम्मान आदि निश्चित होते हैं। उदाहरण के लिये हिन्दू समाज में सामाजिक संस्तरण में ब्राह्मण सबसे ऊँचे और शूद्र सबसे नीचे माने जाते हैं। इस प्रकार हिन्दू समाज में, ब्राह्मण और शूद्र में ब्राह्मण और क्षत्रिय की अपेक्षा अधिक सामाजिक दूरी है। सामाजिक दूरी से ऊँची स्थिति वाला नीची सामाजिक स्थिति के समूह को नीचा मानता है। उनमें कुछ पूर्व आग्रह उत्पन्न हो जाते हैं। ब्राह्मण का बालक यदि भंगी को छू देता है तो उसको स्नान कराया जाता है। इससे उनके अन्दर यह पूर्व आग्रह उत्पन्न हो जाता है कि भंगी अपवित्र और अस्पृश्य है। स्वाभाविक है कि इस पूर्वाग्रह से विभिन्न समूहों में तनाव बढ़ते हैं।

(३) सांस्कृतिक कारण (Cultural Causes)—संस्कृति, भाषा, साहित्य, रहन-सहन और सोचने-विचारने के प्रतिमानों से व्यक्त होती है। इनमें अन्तर होने से विभिन्न समूहों में सांस्कृतिक अन्तर हो जाता है। इस सांस्कृतिक अन्तर से लोग एक दूसरे से हटने लगते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी संस्कृति को ऊँचा समझता है और दूसरे समूह की संस्कृति को नीचा समझता है। इस प्रकार प्राचीन भारतीय संस्कृति के पुजारी लोग पाश्चात्य संस्कृति के रंग में रंगे लोगों से घृणा करते हैं। बंगाल में इसी सांस्कृतिक अन्तर को लेकर ब्रह्म-समाज का अन्य समूहों से काफी विरोध हो गया था। संस्कृति के किसी भी अंग को लेकर सामूहिक तनाव उत्पन्न हो सकता है। उदाहरण के लिये भारत में हिन्दी भाषा भाषी और अहिन्दी भाषा भाषी समूहों में बंगाली बोलने वाले और आसामी बोलने वालों में और पंजाबी के समर्थकों तथा हिन्दी के प्रचारकों में जबर्दस्त तनाव देखे जा सकते हैं।

(४) धार्मिक कारण (Religious Causes)—विभिन्न धर्मों के मानने वाले ईश्वर, परलोक, स्वर्ग, नर्क, आत्मा आदि के विषय में भिन्न-भिन्न विचारों को मानते हैं। वे अलने-अलग महापुरुषों में विश्वास करते हैं। उनकी पूजा पद्धति और पूजा स्थान भिन्न-भिन्न होते हैं। इस भिन्नता के कारण विभिन्न धर्मों के लोगों में साम्प्रदायिकता फैलती है, क्योंकि कुछ लोग यह समझते हैं कि उनका धर्म ही ठीक है जबकि और सब गलत हैं। इस तरह साम्प्रदायिक विचारों के हिन्दू और मुसलमानों को एक दूसरे की बातें बिल्कुल उल्टी और इसलिये गलत दिखाई पड़ती हैं। इससे साम्प्रदायिकता बढ़ती है और यह सामूहिक तनाव कभी-कभी इतना बढ़ जाता है कि प्रत्यक्ष संघर्ष की नौबत आ पहुँचती है।

(५) आर्थिक कारण (Economic Causes)—भिन्न-भिन्न आर्थिक स्थिति के समूहों में वेश-भूषा, रहन-सहन, खान-पान, तौर-तरीके, रीति-रिवाज और सोचने विचारने के ढंग तक में अन्तर हो जाता है। आधुनिक समाज में धन को अत्यधिक महत्व दिये जाने के कारण सामाजिक स्थिति आर्थिक स्थिति से निश्चित होती है। अतः आर्थिक अन्तर बढ़ने के साथ-साथ सामाजिक दूरी भी बढ़ती है। इसलिये भिन्न-भिन्न वर्गों के लोगों में परस्पर तनाव उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार का तनाव संसार में सब कहीं अमीरों तथा गरीबों, मिल मालिकों और मजदूरों, शोषकों और शोषितों में देखा जा सकता है।

(६) राजनैतिक कारण (Political Causes)—विभिन्न आर्थिक वर्गों में तनाव को बढ़ाने में साम्यवादी दल का जबर्दस्त हाथ है। इसी प्रकार द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम (D. M. K.) नाम की राजनैतिक संस्था ने भारत में उत्तर और दक्षिण के लोगों में क्षेत्रगत तनाव उत्पन्न किया है। मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा तथा अन्य साम्प्रदायिक दलों ने राजनैतिक लक्ष्यों को लेकर हिन्दू और मुस्लिम समूहों में साम्प्रदायिक तनाव बढ़ाया है। इसी प्रकार भाषा के प्रश्न को लेकर कुछ राजनैतिक दल अपना उल्लू सीधा करने के लिये विभिन्न भाषा-भाषी समूहों में तनाव बढ़ाते हैं। भारत में वर्तमान राजनीति

में जातीय संगठनों का बड़ा महत्व है। पिछले दोनों चुनावों में बहुत से लोग जाति के आधार पर निर्वाचित किये गये और चुने जाने के वाद उन्होंने जातिवाद को और भी प्रोत्साहन दिया, क्योंकि ऐसा करने से ही उनकी सीटें कायम रह सकती थीं। इस प्रकार भारत में जातिगत, राजनैतिक और साम्प्रदायिक तथा क्षेत्रगत तनावों के पीछे राजनैतिक दलों का भारी हाथ है।

(७) मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological Causes)—अन्त में सामूहिक तनाव के मूल में सबसे अधिक मुख्य कारण मनोवैज्ञानिक होते हैं। वास्तव में ये ही सामूहिक तनाव के प्रत्यक्ष कारण हैं। भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक अन्तर से सामूहिक तनाव होना आवश्यक नहीं है जब तक कि विभिन्न समूहों के लोगों में परस्पर ईर्ष्या द्वेष की भावनायें, परस्पर विरोधी विश्वास, संघर्ष की अभिवृत्तियाँ और पूर्वाग्रह न उत्पन्न किये जायें। इन मनोवैज्ञानिक तत्वों की उपस्थिति से विभिन्न समूहों में तनाव बढ़ते हैं। आत्म-सम्मान (Self-Respect) की भावना को ठेस पहुँचाने पर हर एक समूह के व्यक्ति चोट पहुँचाने वाले समूह से घृणा करने लगते हैं। आत्म-प्रदर्शन (Self-Expression) की भावना से विभिन्न समूहों में तनातनी बढ़ जाती है। एक दूसरे से भय करने वाले समूह स्वभावतया ही एक दूसरे को हानि पहुँचाने का मौका देखते रहते हैं। इस प्रकार घृणा, द्वेष, भय आदि मनोवैज्ञानिक कारण सामूहिक तनावों के मूल कारण हैं।

सामूहिक तनावों के विकास के विभिन्न कारणों के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सामूहिक तनाव का कोई एक कारण नहीं होता। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में, भिन्न-भिन्न समूहों में, तनाव बढ़ने के भिन्न-भिन्न कारण हो सकते हैं। इस विषय में व्यापक दृष्टिकोण से काम लेने की आवश्यकता है। यह ध्यान रखना जरूरी है कि दो समूहों के तनावों में सदैव एक से अधिक कारण उलझे रहते हैं। अनेक कारण मिलकर ऐसी परिस्थितियाँ बना देते हैं और ऐसे मनोवैज्ञानिक कारक इकट्ठे कर देते हैं कि समूहों में तनाव बढ़ने लगता है।

प्रश्न ४०—सामूहिक तनाव के स्थायित्व के कारण बतलाइये।

जब भिन्न-भिन्न समूहों में आपस में कुछ तनाव बन जाते हैं तो ये तनाव आसानी से दूर नहीं होते। सामूहिक तनाव कुछ विशेष परिस्थितियों में बनते हैं। जब तक ये परिस्थितियाँ बनी रहती हैं तब तक सामूहिक तनाव को दूर नहीं किया जा सकता। इस प्रकार सामूहिक तनाव का स्थायित्व बहुधा बहुत समय तक बना रहता है। उदाहरण के लिये भारतवर्ष में औरंगजेब जैसे अत्याचारी मुस्लिम बादशाह के समय में हिन्दू-मुसलमानों में जो सामूहिक तनाव

तनाव की स्थायित्व की प्रवृत्ति

उत्पन्न हुआ वह आज तक पूरी तरह से दूर नहीं किया जा सका। यद्यपि गांधी जी जैसे नेताओं के निर्देशन में कांग्रेस ने देश से इस तनाव को दूर करने की भरसक कोशिश की परन्तु वह बार-बार भिन्न-भिन्न रूप में सामने आता रहा। इस तनाव के स्थायित्व के परिणामस्वरूप ही देश का विभाजन हुआ, देश में साम्प्रदायिक दंगे हुए और आज भी समय-समय पर साम्प्रदायिक संघर्ष होते ही रहते हैं।

सामूहिक तनाव के स्थायित्व के कारणों के विषय में अनेक मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोग किये। इस सम्बन्ध में शेरिफ (Sherif) महाशय का रॉबर्स केव (Robbers Cave) का अध्ययन उल्लेखनीय है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सामूहिक तनाव क्यों बनते हैं और क्यों बने रहते हैं। शेरिफ, उसकी पत्नी, हारवे, व्हाइट तथा हुड आदि मनोवैज्ञानिकों के निर्देशन में सन् १९५४ में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका (U. S. A.) में ओखला होमा नामक नगर से १५० मील की दूरी पर रावर्स केव स्टेट पार्क में सामूहिक तनाव के विषय में एक प्रयोग किया गया।

रावर्स केव का अध्ययन

इस प्रयोग में २२ बच्चों को इस स्थान पर रखा गया। इन सब बच्चों की आयु ११ वर्ष की थी। उनको दो समूहों में बाँट दिया गया। इन दोनों समूहों को अलग-अलग बसों में रावर्स केव स्टेट पार्क ले जाया गया। दोनों समूहों का आपस में कोई सम्पर्क नहीं होने दिया गया उनको अलग-अलग डेरों में रखा गया। यहाँ तक कि उनको काफी दिन तक यह भी नहीं मालूम हुआ कि उनके अलावा दूसरा कोई समूह भी वहाँ आया हुआ है। ऐसा इसलिये किया गया था कि जिससे दोनों समूहों में अलग-अलग सामूहिक जीवन का विकास हो सके, उनमें सब बच्चों में परस्पर सम्बन्ध स्थापित हो सके, उनमें कुछ मान्यताओं का विकास हो सके, उनमें भिन्न-भिन्न सदस्यों की स्थिति निश्चित हो जाय और उनके नेताओं का विकास हो और यह हुआ भी। भिन्न-भिन्न समूहों को ऐसे काम में लगाया गया जिसमें कि सामूहिक प्रयत्न करना पड़े। इससे शीघ्र ही उनमें सामूहिक जीवन का विकास हुआ। स्वभावतया कुछ नेता बन गये। हर एक सदस्य की स्थिति निश्चित हो गई और सामूहिक जीवन में उसके कार्य के अनुसार उसकी प्रतिष्ठा भी निश्चित हो गई। समूहों के नाम भी रख दिये गये। एक समूह का नाम ईगल्स और दूसरे का नाम रैटलर्स पड़ा। दोनों ने अपने-अपने झण्डों पर अपने नाम लिख दिये।

(१) सामूहिक जीवन का विकास

सामूहिक जीवन के विकास के बाद अब सामूहिक तनाव की नौबत आई। अब दोनों समूहों को एक दूसरे से परिचित कराया गया और कुछ प्रतियोगिताओं की घोषणा की गई। पहली बार रस्सा खींचने की प्रतियोगिता हुई जिसमें रैटलर्स ने ईगल्स को हरा दिया। अब क्या था? दोनों दलों में तनाव पैदा हो गया। खेल खत्म होने के बाद ईगल्स ने मैदान में लहराता हुआ रैटलर्स का झण्डा

(२) सामूहिक तनावों का विकास

जला डाला। दूसरे दिन सवेरे जब रैंटलर्स ने अपना झंडा जला हुआ देखा और उन्हें यह मालूम हुआ कि ईगल्स ने झंडा जलाया है तो उन्होंने तुरन्त ईगल्स का झंडा जला दिया। दोनों समूहों ने एक दूसरे को गालियाँ देनी शुरू कीं। देखते ही देखते मारपीट होने लगी और सामूहिक तनाव गम्भीर स्थिति पर पहुँच गया। ईगल्स पर तो इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अयोग्य जानकर अपने नेता को भी बदल दिया समूह के सदस्यों में हार के लिये एक दूसरे पर दोषारोपण भी हुआ। परन्तु जहाँ तक दूसरे समूह का सामना करने का प्रश्न था उनमें एकता और दृढ़ता और भी बढ़ गई। इस समय मनोवैज्ञानिकों ने दोनों समूहों के एक दूसरे के बारे में मूल्यांकन प्राप्त किये। कुछ ऐसी रूढ़ युक्तियों (Stereotypes) का प्रयोग किया गया जो कि संघर्ष और तनाव की स्थिति में ही पाये जाते हैं। प्रशंसात्मक और निन्दासूचक दोनों तरह की रूढ़ युक्तियाँ चुनी गईं। दोनों में तीन-तीन रूढ़ि प्रत्यय थे। प्रशंसात्मक प्रत्ययों में ये तीन प्रत्यय थे, वीर (Brave), दृढ़ (Tough) और मैत्रीपूर्ण (Friendly)। हर एक समूह ने इन रूढ़ि प्रत्ययों को अपने लिये ही इस्तेमाल किया। हर एक ने अपने दल के सदस्यों को वीर, दृढ़ और मैत्री पूर्ण बतलाया। निन्दा सूचक प्रत्यय थे, नीच (Sneaky), सुस्त (Lazy) और दुर्गन्धयुक्त (Stinks)। हर एक दल ने इन प्रत्ययों को दूसरे दल के लिये प्रयोग किया। हर एक ने दूसरे दल के सदस्यों को नीच, सुस्त और दुर्गन्धयुक्त बतलाया। इससे यह स्पष्ट होता है कि किस तरह तनाव की स्थिति में हरएक समूह अपने सदस्यों के लिये प्रशंसात्मक और विरोधी पक्ष के समूहों के लिये निन्दासूचक रूढ़ि प्रत्ययों का इस्तेमाल करता है। भारत में साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के हिन्दू लोग, मुसलमानों को 'मलेच्छ' और मुसलमान हिन्दुओं को 'काफिर' कहते हैं। दोनों अपने ही तौर तरीकों, चरित्र, आचार विचार को ऊँचा और ठीक मानते हैं तथा दूसरे को नीचा और गलत मानते हैं। केवल विभिन्न धर्मों में ही नहीं वल्कि भारत में विभिन्न जातियों में भी इस तरह का तनाव देखा जा सकता है। ब्राह्मण तो शूद्रों को अपवित्र समझते ही हैं परन्तु कहीं-कहीं शूद्र भी ब्राह्मण को अपवित्र समझते हैं। दक्षिण के गाँव में अपवित्र समझे जाने के कारण भंगियों को गाँव से बाहर रहना पड़ता है। परन्तु कहीं-कहीं पर ऐसा देखा गया है कि यदि ब्राह्मण भंगियों की वस्ती में पहुँच जाता है तो उसको झाड़ुओं से पीटा जाता है और उसकी छुई हुई भूमि को गोबर से लीपा जाता है।

प्रयोग के अभी तक विकास में दो स्थितियाँ दिखाई पड़ती हैं, एक तो सामूहिक जीवन का विकास और दूसरे सामूहिक तनावों का विकास। अब सामूहिक तनावों के स्थायित्व की बारी आती है। दोनों समूहों में तनाव तो देखते ही देखते उत्पन्न हो गया और बढ़ गया परन्तु अब उसको दूर करना टेढ़ी खीर थी। इस दिशा में तरह-तरह से कोशिशें की गईं। दोनों समूह के सदस्यों को

सामूहिक तनावों का स्थायित्व

एक साथ बैठा कर भोजन कराया गया, एक साथ सिनेमा दिखाया गया तथा अन्य कई कार्य भी साथ-साथ कराये गये। परन्तु इससे सामूहिक तनाव के स्थायित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, उल्टे वह बढ़ने लगा। जब-जब दोनों दलों के मिलने का मौका आता तब-तब उनमें कहा सुनी हो जाती। इससे यह स्पष्ट हुआ कि सामूहिक तनाव एक बार उत्पन्न हो जाने के बाद उसमें स्थायित्व की प्रवृत्ति होती है।

परन्तु प्रयोग यहीं समाप्त नहीं हो गया क्योंकि ऐसा नहीं है कि सामूहिक तनावों को दूर किया ही न जा सकता हो। सामूहिक तनाव दूर करने के लिये कुछ ऐसे लक्ष्य सामने लाये गये जिनको प्राप्त करने लिये दोनों दलों का सहयोग अत्यन्त आवश्यक था। सबसे पहले पानी की जिस टंकी से बच्चों को पानी मिलता था उसकी टोंटी का मुँह बोरे के टुकड़ों से बन्द कर दिया गया और बच्चों से यह कह दिया गया कि शायद पाइप में कहीं छेद हो जाने की वजह से पानी नहीं आ रहा है। पानी की बड़ी जरूरत थी। दोनों ही समूह के सदस्य प्यासे थे। इसीलिये एक व्यापक सामान्य लक्ष्य बन गया। दोनों के ही सामने एक ही समस्या थी कि किसी तरह पानी मिलना चाहिये। नतीजा यह हुआ कि दोनों समूहों ने सहयोग किया। मनोवैज्ञानिकों ने टंकी पर चढ़ने की सीढ़ी भी हटा दी थी। दोनों समूह उसको ढूँढ लाये और दोनों के सदस्य टंकी पर चढ़कर देखने लगे। टंकी पानी से भरी हुई दिखाई पड़ी। इससे यह निष्कर्ष निकला कि टोंटी में ही कोई खराबी है। अब क्या था। दोनों समूहों के सदस्य अपने-अपने चाकू लेकर टोंटी का मुँह साफ करने में जुट गये। शीघ्र ही टोंटी साफ हो गई और पानी आने लगा। इससे सभी बड़े प्रसन्न हुये और तनाव कुछ कम हुआ। परन्तु एक घण्टे बाद जब भोजन के समय दोनों समूहों के मिलने का समय आया तो उनमें फिर कहा सुनी हो गई। स्पष्ट है कि थोड़े बहुत सहयोग से सामूहिक तनाव के स्थायित्व में अधिक कमी नहीं आती।

सामूहिक तनावों के निवारण के लिये सहयोग

अब एक दूसरी तरकीब निकाली गई। बाजार से सिनेमा की एक रील किराये पर लाने की योजना बनाई गई। मनोवैज्ञानिकों ने रील का आधा किराया अपनी ओर से देने का वायदा किया जिससे कि बच्चों को रील लाने में प्रेरणा मिले। कोई भी एक समूह बाकी आधा किराया नहीं दे सकता था। जाहिर था कि दोनों को सहयोग करने की जरूरत थी। सहयोग हुआ, दोनों समूहों ने चन्दा दिया, पैसा इकट्ठा हुआ, रील आई और शाम को दिखाई गई। परन्तु जब रील देखने के लिये दोनों समूह इकट्ठे हुये तो वे अलग-अलग बैंचों पर बैठे। इससे स्पष्ट हुआ कि तनाव का स्थायित्व अब भी बना हुआ था यद्यपि अब संघर्ष की स्थिति नहीं थी।

सहयोग से तनाव में कमी

मनोवैज्ञानिकों ने और कोशिश की। राबर्स केव से साठ मील दूर एक ऊँचे पहाड़ी प्रदेश में एक झील थी। दोनों दलों को इस झील के किनारे कैम्प के लिये

सामान्य लक्ष्यों के लिये सहयोग से तनाव दूर होता है

ले जाया गया। दोनों अलग-अलग ट्रकों में पहुँचाये गये, वहाँ खाना भी अलग-अलग बनवाया गया। बर्तन एक ही स्थान पर रखे गये जहाँ से दोनों समूहों के सदस्यों ने अपने-अपने बर्तन उठा लिये। परन्तु अब समस्या थी बाजार से सामान लाने की। सामान ट्रक के द्वारा ही आ सकता था परन्तु ड्राइवर के लाख कोशिश करने पर भी ट्रक स्टार्ट नहीं हो सकी। ट्रक का मुँह चढ़ाई की ओर होने के कारण धक्के देने से भी काम नहीं चल सकता था। एक ही उपाय था कि ट्रक पर पड़े रस्से से ट्रक को बाँधकर खींचा जाय और इस काम में बीस से कम लोगों से बात नहीं बन सकती थी। चारा ही क्या था। सहयोग करना ही पड़ा। ट्रक में सामने रस्से को फँसा दिया गया और रस्से के दोनों छोरों को एक-एक समूह ने पकड़ लिया। दोनों समूह मिलकर खींचने लगे। ट्रक चल पड़ा। सभी लोग बड़े प्रसन्न हुए। सहयोग से खाने का सामान आया। सामान आने पर सबने मिलकर खाना बनाना शुरू कर दिया। सहयोग और भी बढ़ गया। इसके बाद एक बार फिर ट्रक खींचने के लिये सामूहिक प्रयत्न करना पड़ा। इस बार और भी अधिक सहयोग दिखाई पड़ा। इस बार अलग-अलग दलों के सदस्यों ने अलग-अलग तरफ से रस्सों को नहीं पकड़ा बल्कि दोनों दलों ने मिलकर दोनों ही तरफ से जोर लगाया। इससे दोनों समूहों के सदस्यों में एक दूसरे समूह के सदस्यों से मेल जोल बढ़ा यहाँ तक कि बाद में जब उनसे अपना मित्र चुनने को कहा गया तो हर एक समूह के सदस्य ने भिन्न समूह से अपना मित्र चुना। अब सामूहिक तनाव दूर हो चुका था।

उपरोक्त प्रयोग के विस्तृत विवरण से स्पष्ट है कि यद्यपि सामूहिक तनाव में स्थायित्व की प्रवृत्ति होती है परन्तु कुछ व्यापक सामान्य लक्ष्य प्राप्त करने के लिये सहयोग करने के बार-बार अवसर आने पर यह सामूहिक तनाव दूर किया जा सकता है।

सामूहिक तनाव के स्थायित्व को बनाये रखने वाली स्थितियों में मुख्य निम्नखिखित हैं :—

सामूहिक तनाव के स्थायित्व के कारण

(१) प्रतियोगिता (Competition)—जैसा कि रावर्स केव के उदाहरण से स्पष्ट है प्रतियोगिता से सामूहिक तनाव बढ़ता है। विभिन्न खेलों के मैचों में इस तरह का सामूहिक तनाव बराबर देखा जा सकता है। राजनैतिक क्षेत्र में चुनाव के दिनों में चुनाव जीतने की प्रतियोगिता के कारण विभिन्न दलों के अनुयायियों में काफी तनाव बढ़ जाता है और कभी-कभी तो प्रत्यक्ष संघर्ष की भी नौबत आ जाती है। प्रतियोगिता से तनाव उत्पन्न होता है और प्रतियोगिता बने रहने से बढ़ता है। इस प्रकार प्रतियोगिता तनाव को स्थायित्व प्रदान करती है।

जिन समूहों में बराबर प्रतियोगिता बनी रहती है उनमें तनाव भी बराबर बना रहता है।

(२) सामान्य लक्ष्य का अभाव (Absense of Common Goal)—रावर्स केव के उदाहरण में यह दिखाई पड़ता है कि जब विरोधी समूहों के सामने सामान्य लक्ष्य रखे गये तो उनमें तनाव धीरे-धीरे दूर हो गया क्योंकि सामान्य लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सहयोग आवश्यक था। इन सामान्य लक्ष्यों के अभाव में तनाव का स्थायित्व बना रहता है। जब तक हर एक समूह अपने सामने अलग-अलग लक्ष्य रखता है और उनके सहयोग के अवसर नहीं आते तब तक उनमें तनाव का स्थायित्व बना ही रहता है। भारत में साम्प्रदायिक, जातिगत, क्षेत्रगत तथा अन्य प्रकार के तनावों का स्थायित्व बना रहने का मुख्य कारण यह है कि उनके सामने ऐसे लक्ष्य नहीं है जिनको प्राप्त करने के लिये सबका सहयोग जरूरी हो।

(३) सम्पर्क का अभाव (Absense of Contact)—जैसा कि रावर्स केव के उदाहरण से स्पष्ट है तनाव उत्पन्न करने के लिए दोनों दलों को एक दूसरे के सम्पर्क में न आने दिया गया। यह एक साधारण बात है कि मिलने-जुलने से तनाव कम होता है और सहयोग बढ़ता है। भारत में जातिवाद दूर करने के लिये यह एक सामान्य सुझाव दिया जाता है कि विभिन्न जातियों के मिलने-जुलने के अवसर बढ़ने चाहियें। सम्पर्क न होने पर तनाव बढ़ना स्वाभाविक है।

(४) परस्पर विरोधी मान्यतायें अथवा मूल्य—हर एक समूह में कुछ मूल्य (Values) अथवा मान्यतायें प्रचलित होती हैं जिनमें समूह के सदस्यों का आचार और व्यवहार निर्धारित होता है। यदि दो समूहों में मूल्य और मान्यतायें एक दूसरे के विरुद्ध होती हैं तो उनमें तनाव बढ़ता है। उदाहरण के लिये भारत में हिन्दू मुस्लिम समूहों में तनाव बढ़ने का मुख्य कारण यही है कि दोनों समूहों में भिन्न-भिन्न मूल्य माने जाते हैं।

(५) अज्ञान (Ignorance)—भिन्न-भिन्न समूहों में तनाव बने रहने का एक मुख्य कारण उनका एक दूसरे के बारे में भारी अज्ञान है। सामूहिक तनाव पूर्वाग्रहों पर आधारित होते हैं। एक दूसरे के सम्पर्क में आये बगैर लोग एक दूसरे के बारे में भिन्न-भिन्न धारणायें बना लेते हैं। आमतौर से साम्प्रदायिक द्वेष उन लोगों में अधिक पाया जाता है जो दूसरे सम्प्रदाय के बारे में कुछ नहीं जानते या जो कुछ भी जानते हैं गलत जानते हैं। यह अज्ञान उनके परस्पर भय और घृणा के मूल में मुख्य कारण है। भारत में साम्प्रदायिक दंगों में भाग लेने वाले लोगों में अधिकतर अशिक्षित या कम शिक्षित लोग थे। धर्म के नाम पर अधिकतर ऐसे ही लोग लड़ते हैं जो दूसरे धर्मों के बारे में बहुत कम जानते हैं। दूसरे समूह के सदस्यों में मेल-जोल बढ़ने से और उनके बारे में जानकारी बढ़ने से सामूहिक तनाव कम होते हैं।

(६) दोषपूर्ण समायोजन (Maladjustment)—समाज में सभी लोग अपनी परिस्थितियों से और समाज के अन्य लोगों से ठीक तरह से समायोजन (Adjust-

ment) नहीं कर पाते। अनेक कारणों से उनमें तरह-तरह की मानसिक ग्रन्थियाँ बन जाती हैं। निराशा और असन्तोष बढ़ता जाता है। वे अपनी असामाजिक प्रवृत्तियों का भी ठीक प्रकार शमन नहीं कर पाते। इस तरह के लोगों में दूसरे समूहों के सदस्यों के प्रति तनाव अधिक दिखाई पड़ता है क्योंकि घृणा द्वेष, भय आदि की जिन प्रवृत्तियों को वे किसी और तरफ से नहीं निकाल पाते उनको उन्हें दूसरे समूहों के विरुद्ध निकालने का अवसर मिल जाता है।

☆

प्रश्न ४१—सामूहिक तनाव के निवारण की मुख्य-मुख्य विधियाँ बतलाइये एवं भारतीय परिस्थितियों में उदाहरण दीजिये।

स्थूल रूप से सामूहिक तनाव दूर करने के लिये उन सब कारणों को दूर करना आवश्यक है जो तनाव उत्पन्न करते हैं। तनाव उत्पन्न करने वाले ये कारण सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक अनेक प्रकार के होते हैं। अतः इनको दूर करने के लिये सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक सभी तरह के उपाय अपनाने की आवश्यकता है। मूल बात यह है विभिन्न समूहों के सदस्यों में से पूर्व आग्रह दूर किये जायें। उनको यह मालूम हो जाय कि दूसरे समूह के सदस्य भी उनकी तरह मनुष्य हैं। वे भी सहयोग का महत्व समझते हैं। उनके जीवन में भी कठिनाइयाँ हैं। वे भी दूसरों से मेलजोल बढ़ाना चाहते हैं। मनुष्य मनुष्य की एकता के ज्ञान और अनुभूति से विभिन्न समूहों के सामूहिक तनाव दूर किये जा सकते हैं। यहाँ पर कुछ मुख्य-मुख्य उपायों का वर्णन किया जायेगा।

(सामूहिक तनाव दूर करने के लिये तनाव के सभी कारण दूर करना जरूरी है।)

(१) शिक्षा

सामूहिक तनावों के मूल में सबसे बड़ा कारण अज्ञान है। यह अज्ञान दो रूप में होता है। इसका एक रूप अशिक्षा है। अशिक्षित व्यक्तियों में सामूहिक तनाव शीघ्र बढ़ते हैं और देर तक बने रहते हैं। अज्ञान का दूसरा रूप भिन्न समूहों के बारे में जानकारी का अभाव है। इससे लोग दूसरे समूहों के सदस्यों के विषय में तरह-तरह के भ्रामक विचार लिये बैठे रहते हैं। मुसलमान समझते हैं कि हिन्दू उसको दबाना चाहते हैं। हिन्दू समझते हैं कि मुसलमानों को गुन्डागर्दी के अलावा कुछ काम नहीं है। गोरे लोग नीग्रो लोग को नीच, गन्दे और संकीर्ण बुद्धि वाले समझते हैं। नीग्रो लोग भी गोरे लोगों के विषय में इसी प्रकार के विचार रखते हैं। इस परस्पर अज्ञान से तनाव बढ़ता है। अतः सामूहिक तनाव के निवारण की सबसे मुख्य विधि ज्ञान का प्रसार है। दूसरे शब्दों में इसको शिक्षा कहा जा सकता है। यह शिक्षा दोनों प्रकार की होनी चाहिये। एक तो देश में शिक्षा के व्यापक प्रसार के द्वारा लोगों के व्यक्तित्व का विकास करना जरूरी है। इससे उसमें उदारता आयेगी। शिक्षा

संस्थाओं में जाति, धर्म, सम्प्रदाय, क्षेत्र, वर्ग अथवा अन्य किसी भी आधार पर दाखिलों में, छात्र वृत्तियों में या नियुक्तियों में भेद नहीं किया जाना चाहिये। खेद है कि भारत में इस बात पर ध्यान नहीं रखा जाता। डॉ० एम० एन० श्रीनिवास ने मैसूर राज्य में जातिवाद पर प्रकाश डालते हुये लिखा है और आजकल मैसूर राज्य में इस सिद्धान्त (जाति-प्रथा के सिद्धान्त) का पालन केवल प्रत्येक नियुक्ति के सम्बन्ध में ही नहीं किया जाता बल्कि स्कूलों और कालिजों में सीटों का बंटवारा भी इसी आधार पर होता है। देश से जातिवाद को दूर करने के लिये विद्यार्थियों में जाति सूचक शब्दों का प्रयोग ही निकाल दिया जाना चाहिये। शिक्षा के द्वारा लोगों में उदारता उत्पन्न करने की कोशिश की जानी चाहिये। खेल-कूद तथा पाठ्यक्रमेतर (Extra Curricular) सांस्कृतिक कार्यक्रमों के द्वारा विद्यार्थियों की विभिन्न प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त होने का अवसर दिया जाना चाहिये। विद्यार्थियों को प्रतियोगिता के साथ-साथ सहयोग में भाग लेने का भी अवसर मिलना चाहिये। इन सब बातों के अलावा विद्यार्थियों को विभिन्न समूहों के आचार-विचार, रीति-रिवाज आदि के बारे में भी जानकारी दी जानी चाहिये जिससे कि उनके मन में भ्रामक विचार और पूर्व आग्रह न बन सकें। भारतीय विद्यार्थियों को देश के भिन्न-भिन्न भागों में रहने वाले लोगों के बारे में ज्ञान दिया जाना चाहिये।

शिक्षा में केवल स्कूल और कालिज ही भाग नहीं लेते बल्कि इस दिशा में पत्र पत्रिकायें भी महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। अनेक पत्र पत्रिकायें भ्रामक विचार फैलाकर सामूहिक तनावों को बढ़ाती रहती हैं। इसके अलावा बहुत-सा ऐसा साहित्य भी होता है जो कि सामूहिक तनावों को बढ़ाता है। कुछ समूह ऐसे पत्र पत्रिकायें निकालते हैं जिनमें उनके समूहों की प्रशंसा और अन्य समूहों की निन्दा भरी होती है। इस तरह के साहित्य की रोकथाम करने की जरूरत है। साम्प्रदायिक पत्र पत्रिकाओं पर दृढ़ अंकुश रहना चाहिये। दूसरी ओर देश में स्वस्थ साहित्य तैयार किया जाना चाहिये। ऐसे पत्र पत्रिकाओं को प्रोत्साहन मिलना चाहिये जो कि सामूहिक तनावों को दूर करते हैं और समाज में उदारता, सहयोग और मैत्री बढ़ाते हैं।

(२) स्वस्थ साहित्य का निर्माण

वास्तव में सामूहिक तनाव दूर करने के लिये स्वस्थ जनमत तैयार करने की जरूरत है। इसके लिये पत्र पत्रिकाओं के अलावा सिनेमा, रेडियो और भाषणों के द्वारा ऐसा प्रचार होना चाहिये जिससे सामूहिक तनाव कम हो। रेडियो में इस तरह के नाटक तथा अन्य कार्यक्रम प्रसारित किये जायें जिनसे जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद और साम्प्रदायिकता कम होकर राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार हो। प्रचार के द्वारा लोगों में से भ्रामक विचारों को भी खत्म किया जा सकता है।

(३) स्वस्थ जनमत तैयार करना

विषम समायोजन सामूहिक तनावों का एक मुख्य कारण है। जो लोग अपनी परिस्थितियों से ठीक प्रकार से समायोजन नहीं कर सकते उनके अन्दर द्वेष, भय, विरोध, घृणा आदि की भावनायें घर कर लेती हैं और वे दूसरे समूहों के विरुद्ध उनको निकालने का अवसर खोजते रहते हैं। सामूहिक तनाव भी एक प्रकार का विषम समायोजन है। अतः उसको दूर करने का एक उपाय विभिन्न समूहों में सामाजिक समायोजन बढ़ाना है।

(४) सामाजिक समायोजन बढ़ाना

विभिन्न समूहों में सामाजिक समायोजन बढ़ाने के लिये उनमें सामाजिक दूरी कम की जानी चाहिये। उनका परस्पर सम्पर्क बढ़ना चाहिये। विभिन्न जातियों के सदस्यों के परस्पर सम्पर्क और मेल-जोल से सामूहिक तनाव दूर किये जा सकते हैं। भारत में अस्पृश्यता को दूर करने का सबसे मुख्य उपाय सवर्ण हिन्दुओं और अस्पृश्यों का सम्पर्क बढ़ाया जाना है। इससे सवर्ण हिन्दुओं के हृदय से अस्पृश्यों के लिये घृणा और अछूतों में से हीनता की भावना दूर हो जायेगी। देश से जातिवाद दूर करने के लिये अन्तर्जातीय विवाहों (Intercaste Marriages) के द्वारा विभिन्न जातियों में परस्पर घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित होने से बड़ा लाभ हो सकता है।

(५) सामाजिक दूरी में कमी

समूह व्यक्तियों से मिलकर बनते हैं। सामूहिक असन्तुलन के मूल में व्यक्तियों का असन्तुलन होता है। अतः सामूहिक तनाव को दूर करने का एक उपाय लोगों के व्यक्तित्व का सन्तुलित विकास करना है। यह काम शिक्षा संस्थाओं में ही शुरू होना चाहिये। शिक्षा संस्थाओं में इस काम में मनोवैज्ञानिकों की भी सहायता ली जा सकती है। शिक्षा संस्थाओं के अलावा व्यक्तित्व के विकास में परिवार का बड़ा महत्व है। सामाजिक संस्थाओं के सुधार से भी व्यक्तित्व के विकास पर प्रभाव पड़ता है। संक्षेप में, सभी प्रकार के सम्भव उपायों से व्यक्तित्व को सन्तुलित बनाने के प्रयासों से सामूहिक तनाव कम किया जा सकता है।

(६) व्यक्तित्व का सन्तुलित विकास

समाज में संघर्ष और सहयोग दोनों में ही युवकों का बड़ा महत्व है। सामूहिक तनाव दूर करने के लिये युवक-समाज में विशेष प्रयास करने की जरूरत है। इसके लिए ऐसे युवक संगठन बनाये जाने चाहियें जो राष्ट्रीय स्तर पर संगठित किये गये हों और जिनमें सम्प्रदाय, भाषा, क्षेत्र, जाति आदि का विचार न रखा गया हो। युवकों के इस प्रकार के संगठन का एक उदाहरण भारतीय विश्वविद्यालयों में प्रतिवर्ष मनाया जाने वाला युवक समारोह (Youth Festival) है। इस तरह के युवक समारोह हर एक गाँव और शहर में मनाये जा सकते हैं। भारतीय गाँवों में सामुदायिक जीवन के विकास के लिये ग्रामीण युवकों का राष्ट्रीय स्तर पर संगठन

(७) युवकों का संगठन

किया जाना बहुत जरूरी है। इसके बिना गाँवों से सामूहिक तनाव दूर करके सहयोग की स्थापना करना असम्भव है।

सामूहिक तनाव के मूल में एक कारण व्यापक लक्ष्यों का अभाव भी है। बहुधा हर एक समूह अपने ही स्वार्थों को पूरा करने की कोशिश में लगा रहता है।

(८) राष्ट्रीय लक्ष्यों का प्रचार

हर एक धर्म, सम्प्रदाय और जाति अपने ही सदस्यों को फायदा पहुँचाने के उपाय निकालने में लगे रहते हैं। इससे विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों और जातियों में तनाव बढ़ना स्वाभाविक है। यदि इन सबके सामने कुछ राष्ट्रीय लक्ष्य रखे जायें, राष्ट्रीय सुरक्षा और राष्ट्रोत्थान के कुछ कार्यक्रम रखे जायें तो इन व्यापक लक्ष्यों के प्रभाव से सामूहिक तनाव अवश्य कम होंगे।

सामूहिक तनावों का एक कारण आर्थिक विषमता भी है। आर्थिक विषमता से आर्थिक वर्ग बनते हैं जिनमें ऊँचे वर्ग नीचे वर्गों का शोषण करते हैं। इससे परस्पर

(९) आर्थिक विषमता दूर करना

कटुता बढ़ती है और वर्ग संघर्ष की नौबत आ पहुँचती है। इसके अलावा आर्थिक असुरक्षा से असन्तोष फैलता है और तनाव बढ़ते हैं। अतः सामूहिक तनाव दूर करने के लिये आर्थिक समानता और आर्थिक सुरक्षा की बड़ी जरूरत है। इस बात को साम्यवादी और गैर-साम्यवादी सभी विचारक मानते हैं।

बहुत से सामाजिक कारण विभिन्न समूहों में तनाव बनाये रखते हैं। उदाहरण के लिये हिन्दू समाज में अन्तर्जातीय विवाहों का निषेध और अस्पृश्यता का

(१०) सामाजिक सुधार

विचार जातिवाद को बनाये रखने में एक मुख्य कारण है। जातिवाद दूर करने के लिये इन दोनों ही सामाजिक रोगों को दूर करने की जरूरत है।

अन्त में सामूहिक तनावों को दूर करने के लिये वैधानिक उपाय भी अपनाये जाने चाहियें। कभी-कभी कानून के द्वारा भी लोगों पर दबाव डालने की जरूरत

(११) वैधानिक उपाय

होती है। वैधानिक उपायों से साम्प्रदायिक गति-विधियों पर रोक लगाई जा सकती है। भारतवर्ष में अस्पृश्यता को अपराध घोषित कर दिये जाने के बाद से इस दिशा में बड़ा सुधार हुआ है। इसी प्रकार जातिवाद को भी अपराध घोषित किया जा सकता है और यदि ऐसा न भी किया जाय तो भी जातिवाद के कारण भ्रष्टाचार दिखाई पड़ने पर उसके विरुद्ध कड़ी कार्यवाही की जाने से अच्छे उदाहरण स्थापित किये जा सकते हैं। ऐसी पत्र-पत्रिकाओं पर कानूनी रोकथाम की जा सकती है जो सामूहिक तनाव बढ़ाते हैं।

सामूहिक तनाव एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। उसको दूर करने के उपरोक्त उपाय तभी सफल हो सकते हैं जबकि मनोवैज्ञानिक पहलू पर विशेष ध्यान दिया

(१२) सामूहिक तनावों के विशेष अध्ययन

जाये । इस विषय में मनोवैज्ञानिकों द्वारा विशेष अध्ययन कराये जा सकते हैं। उदाहरण के लिये गार्डनर मर्फी के निर्देशन में भारतवर्ष में साम्प्रदायिक तनावों के सम्बन्ध में कुछ अनुसन्धान किये गये हैं। इसी प्रकार जातिगत, भाषा पर आधारित, क्षेत्रगत तथा अन्य प्रकार के तनावों के विषय में विशेष मनोवैज्ञानिक अनुसंधान कराये जा सकते हैं जिससे उनको दूर करने के लिये विशिष्ट विधियाँ निकाली जा सकें। इन विधियों के निकाले जाने के बाद सरकार द्वारा दृढ़ कदम उठाये जाने और जनता द्वारा सहयोग करने की जरूरत है।

प्रश्न ४२—सामूहिक तनाव का विकास किस प्रकार होता है ? जातिवाद (Casteism) तथा सम्प्रदायवाद (Communalism) के उदाहरण देकर अपने उत्तर को स्पष्ट कीजिए। (यू० पी० बोर्ड १९६३)

नोट—सामूहिक तनाव के विकास के लिये प्रश्नोत्तर संख्या ३९ देखिये।

जातिवाद
(Casteism)

जातिवाद क्या है ?

जातिवाद जाति के प्रति एकांगी निष्ठा है। कोई भी विचारधारा जब वाद (Ism) का रूप धारण कर लेती है तब उसकी प्रकृति कठोर और एकांगी हो जाती है। समाज में एक विशिष्ट स्थिति के परिचायक शब्द के रूप में जाति की भावना जातिवाद नहीं है। जाति की भावना तभी जातिवाद बनती है जबकि उसमें और जातियों से छोटा-बड़ा होने तथा उनके विरुद्ध अपनी ही जाति के स्वार्थों की चिन्ता करने की प्रवृत्ति जुड़ जाती है। इस प्रकार जातिवाद के कारण एक जाति के सदस्य अन्य जातियों के हितों पर कुठाराघात करने से भी नहीं हिचकते।

जातिवाद के स्वरूप तथा प्रकृति को और भी स्पष्ट करने के लिये उसकी परिभाषा करनी आवश्यक है। कुछ मुख्य परिभाषायें निम्नलिखित हैं :—

जातिवाद की परिभाषा

(१) उपजातिवाद के प्रति निष्ठा—श्री के० एम० पणिक्कर (K. M. Panikkar) के अनुसार, "राजनीति की भाषा में उपजाति के प्रति निष्ठा का भाव ही जातिवाद है" इस प्रकार जातिवाद के ही कारण अग्रवाल अग्रवालों को और रस्तोगी रस्तोगियों को लाभ पहुँचाने की चिन्ता में रहते हैं चाहे इससे वणिक जाति के अन्य सदस्यों को हानि ही क्यों न उठानी पड़े।

(२) जाति के प्रति निष्ठा—परन्तु जातिवाद जाति के प्रति निष्ठा के रूप में भी दिखलाई पड़ता है। डॉ० एन० प्रसाद के शब्दों में, "जातिवाद राजनीति में

रूपान्तरित जाति के प्रति निष्ठा है।"[1] इस प्रकार 'ब्राह्मणवाद' और 'कायस्थवाद' आदि जातिवादों के रूपों में जाति को राजनैतिक क्षेत्र में ला घसीटा गया है।

(३) अन्ध समूह भक्ति— इस प्रकार जातिवाद अन्ध समूह भक्ति है। इसमें उचित अनुचित, न्याय अन्याय का विचार छोड़कर अपनी ही जाति की स्वार्थ सिद्धि की ओर ध्यान दिया जाता है। काका कालेलकर के शब्दों में, "अतः जातिवाद एक अबाधित, अन्ध और सर्वोच्च समूह भक्ति है जो कि न्याय, औचित्य, समानता और विश्व-बन्धुत्व की उपेक्षा करती है।"[2]

इस प्रकार संक्षेप में "जातिवाद जाति अथवा उपजाति के प्रति एक अन्ध समूह भक्ति है जो कि अन्य जातियों के हितों की कोई परवाह नहीं करती और अपने समूह के सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक तथा अन्य हितों को प्राप्त करने की ही चेष्टा करती है।"[3] जातिवाद की इस परिभाषा में जातिवाद की उपरोक्त सभी परिभाषायें सम्मिलित हैं तथा जातिवाद के राजनैतिक पक्ष को और भी अधिक स्पष्ट कर दिया गया है।

जातिवाद के विकास के कारण
(Causes of the Development of Casteism)

आजकल भारत में जातिवाद जोर शोर से फैला हुआ है। भारत में जातिवाद के इतने जोर के बहुत से कारण हैं। उनमें कुछ मुख्य निम्नलिखित हैं :—

जातिवाद का सबसे बड़ा कारण यह है कि प्रत्येक जाति के लोग अपनी ही जाति की प्रतिष्ठा प्रतिक्षण बढ़ाना चाहते हैं और ऐसा करने में गिरे से गिरे उपाय अपनाने को भी बुरा नहीं समझते। परन्तु जाति की प्रतिष्ठा इसी आधार पर स्थिर रह सकती है कि प्रत्येक सुविधा से लाभ उठाकर सदस्यों की सामाजिक स्थिति को ऊँचा उठाया जाय। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये हर एक जाति अपने सदस्यों को अधिक सुविधा देकर उनकी सामाजिक स्थिति को ऊँचा उठाने की चेष्टा करती है। इसी से जातिवाद बढ़ता है।

(१) जातीय प्रतिष्ठा की एकांगी भावना

जातिवाद के विकास का दूसरा कारण विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्ध (Marriage Restrictions) हैं। जाति-प्रथा के अन्तर्गत विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्धों के

---

1. "Casteism is loyalty to the caste translated into Politics."

2. "Casteism therefore, is an over riding, blind and supreme group loyalty that ignores the healthy social standards of justice, fair play, equity and universal brotherhood."

3. "Casteism is a blind group loyalty towards one's own caste or sub-caste which does not care for the interests of other castes and seeks to realise the social, economic political and other interests of its own group." —R. N. Sharma.

(२) विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्ध

कारण प्रत्येक जाति का एक वैवाहिक समूह बन जाता है जिसमें प्रत्येक सदस्य अपने को किसी न किसी रूप में सम्बन्धित समझता है और इसलिये सभी एक दूसरे के हित का अधिक ध्यान रखते हैं। इससे जातिवाद बढ़ता है।

(३) नागरीकरण

नागरीकरण (Urbanization) से प्रत्येक नगर में भिन्न-भिन्न जातियों का एक अच्छा खासा जमघट सम्भव होने लगा। साथ ही साथ प्रत्येक जाति के सदस्यों के जीवन में अनेक समस्यायें उपस्थित हुईं, जिनसे जातीय आधार पर उनकी सुरक्षा और भी आवश्यक हो गई। इस आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये जातिवाद बढ़ता जा रहा है।

(४) यातायात और प्रचार के साधनों में वृद्धि

जातिवाद के विकास में सहायक एक कारक यातायात और प्रचार के साधनों की वृद्धि है। यातायात और प्रचार के साधनों में वृद्धि के कारण बिखरी हुई एक जाति के सदस्यों में सम्बन्ध स्थापित होते जा रहे हैं। समाचार पत्रों और जातीय पत्रिकाओं के माध्यम से जातिवाद की भावना का तेजी से प्रचार हो रहा है।

जातिवाद के परिणाम

(Consequences of Casteism)

जातिवाद से जहाँ एक ओर कुछ लोगों के स्वार्थ सिद्ध होते हैं वहाँ वह देश के लिये एक बड़ा अभिशाप है। जातिवाद के कुछ मुख्य परिणाम निम्नलिखित हैं :—

(१) **राष्ट्रीयता के विकास में बाधा**—जातिवाद राष्ट्रीयता के विकास में बाधक है। एक ओर तो जाति-प्रथा ने भारतीय समाज को अनेक भागों में विभाजित कर दिया, दूसरी ओर जातिवाद के आधार पर इन विभिन्न भागों के बीच जबर्दस्त तनाव और संघर्ष उत्पन्न हो गया है। इससे सामुदायिक भावना संकुचित होती जाती है जो कि राष्ट्रीयता के विकास में बाधक है।

(२) **प्रजातन्त्र में बाधा**—अनेक पेशवर नेता जातिवाद से राजनैतिक क्षेत्र में लाभ उठाते हैं और चुनाव के समय में जाति के नाम पर अपनी जाति के लोगों से वोट मांगते हैं और सफलता भी प्राप्त करते हैं। इससे कभी-कभी ऐसे व्यक्तियों का भी चुनाव हो जाता है जो जाति के हितों के सामने सामान्य हितों को कुचल देते हैं। व्यावहारिक रूप में समानता की आड़ में भी जातिवाद का ही डंका बजता है। इस प्रकार जातिवाद प्रजातन्त्र का घातक है। श्री पणिक्कर के अनुसार, "वास्तव में समानता के आधार पर समाज का कोई भी संगठन तब तक सम्भव नहीं है जब तक उपजाति और संयुक्त परिवार उपस्थित हैं।"[4]

---

4 "In fact, no organisation of society on the basis of equality is possible so long as the sub caste and the joint family exist."
—K. M. Panikkar.

(३) भ्रष्टाचार—जातिवाद की भावना से प्रेरित होकर लोग अपनी जाति के लोगों को हर तरह की सुविधा देने के लिये अनेक अनैतिक और अनुचित उपायों का सहारा लेते हैं। इस प्रकार जातिवाद से समाज में घोर भ्रष्टाचार फैल रहा है।

(४) औद्योगिक कुशलता में बाधा—सरकारी तथा अन्य प्रकार की नौकरियों में नियुक्ति जाति के आधार पर होने के कारण अयोग्य और निकम्मे लोगों की भर-मार होती जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि योग्य और कुशल व्यक्तियों को अवसर ही नहीं मिलता। इससे देश की औद्योगिक कुशलता में भारी बाधा उत्पन्न होती है।

जातिवाद के हल के उपाय
(Remedies of Casteism)

जातिवाद की समस्या के हल के कुछ उपाय निम्नलिखित हैं :—

(१) उचित शिक्षा

जातिवाद को रोकने के लिये सबसे अधिक उचित शिक्षा की आवश्यकता है। शिक्षा संस्थाओं में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि एक ओर बच्चों के मन में जाति-पाँति का भेद-भाव पैदा न हो सके और दूसरी ओर जातिवाद के विरुद्ध स्वस्थ जनमत पनप सके। नयी मनो-वृत्तियों और व्यवहारों को विकसित करने से ही जातिवाद नष्ट हो सकता है।

(२) अन्तर्जातीय विवाह

जातिवाद को दूर करने के लिए एक अन्य उपाय अन्तर्जातीय विवाह है। अन्तर्जातीय विवाह से दो विभिन्न जाति के स्त्री पुरुष को ही नहीं वरन् उन दोनों के परिवारों को भी एक दूसरे के निकट आने का अवसर मिलता है। इस प्रकार जातिवाद के बीज को पनपने का अवसर न मिल पायेगा और जो कुछ पनपेगी उसका प्रभाव भी कालान्तर में नष्ट हो जायेगा।

(३) 'जाति' शब्द का कम प्रयोग

जातिवाद की समस्या के हल का एक उपाय यह भी है कि 'जाति' शब्द का कम से कम प्रयोग किया जाये जिससे छोटे-छोटे बच्चों के मन में इसका कोई अवशेष बाकी न रह जाय और उनमें जातिवाद की भावना पनप न सके। इससे कम से कम भावी पीढ़ी से तो जातिवाद के नष्ट होने की सम्भावना अवश्य हो सकेगी।

(४) सांस्कृतिक और आर्थिक समानता

जातिवाद के हल का एक अन्य उपाय विभिन्न जातियों में सांस्कृतिक और आर्थिक समानता उत्पन्न करना है। विभिन्न जातियों में सांस्कृतिक और आर्थिक असमानता, उनमें आपसी द्वेष और प्रतियोगिता उत्पन्न करते हैं जिससे आगे चलकर जातिवाद पनपता है। अतः जातिवाद को समाप्त करने के लिये सांस्कृतिक और आर्थिक समानता बड़ी लाभदायक होगी।

जातिवाद के उन्मूलन के लिये सुझाव

(Suggestions for the eradication of casteism)

महात्मा गाँधी ने जातिवाद को हिन्दू धर्म के शरीर का अपैन्डिक्स (Appendix) कहा है। जब तक वह स्वस्थ दशा में है तब तक वह हानि नहीं करता परन्तु जब वह रोगी हो जाता है तब उसे हटा देना आवश्यक होता है नहीं तो वह सम्पूर्ण संगठन के जीवन को खतरे में डाल सकता है। इस प्रकार कुछ लोगों की राय में जाति-प्रथा का समूलोच्छेदन करके ही जनतन्त्र से उसका संघर्ष दूर किया जा सकता है। परन्तु वर्तमान परिस्थितियों में जबकि जातियाँ वर्गों का रूप धारण करती जा रही हैं और जातिवाद बढ़ता जा रहा है, यह आशा करना व्यावहारिक नहीं मालूम पड़ता कि जाति-प्रथा को समूल उखाड़ फेंका जा सकता है। जाति-प्रथा को कानून बनाकर नही तोड़ा जा सकता। वह हिन्दू समाज की नींव है। उसको हटाने के लिये एक जबर्दस्त क्रान्ति की आवश्यकता होगी। परन्तु कृत्रिम उपायों से क्रान्ति करना कालान्तर में हानिकारक सिद्ध होता है। अत: जब तक समाज जाति-प्रथा के स्थान पर कोई और व्यवस्था ग्रहण करने के लिये तैयार न हो तब तक अधिक से अधिक सुधारों की चेष्टा करनी चाहिये। इस विषय में विभिन्न विचारकों ने अलग-अलग सुझाव उपस्थिति किये हैं। कुछ महत्वपूर्ण सुझाव निम्नलिखित हैं :—

(१) डॉ० श्रीनिवास का मत—डॉ० श्रीनिवास (Dr. M. N. Srinivas) के मत के अनुसार, वयस्क मतदान प्रणाली, पंचवर्षीय योजनायें, शिक्षा का प्रसार, पिछड़ी जातियों की वरावर उन्नति और रहन-सहन के तरीकों पर उच्च जाति की संस्कृति का प्रभाव, जाति व्यवस्था के अनेक अवगुणों को दूर कर देगा तथा प्रजातन्त्र सुलभ समानता के लिये रास्ता खोल देगा।

(२) डॉ० घुरिये का सुझाव—डॉ० घुरिये (Dr. Ghurye) के अनुसार, जातिवाद से उत्पन्न हुए संघर्ष को अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन देकर दूर किया जा सकता है। प्रारम्भ से लड़के लड़कियों की सहशिक्षा का प्रवन्ध किया जाय और भिन्न लिंग के व्यक्तियों को एक दूसरे के निकट आने के अवसर दिये जायें। इससे लैंगिक आचरण में सुधार होगा और साथ-साथ जातिवाद का क्रियात्मक विरोध किया जायेगा। अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन मिलेगा और अन्तर्जातीय विवाह करने वाले व्यक्ति एक ऐसा जातिविहीन वातावरण पैदा कर देंगे और एक ऐसी पीढ़ी उत्पन्न करेंगे जो जाति व्यवस्था की घोर विरोधी होगी।

(३) डॉ० राव का मत—डॉ० राव (Dr. Rao) के सुझाव के अनुसार जातिवाद को निर्मूल करने के लिये सामूहिक प्रवृत्तियों को व्यक्त करने तथा अपनी क्रियाओं को संगठित करने के लिये कुछ वैकल्पिक (Optional) समूहों के निर्माण को प्रोत्साहन देना चाहिये। इन समूहों की संख्या बढ़ने के साथ-साथ जातिवाद कम होगा क्योंकि मनुष्यों को अपनी अनेक प्रवृत्तियों को जाति समूह से वाहर व्यक्त करने का अवसर मिलेगा।

(४) **श्रीमती कार्वे का सुझाव**—श्रीमती इरावती कार्वे (Iravati Karve) का सुझाव है कि जातिवाद से उत्पन्न हुये संघर्ष को दूर करने के लिए विभिन्न जातियों में आर्थिक और सांस्कृतिक समानता लानी आवश्यक है।

(५) **प्रभु का मत**—प्रभु (Prabhu) के अनुसार, जातिवाद से उत्पन्न हुये संघर्ष तभी दूर किये जा सकते हैं जबकि व्यवहारों के आन्तरिक क्षेत्रों पर प्रभाव डाला जाये। इसके लिये शिक्षा के द्वारा मनुष्यों में नई मनोवृत्तियाँ और अभिव्यक्तियाँ विकसित करने का प्रयास होना चाहिये। इस दिशा में सिनेमा भी बड़ा महत्वपूर्ण कार्य कर सकता है।

निष्कर्ष

जाति-प्रथा भारतीय समाज में हजारों सालों से पल रही है। आज वह जनतंत्र और देश की उन्नति में भारी बाधा है। राष्ट्रीयता की भावना के विकास तथा देश में जनतन्त्र को सफल बनाने के लिए उसका रूपान्तर करना निःसन्देह आवश्यक है। परन्तु यह कार्य कुछ वर्षों में नहीं किया जा सकता। इसके लिये पहले तो यह निश्चित कर लेना चाहिये कि जाति व्यवस्था में किस सीमा तक विकास की आवश्यकता है और फिर उस दिशा में सरकारी, गैर-सरकारी सभी शक्तियों द्वारा प्रयत्न किये जाने चाहिये। आगे आने वाली पीढ़ी में, शिक्षा द्वारा, जातिगत भेद-भाव को दूर करना इस विषय में पहला कदम होगा। सहशिक्षा से अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन मिलेगा। जाति सूचक शब्दों को नामों से निकाल देने का भी प्रचार किया जा सकता है। जातीय सभाओं और समितियों पर सरकार द्वारा रोक लगाई जानी चाहिये और नियुक्तियों में सरकार की ओर से जातिवाद को रोकने के उपाय किये जाने चाहियें। इस प्रकार चारों ओर से चेष्टा करने से ही इस दिशा में सुधार होगा।

सम्प्रदायवाद
(Communaulism)

भारत में साम्प्रदायिकता

१५ अगस्त १९४७ को भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा की गई और उसी दिन से भारत में गाँव-गाँव, शहर-शहर में हिन्दू-मुसलमानों ने एक-दूसरे के खून की होली खेली। इन साम्प्रदायिक दंगों में जितना नृशंस व्यवहार दिखाई पड़ा है उतना मानव-इतिहास में शायद ही कहीं दिखाई पड़ा हो। गांव-गाँव में आग लगा दी गई। जलती हुई आग में जीवित बच्चों को झोंक दिया गया। स्त्रियों के अंग-भंग कर दिये गये और उनको नग्न करके कोड़ों से मारते हुए सड़कों पर जुलूस निकाले गये। स्थान-स्थान पर रेलगाड़ियाँ रोककर हजारों आदमियों को गाजर-मूली की तरह काट दिया गया। लाखों बे घरबार हो गये। करोड़ों की सम्पत्ति नष्ट हो गई और इतना बड़ा बलिदान लेकर भी देश में साम्प्रदायिक तनाव कम नहीं हुआ। अभी पिछले दिनों अलीगढ़, मेरठ तथा उत्तर-प्रदेश के कितने ही नगरों में कितने ही दंगे हुए। यह आग कभी न कभी भड़क ही उठती है। इसके मूल में कुछ विशेष कारण

हैं। इन कारकों के अध्ययन से देश से सांम्प्रदायिकता को दूर करने के विषय में जानकारी होगी।

साम्प्रदायिक तनाव के कारण

साम्प्रदायिक तनाव के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :—

(१) भौगोलिक कारण (Geographical Causes)—साम्प्रदायिकता का एक मुख्य कारण भौगोलिक है। जहाँ-जहाँ हिन्दू मुस्लिम, सिक्ख और ईसाइयों की बस्तियाँ अलग-अलग हैं वहाँ उनमें सामूहिक तनाव अधिक बढ़ता है क्योंकि भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों की बस्तियों में रहन-सहन, तौर-तरीकों आदि में एक-दूसरे से भारी अन्तर दिखाई पड़ता है।

(२) ऐतिहासिक कारण (Historical Causes)—साम्प्रदायिक तनावों में ऐतिहासिक कारण भी बड़ा महत्वपूर्ण है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि भारतवर्ष में इस्लाम धर्म के अनुयायी बाहर से आये और उन्होंने तलवार के जोर से लोगों को मुसलमान बनाना शुरू किया। अनेक मुस्लिम शासकों ने हिन्दुओं पर भारी अत्याचार किये। दूसरी ओर अनेक हिन्दू राजाओं ने इसका मुंह तोड़ उत्तर दिया। इस बात को आज सैकड़ों साल हो गये। तब से अनेक बार हिन्दू मुसलमानों ने मिलकर काम किया। सन् १८५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम में हिन्दू-मुसलमानों ने कन्धे से कन्धा लगाकर देश को आजाद कराने की कोशिश की। कांग्रेस में, आजाद हिन्द फौज में और अन्य राजनैतिक दलों में हिन्दू-मुसलमानों ने मिलकर अंग्रेजों से मोर्चा लिया, परन्तु इन दोनों सम्प्रदायों में बहुत से लोग उस पुराने इतिहास को भूल नहीं सके, जबकि औरंगजेब के अत्याचार से हिन्दू धर्म पर खतरा उपस्थित हो गया था। जब हरिसिंह नलवा का नाम लेकर मुस्लिम स्त्रियाँ अपने बच्चों को चुप कराती थीं। इससे साम्प्रदायिक तनाव बना ही रहा। यह ही नहीं, बल्कि कुछ लोगों ने साम्प्रदायिक हितों को लेकर राजनैतिक दल बना डाले। मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा जैसे राजनैतिक दलों ने दोनों सम्प्रदायों को भड़काया। मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की माँग की। पाकिस्तान भी बन गया परन्तु फिर भी साम्प्रदायिक तनाव में आशातीत कमी नहीं आई।

(३) मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological Causes)—साम्प्रदायिक तनावों के मुख्य कारण मनोवैज्ञानिक हैं। जब-जब हिन्दू मुस्लिम सम्प्रदायों में परस्पर घृणा और द्वेष अत्यधिक बढ़ जाता है तभी देश में साम्प्रदायिक दंगे होते हैं। इस परस्पर घृणा के मूल में कुछ भ्रामक रूढ़ि प्रत्यय हैं। हिन्दू यह समझते हैं कि मुसलमान जन्म का राष्ट्र-द्रोही है। मुसलमान यह समझते हैं कि हिन्दुओं से उन्हें सदैव खतरा है। परस्पर अज्ञान पर आधारित इन बातों से तनाव बढ़ता है।

(४) सामाजिक कारण (Social Causes)—कुछ सामाजिक कारण भी साम्प्रदायिक तनाव बढ़ाते हैं। भारत में आज भी हिन्दू-मुसलमानों के परस्पर घनिष्ठ मेल-जोल में बहुत-सी सामाजिक बाधायें हैं। मुसलमान गाय काटते हैं जिससे हिन्दुओं

को चोट लगती है। हिन्दू मुसलमानों से मेल-जोल बढ़ाना ठीक नहीं समझते क्योंकि वे विधर्मी हैं। दोनों में बहुत से रीति-रिवाज एक दूसरे से बिल्कुल विपरीत हैं। हिन्दू चोटी रखते हैं, मुसलमान नहीं रखते। हिन्दू धोती पहनता है, मुसलमान लुंगी इस्तेमाल करते हैं। हाथ धोते समय हिन्दू पानी कोहनी से कलाई की तरफ गिराते हैं और मुसलमान कलाई से कोहनी की तरफ उड़ेलते हैं। इन छोटी-छोटी बातों में कोई विशेष महत्व नहीं है। परन्तु इससे दोनों एक दूसरे को उल्टा समझते हैं। अभी तो देश में अन्तर्जातीय विवाहों का ही रिवाज नहीं है, विभिन्न सम्प्रदायों में विवाह के बारे में तो अधिक लोग सोच भी नहीं सकते।

साम्प्रदायिक तनाव दूर करने के उपाय
(Measures to Relieve Communal Tensions)

साम्प्रदायिक तनावों के उपरोक्त कारणों के अध्ययन से उनको दूर करने के उपायों का भी संकेत मिलता है। स्थूल रूप से मुख्य उपाय निम्नलिखित हैं :—

(१) **राष्ट्रीय इतिहास का प्रचार**—साम्प्रदायिक तनावों को दूर करने के लिये यह जरूरी है कि इतिहास के उस पहलू पर विशेष जोर दिया जाय जिसमें कि हिन्दू मुसलमानों ने मिलकर राष्ट्रोत्थान के लिये प्रयास किये और कुर्बानियाँ दीं। ऐसा करने से तनाव का ऐतिहासिक कारण दूर होगा और राष्ट्रीय भावनायें बढ़ेंगी।

(२) **परस्पर सम्पर्क**—साम्प्रदायिक तनावों के मनोवैज्ञानिक कारणों को दूर करने के लिये विभिन्न सम्प्रदायों में परस्पर सम्पर्क बढ़ाने की जरूरत है। गाँव-गाँव और शहर-शहर में युवक-संगठन बनाये जाने चाहियें जिसमें सभी सम्प्रदायों के युवक एकत्रित होकर साथ-साथ विभिन्न कार्यक्रमों में भाग लें। इसके अलावा इस प्रकार की और भी अनेक संस्थायें बनाई जा सकती हैं जिनसे विभिन्न सम्प्रदायों के लोगों को एक दूसरे के पास जाने का अवसर मिले और उनमें मेल-जोल बढ़े।

(३) **साम्प्रदायिक दलों पर प्रतिबन्ध**—सरकार की ओर से साम्प्रदायिक दलों की कार्यवाही पर कड़ी नजर रखे जाने की जरूरत है। क्रमशः इन दलों को समाप्त करने की कोशिश की जानी चाहिये। भारत में अनेक साम्प्रदायिक दल सांस्कृतिक अथवा धार्मिक कार्यक्रमों की आड़ लेकर साम्प्रदायिकता का जहर फैलाते हैं। सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिये और ऐसा पाये जाने पर ऐसे दल को एक दम बन्द कर देना चाहिये।

(४) **असाम्प्रदायिक जनमत का निर्माण**—पत्र-पत्रिकाओं, भाषणों तथा रेडियो कार्यक्रमों और चलचित्रों के द्वारा देश में असाम्प्रदायिक स्वस्थ जनमत तैयार किया जाना चाहिये। इसके लिये साम्प्रदायिक पत्र-पत्रिकाओं, भाषणों आदि को गैर-कानूनी घोषित कर देना चाहिये।

(५) **राष्ट्रीय त्योहारों को प्रोत्साहन**—देश में राष्ट्रीय त्यौहारों और समारोहों को ऐसा प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये कि विभिन्न सम्प्रदाय के लोग उनमें पूरे

उत्साह से भाग लें। हिन्दू मुस्लिम दोनों सम्प्रदायों के मुख्य-मुख्य त्यौहारों जैसे होली, दिवाली, दशहरा, ईद आदि को राष्ट्रीय त्यौहार घोषित किया जा सकता है जिससे कि उनमें हिन्दू-मुस्लिम दोनों मिलकर भाग लें। इस मेल-जोल से साम्प्रदायिक तनाव कम होंगे।

साम्प्रदायिक तनावों को दूर करने के उपायों के उपरोक्त संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि इस दिशा में सामाजिक, वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक सभी उपायों से काम लेने की आवश्यकता है। सभी ओर से प्रयास करना जरूरी है। इस दिशा में सरकार और जनता दोनों को सहयोग करना पड़ेगा। देश में साम्प्रदायिकता का यह विष इतना पुराना है कि इसको निकाल फेंकने के लिये भारी प्रयास की आवश्यकता है।

✶

प्रश्न ४३—भारतवर्ष में क्षेत्रवाद के विकास और स्थायित्व के कारण बताइये तथा उनके निवारण के उपाय सुलझाइये।

यूं तो भारतवर्ष में क्षेत्रवाद (Regionalism) किसी न किसी रूप में सदैव उपस्थित था परन्तु न तो पहले वह कभी इतना बढ़ा था और न वह राष्ट्रीय हित के लिये कभी इतना हानिकारक हुआ था। देश में अनेक राज्य होने पर उनमें क्षेत्रवाद से इतनी हानि न थी परन्तु आज जब कि पूरा देश राष्ट्र हो गया है उस समय क्षेत्रवाद से राष्ट्रीय एकता को भारी खतरा है।

यह क्षेत्रवाद क्या है? क्षेत्रवाद जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है अपने-अपने भौगोलिक क्षेत्रों के प्रति भक्ति और दूसरे क्षेत्रों के लोगों के प्रति भय, अविश्वास या घृणा का भाव है। इस प्रकार भारत में आज विभिन्न क्षेत्रों के लोग एक दूसरे को विदेशी समझने लगे हैं। हर एक क्षेत्र अपने क्षेत्र में अपने ही क्षेत्र के लोगों का राज्य चाहता है और उसमें दूसरे क्षेत्रों से आये हुये लोगों को बिलकुल स्थान नहीं देना चाहता चाहे वे वहाँ कितने ही दिनों से रह रहे हों। इस प्रकार नागा क्षेत्र में कुछ लोगों ने एक पृथक नागा राज्य की माँग की है। पंजाब में अकाली दल ने पंजाबी सूबे की मांग की है। क्षेत्र के आधार पर बम्बई राज्य का महाराष्ट्र और गुजरात दो राज्यों में विभाजन हो गया। इसके अलावा कुछ लोग दक्षिणी भारत को एक बिल्कुल ही पृथक् राज्य बनाने की भी माँग लाये हैं। भारत एक संघ राज्य है राज्य के कार्य कुछ संघ सरकार और कुछ राज्य सरकारों को मिले हुये हैं। ये सब राज्य अधिकतर आन्तरिक मामलों में स्वतन्त्र हैं। इसलिये देश की एकता तभी तक रह सकती है जब तक लोग पूरे देश को एक राष्ट्र और अपना देश समझें। यदि हर एक क्षेत्र के लोग अपने ही क्षेत्र के प्रति भक्ति रखें और उसमें राष्ट्रीय हितों की

क्षेत्रवाद क्या है?

कोई परवाह न करें तो संघ सरकार का बने रहना कठिन हो जायेगा। इस प्रकार क्षेत्रवाद राष्ट्रीय हित के लिये एक भंयकर समस्या बन गई है।

देश में इस क्षेत्रवाद के मूल में निम्नलिखित मुख्य कारण हैं :—

(१) भौगोलिक कारण (Geographical Causes)—क्षेत्रवाद का मुख्य कारण भौगोलिक है। भिन्न-भिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में रहने वाले लोगों का रहन-सहन, पहनावा, खान-पान, रीति-रिवाज, इतिहास, भूगोल आदि कुछ न कुछ भिन्न होता ही है। इससे वे एक दूसरे को विदेशी समझने लगते हैं और उनमें एक दूसरे के प्रति भय और घृणा के अभाव उत्पन्न हो जाते हैं।

क्षेत्रवाद के कारण

(२) ऐतिहासिक कारण (Historical Causes)—जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है क्षेत्रवाद के मूल में एक कारण ऐतिहासिक भी है। उदाहरण के लिये भारतवर्ष में आर्यों के समय से ही दक्षिण और उत्तर में कुछ न कुछ भेद बना रहा। उत्तर के बहुत से राजाओं ने दक्षिण को विजय किया। दक्षिण में शायद ही कभी कोई ऐसा राज्य बन सका हो जो उत्तरी भारत तक फैला हो। इससे दक्षिण के बहुत से लोग दक्षिणी भारत को उत्तरी भारत से अलग समझते हैं।

(३) राजनैतिक कारण (Political Causes)—परन्तु यदि ध्यान से देखा जाये तो देश में फैले क्षेत्रवाद के मूल में मुख्य कारण राजनैतिक हैं। अलग-अलग क्षेत्रों में राजनैतिक स्वार्थों को लेकर और राजनैतिक सत्ता प्राप्त करने के लिये कुछ लोगों ने क्षेत्रीय राज्यों की माँग की है। इस दिशा में फिजो (Phizo) के विद्रोही नागा दल, पंजाब के अकाली दल, दक्षिण के द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम (D. M. K.) आदि विभिन्न राजनैतिक दलों का भारी हाथ है। सच तो यह है कि इन्हीं दलों के नेताओं ने इन क्षेत्रों में क्षेत्रवाद फैलाया है। केवल इतना ही नहीं बल्कि कुछ राष्ट्रीय दलों में भी भिन्न-भिन्न क्षेत्र के प्रतिनिधि क्षेत्रीय हितों के सामने राष्ट्रीय हितों की परवाह नहीं करते।

(४) मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological Causes)—अन्त में क्षेत्रवाद के विकास और स्थायित्व में मनोवैज्ञानिक कारण भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। हर एक क्षेत्र के लोग यह चाहते हैं कि उनका क्षेत्र सबसे अधिक उन्नति करे। यह तो कोई बुरी बात नहीं है परन्तु जब इसके लिये वे अन्य क्षेत्रों और पूरे राष्ट्र के हितों को भी तुच्छ समझते हैं तो यह भावना क्षेत्रवाद का रूप धारण कर लेती है। इसके अलावा क्षेत्रवाद के पीछे बहुत से ऐसे व्यक्ति हैं जो अपने अन्दर की ईर्ष्या, द्वेष, भय, क्रोध आदि की भावनायें इस तरीके से निकालते हैं।

(५) अन्य कारण (Other Causes)—उपरोक्त कारणों के अलावा कुछ अन्य कारण भी क्षेत्रवाद बढ़ाते हैं। उदाहरण के लिये भारत में बंगालियों और महाराष्ट्रियनों और पंजाबियों आदि में परस्पर विवाह बहुत कम देखे जाते हैं। आम-तौर से भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लोगों में विवाह सम्बन्ध नहीं होते। इससे परस्पर घनिष्ठ

सम्पर्क का अवसर कम आता है। इन सामाजिक कारणों के अलावा क्षेत्रगत तनाव के कुछ आर्थिक कारण भी हैं। देश में कुछ क्षेत्र अन्य क्षेत्रों से बहुत पिछड़े हुये हैं। इससे उनमें हीनता की भावना रहती है और वे दूसरों से ईर्ष्या करने लगते हैं। कुछ क्षेत्रों में, जैसे व्यापार में कुछ विशेष क्षेत्रों के लोग अधिक सफल दिखाई पड़ते हैं। उदाहरण के लिये भारत में व्यापारी वर्ग में मारवाड़ियों, गुजरातियों और पंजाबियों ने अधिकतर अधिकार जमा रखा है। इससे भी अन्य लोग उनसे जलते हैं और अपने क्षेत्रों से उनको निकालने की कोशिश करते हैं।

क्षेत्रवाद के निवारण के मुख्य उपाय निम्नलिखित हो सकते हैं :—

क्षेत्रवाद के निवारण के उपाय

(१) यातायात और संदेशवहन को प्रोत्साहन—क्षेत्रवाद दूर करने के लिये देश में घूमने की और विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्ध बढ़ाने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलना चाहिये। अभी पिछले दिनों साधुओं की एक ट्रेन भारत दर्शन के लिये निकली थी। इसी तरह से राजस्थान के बहुत से किसानों ने ट्रेन के द्वारा भारत यात्रा की। भारत में जो तीर्थ करने की परम्परा है उसके कारण भी लोगों को सारे देश में घूमना पड़ता है। देश के भिन्न-भिन्न भागों में जाने से देश-वासियों में यह भावना बढ़ती है कि भारतवर्ष एक बड़ा देश है और उसका अपना क्षेत्र विशाल भारत का एक अंग मात्र है। देश में यातायात और संदेशवहन को प्रोत्साहित करके क्षेत्रवाद को कम किया जा सकता है।

(२) राष्ट्रीय इतिहास का प्रचार—सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीय इतिहास का प्रचार किया जाना चाहिये जिससे लोगों के सामने यह स्पष्ट हो जाय कि भारत के अलग-अलग क्षेत्रों के इतिहास भारत राष्ट्र के इतिहास के अंग मात्र हैं जिसमें सभी क्षेत्रों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। राष्ट्रीय इतिहास के प्रचार से क्षेत्रवाद की भावनायें दूर होगीं।

(३) क्षेत्रवादी राजनैतिक दलों पर रोक—राष्ट्रीय एकता के लिये यह आव-श्यक है कि क्षेत्रवाद का प्रचार करने वाले राजनैतिक दलों पर रोकथाम की जाय। खुल्लम खुल्ला प्रचार करने पर उनको गैर-कानूनी घोषित कर दिया जाना चाहिये। यद्यपि जनतन्त्र में हर एक व्यक्ति को अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के लिये राजनैतिक दल बनाने का अधिकार है परन्तु यदि इससे राष्ट्रीय हितों की हानि होती है तो यह अधिकार छीन लिया जाना चाहिये।

(४) राष्ट्रीय भावना का प्रसार—अन्त में क्षेत्रवाद के मूल में मनोवैज्ञानिक कारणों को दूर करने के लिये देश भर में राष्ट्रीय भावना के प्रसार की चेष्टा की जानी चाहिये। इस दिशा में रेडियो, चलचित्रों, पत्र-पत्रिकाओं, व्याख्यानों आदि सभी उपायों से प्रचार करने की आवश्यकता है। सरकारी नौकरियों, शिक्षा संस्थाओं आदि

सभी जगह से क्षेत्रवादी प्रवृत्तियों को निकालने की कोशिश की जानी चाहिये और राष्ट्रीयता की भावना को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।

क्षेत्रवाद एक जटिल समस्या है। इसको सुलझाने के लिये सभी ओर से प्रयास करने की जरूरत है। इसमें जनता और सरकार दोनों का सहयोग होना चाहिये। तभी यह समस्या सुलझ सकती है।

☆

प्रश्न ४४—भारत में भाषावाद के विकास और स्थायित्व के कारण बतलाइये और उसके निवारण के लिए सुझाव दीजिए।

भाषावाद

भारत में भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न भाषायें बोली जाती हैं। कहीं-कहीं पर तो एक ही क्षेत्र में अनेक भाषायें बोली जाती हैं। हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, गुजराती, मराठी, आसामी, काश्मीरी, बंगाली, तामिल, तेलगू, मलयालम, कन्नड़ आदि देश में दर्जनों भाषायें हैं। देशी भाषाओं में राष्ट्रभाषा हिन्दी बोलने वाले सबसे अधिक हैं और बढ़ते ही जाते हैं। परन्तु अन्य भाषाओं में भी साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ है। उदाहरण के लिये पंजाबी, गुजराती, मराठी, बंगाली, तामिल आदि में साहित्य का विकास हिन्दी से किसी प्रकार भी निम्न स्तर का नहीं कहा जा सकता। किसी भी देश में दर्जनों भाषाओं का होना स्वयं अपने में कोई दोष नहीं है। विभिन्न भाषाओं के साहित्य की वृद्धि से राष्ट्रीय साहित्य की ही वृद्धि होती है। हर एक भाषा के बोलने वाले यदि अपनी ही भाषा के विकास की चेष्टा करें तो इसमें कोई बुराई नहीं परन्तु जब भाषाओं की भिन्नता विभिन्न भाषा-भाषी समूहों में तनाव का आधार बन जाये तो यह निश्चय ही चिन्ता की बात है। जब भाषा का समर्थन अन्धा रूप धारण कर लेता है जिसमें कि विशेष भाषा को ऊँचा समझकर अन्य भाषाओं को नीचा और त्याज्य समझा जाता है तो यह प्रवृत्ति भाषावाद (Linguism) की प्रवृत्ति कहलाती है। अन्य वादों के समान भाषावाद भी देश के सामूहिक हित के लिये हानिकारक है।

भाषावाद की समस्या

भारत में पिछले दिनों से भाषावाद की समस्या ने भयंकर रूप धारण कर लिया है। पंजाब में पंजाबी और हिन्दी की समस्या को लेकर भारी संघर्ष दिखाई पड़ता है। आसाम में तो भाषा के प्रश्न को लेकर रक्त-पात भी हो गया। बंगाल में हिन्दी के विरोध में बंगाली भाषा को लेकर भाषावाद खड़ा किया गया है। क्षेत्रीय भाषाओं के अलावा हिन्दी, अंग्रेजी और उर्दू के समर्थक भाषा के प्रश्न को लेकर देश में तनाव फैलाते हैं। बहुधा भाषा सम्बन्धी इन आन्दोलनों के पीछे राजनैतिक उद्देश्य छिपे रहते हैं। यदि गौर से देखा जाय तो किसी भाषा के प्रश्न को लेकर आन्दोलन खड़ा करने वालों में साहित्यिक लोग कम और राजनीतिज्ञ लोग अधिक दिखाई पड़ेंगे।

उदाहरण के लिये पंजाब में पंजाबी भाषा का आन्दोलन पंजाबी सूबे की माँग से जुड़ा हुआ है।

भाषावाद के कारण

इस भाषावाद के मूल में क्या कारण है ? यूँ तो एक जटिल समस्या होने के कारण भाषावाद के सभी कारणों का विस्तृत विश्लेषण कठिन है। परन्तु संक्षेप में उसके मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :—

(१) **भौगोलिक कारण (Geographical Causes)**—अन्य तनावों के समान भाषावाद के पीछे भी एक मुख्य कारण भौगोलिक है। जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है भारत में भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न भाषायें बोली जाती हैं। भाषा के माध्यम से ही लोग एक दूसरे को अपने विचार और भावनायें प्रकट करते हैं। भाषा के माध्यम से ही उनमें परिचय बढ़ता है। अतः स्वाभाविक है कि अपनी भाषा बोलने वाला परिचित और भिन्न भाषा बोलने वाला अपरिचित मालूम पड़ता है। हर एक भाषा में एक साहित्य होता है। इस साहित्य में स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों, नदियों, मैदानों और पहाड़ों, स्थानीय वनस्पति, स्थानीय पशु और स्थानीय संस्कृति सब कहीं दिखाई पड़ती है। अतः साहित्य का क्षेत्र से विशेष सम्बन्ध होता है। विशेष क्षेत्र के लोगों को स्थानीय भाषा के साहित्य में जो अपनापन मिलता है वह दूसरी भाषा के साहित्य में नहीं मिल सकता। स्वाभाविक है कि हर एक व्यक्ति अपने ही क्षेत्र की भाषा का विकास चाहता है और दूसरे क्षेत्र की भाषा का लादा जाना पसन्द नहीं करता। जब यह मनोवृत्ति अत्यधिक बढ़ जाती है और भिन्न भाषाओं के प्रति तथा भिन्न भाषा-भाषी व्यक्तियों के प्रति द्वेष का रूप धारण कर लेती है तब तनाव उत्पन्न हो जाता है।

(२) **ऐतिहासिक कारण (Historical Causes)**—भाषावाद के कुछ कारण ऐतिहासिक भी हैं। भारत में सदा से ही विदेशियों के आक्रमण होते रहे। विदेशी अपने साथ अपनी-अपनी भाषायें भी लाये। मुगल लोग फारसी भाषा लेकर आये जो कि स्थानीय भाषाओं से मिलकर उर्दू बन गई। अंग्रेज लोग अंग्रेजी लेकर आये। इन भाषाओं के साथ इनके साहित्य भी आये और साहित्य के साथ इनकी संस्कृति भी। क्रमशः ये भाषायें भारत में फलने-फूलने लगीं और उनका भारतीयकरण होने लगा। उर्दू में बहुत से हिन्दू लोगों ने भी साहित्य निर्माण किया। यदि समझदारी से काम लिया जाता तो उर्दू-हिन्दी के प्रश्न के खड़े होने का कोई अवसर न था, परन्तु पिछले इतिहास से प्रेरणा लेने वालों ने उर्दू का भारतीयकरण स्वीकार नहीं किया और उसमें अरबी, फारसी के शब्दों की ही बहुतायात रखी। केवल इतना ही नहीं उन्होंने उर्दू में जो साहित्य निर्माण किया उसकी आत्मा तक विदेशी थी। अतः संघर्ष होना आवश्यक हो गया।

(३) **मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological Causes)**—परन्तु फिर भाषावाद के मूल में सबसे मुख्य कारण मनोवैज्ञानिक हैं। उसके पीछे भिन्न भाषा-

भाषी समूह से ईर्ष्या और द्वेष और अपनी भाषा का अहंकार है। उसके पीछे संकीर्ण आत्म-सम्मान की भावना है। यदि अन्य भाषाओं के विषय में पूर्वाग्रहों को निकाल कर व्यापक दृष्टिकोण से काम लिया जाय तो देश में कितनी ही भाषायें एक साथ रहकर फल-फूल सकती हैं।

(४) राजनैतिक कारण (Political Causes)—जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है भाषावाद के पीछे विभिन्न राजनीतिज्ञों और राजनैतिक दलों के राजनैतिक स्वार्थ हैं। अनेक साम्प्रदायिक राजनैतिक दल भाषावाद के प्रश्न को उठाकर अपने-अपने सम्प्रदाय के लोगों को भड़काते हैं और चुनावों में उनके मत लेना चाहते हैं। राजनैतिक स्वार्थों से मिलकर भाषावाद की समस्या और भी कठिन हो गई है।

(५) आर्थिक कारण (Economic Causes) – भाषावाद के मूल में कुछ कारण आर्थिक भी हैं। कुछ भाषाओं को सरकार से आर्थिक सहायता मिलती है। इससे अन्य भाषा-भाषी उस भाषा का विरोध करने लगते हैं और भाषावाद बढ़ता है।

(६) सामाजिक कारण (Social Causes)—भाषावाद के मूल में सामाजिक कारण भी हैं। हर एक समाज में कुछ मान्यतायें प्रचलित होती हैं। ये मान्यतायें जिस भाषा में स्थान पाती हैं उसको उस समाज में ग्रहण किया जाता है और आदर मिलता है। इसके विरुद्ध जिन भाषाओं में इन मान्यताओं को सम्मान नहीं दिया जाता अथवा जिनमें विरोधी मान्यतायें मानी जाती हैं उस भाषा का विरोध होता है। इस प्रकार भाषावाद बढ़ता है।

भाषावाद के कारणों को समझने के बाद अब उसके निवारण के उपायों का विवेचन किया जा सकता है। इस विषय में मुख्य रूप से निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं :—

भाषावाद के निवारण के सुझाव

(१) राष्ट्रीय भाषा का विकास—देश में एक राष्ट्रीय भाषा और साहित्य का विकास होने से उसके माध्यम से विभिन्न भाषा-भाषी समूहों को परस्पर मिलने का अवसर आयेगा और उनमें तनाव कम होगा।

(२) सभी मुख्य भाषाओं को प्रोत्साहन—एक सामान्य राष्ट्रीय भाषा और साहित्य के विकास के साथ-साथ सभी क्षेत्रीय मुख्य भाषाओं को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये। किसी भी क्षेत्र पर कोई भी भाषा लादी नहीं जा सकती न ही किसी भाषा का खींच-तान कर विकास किया जा सकता है। बोलचाल के माध्यम से भाषा का विकास अपने आप होता है। यदि यह बात समझ ली जाये तो भाषा सम्बन्धी तनाव बहुत कुछ कम हो जायें। इस प्रकार सरकार की ओर से देश की सभी मुख्य-मुख्य भाषाओं को प्रोत्साहन मिलना चाहिये। पंजाब में पंजाबी

आसाम में आसामी, बंगाल में बंगाली और गुजरात में गुजराती का विकास होना चाहिये तथा इनके साथ-साथ हिन्दी का सभी क्षेत्रों में प्रचार होना चाहिये।

(३) साम्प्रदायिकता का विरोध—भाषावाद के राजनैतिक कारण को दूर करने के लिये देश में साम्प्रदायिकता का निरोध करने की आवश्यकता है।

अन्त में यह ध्यान रखने की बात है कि भाषावाद की समस्या को सुलझाने के लिये व्यापक दृष्टिकोण से काम लेने की आवश्यकता है। सरकार की ओर से हर एक भाषा को प्रोत्साहन मिलना चाहिये। हर एक क्षेत्र में स्थानीय भाषा की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। भाषा की समस्या के पीछे राजनैतिक दांव-पेचों पर कड़ी नजर रखी जानी चाहिये और देश में एक राष्ट्रीय भाषा और राष्ट्रीय साहित्य का विकास होना चाहिये जिससे कि विभिन्न भाषा-भाषी समूहों का मेल-जोल बढ़े और भाषावाद कम हो।

विज्ञापन और प्रचार
(Advertisement & Propaganda)

प्रश्न ४५—विज्ञापन क्या है ? उसके उद्देश्य बतलाइए ।

विज्ञान क्या है ?

रेडियो सुनने वाले किसी भी व्यक्ति से पूछिये कि सिर दर्द की दवा क्या है ? तो वह एस्प्रो का नाम लेगा चाहे वह स्वयं उसका इस्तेमाल भी न भी करता हो क्योंकि वह नाम उसने इतनी बार सुना है कि वह अनायास ही उसके मस्तिष्क में आ जाता है। भारत में डालडा इस्तेमाल करने वाले अधिक नहीं हैं। परन्तु कितने लोग ऐसे हैं जो डालडा के नाम से अपरिचित हैं ? आजकल का पढ़ा-लिखा आदमी जब बाजार में कपड़ा लेने जाता है तो उस पर 'सैनफोराइज्ड' का निशान देख लेता है। यह उसको कैसे मालूम हुआ कि इस निशान वाले कपड़े धुलने के बाद सिकुड़ते नहीं ? उपरोक्त बातों के मूल में मुख्य तत्व है विज्ञापन। विज्ञापन लोगों को वस्तु से परिचित कराता है। विज्ञापन जनता को विशेष वस्तु की विशेषतायें बतलाता है। विज्ञापन वस्तु की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करता है। हस्वैन्ड के शब्दों में, "विज्ञापन की परिभाषा प्रचार के रूप में की जा सकती है जो कि कुछ चीजों अथवा सेवाओं के अस्तित्व और गुणों की ओर आकर्षित करता है।"[1]

विज्ञापन का महत्व

आज के आर्थिक क्षेत्र में भारी प्रतियोगिता है। वस्तु को बना लेने मात्र से उसको बेचने की समस्या हल नहीं हो जाती। उदाहरण के लिये किसी अच्छे साबुन की ही बात लीजिये। मान लीजिये कि किसी फर्म ने कोई बहुत अच्छा साबुन बनाया। अब जब तक लोगों को यह पता न चले कि अमुक नाम का साबुन भीं बाजार में उपलब्ध है तब तक वे उसको कैसे खरीदें। यदि लोगों को यह मालूम हो भी जाय कि अमुक नाम का साबुन बाजार में है तो भी उसके होने मात्र से उसकी बिक्री शुरू नहीं हो सकती। लोगों को उसके गुण मालूम होने चाहियें। परन्तु समस्या यहीं पर हल नहीं हो जाती। साबुन के गुण यदि खरीदार को बतलाये भी जायें तो क्या जरूरी है कि वह उन पर यकीन कर ले। फिर मान लीजिये कि उसने यकीन कर भी लिया

---

1. "Advertisement may be defined as publicity which calls attention to the existence and merits of certain goods and services."
—R. W. Husband.

तो जब तक उसमें उस साबुन को खरीदने की इच्छा नहीं उत्पन्न हो जाती तब तक वह उसे नहीं खरीदेगा। उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि विज्ञापन का कितना महत्व है। विज्ञापन आज एक विज्ञान और उससे अधिक एक कला बन गया है। प्रगतिशील व्यापारिक देशों में विज्ञापन के क्षेत्र में बराबर नई नई खोजें होती रहती हैं। विज्ञापन करने के बाद उसके परिणामों का बराबर पता लगाया जाता है और इस प्रकार यह जानने की कोशिश की जाती है कि किस प्रकार के विज्ञापन से खरीदने वालों पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ता है। इस अनुसंधान से बड़ी मनोरंजक बातें मालूम हुई हैं। उदाहरण के लिये यह पता लगाया गया है कि गतिहीन वस्तु में गतिशील वस्तु द्वारा, चीजों की अपेक्षा जीवों द्वारा और पशुओं की अपेक्षा मनुष्यों द्वारा दिये गये विज्ञापन अधिक ध्यान आकर्षित करते हैं। वास्तव में किसी भी वस्तु को बेचने में सफलता बहुत कुछ उसके विज्ञापन पर निर्भर है।

विज्ञापन के उपरोक्त उदाहरण से उसके निम्नलिखित उद्देश्य अथवा कार्य स्पष्ट होते हैं :—

विज्ञापन के उद्देश्य

(१) ध्यान आकर्षित करना—विज्ञापन का सबसे पहला उद्देश्य विशिष्ट वस्तु अथवा सेवा की ओर व्यक्ति का ध्यान आकर्षित करना है। शहरों में बड़े-बड़े रेलवे जंकशनों पर तथा व्यस्त चौराहों पर आपने रात में बड़े बड़े अक्षरों से विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं के नामों का विज्ञापन देखा होगा। कहीं लाल बल्बों से लिखा हुआ "ऊषा" (USHA), कहीं गतिशील बिजली के बल्बों से लिखा हुआ है। "टाटा" (TATA)। इसी प्रकार कुछ बड़े-बड़े साइनबोर्डों पर आपको केवल नाम भर दिखाई पड़ेंगे। ये विज्ञापन वस्तुओं की विशेषताओं का वर्णन नहीं करते, केवल देखने वालों को उनसे परिचित कराते हैं। विज्ञापन में बिजली के बल्ब क्यों इस्तेमाल किये जाते हैं? जिससे कि देखने वालों का ध्यान आसानी से खिंच जाये। बड़े-बड़े साइनबोर्ड क्यों इस्तेमाल किये जाते हैं? जिससे कि वे शीघ्र ध्यान आकर्षित कर लें। चित्रों, रंगों, शीर्षकों, आकार, प्रकाश आदि विभिन्न उपकरणों के द्वारा विज्ञापन का मुख्य उद्देश्य लोगों का ध्यान आकर्षित करना होता है।

(२) रुचि उत्पन्न करना—आमतौर से वही वस्तु ध्यान आकर्षित करती है जो रुचिकर हो। लक्स साबुन का विज्ञापन करने में फिल्म अभिनेत्रियों के चित्र क्यों दिये जाते हैं? बीड़ी आदि के कैलेन्डरों तथा पोस्टरों पर स्त्रियों के चित्र क्यों बनाये जाते हैं? क्या आपने कभी रेक्सोना का 'दिन-ब-दिन-ब-दिन' देखा है? विज्ञापन की सफलता किस बात में है? दूसरों का ध्यान आकर्षित करने में। रेक्सोना, लक्स, बीड़ी आदि के विज्ञापन में स्त्रियों के चित्र बनाने का उद्देश्य लोगों का ध्यान आकर्षित करना है। ध्यान आकर्षित करने के लिये स्त्रियों के ही चित्र इस लिए बनाये गये क्योंकि सुन्दर स्त्री के चित्र में सभी रुचि लेते हैं। सफल विज्ञापन का रहस्य लोगों की रुचि को पहचानना है क्योंकि रुचि और ध्यान में बड़ा निकट सम्बन्ध है।

स्टैगनर लिखता है "एक सुन्दर स्त्री का चित्र रुचि मूल्य रखता है, वह स्त्री पुरुष दोनों की स्थायी प्रेरणाओं को अपील करता है।"

(३) **विश्वास उत्पन्न करना**—जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है केवल वस्तु अथवा सेवा के अस्तित्व का ज्ञान या उसके गुणों का परिचय ही इस बात के लिए काफी नहीं है कि वह खरीदी जाये। मुख्य प्रश्न यह है कि यह विश्वास कैसे हो कि अमुक वस्तु में अमुक-अमुक गुण हैं। विज्ञापन का एक मुख्य उद्देश्य लोगों में इस विषय में विश्वास उत्पन्न करना भी है। यह विश्वास अनेक प्रकार से उत्पन्न किया जा सकता है। इसके लिये बहुधा नेताओं, फिल्म अभिनेताओं और अभिनेत्रियों आदि की सिफारिशें ली जाती हैं। औषधियों के विज्ञापन में प्रसिद्ध डाक्टरों का प्रमाण-पत्र सहायक होता है। कभी-कभी विश्वास उत्पन्न करने के लिये विशेष वस्तु की बिक्री की संख्या का ही विज्ञापन किया जाता है। जैसे अमुक पुस्तक की पचास हजार प्रतियाँ बिकी चुकी हैं अथवा अमुक साइकिलें एक लाख की संख्या में सड़कों पर चल रही हैं इत्यादि।

(४) **याद कराना**—विज्ञापन का स्मृति अथवा याददास्त पर भी प्रभाव पड़ना चाहिए क्योंकि बहुधा जब व्यक्ति विज्ञापन देखता है तभी उसको वस्तु की आवश्यकता नहीं पड़ती। विज्ञापन ऐसा होना चाहिए कि उस वस्तु की आवश्यकता पड़ने पर व्यक्ति को वह विशेष नाम और उसको बनाने वाली फर्म का पता आदि याद आ जाये।

(५) **क्रय की इच्छा उत्पन्न करना**—अन्त में विज्ञापन का मूल उद्देश्य यह होता है कि लोग उस वस्त को खरीदें या उस सेवा का उपयोग करें। इसीलिए विज्ञापन की वैज्ञानिक पद्धतियों में विज्ञापन देने के बाद इस बात का पता लगाया जाता है कि उससे वस्तु की बिक्री पर कितना असर पड़ा। जिस विज्ञापन से वस्तु की बिक्री पर जितना ही अधिक असर पड़ता है वह विज्ञापन उतना ही सफल माना जाता है। विज्ञापन आकर्षक, रुचिकर और मनोरंजक तो होना ही चाहिए परन्तु उसका उद्देश्य इनमें से कोई भी नहीं है। उसका मूल उद्देश्य है वस्तु का अधिक से अधिक मात्रा में बेचना। अन्य सब बातें इस उद्देश्य के साधन मात्र हैं।

प्रश्न ४६—विज्ञापन की अपील के मनोवैज्ञानिक आधार की विवेचना कीजिए।

अथवा

प्रश्न—विज्ञापन कला के क्या सिद्धांत हैं? विज्ञापन के मनोवैज्ञानिक प्रभाव की विवेचना कीजिए। **(यू० पी० बोर्ड १९६३)**

ब्लम (Bulm) ने लिखा है "समस्त विज्ञापन का केन्द्र सुझाव है।"[1] विज्ञापन का मुख्य उद्देश्य लोगों को उस वस्तु को खरीदने का सुझाव देना है। यह सुझाव जितना ही अधिक मनोवैज्ञानिक होगा उतना ही प्रभावशाली होगा। इसलिये विज्ञापन में प्रेरणा, ध्यान, रुचि, अभिवृत्ति, स्मृति आदि मनोवैज्ञानिक तत्वों का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। ये ही विज्ञापन का मनोवैज्ञानिक आधार हैं। विज्ञापन का इन पर जितना अधिक प्रभाव पड़ेगा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वह उतना ही अधिक सफल होगा। अतः विज्ञापन के मनोवैज्ञानिक आधार की विवेचना करने के लिये उन तत्वों के विज्ञापन से सम्बन्ध की विवेचना आवश्यक है।

विज्ञापन और प्रेरणा

मनुष्य के हर एक काम के पीछे कुछ न कुछ प्रेरणा (Motivation) होती है। जिस काम को करने के लिये उसमें कोई प्रेरणा न हो उसको यह नहीं करता। विज्ञापन का उद्देश्य व्यक्ति को किसी वस्तु को खरीदने के लिये प्रेरित करना है। अतः यह आवश्यक है कि वह व्यक्ति में उस व्यक्ति को खरीदने की प्रेरणा उत्पन्न करे। किसी न किसी प्रेरणा के उत्तेजित होने पर व्यक्ति स्वभावतः ही उस वस्तु को खरीदना चाहता है। कुछ लोग तो ऐसे होते हैं जिन्हें किसी वस्तु की आवश्यकता होती है और वे अच्छी तरह जानते हैं कि उन्हें कैसी वस्तु चाहिये। ऐसे लोगों को किसी विशेष प्रेरणा की आवश्यकता नहीं है। परन्तु कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हें जरूरत तो है परन्तु यह निश्चय नहीं है कि किस चीज से उनकी जरूरत पूरी होगी। ऐसे लोगों को विशेष वस्तु को खरीदने की प्रेरणा दी जा सकती है और कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनकी आवश्यकतायें भी निश्चित नहीं हैं। ऐसे लोगों की विशेष आवश्यकताओं को उत्तेजित करके उनको विशेष वस्तु खरीदने की प्रेरणा दी जा सकती है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो पैसा होते हुए भी पैसा खर्च नहीं करना चाहते। विज्ञापन की सफलता ऐसे लोगों में प्रेरणा उत्पन्न करके उनसे पैसा खर्च करा लेने में है।

मनुष्य की आवश्यकतायें

मनुष्य के प्रेरक कारकों में अनेक प्रकार के कारक होते हैं। उदाहरण के लिये उसकी कुछ विशिष्ट आवश्यकतायें है जैसे नींद, भूख, प्यास आदि। कुछ कम विशिष्ट आवश्यकतायें हैं जैसे काम प्रवृत्ति, मातृक व्यवहार आदि। कुछ सामान्य आवश्यकतायें हैं जैसे काम, पलायन, युयुत्सा, प्रभुत्व आदि। इनके अलावा उसमें जिज्ञासा, खेल, हास्य विनोद, आदि की प्रवृत्ति होती है। इन प्रेरकों के अलावा कुछ अर्जित प्रेरक भी होते हैं जैसे प्रशंसा पाने की प्रवृत्ति। निन्दा से बचने की प्रवृत्ति, दूसरों पर प्रभुत्व जमाने की प्रवृत्ति, अनुकरण करने की प्रवृत्ति, सहानुभूति की प्रवृत्ति इत्यादि। विज्ञापन इनमें से किसी भी आवश्यकता अथवा प्रवृत्ति को उत्तेजित कर सकता है। प्राथमिक (Primary) आवश्यकतायें अधिक महत्वपूर्ण होती हैं। अतः उनको उत्तेजित करने

---

1. "The core of all advertising is suggestion." —M. L. Blum.

वाले विज्ञापन अधिक प्रभावशाली होते हैं। गौण (Secondary) आवश्यकतायें उतनी महत्वपूर्ण नहीं होतीं। प्राथमिक और गौण आवश्यकताओं को समझने के लिये सी० एन० ऐलन (C. N. Allen) द्वारा बनाई गई निम्नलिखित सूची उपयोगी सिद्ध होगी :—

(१) प्राथमिकता आवश्यकतायें—१--स्वादिष्ट भोजन, २--स्वादिष्ट पेय, ३--सुखमय वातावरण, ४--कष्ट और खतरे से रक्षा, ५--काम वासना की तृप्ति, ६--प्रियजनों का कल्याण, ७--सामाजिक मान्यता, ८--अन्य लोगों से आगे बढ़ने की भावना, ९--कठिनाइयों पर विजय, १०--खेल।

(२) गौण आवश्यकतायें—१--सामान्यता; २--स्वास्थ्य, ३--कार्य कुशलता, ४--सुविधा, ५--टिकाऊपन तथा विशिष्टता ६--आर्थिक लाभ, ७--शैली तथा सौन्दर्य, ८--स्वच्छता, ९--जिज्ञासा, १०--सूचना तथा शिक्षा।

आवश्यकताओं की प्रेरणा

इन आवश्यकताओं से सम्बन्धित वस्तुओं के विज्ञापन इन आवश्यकताओं को अपील करते हैं। उदाहरण के लिए मुरब्बे आदि के विज्ञान उनके स्वादिष्ट होने, पौष्टिक होने, ताजे होने आदि के विषय में बतलाते हैं। एक स्वादिष्ट पेय के रूप में कोका-कोला का विज्ञापन किया जाता है। एयर कण्डीशनर के विज्ञापन के सुखमय वातावरण की अपील की जाती है। बीमा कम्पनियाँ प्रियजनों के कल्याण की आवश्यकता को अपील करती हैं। तरह-तरह के फैशनेबिल कपड़ों के विज्ञापन में सामाजिक मान्यता और दूसरों के आगे बढ़ने की भावना को अपील की जाती है। आपने दूकानदारों को अक्सर कहते सुना होगा, अमुक वस्तु 'लेटैस्ट फैशन' है अथवा अमुक वस्तु बहुत चलती है इत्यादि। विज्ञापन में काम प्रवृत्ति का प्रयोग परोक्ष रूप से किया जाता है क्योंकि समाज में काम प्रवृत्ति को प्रत्यक्ष रूप से उत्तेजित करना अच्छा नहीं समझा जाता। इस प्रकार पुरुषों के इस्तेमाल की वस्तुयें जैसे बालों में लगाने की क्रीम, टाई, बुशर्ट आदि की प्रशंसा स्त्रियों से कराई जाती है। यह दिखलाया जाता है कि अमुक वस्तु का इस्तेमाल करने से पुरुष पर अधिक से अधिक स्त्रियों की निगाहें पड़ेंगी। इसी प्रकार स्त्रियों के नाम की चीजों के विज्ञापनों में यह समझाने की चेष्टा की जाती है कि अमुक वस्तु का इस्तेमाल करने से अधिक से अधिक पुरुष आकर्षित होते हैं। यह आवश्यक नहीं हैं कि बिकने के लिये वस्तु किसी प्राथमिक आवश्यकता से ही सम्बन्धित हो। नई-नई चीजों के बाजार में आने के साथ-साथ लोगों में नई-नई आवश्यकतायें उत्पन्न होती रहती हैं और इस प्रकार बहुत-सी गौण आवश्यकताओं से सम्बन्धित वस्तुयें भी बाजार में अपना स्थान बना लेती हैं

विज्ञापन की सफलता के लिये सबसे पहली शर्त यह है कि वह ध्यान आकर्षित करे। ध्यान एक चयनात्मक क्रिया है। कुछ वस्तुयें अन्य वस्तुओं की अपेक्षा अधिक

विज्ञापन और ध्यान

ध्यान आकर्षित करती हैं। ध्यान में सहायक बाहरी और आन्तरिक कारकों की खोज से विज्ञापन की कला में भारी उन्नति हुई है। वास्तव में विज्ञापन ध्यान आकर्षित करने का विज्ञान है। विज्ञापन के मनोवैज्ञानिक आधार के रूप में ध्यान का महत्व समझने के लिये ध्यान में सहायक बाहरी और आन्तरिक दोनों ही तरह की दशाओं का संक्षिप्त विवेचन प्रासंगिक होगा।

ध्यान में सहायक बाहरी दशायें निम्नलिखित हैं :—

ध्यान में सहायक बाहरी दशायें

(१) **उत्तेजना की तीव्रता** (Intensity of the Stimulus)—उत्तेजना जितनी ही तीव्र होगी विज्ञापन उतना ही अधिक ध्यान आकर्षित करेगा। इसलिए विज्ञापन के लिये रात में बहुधा तेज रोशनी के बल्वों का प्रयोग किया जाता है।

(२) **उत्तेजना की प्रकृति** (Nature of the Stimulus)—उत्तेजना की प्रकृति का अर्थ उसके प्रकार से है अर्थात् यह कि वह दृष्टि, स्वाद, स्पर्श किसकी उत्तेजना है। प्रयोगों से मालूम हुआ है कि अन्य सम्वेदनाओं की अपेक्षा रूप, रंग तथा आवाज अधिक ध्यान आर्कषित करते हैं। विज्ञापन में इनका खूब प्रयोग किया जाता है। आजकल रेडियो विज्ञापन का एक मुख्य माध्यम है। प्रयोगों से मालूम हुआ है कि केवल शब्द मात्र की अपेक्षा संगीतमय शब्द मनुष्यों का ध्यान अधिक आकर्षित करते हैं। इसीलिये रेडियो से आने वाले अधिकतर विज्ञापन आपको संगीतमय रूप में दिखाई पड़ते हैं जैसे "हमाम से हमारे घराने को है प्यार।" शब्दों से भी अधिक चित्र ध्यान आकर्षित करते हैं। चित्रों में भी वस्तुओं से पशुओं के और पशुओं से मनुष्य के चित्र अधिक ध्यान आकर्षित करते हैं। मनुष्यों में भी सुन्दर स्त्रियों के चित्र सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करते हैं। किसी भी पत्रिका अथवा समाचार पत्र के विज्ञापनों पर एक नजर डालिये तो आपको ज्ञात होगा कि विज्ञापन में इस तथ्य का कितना अधिक प्रयोग किया जाता है। रंगहीन चित्रों की अपेक्षा रंगीन चित्र अधिक ध्यान आकर्षित करते हैं। सिनेमा की रीलों द्वारा दिखाये जाने वाले विज्ञापन अधिकतर रंगीन होते हैं।

(३) **उत्तेजना का आकार** (Size of the Stimulus)—दृष्टि उत्तेजना में उत्तेजना का आकार भी सहायक होता है। इसीलिये बहुधा बड़े-बड़े साइन बोर्डों पर बड़े-बड़े अक्षरों द्वारा विज्ञापन दिये जाते हैं। परन्तु वास्तव में विज्ञापन के आकार से अधिक उसकी पृष्ठभूमि से उसके अनुपात का महत्व है। प्रयोगों से यह देखा गया है कि आकर्षित करने के लिये विज्ञापन में काफी जगह खाली छोड़ी जानी चाहिये। सामान्य रूप से बड़े आकार ध्यान को अधिक आकर्षित करते हैं। परन्तु एक बड़े खाली पृष्ठ पर एक बहुत ही छोटा विज्ञापन भी हमारा ध्यान आकर्षित कर सकता है। कुछ प्रयोगों से यह ज्ञात हुआ है कि वस्तु में आकर्षित करने की क्षमता उसके

आकार के वर्गमूल के बराबर होती है। इस प्रकार वर्गमूल के बढ़ने के साथ-साथ वस्तु का ध्यान आकर्षित करने की शक्ति भी बढ़ती है।

(४) उत्तेजना का विरोध (Contrast of the Stimulus)—कभी-कभी ध्यान पर आकार से अधिक उत्तेजना के विरोध का प्रभाव पड़ता है। रात के अन्धेरे में बिजली के बल्बों द्वारा दिये गये विज्ञापन इसलिए अधिक ध्यान आकर्षित करते हैं।

(५) उत्तेजना की स्थिति (Position of the Stimulus)—उत्तेजना की स्थिति भी ध्यान में एक महत्वपूर्ण सहायक अवस्था है। विज्ञापनबाजी में, पत्र-पत्रिका में विभिन्न स्थितियों का विचार रखा जाता है। इस सम्बन्ध में अमेरिका के डब्लू० डी० स्टाक ने एक महत्वपूर्ण प्रयोग किया। उसने हर एक पृष्ठ पर विभिन्न लम्बाई-चौड़ाई के विज्ञापन देकर सौ पन्नों की एक किताब बनाई। इस किताब को पचास व्यक्तियों को देखने के लिये दिया गया। हर एक व्यक्ति को पुस्तक को दस मिनट तक उलट-पलट कर यह लिखना था कि उसने क्या देखा। प्रयोग के अन्त में यह निष्कर्ष निकला कि पूरे पृष्ठ पर दिये गये विज्ञापन सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करते हैं, आधे पृष्ठ पर दिये गये विज्ञापन कम ध्यान आकर्षित करते हैं और चौथाई पृष्ठ पर दिये गये विज्ञापन सबसे कम ध्यान आकर्षित करते हैं। इसी प्रकार प्रयोगों से यह मालूम हुआ है कि पहले पृष्ठ पर और कवर पृष्ठ पर दिये गये विज्ञापन अधिक ध्यान आकर्षित करते हैं। प्रयोगों से यह मालूम हुआ है कि पृष्ठ के नीचे के आधे भाग की अपेक्षा ऊपर के आधे भाग पर दिये हुये विज्ञापन अधिक ध्यान आकर्षित करते हैं।

(६) उत्तेजना की एकांतता (Isolation of the Stimulus)—ध्यान एक चयनात्मक क्रिया है। इसलिये जो विज्ञापन आसपास की वस्तुओं से जितना ही अधिक अलग दिखाई पड़ेगा उसकी ओर उतना ही अधिक ध्यान आकर्षित होगा। विज्ञापनों पर प्रयोग करने से मालूम हुआ है कि केवल एकांतता के कारण विज्ञापन तीस प्रतिशत से अधिक ध्यान आकर्षित करता है।

(७) उत्तेजना का परिवर्तन (Change of the Stimulus)—उत्तेजना में परिवर्तन से ध्यान पर अवश्य प्रभाव पड़ता है। कितना भी अच्छा विज्ञापन होने पर भी यदि उसमें कभी भी कोई परिवर्तन न किया जाय तो लोग उससे ऊब जाते हैं और उसकी ओर ध्यान नहीं देते। इसीलिये विज्ञापन करने वाले समय-समय पर अपने विज्ञापन में परिवर्तन करते रहते हैं अन्यथा कोई उनकी ओर ध्यान न दे। हमाम, एस्प्रो तथा अन्य वस्तुओं के सीलोन से आने वाले विज्ञापनों में बराबर परिवर्तन देखा जा सकता है। परिवर्तन के साथ-साथ परिवर्तन की रीति भी महत्वपूर्ण है। वर्तमान उत्तेजना के बिल्कुल विरुद्ध परिवर्तन होने पर उसकी ओर अधिक ध्यान आकर्षित होता है।

(८) उत्तेजना का सत्ताकाल और पुनरावृत्ति (Duration & Repetition of the Stimulus)—जो विज्ञापन जितनी ही अधिक समय किया जायेगा आम-

तौर से उसका उतना ही अधिक लाभ होगा। कभी-कभी एक पूरे पृष्ठ पर एक बार विज्ञापन देने की अपेक्षा चौथाई पृष्ठ पर चार बार विज्ञापन देना अधिक लाभदायक होता है। सत्ताकाल के साथ-साथ पुनरावृत्ति का भी महत्व है। एस्प्रो के विज्ञापन की पुनरावृत्ति से चाहे आपके सर में दर्द ही क्यों न होने लगे परन्तु रेडियो में सीलोन स्टेशन से उसकी इतनी अधिक पुनरावृत्ति होती है कि आप उसकी ओर ध्यान देने को मजबूर हो जाते हैं। सरदर्द के साथ एस्प्रो-का नाम जुड़ासा जाता है और सरदर्द होने पर उसका नाम फौरन आद आता है चाहे आप उसको इस्तेमाल करने के पक्ष में न भी हों।

(६) उत्तेजना में गति (Motion in the Stimulus)—प्रयोगों से यह देखा गया है कि गतिशील विद्युत प्रकाश द्वारा किये गये विज्ञापन बड़े प्रभावशाली होते हैं। इसीलिये बड़ी-बड़ी फर्में बहुधा विज्ञापन के लिये गतिशील विद्युत प्रकाश का इस्तेमाल करती हैं। गतिशील वस्तु अधिक ध्यान आर्कषित करती हैं। इसीलिये नुमायशों में तथा बड़े-बड़े बाजारों में गतिशील खिलौनों या वस्तुओं के द्वारा विज्ञापन किया जाता है। नुमाइशों में साइकिल की दुकानों पर घूमती हुई साइकिल पर बैठी हुई एक आदमी की मूर्ति के द्वारा बहुधा विज्ञापन किया जाता है। खिलौनों की दुकानों पर अक्सर बिजली से चलने वाला कोई खिलौना गतिशील रहकर दर्शकों का ध्यान खींचता रहता है।

ध्यान की उपरोक्त बाहरी दशाओं के अलावा कुछ आन्तरिक दशायें भी ध्यान में सहायक होती हैं। विज्ञापन के मनोवैज्ञानिक आधार के रूप में इनका भी ध्यान रखना आवश्यक है। विज्ञापनों में स्त्रियों के अंगों के निर्वस्त्र प्रदर्शन करने वाले विज्ञापन सबसे अधिक ध्यान आर्कषित करते हैं। यह ध्यान में सहायक आन्तरिक दशा का एक उदाहरण है। ध्यान में सहायक मुख्य आन्तरित दशायें निम्नलिखित हैं:—

ध्यान की आन्तरिक दशायें

(१) रुचि (Interest)—विज्ञापन में रुचि का अत्यधिक मूल्य है। विशेष रुचि के लोग विशेष प्रकार के विज्ञापन पर अधिक ध्यान देते हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुये विशेष प्रकार की पत्रिकाओं में तद्विषयक वस्तुओं के विज्ञापन दिये जाते है। खेल सम्बन्धी पत्रिकाओं में खेल के, साहित्यिक पत्रिकाओं में पुस्तकों के, औद्योगिक पत्रिकाओं में उद्योग सम्बन्धी और व्यापारिक पत्रिकाओं में व्यापारिक विज्ञापन अधिक दिखाई पड़ेंगे, क्योंकि इनको मंगाने वाले व्यक्ति इनमें अवश्य रुचि रखते हैं। इसके अलावा मनुष्य मात्र की कुछ सामान्य रुचियाँ भी होती हैं। उदाहरण के लिये आमतौर से हर एक व्यक्ति को सुन्दर स्त्री का चित्र रुचिकर होता है। इसीलिये विज्ञापन में इसका सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाता है।

(२) मानसिक तत्परता (Mental Set)—मानसिक तत्परता का भी ध्यान पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। मानसिक तत्परता का अर्थ है मन का झुकाव। जिस

समय जिस व्यक्ति की मानसिक तत्परता जिस ओर अधिक होगी उस समय उसी का विज्ञापन अधिक ध्यान आकर्षित करेगा। उदाहरण के लिये परीक्षा के दिनों में परीक्षा सम्बन्धी नोट्स आदि के विज्ञापन का परीक्षार्थियों पर अधिक प्रभाव पड़ता है।

(३) मौलिक इहायें (Basic Drives)—जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है ध्यान को आकर्षित करने में मौलिक ईहाओं अथवा मूल प्रवृत्तितों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। जिज्ञासा जाग्रत होने पर विज्ञापन की ओर अधिक ध्यान जाता है। इसीलिये कुछ लोग वस्तु का नाम प्रगट करने से पहले तीन-चार बार तो जिज्ञासा उत्पन्न करने के लिये ही विज्ञापन देते हैं। बर्माशैल (Burma Shell) ने कुछ दिनों पहले हिन्दुस्तान टाइम्स नामक समाचार पत्र में काफी दिनों तक बगैर नाम दिये केवल एक बड़ी सी बूंद बनाकर विज्ञापन दिया था। इस तरह का विज्ञापन कई बार निकलने पर लोगों में यह काफी जिज्ञासा हो गई कि आखिर इसका मतलब क्या है तब कहीं जाकर बर्माशैल ने नाम पेश किया। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है ध्यान में काम ईहा अथवा यौन प्रवृत्ति के प्रभाव का विज्ञापन में खूब प्रयोग किया जाता है। सिनेमा के विज्ञापन तो सभी बहुधा यौन प्रवृत्ति को ही उत्तेजित करते हैं और यह बतलाने की बात नहीं है कि सिनेमा के विज्ञापन कितने अधिक आकर्षक सिद्ध होते हैं।

(४) अर्थ (Meaning)—विज्ञापन निरर्थक बात की ओर लोग ध्यान नहीं देते। ध्यान आकर्षित करने के लिये विज्ञापन का सार्थक होना भी जरूरी है अर्थात् उसमें बात साफ-साफ और स्पष्ट कही जानी चाहिये।

(५) लक्ष्य (Goal)—प्रत्येक व्यक्ति के कुछ तात्कालिक और कुछ अन्तिम लक्ष्य होते हैं। इन लक्ष्यों से सम्बन्धित वस्तु की ओर उसका तत्काल ध्यान जाता है। उदाहरण के लिये हर एक व्यक्ति जीवन में सफलता चाहता है। अतः बहुत से व्यापारी जीवन में सफलता दिलाने का वायदा करके अपनी वस्तुओं का विज्ञापन करते हैं। कपड़ों, ब्लेडों, बूट पालिस आदि अनेक वस्तुओं के विज्ञापन में यह कहा जाता है कि इनके इस्तेमाल करने से अमुक व्यक्ति की पदोन्नति हो गई, अमुक को ऊँचा पद प्राप्त हुआ इत्यादि।

उपरोक्त आन्तरिक दशाओं के अलावा ध्यान की अन्य दशायें भी हैं जैसे आदत, स्वभाव, संवेग आदि। इन सबका भी विज्ञापन की ओर ध्यान आकर्षित करने में कुछ न कुछ लाभ उठाया जा सकता है।

विज्ञापन और स्मृति

विज्ञापन के मनोवैज्ञानिक आधार में स्मृति का भी बड़ा महत्व है। विज्ञापन ऐसा होना चाहिये कि सुनने या पढ़ने वाले अथवा देखने वाले उसको याद रखें। तभी जरूरत पड़ने पर वे उसको खरीदेंगे। इसके लिये वस्तु के ऐसे नाम रखना लाभदायक है जोकि उसके काम से भी सम्बन्धित हों। इससे काम के साथ नाम का साहचर्य हो

जाता है और काम पड़ते ही नाम याद आता है। इस तरह के कुछ नामों के उदाहरण हैं, नहान साबुन, सीना मशीन, सुलेखा स्याही इत्यादि। जिन वस्तुओं के नाम ऐसे हैं जो आसानी से याद नहीं किये जा सकते, उनका विज्ञापन करने में निश्चय ही बड़ी कठिनाई होगी। विज्ञापन से स्मृति के इस सम्बन्ध का बहुधा गलत उपयोग भी किया जाता है। उदाहरण के लिए कोई एक ट्रेड मार्क (Trade Mark) मशहूर हो जाने पर जब उसका नाम परिचित हो जाता है तो बहुत से लोग अपनी वस्तुओं को प्रसिद्ध कराने के लिए उससे मिलता-जुलता नाम रख देते हैं। कोकाकोला के मशहूर होने के बाद पेप्सी कोला, डिक्सी कोला आदि निकाले गये। केवल इतना ही नहीं कुछ लोग तो केवल नाम में अन्तर करके नकली सामान बेचते हैं। इस तरह सनलाइट और लाइफबॉय साबुन की अंग्रेजी की स्पेलिंग में एक आधा अक्षर का अन्तर करके साबुन के नाम रख दिये जाते हैं जिससे लोग उन्हें सनलाइट या लाइफबॉय समझकर खरीद लें।

विज्ञापन और सुझाव

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है विज्ञापन का मुख्य मनोवैज्ञानिक आधार है निर्देश (Suggestion) अथवा सुझाव। निर्देश अथवा सुझाव का अर्थ किस व्यक्ति को किसी विशेष काम के करने के लिये प्रेरित करना है। कुछ विज्ञापनों में तो सीधा-सीधा वस्तु को खरीदने के लिए कहा जाता है। जैसे, दर्द और बुखार से छुटकारा पाने के लिए एस्प्रो लीजिए।। कुछ अन्य विज्ञापनों में सुझाव देने के लिए सिनेमा के अभिनेता और अभिनेत्रियों द्वारा निर्देश का प्रयोग किया जाता है। लक्स साबुन के विज्ञापन में आपने बहुत-सी प्रसिद्ध फिल्म अभिनेत्रियों की सिफारिशें देखी होंगी। इस प्रकार के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के निर्देश लिये हुए विज्ञापन में प्रतिष्ठा सुझाव (Prestige Suggestion) रहता है। वनस्पति घी का विज्ञापन करने वाले बहुधा उसके अहानिकारक होने के प्रमाण-पत्र उपस्थित करते हैं। इस प्रकार कुछ विज्ञापन अप्रत्यक्ष रूप से विशिष्ट वस्तुओं को खरीदने का सुझाव देते हैं।

विज्ञापन और अभिवृत्ति

विज्ञापन के मनोवैज्ञानिक आधारों में अभिवृत्ति (Attitude) का भी महत्व है। अभिवृत्ति व्यक्ति के चारों ओर की वस्तुओं की ओर उसकी प्रेरणात्मक, संवेगात्मक, प्रत्यक्षात्मक और ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का स्थाई संगठन है। विज्ञापन अभिवृत्ति के विरुद्ध होने पर भी प्रभावशाली नहीं होता। उदाहरण के लिये प्रत्येक स्वतन्त्र देश में आमतौर से लोगों में राष्ट्रीयता की अभिवृत्ति पाई जाती है। अतः स्वदेशी के नाम पर वस्तुओं का विज्ञापन सफलता के साथ किया जा सकता है।

विज्ञापन के मनोवैज्ञानिक आधार का विवेचन समाप्त करने से पूर्व उसके विभिन्न अंगों की मनोवैज्ञानिक अपील का विश्लेषण करना भी प्रासंगिक होगा।

विज्ञापन के विभिन्न अंगों की मनोवैज्ञानिक अपील

जैसा कि पीछे दिये हुये विवरण से स्पष्ट है विज्ञापन में अनेक बातें होती हैं जैसे चित्र, रंग, विज्ञापन का शीर्षक, विज्ञापन की लिखित वस्तु, फर्म की व्यवसाय छाप या व्यवसाय नाम और विज्ञापन का विन्यास अथवा व्यवस्था विज्ञापन को प्रभावशाली बनाने के लिये उसके इन सभी अंगों में मनोवैज्ञानिक अपील होनी चाहिए इस सम्बन्ध में यहाँ कुछ महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख किया जायेगा।

(१) चित्र (Illustration)—मनोवैज्ञानिक अपील के लिये विज्ञापन में दिये गये चित्र यथार्थ के साथ-साथ रुचिकर भी होने चाहियें। न तो उनका केवल यथार्थ होना काफी है और न केवल रुचिकर होना। केवल यथार्थ होने पर ये कम ध्यान आकर्षित करेंगे। केवल रुचिकर होने पर उनमें वस्तु को खरीदने की प्रेरणा देने की सामर्थ्य नहीं होगी।

(२) रंग (Colour)—विज्ञापन में रंग का बड़ा प्रभाव पड़ता है। परन्तु किस तरह के विज्ञापन में कौन-से रंग प्रयोग किये जायें यह एक महत्वपूर्ण बात है। भिन्न-भिन्न मौसमों में भिन्न-भिन्न रंग रुचिकर होते हैं। इसी प्रकार आयु तथा लिंग के भेद से भी रंगों के प्रभाव में अन्तर पड़ता है। आमतौर से पुरुषों के लिये विज्ञापन में नीला रंग और स्त्रियों के लिए विज्ञापन में लाल रंग अधिक प्रभावशाली होगा। कम आयु के लोगों के लिए विज्ञापन में गहरा रंग और अधिक आयु के लोगों के लिए हल्का रंग अधिक उपयुक्त होगा। इसी प्रकार गर्मियों में नीले और हरे रंगों द्वारा तथा जाड़ों में लाल और काले रंगों द्वारा विज्ञापन अधिक रुचिकर होंगे।

(३) शीर्षक (Headline)—बहुधा विज्ञापनों में एक शीर्षक दिया जाता है। शीर्षक के दो उद्देश्य होते हैं एक तो वह विज्ञापन में रुचि उत्पन्न करता है दूसरे वह व्यक्ति को वस्तु को खरीदने की प्रेरणा देता है। शीर्षक ऐसा होना चाहिए जो आसानी से और अधिक समय तक याद रह सके। दूसरे, शीर्षक ऐसा होना चाहिए कि उसको पढ़कर ही पूरे विज्ञापन को पढ़ जाने की इच्छा हो। तीसरे, शीर्षक संक्षिप्त और आकर्षक होना चाहिये। भारतीय लाइफ इन्श्योरैन्स कारपोरेशन (L. I. C.) ने अपने विज्ञापनों में बहुत ही मनोरंजक शीर्षक दिये हैं। पैरी की मिठाइयों के विज्ञापनों में ऐसे मनोरंजक शीर्षक मिलते हैं कि जिनको पढ़कर पूरा विज्ञापन पढ़ने की इच्छा होती है।

(४) लिखित वस्तु (Text or Copy)—शीर्षक के बाद सूचना देने के लिये अथवा वस्तु की उपयोगिता के विषय में समझाने के लिए कुछ लिखित वस्तु भी दी जाती है। इसमें बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। आमतौर से अप्रत्यक्ष लिखित वस्तु अधिक उपयोगी सिद्ध होती है। बहुधा कपड़े बनाने वाले कपास की, रबड़ की वस्तुयें बनाने वाले रबड़ की और कागज बनाने वाले कागज की तथा सिगरेट बनाने

वाले तम्बाकू की कहानी पेश करते हैं। यह रोचक भी होती है और अप्रत्यक्ष रूप में इससे वस्तु का विज्ञापन भी हो जाता है। लिखित वस्तु संक्षिप्त होनी चाहिए। उसमें ऐसी बात कही जानी चाहिए जो सच्ची मालूम पड़े, जिसमें विश्वास उत्पन्न हो और जिसमें उस वस्तु को खरीदने की प्रेरणा हो।

(५) व्यवसाय छाप (Trade Mark) या व्यवसाय नाम (Trade Name)—साधारणतया हर एक कम्पनी एक व्यवसाय छाप या व्यवसाय नाम रखती है जैसे टाटा, बाटा, लिपटन, ब्रुकब्रान्ड, कोडक इत्यादि। क्रमशः ये व्यवसाय छाप इतने प्रसिद्ध हो जाते हैं कि केवल उनको देखकर ही लोग चीजें खरीदते हैं। परन्तु कभी-कभी कोई व्यवसाय नाम इतना प्रसिद्ध हो जाता है कि वह केवल किसी विशिष्ट कम्पनी के द्वारा बनाई गई वस्तु के लिये नहीं बल्कि उस तरह की हर एक वस्तु के लिये चलने लगता है। उदाहरण के लिये अमरीका में कैमरे के लिये कोडक व्यवसाय का नाम हर एक कैमरे के लिये इस्तेमाल होने लगा। कुछ लोग तो विज्ञापन देने में केवल अपने व्यवसाय छाप या व्यवसाय नाम को लेकर ही विज्ञापन देते हैं। आपने बहुधा ऐसे विज्ञापन देखे होंगे जिसमें यह लिखा रहता है कि अमुक व्यवसाय छाप या व्यवसाय नाम अमुक कम्पनी का है। उसको ग्रहण करने वाली दूसरी कोई भी कम्पनी गैर-कानूनी काम करती है और उसके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही की जावेगी।

(६) विन्यास (Lay Out)—अन्त में विज्ञापन की सफलता के लिये उसके उपरोक्त पाँचों अंगों की एक ऐसी व्यवस्था (Arrangement) अथवा विन्यास होना चाहिये कि वह कुल मिलाकर प्रभावक सिद्ध हो। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि विज्ञापन के विन्यास में काफी स्थान खाली छोड़ देना चाहिये। जिस चित्र पर जोर देना है वह अधिक स्पष्ट होना चाहिये। पूरे पृष्ठ पर विज्ञापन होने पर उसका किनारा देना जरूरी नहीं है। एक पृष्ठ से कम विज्ञापन होने पर हल्का किनारा अच्छा रहता है। विज्ञापन में चित्र और पृष्ठ भूमि तथा रंगों का अच्छा मेल होना चाहिये। आमतौर से सादे विज्ञापन अधिक अच्छे रहते हैं। विज्ञापन में एक ही साथ बहुत सी चीजें दिखाने पर दर्शक उनमें से किसी को भी आसानी से याद नहीं रख पाता।

विज्ञापन में वर्ग का विचार

अन्त में मनोवैज्ञानिक प्रभाव के लिये हर एक विज्ञापन में यह ध्यान रखने की जरूरत है कि वह किस लिंग, वर्ग, आयु, शिक्षा अथवा आर्थिक स्तर के लोगों के लिये दिया जा रहा है क्योंकि इन सबके अन्तर से लोगों की रुचि, मानसिक झुकाव, प्रेरणा, ध्यान आदि में कुछ न कुछ अन्तर पड़ता ही है। उदाहरण के लिये निर्धन और मध्यम श्रेणी के लोगों को कम खर्च से अधिक अच्छी वस्तु देने का वायदा करने वाले विज्ञापन अधिक आकर्षित कर सकते हैं जबकि धनिक वर्ग के लिये

ऐसे विज्ञापन अधिक अपील नहीं करेंगे क्योंकि उनको पैसे का उतना ख्याल नहीं होता जितना कि वस्तु के गुण और नवीनता का होता है। इसी तरह शिक्षित व्यक्तियों के काम की चीजों में लिखित वस्तु में कुछ तर्क भी दिये जा सकते है परन्तु अशिक्षित लोगों के लिए तर्क करना बेकार है। अल्प आयु के लोगों के लिये विज्ञापन ऐसे होने चाहियें जो रुचिकर हों। स्त्रियों पर तर्क का काम और सुझाव का अधिक प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार विज्ञापन की प्रभावोत्पादकता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर है कि वह विशेष वर्ग के लोगों के मनोवैज्ञानिक को कहाँ तक अपील कर सकता है। वास्तव में इस सम्बन्ध में केवल स्थूल सुझाव मात्र ही दिये जा सकते हैं। विज्ञापन की व्यावहारिक सफलता तो बहुत कुछ विज्ञापन करने वाले की मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि तथा सूझ-बूझ पर निर्भर हैं।

*

प्रश्न ४७—प्रचार क्या हैं? उसकी अपील का मनोवैज्ञानिक आधार बतलाइये।

भारत एक जनतन्त्र है। इसमें जनता के द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि मिलकर सरकार बनाते हैं। हर एक राजनैतिक दल चुनाव के लिये अपने उम्मीदवार खड़े करता है। परन्तु जनता को यह कैसे मालूम हो कि किस उम्मीदवार में कौन-से गुण हैं? किसको चुनने से क्या फायदा है? अतः हर एक उम्मीदवार और हरएक राजनैतिक दल अपना प्रचार करता है। आज के राजनैतिक क्षेत्र में प्रचार का सबसे अधिक महत्व है। कितना भी अच्छा उम्मीदवार होते हुए भी प्रचार के बगैर कुछ नहीं हो सकता।

प्रचार की व्यापकता

आपको यह कैसे मालूम है कि सर दर्द और बुखार की दवा एस्प्रो है। आप कोई डाक्टर तो हैं नहीं? आपने रेडियो और अखबारों से इस बात को जाना है। हर एक बड़ी फर्म अपनी चीजों का तरह तरह से प्रचार करती है। सरकार भी कोई नई योजना चलाने के पहले उसके बारे में प्रचार करती है। विरोधी देश एक दूसरे के विरुद्ध प्रचार करते हैं। आजाद काश्मीर रेडियो से आपने बहुधा भारत विरोधी प्रचार सुना होगा।

इस प्रकार आज के संसार में राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक सभी क्षेत्रों में प्रचार का बोलवाला है। यह प्रचार क्या है? इसको समझने के लिये प्रचार की वैज्ञानिक परिभाषा करनी पड़ेगी। प्रचार शब्द के लिये अंग्रेजी में प्रोपेगेन्डा (Propaganda) शब्द का इस्तेमाल किया जाता है। प्रोपेगेन्डा शब्द लैटिन भाषा के प्रोपेगेयर (Propagare) नामक शब्द से बना है। प्रोपेगेयर का अर्थ उत्पादन करना या

प्रचार क्या है?

फैलाना अथवा नया पौधा पैदा करने के लिये टहनियों को दबा देना है। इस प्रकार प्रोपेगेयर में उत्पादन या विस्तार स्वाभाविक न होकर कृत्रिम होता है। जाहिर है कि शाब्दिक अर्थ में प्रचार का अर्थ किसी बात को कृत्रिम रूप से फैलाना होगा। इसलिये कभी-कभी कुछ लोग प्रचार को हानिकारक समझने लगते हैं यद्यपि अब यह भली-भाँति सिद्ध हो गया है कि जनता की शिक्षा के लिये प्रचार का कितना अधिक महत्व है।

प्रचार को अच्छी तरह समझने के लिये उसकी कुछ परिभाषाओं पर दृष्टि डालना भी लाभदायक होगा। कुछ मुख्य परिभाषायें निम्नलिखित हैं :—

प्रचार की परिभाषायें

(१) किम्बाल यंग (Kimbal Young) का मत—किम्बाल यंग के अनुसार, "अपने प्रयोजन के लिये हम सबसे पहले मतों, विचारों या मूल्यों को बदलने के लिए और उनका नियन्त्रण करने के लिए और अन्त में पूर्व निर्धारित दिशा में बाहरी क्रियाओं को बदलने के लिये सुझाव और सम्बन्धित मनोवैज्ञानिक प्रणालियों द्वारा प्रतीक के न्यूनाधिक सोच विचार कर आयोजित और व्यवस्थित प्रयोग के रूप में प्रचार की परिभाषा करेंगे।"[1]

प्रचार की उपरोक्त परिभाषा में निम्नलिखित महत्वपूर्ण बातों पर जोर दिया गया है :—

(अ) प्रचार अधिकतर सोच विचार कर और व्यवस्थित रूप में किया जाता है।

(ब) प्रचार प्रत्यक्ष रूप से नहीं बल्कि प्रतीक (Symbolic) रूप में किया जाता है। उदाहरण के लिये आमतौर से जब कोई राजनैतिक दल यह कहता है कि 'जनता के सच्चे प्रतिनिधि को ही वोट दे, तो उसका तात्पर्य इस बात का प्रचार करना होता है कि उसका अपना प्रतिनिधि ही जनता का सच्चा प्रतिनिधि है और दूसरे राजनैतिक दलों द्वारा खड़े किये गये उम्मीदवार सच्चे प्रतिनिधि नहीं है।

(स) प्रचार अधिकतर सुझाव (Suggestion) के द्वारा किया जाता है।

(द) प्रचार का उद्देश्य जनमत को बदलना या उसका नियन्त्रण करना होता है। प्रचार का अन्तिम उद्देश्य जनता के आदर्शों और विचारों को नियन्त्रित करके उसकी क्रियाओं को मनचाही दिशा में मोड़ देना होता है।

---

1. "For our purposes we shall define propaganda as the more or less deliberately planned and systematic use of symbol chiefly through suggestion and related psychological techniques, with a view first to altering and controlling opinions, ideas and values and ultimately to changing overt actions along predetermined lines."

—Kimball Young.

(३) डूब (Doob) का मत—डूब के अनुसार, "जब कोई व्यक्ति अथवा कुछ व्यक्ति किसी लक्ष्य को पूरा करने के लिये व्यवस्थित ढंग से निर्देश के द्वारा किसी जनसमूह की अभिवृत्तियों पर नियन्त्रण करके उसके व्यवहार को प्रभावित करते हैं तो वह प्रक्रिया प्रचार की प्रक्रिया कहलाती है।"[2]

उपरोक्त परिभाषा में यह बतलाया गया है कि प्रचार सुझाव के द्वारा होता है, उसके द्वारा जनता की अभिवृत्तियों पर नियन्त्रण किया जाता है और प्रचार व्यवस्थित होता है।

इस प्रकार संक्षेप में, प्रचार एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसमें अप्रत्यक्ष रूप से जनता के विचारों, आदर्शों और अभिवृत्तियों पर नियन्त्रण करने के लिये या उनको प्रभावित करने के लिये व्यवस्थित ढंग से सुझाव का प्रयोग किया जाता है।

उपरोक्त परिभाषा से यह नहीं समझना चाहिये कि प्रचार केवल अप्रत्यक्ष ही होता है। वास्तव में प्रचार प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष किसी भी तरह का हो सकता है।

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रचार

प्रत्यक्ष प्रचार में जैसा कि उसके नाम से जाहिर है लोगों को यह मालूम रहता है कि प्रचार करने वाला कौन है और वह क्यों प्रचार कर रहा है। उदाहरण के लिये आजकल भारत सरकार जीवन बीमा, परिवार नियोजन, अल्प बचत योजना आदि अनेक बातों के लिये प्रत्यक्ष रूप में प्रचार कर रही है। सब लोग जानते हैं कि यह प्रचार सरकारी है और इस प्रचार में सरकार लोगों को इनके फायदे बतलाकर इनको अपनाने के लिये कहती है। दूसरी ओर कुछ प्रचार अप्रत्यक्ष (Indirect) भी हो सकते हैं, जैसे पाकिस्तान का भारत विरोधी, प्रचार काश्मीर को हड़पने के लिये है। अप्रत्यक्ष प्रचार में लोगों को प्रचार के उद्देश्य का पता नहीं होता। उदाहरण के लिये बहुत से प्रचारक यह कभी नहीं जाहिर करते कि वे जनता से क्या चाहते हैं। वे जनता के विचारों और आदर्शों को इस तरह बदल देते हैं कि जनता वही ही करती है जोकि वे चाहते हैं। युद्ध के दिनों में बहुत से नेता अपने देशवासियों में देश-भक्ति और त्याग की भावना उकसाते हैं जिसमें उनका उद्देश्य यह होता है कि अधिक से अधिक लोग सेना में भरती हों।

मनोवैज्ञानिकों ने प्रचार के कुछ अन्य भेद भी किए हैं जैसे प्राथमिक (Primary) और गौण (Secondary) प्रचार। प्राथमिक प्रचार वह है जिसमें पहले से ही

प्रचार के अन्य रूप

उपस्थित कुछ अभिवृत्तियों या पूर्व आग्रहों को भड़काया जाय। उदाहरण के लिये मुसलमानों में हिन्दुओं से कुछ न कुछ तनातनी पहले से ही चली आती है। इसका फायदा

---

2. "............a systematic attemptly an interested individual or individuals to control the attitudes or groups of individuals through the use of suggestion and, consequently, to control their actions."

—L. W. Doob.

उठा कर आजाद काश्मीर सरकार मुसलमानों को जिहाद के लिये भड़काती रहती है। यह प्राथमिक प्रचार का एक उदाहरण है। गौण प्रचार में पहले से कोई भी अभिवृत्ति उपस्थित नहीं रहती। इसमें जनता में नये सिरे से कुछ अभिवृत्तियाँ पैदा की जाती हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने चेतन (Conscious) और अचेतन (Unconscious) प्रचार में भी अन्तर किया है। चेतन प्रचार जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है जान बूझकर किया जाता है। अर्थात् वह पहले से आयोजित होता है। अचेतन प्रचार में प्रचार जान बूझकर नहीं किया जाता वह अनजाने ही हो जाता है।

प्रचार की अपील के मनोवैज्ञानिक आधार
(Psychological Bases of the Appeal of Propaganda)

प्रचार के उपरोक्त विवेचन से उसकी अपील और मनोवैज्ञानिक आधारों पर भी प्रकाश पड़ता है। स्थूल रूप से प्रचार की मनोवैज्ञानिक पृष्ठ भूमि में सुझाव, प्रेरणा, अभिवृत्ति, विश्वास और संवेग तथा अनुभूति हैं। प्रचार में इनको प्रभावित किया जाता है, इनका उपयोग किया जाता है, इनको बदला जाता है और इनका नियन्त्रण किया जाता है। प्रचार के मनोवैज्ञानिक आधार को भली प्रकार समझने के लिये प्रचार से इनके सम्बन्ध की विवेचना आवश्यक है।

प्रचार और सुझाव

जैसा कि पहले बताया जा चुका है प्रचार का मुख्य आधार सुझाव या निर्देश (Suggestion) है। सुझाव के द्वारा लोगों के विचारों और आदर्शों में मन चाहे परिवर्तन किये जा सकते हैं यद्यपि सब लोगों में एक सी सुझाव ग्रहणशीलता (Suggestibility) नहीं होती। परन्तु सुझाव का थोड़ा बहुत प्रभाव हर एक व्यक्ति पर पड़ता है। सुझाव में कुछ बातों का विशेष महत्व है। आमतौर से राजनैतिक नेता, अभिनेता धार्मिक सन्तों आदि की बातों का आदर किया जाता है और उनका अनुकरण किया जाता है। लोग अपने कामों में उनका उदाहरण दिया करते हैं। सुझाव की यह शक्ति उनकी प्रतिष्ठा के कारण है। इसलिये यह प्रतिष्ठा सुझाव (Prestige Suggestion) कहलाता है। कहावत है महाजनः येन गताः स पन्था अर्थात् बड़े लोग जिस तरफ जायें वही जाने योग्य मार्ग है। इसी तरह लोगों में बहुमत का भी अनुकरण करने की प्रवृत्ति होती है। यह बहुमत का सुझाव (Suggestion of Majority) कहलाता है। अधिकतर आदमी जिस काम को करते हों, अधिकतर लोग जिस काम को अच्छा मानते हों, अन्य लोग उन्हीं का अनुकरण करने लगते हैं। भेड़ चाल की यह प्रवृत्ति मनुष्य की सामाजिकता के कारण है। बहुत ही कम लोग ऐसे हैं जो बहुमत से प्रभावित न होते हों। इस प्रकार प्रतिष्ठित लोगों के मत अथवा बहुमत के सुझाव के द्वारा जनता में तरह-तरह की बातों का प्रचार किया जाता है। उदाहरण के लिये कांग्रेस का अधिकतर प्रचार नेहरू और गांधी के नाम पर होता है।

मनुष्य का हर एक व्यवहार उसकी प्रेरणाओं (Motives) और आवश्यकताओं (Needs) पर निर्भर है। इसके बगैर किसी भी व्यक्ति से कोई भी काम नहीं कराया जा सकता। जिस चीज की कोई जरूरत नहीं, जिससे कोई प्रेरणा नहीं मिलती उसका प्रचार नहीं हो सकता। प्रचार उसी का हो सकता है जिसकी लोगों को जरूरत हो या जिसकी जरूरत पैदा कर ली जाय। इसीलिये सफल प्रचारक लोगों की प्रेरणाओं को अपील करते हैं। यद्यपि भिन्न-भिन्न लोगों की प्रेरणाओं और आवश्यकताओं में कुछ न कुछ अन्तर होता है परन्तु फिर भी स्थूल रूप से कुछ प्रेरणायें और आवश्यकतायें सभी में देखी जा सकती हैं। उदाहरण के लिए हर एक व्यक्ति चाहता है कि समाज में उसका आदर हो और उसको अच्छा समझा जाय। हर एक व्यक्ति शक्ति प्राप्त करना चाहता है। हर एक व्यक्ति अपनी और अपने परिवार की सुरक्षा चाहता है। हर एक व्यक्ति जीवन का स्तर ऊँचा करना चाहता है। आम तौर से हर एक को देश और धर्म से प्रेम होता है। हर एक को रोटी, कपड़ा, काम, नाम और आराम की जरूरत होती है। प्रचार में इन प्रेरणाओं और आवश्यकताओं को उत्तेजित किया जाता है। साम्प्रदायिक दल 'धर्म खतरे में है' का नारा लगाकर अपने सम्प्रदाय में विरोधी दल के प्रति घृणा का प्रचार करते हैं और उनको उकसाते हैं। विदेशियों का आक्रमण होने पर देश की सरकार देश की सुरक्षा के नाम पर जनता का संगठन करती है। साम्यवादी लोग देश से गरीबी दूर करने का वायदा करके और लोगों का जीवन स्तर-ऊँचा उठाने का आश्वासन देकर निर्धन लोगों में और मजदूरों में अपने दल का प्रचार करते हैं। जीवन बीमा कम्पनी लोगों की अपनी और अपने परिवार की सुरक्षा और कुशलता की प्रेरणा को अपील करके जीवन बीमा का प्रचार करती है। धर्म प्रचारक ईश्वर और धर्म के नाम पर धार्मिक प्रचार करते हैं। आजकल सभी लोग इस बात को जानते हैं कि यदि किसी चीज का प्रचार करना हो तो जनता में उसकी आवश्यकता पैदा करना जरूरी है और उसको किसी न किसी प्रेरणा से सम्बन्धित होना चाहिए।

प्रचार और प्रेरणायें तथा आवश्यकतायें

प्रचार का एक उद्देश्य जनता के विश्वासों और अभिवृत्तियों को परिवर्तित करना या उन पर नियन्त्रण करना है। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है कि मौलिक प्रचार में पहले से ही मौजूद कुछ अभिवृत्तियों का सहारा लिया जाता है और गौण प्रचार में अभिवृत्तियाँ बदली जाती हैं या बनाई जाती हैं। इस तरह प्रचार में पुरान विश्वासों को बदल कर नये विश्वास स्थापित करने की चेष्टा की जाती है। उदाहरण के लिए हर एक राजनैतिक दल जनता को यह विश्वास दिलाने की कोशिश करता है कि वही जनता का सच्चा कल्याण कर सकता है। हर एक अपने को जनता का सच्चा प्रतिनिधि बतलाता है और दूसरे दलों में से विश्वास को उठा देना चाहता है। परन्तु विश्वासों को बदलने में अभिवृत्तियों को

प्रचार और विश्वास तथा अभिवृत्तियां

ध्यान में रखना जरूरी है क्योंकि प्रचार बल पूर्वक नहीं किये जा सकते। यदि जनता की अभिवृत्ति किसी ओर नहीं हो तो उस दशा में एकदम प्रचार शुरू कर देना बेकार है। इसके लिए जनता में पहले अभिवृत्ति उत्पन्न की जानी चाहिए।

प्रचार और संवेग तथा अनुभूतियां

मनुष्य पर संवेगों (Emotions) और अनुभूतियों (Feelings) को उत्तेजित करने वाली बातों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसीलिये प्रचारक लोग जनता में प्रचार करते समय अपने मनोनकूल संवेग उत्पन्न करने की कोशिश करते हैं। जरूरत के अनुसार वे लोगों में भय, क्रोध, आशा, निराशा और घृणा आदि संवेगों को जाग्रत करने की कोशिश करते हैं। उदाहरण के लिये साम्प्रदायिक दल अपने सम्प्रदाय के लोगों में अन्य सम्प्रदायों से भय, क्रोध और घृणा उकसाते हैं। भारत से ब्रिटिश सरकार को निकालने की कोशिश में भिन्न-भिन्न लोगों ने जनता में भिन्न-भिन्न संवेगों और अनुभूतियों को उकसा कर ब्रिटिश विरोधी और स्वतन्त्रता के पक्ष में प्रचार किया। महात्मा गांधी ने स्वदेशो के प्रेम को संवेग उकसाया। क्रांतिकारियों ने जनता में अंग्रेजों के प्रति क्रोध और घृणा फैलाई। तरह तरह के नारे लगाये गये। नारों का उद्देश्य जनता की अनुभूतियों को और संवेगों को उकसाना होता है। "इन्कलाव जिन्दावाद" के नारे सुनकर और वोलकर लोग उत्तेजित हो जाते हैं और से भर उठते हैं। "सड़ी-गली सरकार को, एक टक्कर और दो" का नारा लगा कर लोग क्रोध प्रदर्शित करते हैं। कुशल नेता अपने भाषणों द्वारा लोगों के संवेगों और भावनाओं पर नियन्त्रण करते हैं और उनको मनचाही दिशा में बदल देते हैं। तरह तरह के चित्रों और पोस्टरों के द्वारा सरकार जनता में मद्य-निषेध, परिवार नियोजन, जीवन बीमा, सहकारिता आदि अनेक आन्दोलनों के सम्बन्ध में प्रचार करती है।

★

प्रश्न ४८—प्रचार की विभिन्न प्रविधियां (Techniques) बतलाइये ? प्रभावशाली प्रचार में किन बातों का ख्याल रखना चाहिए ?

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में, न्यूयार्क में एक प्रचार विश्लेषण संस्था (Institute of Propaganda Analysis) है। इस संस्था ने प्रचार की प्रविधियों का वर्गीकरण किया। इसके अनुसार ये विधियाँ निम्नलिखित हैं:—

प्रचार की प्रविधियां

(१) नामकरण (Name Calling)—किसी के पक्ष या विपक्ष में प्रचार करने के लिये उनके लिये कुछ नामों का प्रयोग किया जाता है। इस नामकरण से पक्ष या विपक्ष में अच्छा खासा प्रचार हो जाता है। उदाहरण के लिये अक्सर राजनैतिक दल के नेता विरोधी दलों को 'गद्दार' या 'पंचमांगी' कहते हैं। कुछ लोग दूसरे दलों को साम्प्रदायिक नाम देकर उनके विरुद्ध प्रचार करते हैं।

(२) **स्थानान्तरण** (Transfer)—स्थानान्तरण में, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है परस्पर असम्बद्ध बातों, विचारों या वस्तुओं को जोड़ दिया जाता है। उदाहरण के लिये बहुत-से प्रचारक अपनी बातों के पक्ष में बहुत-सी इधर उधर की असंगत बातों को जोड़ लेते हैं।

(३) **आकर्षक सामान्य धारणायें** (Glittering Generalities)—कुछ शब्द ऐसे हैं जो आमतौर से सभी को आकर्षित करते हैं और जिनको सभी लोग मानते हैं जैसे विश्व बन्धुत्व, समानता, स्वतन्त्रता और भ्रातृत्व इत्यादि। इस आकर्षक सामान्य धारणाओं का सहारा लेकर बहुत-सी बातों का प्रचार किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में रूस और अमेरिका दोनों ही विश्वशान्ति के नाम पर अपने-अपने कारनामों के पक्ष में प्रचार करते हैं। साम्यवादी दल समानता और भ्रातृत्व का नारा लगाकर अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते हैं। यहाँ तक कि हिटलर जैसे तानाशाहों ने भी विश्वशान्ति और मानव की प्रगति के नाम पर अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया।

(४) **प्रसिद्ध व्यक्तियों के प्रमाण-पत्र** (Testimonials)—आमतौर से लोग अपनी चीजों, विचारों या मतों का प्रचार करने के लिये बड़े-बड़े नेताओं और प्रसिद्ध व्यक्तियों के प्रशंसा-पत्र पेश करते हैं। भारत में अधिकतर राजनैतिक दल यह प्रचार करते हैं कि वे महात्मा गांधी के विचारों को वास्तविक रूप से अपनाये हुये हैं और दूसरे लोग गलत रास्ते पर हैं। चुनाव के दिनों में कांग्रेस ने अपने प्रचार के लिये नेहरू जी और गांधी जी के प्रमाण-पत्र उपस्थित किये।

(५) **लोक-रीति की दुहाई** (Plain Folk Appeal)—प्रचार में लोक रीति की दुहाई दी जाती है क्योंकि जनता में लोक-रीति को अपनाने की प्रवृत्ति होती है। इस बात को ध्यान में रखकर संसार में सब कहीं राजनैतिक दल ऐसे चुनाव-चिन्ह ग्रहण करते हैं जो लोक जीवन के समीप हों। उदाहरण के लिए भारत में कांग्रेस का चुनाव चिन्ह दो बैलों की जोड़ी, जनसंघ का चुनाव चिन्ह दीपक, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का चुनाव चिन्ह झोपड़ी और साम्यवादी दल का चुनाव चिन्ह हँसिया और हथौड़ा है। कहना न होगा कि ये सभी लोक जीवन के बहुत निकट हैं।

(६) **सर्वसम्मति का सहारा** (Band Wagon)—प्रचार में सर्वसम्मति के प्रभाव का भी उपयोग किया जाता है। लोगों में बहुमत की बात मानने की प्रवृत्ति होती है। बहुमत में सुझाव की शक्ति होती है। अतः हर एक प्रचारक यह विश्वास दिलाने की कोशिश करता है कि बहुमत उसी के सिद्धान्तों और आदर्शों को मानता है। चुनाव के दिनों में इस विधि का विशेष रूप से उपयोग किया जाता है। कम वोट मिलने पर भी वोटिंग के समय अधिकतर राजनैतिक दल बराबर यह प्रचार करते रहते हैं कि उनको सबसे अधिक वोट मिल रहे हैं और वे भारी बहुमत से जीत रहे हैं।

(७) एकांगी प्रचार (Card Stacking)—प्रचार की इस प्रविधि में, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है तथ्यों को तोड़ मरोड़ कर अपने पक्ष में दिखाने की कोशिश की जाती है और विरोधी पक्ष के अनुकूल बातों को झूठ-मूठ गलत साबित किया जाता है। इस तरह यह एकांगी प्रचार है। स्पष्ट है कि प्रचार की यह रीति अनैतिक और भ्रामक है। फिर भी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में इसका बराबर प्रयोग किया जाता है। राष्ट्रीय क्षेत्र में सरकारी समाचार-पत्र सरकार के पक्ष में और अन्य दलों के समाचार-पत्र सरकार के विरोध में समाचारों को तोड़ मरोड़ कर छापते हैं, सामान्य बात को विशेष और विशेष बात को सामान्य रूप में दिखलाते हैं और सारा दोष एक ही पक्ष के सर मढ़ देते हैं। यही अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी होता है। चीनी समाचार-पत्र बराबर यह छापे जाते हैं कि भारत की ओर से उनके सैनिकों पर हमला किया गया और भारतीय लोग उनकी सीमा में घुस गये। इसी तरह पाकिस्तान के समाचार-पत्र बराबर यह प्रचार करते रहते हैं कि भारतवर्ष पाकिस्तान के खिलाफ सैनिक तैयारियाँ कर रहा है।

प्रभावशाली प्रचार में आवश्यक बातें

प्रचार प्रभावशाली किस तरह हो इस बारे में मनोवैज्ञानिकों ने बहुत से प्रयोग किये। इन सब प्रयोगों में यह बात सामान्य रूप से देखी जाती है कि प्रचार का प्रभाव उसके मनोवैज्ञानिक आधार की दृढ़ता पर आधारित है। किम्बाल यंग ने प्रचार के निम्नलिखित चार मनोवैज्ञानिक आधार बतलाये हैं :—

किम्बाल यंग का मत

(१) प्रचार का उद्देश्य श्रोतागण से सम्बन्धित होना चाहिये।

(२) प्रचार की प्रत्येक वस्तु जिसके आधार पर प्रचार को अधिक शक्तिशाली और सूत्र रूपी बनाया जाता है।

(३) प्रचार से सम्बन्धित विशेष सुझाव और अन्य मनोवैज्ञानिक विधियाँ।

(४) विचारों, दृष्टिकोणों, मूल्यों तथा क्रियाओं पर प्रचार का प्रभाव।

प्रचार की सफलता के लिये यह जरूरी है कि लोगों को यह न मालूम हो सके कि प्रचार क्यों किया जा रहा है। प्रत्यक्ष प्रचार का प्रभाव उतना नहीं पड़ता जितना कि अप्रत्यक्ष प्रचार का पड़ता है, क्योंकि प्रत्यक्ष प्रचार में लोगों को यह मालूम हो जाता है कि कौन अपने किस स्वार्थ को सिद्ध करने के लिये प्रचार कर रहा है। इस प्रकार आमतौर से अप्रत्यक्ष प्रचार ही अधिक प्रभावशाली होता है। यहाँ पर मूल बात यह है कि चूँकि अधिकतर प्रचार के पीछे किसी विशेष व्यक्ति या समूह का अपना स्वार्थ होता है इसलिए उसका प्रभाव कम पड़ता है। यदि ऐसा न हो अर्थात् यदि प्रत्यक्ष प्रचार में प्रचारक का उद्देश्य निस्वार्थ हो तो उससे भी लाभ होगा। उदाहरण के लिये भारत सरकार जीवन बीमा, परिवारनियोजन, मद्य-निषेध आदि के

अप्रत्यक्ष प्रचार

लिए प्रत्यक्ष प्रचार कर रही है। इनको अपनाने में जनता का ही भला है। सरकार का इसमें कोई स्वार्थ नहीं है। ऐसी दशा में प्रत्यक्ष प्रकार भी कम प्रभावशाली नहीं होगा।

विशेष वर्ग के अनुकूल प्रचार

प्रचार की सफलता के लिए ध्यान रखने की एक दूसरी बात यह है कि प्रचार किस वर्ग, लिंग, आयु अथवा शैक्षिक स्तर के लोगों के लिये किया जा रहा है क्योंकि इन सबके अन्तर से प्रचार की अपील में अन्तर पड़ जाता है। प्रचार करने में यह देखना जरूरी है कि प्रचार जिस वर्ग के लिए किया जा रहा हो उस वर्ग की अभिवृत्ति के अनुरूप हो। विवादास्पद विषयों में प्रचार को प्रभावशाली बनाने के लिये विषय के पक्ष और विपक्ष दोनों की बातों को उपस्थित किया जाना चाहिये। ऐसा करने से पढ़े-लिखे और विचारशील लोगों पर अधिक प्रभाव पड़ता है। परन्तु जो लोग पहले से ही किसी विशेष तरह के विचार रखते हैं उनको एकांगी प्रचार अधिक प्रभावित करता है। वे पढ़े लिखे लोगों को भी एकांगी प्रचार ही अधिक प्रभावित करता है।

प्रचार को दोहराना

प्रचार को प्रभावशाली बनाने के लिये उसको बार-बार दोहराया जाना चाहिये। जैसा कि डाक्टर गीवेल्स (Dr. Goebbels) ने कहा है, एक झूठ को सौ बार दोहराइये और वह सत्य के रूप में स्वीकृत होने लगेगा। बार-बार दोहराने से झूठी बात भी मान ली जाती है। वशीकरण (Hypnotism) में इस बात का व्यापक उपयोग किया जाता है। राजनैतिक क्षेत्र में भी प्रचार की बात को बराबर दोहराया जाता है। धार्मिक और व्यापारिक क्षेत्र में तरह-तरह के नारों को बराबर दोहराया जाता है। परन्तु किसी बात को केवल बार-बार दोहराना मात्र ही काफी नहीं है। कभी-कभी उसके साथ में कुछ तर्क भी दिये जाने चाहियें। सच तो यह है कि जिन विधियों का पीछे उल्लेख किया गया है उन सभी को आवश्यकता अनुसार इस्तेमाल करने से प्रचार प्रभावशाली होता है। इस तरह कभी-कभी सम्मानित व्यक्तियों के प्रमाण पत्र पेश करना भी लाभदायक होगा। लोक-रीति की दुहाई देने से बहुधा लोग प्रचारक की बात पर विश्वास कर लेते हैं। इसी तरह सर्वसम्मति का सहारा लेने से भी प्रचार प्रभावशाली बनाया जा सकता है। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना जरूरी है कि प्रचार ऐसा हो जो संवेगों, अनुभूतियों तथा प्रेरणाओं आदि को अपील करे। कभी-कभी अपने प्रचार को प्रभावशाली बनाने के लिये विरोधी प्रचार करना अधिक अच्छा रहता है। राजनीति के क्षेत्र में कुशल राजनीतिज्ञ बहुधा इसी नीति पर चलते हैं।

प्रभावशाली प्रचार के उपरोक्त विवरण को संक्षेप में क्रेच और क्रचफील्ड (Krech and Crutchfield) के विभिन्न प्रयोगों पर आधारित सफल प्रचार के

निम्नलिखित सात नियमों में दिया जा सकता है :—

क्रॅच और क्रचफील्ड का मत

(१) किसी आवश्यकता या प्रेरणा को सन्तुष्ट करने वाले सुझाव शीघ्र स्वीकार कर लिये जाते हैं। इसलिये प्रचारक को लोगों की आवश्यकताओं तथा प्रेरणाओं के आधार पर प्रचार करना चाहिए।

(२) स्पष्ट परिस्थितियों की अपेक्षा अस्पष्ट और अनिश्चित परिस्थितियों में दिये जाने वाले सुझाव शीघ्र ग्रहण कर लिये जाते हैं। इसीलिये सफल प्रचारक पहले अस्पष्ट परिस्थितियाँ उत्पन्न करके फिर उनको सुलझाने के लिये सुझाव देते हैं।

(३) जिस जन-समूह में प्रचार करना हो उसमें प्रचलित विश्वासों और मान्यताओं के अनुकूल सुझाव शीघ्र ग्रहण कर लिये जाते हैं।

(४) प्रत्यक्ष की अपेक्षा अप्रत्यक्ष प्रचार अधिक प्रभावशाली होता है। लोगों को यह मालूम नहीं होना चाहिये कि उसमें किस बात का प्रचार किया जा रहा है।

(५) प्रचार को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त होनी चाहिये। सामान्य जनता की आवश्यकताओं को दृष्टि में रख कर ही प्रचार के सुझाव दिए जाने चाहियें। लोगों को ऐसा प्रतीत होना चाहिए कि प्रचारक अपने विचार नहीं बल्कि स्वयं उन्हीं के विचारों को व्यक्त कर रहा है।

(६) प्रभावशाली उत्तेजनायें उत्पन्न करने के लिये भाषा, शब्द चयन, उच्चारण और बोलने का ढंग आदि ऐसा होना चाहिए जो प्रचार के जन-समूह को प्रभावित करे।

(७) प्रचार का प्रतिरोध विरोधी प्रचार द्वारा किया जा सकता है। सर्वोत्तम विरोधी प्रचार वह है जिसमें अधिकतर जनता की अधिकतर सामाजिक और आर्थिक आवश्यकतायें अधिकाधिक समय तक सन्तुष्ट होती रहें।

प्रश्न ४६—भ्रामक प्रचार और विज्ञापनों का प्रतिरोध करने के उपाय बतलाइये।

भ्रामक प्रचार और विज्ञापनों का प्रतिरोध

(Propaganda Prophylaxis)

प्रचार और विज्ञापन चाहे झूठे हों या सच्चे जनता को सदैव प्रभावित करते हैं। सच्ची बातों के प्रचार से जनता का अधिकतर लाभ ही होता है। दूसरी ओर

भ्रामक प्रचार के कुपरिणाम

झूठी बातों के प्रचार से जनता में भ्रामक और गलत बातें फैलती हैं। तरह-तरह के तनाव उत्पन्न होते हैं जिनसे कभी-कभी प्रत्यक्ष संघर्ष की नौबत आ जाती है। नाजी जर्मनी में यहूदियों के विरुद्ध भ्रामक प्रचार के द्वारा इतनी घृणा

उत्पन्न की गई कि नाजी दल के सदस्यों द्वारा लाखों यहूदियों की हत्या होने पर भी इस अत्याचार का कोई विरोध नहीं किया गया। भ्रामक प्रचार के कुपरिणाम का यह एक ज्वलन्त उदाहरण है। इसी तरह के भ्रामक प्रचारों के द्वारा मध्य युग में अनेक धर्म प्रचारकों ने विरोधी धर्मों के प्रति घृणा और हिंसा को उकसाया। क्रूसेड (Crusades) और जिहाद की घटनाओं से मानव इतिहास के पन्ने रंगे पड़े हैं जो कि भ्रामक प्रचार के खतरे के जीवित उदाहरण हैं। इसी तरह आजकल राजनैतिक क्षेत्र में बराबर भ्रामक विचार देखने में आते हैं। चीन बराबर यह प्रचार कर रहा है कि जहाँ-तहाँ हिन्दुस्तानी सैनिक ही चीनियों पर आक्रमण करते हैं और चीनियों का भारत के हजारों मील के क्षेत्र पर जन्म सिद्ध अधिकार है। इसी तरह पाकिस्तान बराबर यह प्रचार करता रहा है कि काश्मीर पाकिस्तान में मिलना चाहिए, भारत का उस पर कोई अधिकार नहीं है। इस तरह के भ्रामक प्रचारों से अन्तर्राष्ट्रीय शांति को भारी खतरा होता है। इससे जनता के मन विषाक्त हो जाते हैं। उनमें व्यर्थ का भय और घृणा भर जाती है जो कि तनिक सी चिंगारी पाकर ही भड़क उठती है। केवल राजनीति के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि व्यापार के क्षेत्र में आये दिन झूठे विज्ञापन दिखाई पड़ते हैं। औषधि विक्रेता तो खास तौर से झूठे विज्ञापनों का प्रयोग करतें हैं। कोई बूढ़ों को जवान बनाने का वायदा करता है तो कोई अपनी दवा को हर मर्ज की दवा बतलाता है। कोई हर एक पुराने रोग को दूर करने का दावा करता है तो कोई दवा लेते ही हर तरह की कमजोरी के दूर होने का विज्ञापन करता है। इस तरह के विज्ञापनों से हजारों लोग ठगे जाते हैं। बोगस फर्में बनाई जाती हैं और बोगस विज्ञापन देकर रुपया इकट्ठा किया जाता है। इस तरह की धोखेबाज फर्में जब जनता का लाखों रुपया ऐंठ लेती हैं तब कहीं जाकर यह मालूम पड़ता है कि वे बोगस थीं।

अतः भ्रामक प्रचार और विज्ञापनों का प्रतिरोध एक महत्वपूर्ण और गम्भीर समस्या है। इसलिए आधुनिक सरकारों ने इस ओर ध्यान देना शुरू किया। अनेक मनोवैज्ञानिकों ने इस दिशा में प्रयोग किये हैं। इनमें बिडिल (Biddle) और कोलियर (Collier) के प्रयोग महत्वपूर्ण हैं। स्थूल रूप से भ्रामक विचार तथा विज्ञापनों के प्रतिरोध के लिये निम्नलिखित मुख्य सुझाव दिये जा सकते हैं :—

भ्रामक प्रचार और विज्ञापन के प्रतिरोध के उपाय

(१) जनता को भ्रामक प्रचार तथा विज्ञापनों के सम्बन्ध में सूचनायें देना— भ्रामक विचार और विज्ञापनों का विरोध करने के लिये यह जरूरी है कि कुछ सामाजिक अथवा सरकारी संस्थायें इस सम्बन्ध में खोज-बीन करती रहें और जनता को इस विषय में सूचनायें दिया करें। अमेरिका में न्यूयार्क की प्रचार विश्लेषण संस्था यह काम करती है।। पत्र पत्रिकाओं, रेडियो, पोस्टरों, पुस्तकों और पर्चों के द्वारा जनता को भ्रामक प्रचार और झूंठे विज्ञापनों के प्रति सतर्क रहने की चेतावनी दी जा सकती है।

(२) विरोधी प्रचार—भ्रामक प्रचार और विज्ञापन के प्रतिरोध का एक मुख्य उपाय विरोधी प्रचार है। उदाहरण के लिए यदि लोगों को यह भली प्रकार समझा दिया जाय कि सब रोगों की एक दवा नहीं हो सकती अथवा वर्षों में खोई गई शक्ति कुछ घंटों में वापिस नहीं लाई जा सकती तो जनता इस तरह के झूंठे प्रचार और विज्ञापन से बच सकती हैं। विरोधी प्रचार से जनता में विभिन्न क्षेत्रों में स्वस्थ अभिवृत्ति और विश्वास उत्पन्न किये जा सकते हैं।

(३) कानूनी रोकथाम—भ्रामक प्रचार और विज्ञापनों को रोकने के लिये सरकार को कठोर कदम उठाना चाहिए। ऐसे विज्ञापनों और प्रचार को गैर-कानूनी घोषित किया जाना चाहिये और जो लोग ऐसा करते हुए पकड़े जायें उनको राज्य की ओर से कठोर दंड दिया जाना चाहिये।

(४) शिक्षा—भ्रामक प्रचार और विज्ञापनों से अधिकतर अशिक्षित लोग ही प्रभावित होते हैं। शिक्षित लोग आसानी से बहकावे में नहीं आ सकते। इसलिये भ्रामक प्रचार और विज्ञापनों के प्रतिरोध का सबसे अधिक महत्वपूर्ण साधन शिक्षा है। वैज्ञानिक शिक्षा के द्वारा जनता को हर एक बात को बुद्धि और तर्क से परखने की शिक्षा दी जानी चाहिये जिससे कि वे किसी तरह के भुलावे में न आ सकें।

(५) आर्थिक सुधार—कुछ आर्थिक परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं जिनके कारण लोग आसानी से भुलावे में आ जाते हैं। उदाहरण के लिये यह देखा जाता है कि भ्रामक प्रचार और विज्ञापनों का गरीबों पर अधिक प्रभाव पड़ता है क्योंकि वे लोग ऐसी चीजों की तलाश में रहते हैं जिनमें पैसा कम खर्च हो और लाभ ज्यादा हो। इसलिए चालाक लोग झूंठे वायदे करके उनको फंसा लेते हैं। अतः भ्रामक प्रचार और विज्ञापनों के प्रतिरोध के लिये कुछ आर्थिक सुधार भी जरूरी हैं।

(६) सामाजिक सुधार—अनेक सामाजिक परिस्थितियाँ ऐसे अन्धविश्वासों और पूर्व आग्रहो को उत्पन्न करती हैं कि जिनसे कि भ्रामक प्रचार सुलभ हो जाता है। इसका प्रतिरोध करने के लिये सामाजिक सुधार आवश्यक हैं।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि भ्रामक प्रचार और विज्ञापन का विरोध करने के लिये सभी दशाओं से उपाय करने की जरूरत है। जनता को शिक्षित किया जाये। भ्रामक प्रचार और विज्ञापनों का पर्दाफाश किया जाये। सरकार ऐसे लोगों को कठोर दण्ड दे उनके विरुद्ध प्रचार किया जाय और समाज में ऐसी सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों को दूर किया जाय जो भ्रामक प्रचार में सहायक होती हैं। तभी भ्रामक प्रचार और विज्ञापनों का अच्छी तरह विरोध किया जा सकता है।

प्रश्न ५०—प्रचार का क्या अर्थ है? प्रचार में नारों (Slogans) का क्या स्थान है? कुछ उदाहरण देकर समझाइये। (यू० पी० बोर्ड १९६४)

नोट—प्रश्नोत्तर ४७ व ४८ देखिये।

प्रश्न ५१—संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:—
निर्देशशीलता (Suggestibility) **(यू० पी० बोर्ड १९६५)**

निर्देशशीलता—संकेत की प्रक्रिया में विशेष बात यह है कि प्रमाण अथवा तर्क के न होते हुए भी दूसरा व्यक्ति भी उसको ज्यों का त्यों ग्रहण कर लेता है। ऐसा नहीं है कि सभी लोग संकेत को चुपचाप ग्रहण कर लेते हों। न्यूनाधिक अन्तर से लोग संकेत का विरोध भी करते हैं परन्तु यदि संकेत की शक्ति काफी हुई तो अन्त में उन्हें उसे मानना पड़ता है। संकेत ग्रहण करने वाला व्यक्ति संकेत को एक सत्य के रूप में स्वीकार करता है। स्पष्ट है कि संकेत ग्रहण करते समय उसकी तर्क-शक्ति या मानसिक संयम इत्यादि काम नहीं करते। वह सकेत की आलोचना नहीं कर सकता। उसकी अच्छाई बुराइयों का विश्लेषण नहीं कर सकता। इस प्रकार सकेत की शक्ति का कारण व्यक्ति की निर्देशशीलता या संकेतग्रहणशीलता (Suggestibility) ही है।

यहाँ पर यह स्पष्ट समझ लेने की जरूरत है कि संकेत शब्द को दो रूपों में इस्तेमाल किया गया है। कुछ लोग संकेत को एक सम्पूर्ण मानसिक क्रिया मानते हैं। दूसरी ओर अन्य लोग संकेत शब्द से व्यक्ति पर किसी उत्तेजना के प्रभाव को व्यक्त करते हैं। इस विषय में एक तीसरा मत यह हो सकता है कि संकेत को एक विशेष उत्तेजना मात्र माना जाये। संकेत का जो भी अर्थ लिया जाये संकेत और निर्देशशीलता में स्पष्ट अन्तर है। निर्देशशीलता से यह व्यक्त होता है कि कोई व्यक्ति कहाँ तक संकेत को ग्रहण कर सकता है। निर्देशशीलता प्रतिशत में व्यक्त की जाती है। इसको समझने के लिये किसी व्यक्ति के द्वारा ग्रहण किये हुए संकेतों की संख्या से विभाजित करके उसको सौ से गुणा करते हैं। इस प्रकार किसी व्यक्ति की निर्देशशीलता निम्नलिखित सूत्र से जानी जा सकती है:—

$$\text{निर्देशशीलता} = \frac{\text{ग्रहण किये हुये संकेतों की संख्या}}{\text{कुल दिये गये संकेतों की संख्या}} \times १००$$

सामान्यता अपनी निजी संकल्प शक्ति और बुद्धि का ऊँचा स्तर रखने वाले लोग आसानी से दूसरों के संकेत के शिकार नहीं होते। सामूहिक परिस्थिति में बुद्धि का स्तर निम्न हो जाने के कारण व्यक्ति की निर्देशशीलता बढ़ जाती है।

निर्देशशीलता की परिस्थितियाँ—संकेत के प्रभाव की परिस्थितियाँ दो वर्गों में बांटी जा सकती हैं—आन्तरिक और बाहरी। कुछ विशेष दशाओं में व्यक्ति की निर्देशशीलता बढ़ जाती है और वह दूसरों के विचारों और क्रियाओं से अधिक प्रभावित होता है। उदाहरण के लिये थकान की अवस्था में मानसिक शक्ति के शिथिल हो जाने से निर्देशशीलता बढ़ जाती है।

आन्तरिक परिस्थितियाँ—निर्देशशीलता के आन्तरिक परिस्थितियों में वे सभी आन्तरिक कारक आते हैं जिनसे मनुष्यों की तर्क वितर्क करने की शक्ति कम

हो जाती है और वह दूसरों का संकेत ग्रहण करने लगता है। आन्तरिक परिस्थितियों को निजी कारण या व्यक्तिगत कारण कहा जा सकता है। ये कारण शक्ति में होते हैं। स्थूल रूप से ये निम्नलिखित हैं :—

(१) स्वभाव (Temperament)—व्यक्ति के स्वभाव का उसकी निर्देशशीलता पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए कुछ लोगों का विचार है कि अन्तर्मुखी व्यक्तियों की अपेक्षा बहिर्मुखी व्यक्ति अधिक संकेत ग्रहण करते हैं। इस प्रकार बहिर्मुखी स्वभाव संकेत की एक आन्तरिक परिस्थिति हुआ।

(२) आयु (Age)—आयु का भी निर्देशशीलता पर प्रभाव पड़ता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बालक की सांकेतिकता पाँच या छः वर्ष की आयु से बढ़नी प्रारम्भ होकर ८ या ६ वर्ष की आयु तक बढ़ती जाती है और इसके बाद इसमें अवनति शुरू होती है। इस विचार का विरोध करते हुये इलौक ने यह दिखलाने की कोशिश की है कि बालकों में उतनी निर्देशशीलता नहीं होती जितनी कि सामान्य रूप से लोग समझते हैं। कुछ भी हो, इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि व्यक्ति की परिपक्वता और बौद्धिक स्तर बढ़ने से उसकी निर्देशशीलता कम होती है और अपरिपक्व लोगों में सांकेतिकता अधिक होती है। परन्तु यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि जबकि भिन्न-भिन्न समाजों में बालकों की निर्देशशीलता में अन्तर हो सकता है, एक ही समाज में भी बालकों की सांकेतिकता में अन्तर पाया जाता है।

(३) बौद्धिक योग्यता (Intellectual Ability)—इस प्रकार कुछ मनोवैज्ञानिकों ने बौद्धिक योग्यता और निर्देशशीलता में सहसम्बन्ध (Correlation) दिखाने की चेष्टा की है अर्थात् उनके अनुसार बौद्धिक योग्यता जितनी ही अधिक होगी निर्देशशीलता उतनी ही कम होगी और उसके विरुद्ध बौद्धिक योग्यता जितनी ही कम होगी निर्देशशीलता उतनी ही अधिक होगी। परन्तु इस मत के विरुद्ध एस्ट्राब्रुक्स और कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बुद्धि और निर्देशशीलता में बहुत ही कम सम्बन्ध है। एवलिंग और हारग्रोव्स ने अपनी परीक्षाओं के आधार पर बौद्धिक योग्यता और निर्देशशीलता में शून्य सहसम्बन्ध पाया।

(४) अज्ञानता (Ignorance)—निर्देशशीलता का एक अन्य कारण आन्तरिक अज्ञानता भी है। किसी बात के विषय में कुछ न जानने के कारण लोग दूसरे की बात मान लेते हैं। दूसरी ओर जो व्यक्ति उस बात को जानता है उस पर दूसरों के संकेत का प्रभाव नहीं पड़ता और यदि पड़ता भी है तो तभी जबकि संकेत ठीक दिशा में दिया गया हो।

(५) लिंग भेद (Sex Differences)—कुछ अध्ययनों के आधार पर कुछ मनोवैज्ञानिकों ने स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा अधिक निर्देशशीलता बतलाई है। इस मत के अनुसार लिंग भेद भी निर्देशशीलता का एक महत्वपूर्ण कारण है। परन्तु दूसरी ओर कुछ अन्य अध्ययनों में यह देखा गया है कि विपमलिंगीय व्यक्तियों की

निर्देशशीलता में जो अन्तर देखने में आया है उससे कहीं अधिक अन्तर समलिंगीय व्यक्तियों की निर्देशशीलता में दिखलाई पड़ता है। अतः यह बात प्रमाणिक नहीं मानी जाती है कि लिंग भेद निर्देशशीलता में अन्तर का कोई महत्वपूर्ण कारण है। चार्ल्स वर्ड (Charles Bird) के मतानुसार लिंग भेद के अनुसार निर्देशशीलता में अन्तर शिक्षा पद्धति और सामाजिक व्यवस्था के कारण होता है। प्राचीन शिक्षा पद्धति और सामाजिक व्यवस्था में स्त्री-पुरुष में भारी अन्तर होने के कारण उनकी निर्देशशीलता में भी भारी अन्तर आना स्वाभाविक है। आधुनिक शिक्षा पद्धति और समाज व्यवस्था में स्त्री पुरुषों में अन्तर बराबर कम होता चला जा रहा है। अतः आजकल लिंग भेद के आधार पर निर्देशशीलता में अधिक अन्तर नहीं दिखाई पड़ता।

(६) अन्य आन्तरिक परिस्थितियाँ (Other Internal Conditions)—निर्देशशीलता को प्रभावित करने वाली उपरोक्त व्यक्तिगत दशाओं के अलावा कुछ अन्य आन्तरिक परिस्थितियाँ भी महत्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिये यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि नशे की हालत में आदमी को जो कुछ भी सुझाया जाय वह उसी को मान लेता है और वैसा ही करने लगता है। आत्म-विश्वास के अभाव में भी व्यक्ति की निर्देशशीलता बढ़ जाती है और वह दूसरों की हर एक अच्छी बुरी बात को मान लेता है। इसके अलावा थकान, भूख, प्यास आदि वे शारीरिक दशायें भी निर्देशशीलता को बढ़ा देती हैं जिनमें शारीरिक शक्ति कम होती और मानसिक शक्तियाँ शिथिल पड़ जाती हैं। लोगों के धार्मिक विश्वास भी कभी-कभी निर्देशशीलता के कारण बन जाते हैं। उदाहरण के लिये भारत में साम्प्रदायिक प्रवृत्ति के लोगों में दूसरे सम्प्रदाय के विरोधी विचारों और क्रियाओं के संकेत बड़ी तेजी से फैलते हैं।

उपरोक्त आन्तरिक परिस्थितियों के अलावा अनेक बाहरी परिस्थितियाँ भी निर्देशशीलता का कारण होती हैं। इस विषय में मुख्य दशायें निम्नलिखित हैं:—

(१) सामूहिक परिस्थिति (Group Situation)—भीड़ अथवा समूह में व्यक्ति की बौद्धिक शक्तियाँ अपेक्षाकृत मन्द हो जाती हैं और संवेग अधिक आसानी से जाग्रत होने लगते हैं। अतः सामूहिक परिस्थिति में निर्देशशीलता बढ़ जाती है। भीड़ में तो कोई भी विचार अथवा क्रिया संक्रामक रोग की तरह फैलती है और देखते ही देखते सभी लोग एक ही तरह का काम करने लगते हैं।

(२) निर्देशक का सम्मान (Prestige of the Suggestor)—निर्देशकर्त्ता या संकेत देने वाले व्यक्ति के सम्मान का भी निर्देशशीलता पर प्रभाव पड़ता है। यह सम्मान जितना ही अधिक होगा संकेत के प्रति व्यक्ति की निर्देशशीलता उतनी ही बढ़ जायेगी। महान् नेताओं, फिल्म के अभिनेताओं और अभिनेत्रियों तथा विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञों के विचारों में दूसरों को संकेत देने की जबर्दस्त शक्ति होती है। फैशन के बारे में लोग अभिनेता और अभिनेत्रियों का अनुगमन करते हैं। राजनैतिक

मामलों में नेताओं के विचार सामान्य जनता के विचार बन जाते हैं। इसी प्रकार ज्ञान-विज्ञान के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञ जो कुछ भी कहता है उसको लोग आँख मूँद कर मान लेते हैं।

(३) पुनरावर्तन (Repetition)—किसी बात को बार-बार दुहराने से भी उसके प्रति निर्देशशीलता बढ़ जाती है क्योंकि वह लोगों का ध्यान आकर्षित करती है। इस विषय में अनेक अध्ययनों से यह भी सिद्ध हुआ है कि पुनरावर्तन के साथ-साथ संकेत में थोड़ा वहुत परिवर्तन भी होना चाहिये अन्यथा लोग उससे ऊब कर या उसको सामान्य बात समझकर उसकी ओर ध्यान देना वन्द कर देते हैं।

(४) जनमत का प्रभाव (Influence of Public Opinion)—निर्देशशीलता पर जनमत का बड़ा प्रभाव पड़ता है। दूसरे शब्दों में जिन विचारों और क्रियाओं को जनमत का समर्थन प्राप्त है उसकी निर्देशशीलता बढ़ जाती और लोग उनको आसानी से ग्रहण करते हैं। इसलिये कभी-कभी लोग जनमत की दुहाई देकर संकेत देते हैं।

(५) बहुमत का प्रभाव (Influence of Majorty Opinion)— पूर्ण जनमत का समर्थन न भी हो, तो भी यदि किसी संकेत को किसी समाज या समूह में बहुमत का समर्थन प्राप्त हो जाये तो वाकी लोग उसको बिना सोचे समझे ही मान लेते हैं क्योंकि यह समझा जाता है कि जिस वात को अधिकतर लोग ठीक मानते हैं वह ठीक ही होगी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुछ लोग वहुमत तो क्या जनमत का भी विरोध करके अपनी निजी समझ के अनुसार चलते हैं। परन्तु सामान्यतया अधिकतर लोग विचारों और क्रियाओं में जनमत और वहुमत का ही अनुगमन करना अधिक अच्छा समझते हैं।

(६) विश्वासपूर्ण स्वर (Confident Tone)—निर्देशशीलता को बढ़ाने में एक कारण संकेत देने वाले का विश्वासपूर्ण स्वर भी है। यदि कोई व्यक्ति विश्वासपूर्ण स्वर से कोई बात कहता है तो उसका दूसरों पर अधिक प्रभाव पड़ता है। विशेषज्ञों, नेताओं तथा साधु सन्यासियों आदि के विशेष प्रभाव का यही कारण है। सच तो यह है कि विश्वासपूर्ण स्वर से कही गई झूठी बात भी अविश्वासपूर्ण स्वर में कही गई सच्ची बात से अधिक प्रभावशाली होती है।

निर्देशशीलता में सहायक उपरोक्त आन्तरिक और वाह्य दशाओं का राजनैतिक क्षेत्र में प्रचार करने में तथा व्यापारिक क्षेत्र में विज्ञापनबाजी में व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है। वास्तव में प्रचार और विज्ञापन संकेत के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर ही आधारित हैं क्योंकि सबसे अच्छा प्रचार और विज्ञापन वही होता है जिसमें कि किसी बात को प्रत्यक्ष न कहकर उसका संकेत दिया जाय ताकि व्यक्ति स्वयं उसको मानने को मजबूर हो जाय।

———

६

उद्योग में मनोविज्ञान

(Psychology in Industry)

प्रश्न ५२—मनोविज्ञान का उद्योग में क्या महत्व है ? कर्मचारियों के चयन (Personnel Selection) में मनोविज्ञान किस प्रकार सहायक होता है ?

(यू० पी० बोर्ड १६६४)

उद्योग में मनोविज्ञान

मानव जीवन के हर एक क्षेत्र में जहाँ भी कुछ मानव सम्बन्ध अथवा मानव व्यवहार दिखलाई पड़ते हैं, वहाँ मनोविज्ञान का भी प्रवेश है। उद्योग के क्षेत्र में मालिक और मजदूर के तरह-तरह के सम्बन्ध आते हैं और उनमें तरह-तरह के व्यवहार दिखलाई पड़ते हैं। उद्योग के क्षेत्र की अनेक समस्यायें हैं। उसमें मानव व्यवहार की समस्यायें हैं। उदाहरण के लिये कहीं पर मजदूरों में असन्तोष दिखलाई पड़ता है! अनेक कारणों से वे मालिक के साथ सहयोग नहीं करना चाहते। वे अधिक से अधिक मजदूरी लेकर कम से कम काम करना चाहते हैं। वे समय-समय पर हड़ताल करते रहते हैं जिससे कारखाने बन्द हो जाते हैं और मालिक के साथ-साथ देश की भी भारी हानि होती है। दूसरी ओर मालिक भी मजदूरों का कोई ध्यान नहीं रखते। तनिक सी गड़बड़ होते ही वे कारखानों में ताले लगा देते हैं। इससे हजारों मजदूर बेकार हो जाते हैं और देश की भी भारी हानि होती है। मूल रूप में ये सब समस्यायें मानव व्यवहार की समस्यायें हैं। अतः इनको सुलझाने के लिये मनोविज्ञान की आवश्यकता पड़ती है।

उत्पादन में समस्यायें

उद्योग में अधिक और अच्छे उत्पादन के लिये कई बातों की जरूरत है। मशीनें तो अच्छी होनी ही चाहियें परन्तु साथ ही साथ यह भी जरूरी है कि उन पर काम करने वाले भी योग्य हों। इस योग्यता की परख कैसे हो ? कारखाने में सैकड़ों तरह के काम होते हैं। यह कैसे जाना जाय कि किस काम के लिये कौन-सा व्यक्ति उपयुक्त होगा ? कारखाने में काम तलाश करने के लिये सैंकड़ों लोग आते हैं। उनकी योग्यता की परीक्षा कैसे की जाय ? कारखाने में उत्पादन अधिक होने के लिये यह भी जरूरी है कि मशीनें ऐसी बनी हों जिनको चलाने में थकान कम हो। प्रकाश का इन्तजाम ऐसा होना चाहिये कि काम करने में असुविधा न हो, दुर्घटनायें कम हों और आँखों पर जोर भी न पड़े। अक्सर लोग काम से ऊबने लगते हैं। उनको किस तरह फिर से प्रोत्साहित किया जाय ? कारखाने की व्यवस्था किस प्रकार की जाय कि कारखाने

में दुर्घटनायें कम से कम हों ? उद्योग के क्षेत्र में इन सभी समस्याओं को सुलझाने में मनोविज्ञान की आवश्यकता है।

केवल चीजों का उत्पादन करने के बाद ही उद्योग का काम पूरा नहीं हो जाता, असली बात है इन चीजों को बेचना। यदि इनमें सफलता न हुई तो उत्पादन कितना भी अधिक और अच्छा होने पर भी बेकार है।

विक्रय की समस्यायें

चीजों को बेचने के लिए यह जरूरी है कि लोग उनसे परिचित हों, उनके गुणों को जाने और लोगों में उनको खरीदने की इच्छा उत्पन्न हो। इसके लिये विज्ञापन की आवश्यकता होगी। सफल विज्ञापन मनोवैज्ञानिक अपील पर आधारित है। स्पष्ट है कि विक्रय के क्षेत्र में मनोविज्ञान का कितना महत्व है ?

उद्योग में काम करने की परिस्थितियों का मजदूरों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। यदि काम करने की परिस्थितियाँ अच्छी हुई तो मजदूर स्वस्थ और सन्तुष्ट रहते हैं। यदि काम करने की परिस्थितियाँ अच्छी न हुईं तो कारखानों में दुर्घटनायें बढ़ जाती हैं और मजदूरों में असन्तोष फैलने लगता है। काम करने की परिस्थितियों में अनेक बातें आती हैं, जैसे शुद्ध हवा और पानी का प्रबन्ध, आवश्यक विश्राम का प्रबन्ध, कम शोर, अच्छा वातावरण, अच्छा प्रकाश तथा मालिक मजदूर के अच्छे सम्बन्ध। इन सभी में मनोविज्ञान के निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण के लिये प्रकाश किस ओर से आना चाहिए और कितना आना चाहिये, इस बारे में मनोवैज्ञानिक की राय लेना जरूरी है। कारखाने की दीवारों, फर्श, छत और मशीनों के रंग का भी मजदूरों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। प्रयोगों से यह देखा गया है कि रंगों की अच्छी व्यवस्था होने पर दुर्घटनायें कम होती हैं और कारखाने का वातावरण अधिक स्वस्थ रहता है। कारखाने की मशीनों, दीवारों, फर्शों और छतों की रंगाई किस मौसम में कैसी होनी चाहिये यह मनोविज्ञान का विषय है।

काम करने की परिस्थितियाँ

कारखाने में हर एक काम के लिये उपयुक्त व्यक्ति का चुनाव करने के बाद ही समस्या खत्म नहीं हो जाती, अच्छे और अधिक उत्पादन के लिये कर्मचारियों की क्षमता को बनाये रखना पड़ता है और उसको बढ़ाने की कोशिश करनी पड़ती है। इसके लिये मनोविज्ञान की सहायता की जरूरत है। श्रमिक एक मनुष्य है वह मशीन का पुर्जा नही है। उससे काम लेने में मानव प्रेरणाओं और मानव मनोविज्ञान पर ध्यान रखना जरूरी है। उद्योग में मानवीय कठिनाइयों को मनोविज्ञान की सहायता से बड़ी आसानी से सुलझाया जा सकता है।

मानवीय कठिनाइयाँ

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि उद्योग के क्षेत्र के हर पहलू में मनोविज्ञान का कितना महत्व है। आजकल तो यह महत्व इतना बढ़ गया है कि उद्योग के क्षेत्र

औद्योगिक मनोविज्ञान का क्षेत्र

में मनोविज्ञान को लेकर औद्योगिक मनोविज्ञान (Industrial Psychology) नाम की मनोविज्ञान की एक पृथक् शाखा ही बन गई है। ब्लम (Blum) के शब्दों में, "औद्योगिक मनोवैज्ञानिक व्यापार और उद्योग में मानव सम्बन्धों से सम्बन्धित समस्याओं में मनोवैज्ञानिक तथ्यों और सिद्धान्तों का प्रयोग अथवा विस्तार मात्र है।"[1] योरुप में औद्योगिक क्रान्ति के बाद से उद्योग में मानव सम्बन्धों को बड़ा महत्व दिया जाने लगा है। इसलिये बीसवीं शताब्दी में औद्योगिक मनोविज्ञान की स्थापना हुई। औद्योगिक मनोविज्ञान यह बतलाता है कि किस व्यक्ति में किस तरह का काम करने की सामर्थ्य और अभिरुचि है। यह विशेष व्यवसाय के लिये विशेष उपयुक्त व्यक्ति का चुनाव करता है। वह यह बतलाता है कि उद्योग में कार्य की व्यवस्था किस तरह की जाय कि थकान कम से कम हो और काम अधिक से अधिक और अच्छा हो। औद्योगिक मनोविज्ञान का एक मुख्य क्षेत्र कार्य विश्लेषण (Job Analysis) है। हर एक कारखाने में बहुत से कार्य होते हैं। इनमें से हर एक कार्य का अलग-अलग विश्लेषण करके मनोवैज्ञानिक यह बतलाता है कि किस कार्य के लिये किस तरह की विशेष योग्यता की जरूरत है। कारखाने में मजदूरों के काम का बराबर निरीक्षण करना पड़ता है। औद्योगिक मनोविज्ञान निरीक्षण की विधि में सुधार करता है। वह कारखानों में ऐसा वातावरण बनाये रखने में सहायक होता है जिसमें मालिक मजदूर में अच्छे सम्बन्ध रहें। वह श्रमिकों की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिये सुझाव देता है और समय-समय पर उनकी योग्यता की परीक्षा लेकर उनकी कार्यगति का विवरण रखने में सहायक होता है। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है आज के उद्योग में विज्ञापन का अत्यधिक महत्व है। औद्योगिक मनोविज्ञान प्रभावशाली विज्ञापन में सहायक होता है। आजकल औद्योगिक मनोविज्ञान मशीनों के बनाने में भी सुझाव देने लगा है जिससे कि ऐसी मशीनें बनाई जा सकें जिनसे कि थकान कम और काम अधिक हो।

उद्योग में मानवतावादी विचार

आज के युग में अनेक कारणों से उद्योग के क्षेत्र में मानवतावादी विचार बढ़ते जा रहे हैं। अब मजदूरों को कारखाने के विशाल यन्त्र का एक पुर्जा मात्र नहीं समझा जाता। अब यह समझ लिया गया है कि उद्योग का हित इसी में है कि मजदूर सुखी और सन्तुष्ट हों। उद्योग का यह मानवीकरण (Humanization) मनोविज्ञान की देन है। इसके कारण अब मालिक लोग मजदूरों के कल्याण (Welfare) का भी ध्यान रखते हैं। मनोविज्ञान ने इस बात पर जोर दिया है कि मनुष्य का काम केवल शारीरिक ही नहीं होता बल्कि मानसिक भी होता है। कारखाने

1. "Industrial Psychology is simply the application or extension of psychological facts and principles to the problems concerning human relations in business and industry."
—M. L. Blum.

में काम करने की विधियों में सुधार करने के लिये इस तथ्य को ध्यान में रखना जरूरी है।

इस प्रकार आज उद्योग के सम्पूर्ण क्षेत्र में औद्योगिक मनोविज्ञान महत्वपूर्ण सहायता दे रहा है। जैसे-जैसे मनोविज्ञान के क्षेत्र में मनुष्य का ज्ञान बढ़ता जायेगा वैसे-वैसे उद्योग के क्षेत्र में मनोविज्ञान का महत्व भी बढ़ता जायेगा।

अगला प्रश्नोत्तर भी देखिये।

प्रश्न ५३—संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये :—

कर्मचारियों का चयन (Personnel Selection)। (यू० पी० बोर्ड १९६५)

अथवा

प्रश्न—किसी उद्योग में काम करने वाले लोगों का चुनाव किन सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है? इस प्रकार के चुनाव तथा व्यावसायिक निर्देशन के अन्तर को स्पष्ट कीजिये। (यू० पी० बोर्ड १९६३)

उत्तर—आधुनिक मनोविज्ञान ने यह भली-भांति सिद्ध कर दिया है कि लोगों की योग्यतायें व्यक्तित्व के गुण, सामर्थ्य तथा रुचियाँ एक दूसरे से भिन्न-भिन्न होती हैं। दूसरी ओर विभिन्न उद्योगों में भिन्न-भिन्न कामों के लिये कुछ विशेष योग्यताओं, व्यक्तित्व के गुणों और रुचियों की जरूरत होती है। इसलिये यह जरूरी हो जाता है कि विशेष काम के लिये विशेष प्रकार की योग्यता और गुण रखने वाले व्यक्ति का चुनाव किया जाय। इस प्रकार कर्मचारी वरण की समस्या उपस्थित होती है। कर्मचारी वरण की समस्या के दो पहलू हैं, एक तो नकारात्मक (Negative) और दूसरा स्वीकारात्मक (Positive)। नकारात्मक पहलू में किसी विशेष काम के लिये प्रार्थी लोगों में से अनुपयुक्त व्यक्तियों को छांटकर अलग कर देना पड़ता है। स्वीकारात्मक पहलू में प्रार्थियों में से उपयुक्त व्यक्तियों को चुनना पड़ता है। इस चुनाव में प्रार्थियों की रुचियों, आवश्यकताओं, योग्यताओं और अभिरुचियों आदि पर नजर रखनी पड़ती है।

कर्मचारी वरण की समस्या

यह कर्मचारी वरण क्यों किया जाता है, इसका मुख्य कारण व्यक्तिगत भिन्नता (Individual Difference) का तथ्य है। अनेक प्रयोगों से यह मालूम हुआ है कि आनुवंशिकता (Heredity) के भेद से लोगों की योग्यताओं में बहुत अन्तर पड़ जाता है। कुछ योग्यतायें जन्मजात होती हैं और प्रशिक्षण से उनमें अधिक अन्तर नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार मनुष्य की अभिरुचियाँ, मानसिक झुकाव आदि उसके बचपन के कुछ वर्षों में ही दिखाई पड़ने लगती हैं और न्यूनाधिक रूप में बड़े होने पर भी वैसी ही रहती हैं। इन अभिरुचियों का व्यक्तिगत जीवन में बड़ा महत्व होता है। आमतौर से जिस व्यक्ति की जिस ओर अभिरुचि

कर्मचारी वरण क्यों आवश्यक है ?

और मानसिक झुकाव होता है वह उसी काम को अधिक अच्छी तरह कर सकता है। सभी लोग कुशल इन्जीनियर नहीं बन सकते और न सभी लोग कुशल मैनेजर बन सकते हैं। कुछ बालकों में शुरू से ही हस्तकौशल और विज्ञान की ओर अच्छी रुचि दिखलाई पड़ती है। ऐसे ही बालक आगे चलकर वैज्ञानिक अथवा इन्जीनियर बन सकते हैं। इन सब मनोवैज्ञानिक तथ्यों से स्पष्ट है कि यह सोचना गलत है कि चाहे जिस आदमी को चाहे जिस काम पर लगाया जा सकता है और प्रशिक्षण दे कर चाहे जिस काम के योग्य बनाया जा सकता है। इसलिये आजकल उद्योग के क्षेत्र में कर्मचारी वरण का सब कहीं रिवाज है।

कर्मचारी वरण के दो पहलू

कर्मचारी वरण के कार्य के दो पहलू हैं। एक ओर तो इसमें उद्योग के हर एक काम का विवेचन करके और विश्लेषण करके यह पता लगाया जा सकता है कि उसके लिये कर्मचारियों में किन-किन योग्यताओं की जरूरत पड़ती है। दूसरी ओर उम्मीदवारों में से हर एक की परीक्षा करके यह निश्चय किया जाता है कि उसमें कौन-कौन सी योग्यतायें हैं। पहला कार्य विश्लेषण (Job Analysis) कहलाता है और दूसरा काम कर्मचारी विश्लेषण (Worker's Analysis)। कर्मचारी वरण की प्रक्रिया को अच्छी तरह से समझने के लिये उसके इन दोनों पहलुओं को विस्तार से समझना जरूरी है।

कार्य विश्लेषण
(Job Analysis)

कार्य विश्लेषण के उद्देश्य

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है कार्य विश्लेषण का मुख्य उद्देश्य कर्मचारी वरण होता है। परन्तु उसके कुछ अन्य उद्देश्य भी हो सकते हैं जैसे कार्य विधि में सुधार, कर्मचारियों को प्रशिक्षण, कर्मचारियों की पदोन्नति, दुर्घटना रोकना और स्वास्थ्य रक्षा आदि।

कार्य विश्लेषण क्या है ?

कार्य विश्लेषण की परिभाषा करते हुये ब्लम (Blum) ने लिखा है, "एक कार्य विश्लेषण एक कार्य के विभिन्न तथ्यों का सूक्ष्म अध्ययन है। उसका सम्बन्ध केवल कार्य के कर्तव्यों और दशाओं के विश्लेषण से ही नहीं होता है बल्कि कर्मचारी की व्यक्तिगत विशेषताओं से भी होता है।"* जैसा कि कार्य विश्लेषण की इस परिभाषा से स्पष्ट है, उससे यह मालूम पड़ता है कि विशेष कार्य अथवा व्यवसाय में व्यक्ति के क्या कर्तव्य होंगे और उसे कैसी परिस्थितियों में काम

---

* "A Job analysis is an accurate study of the various components of a job. It is concerned not only with an analysis of the duties and conditions of work, but also with the individual qualifications of the worker." —M. L. Blum.

करना पड़ेगा। उससे यह भी मालूम पड़ता है कि भिन्न-भिन्न कार्यों के लिये कर्मचारियों में कौन-कौन सी व्यक्तिगत विशेषतायें होनी चाहियें। हैकेट (Hackett, J.D.) के अनुसार कार्य विश्लेषण के अन्तर्गत "कार्य के मूल तत्वों का निर्धारण और स्पष्टीकरण हो जाता है साथ ही कर्मचारी में अपेक्षित योग्यता का भी पता चल जाता है जिससे वह उस कार्य को सफलतापूर्वक कर सके"। अतः स्पष्ट है कि कार्य विश्लेषण के दो पहलू हैं, एक तो कार्य के कर्तव्यों और दशाओं का विश्लेषण और दूसरे उसके लिये कर्मचारी में अपेक्षित योग्यताओं का विश्लेषण।

कार्य विश्लेषण के लाभ

कार्य विश्लेषण के अनेक लाभ हैं। जेरगा (Zerga) ने कार्य विश्लेषण से सम्बन्धित ४०१ लेखों के आधार पर कार्य विश्लेषण के बीस लाभ अथवा उपयोगितायें बतलाई हैं। कार्य विश्लेषण से कार्य कुशलता बढ़ती है। कार्य विश्लेषण से कर्मचारियों में सद्भावना बढ़ती है क्योंकि उपयुक्त कार्य मिलने से हर एक प्रसन्न रहता है। कार्य विश्लेषण से यह निश्चित किया जा सकता है कि उस कार्य के लिये कर्मचारी को क्या पारिश्रमिक मिलना चाहिये। कार्य विश्लेषण से व्यवसायों का वर्गीकरण किया जाता है और इनके लिये आवश्यक विशेषताओं और योग्यताओं को निश्चित किया जा सकता है। कार्य विश्लेषण से यह निश्चित किया जा सकता है कि किस काम में कर्मचारी की कितने समय तक किस तरह के प्रशिक्षण की आवश्यकता है। कार्य विश्लेषण से हर एक कार्य के कर्तव्य निश्चित होते हैं। उससे हर एक कार्य में कर्मचारियों के उत्तरदायित्व निश्चित होते हैं।

कार्य के विभिन्न अवयव

अब सबसे पहले कार्य विश्लेषण में कार्य के विभिन्न अवयवों (Components) के सम्बन्ध में उल्लेख किया जायेगा। इस सम्बन्ध में एकत्रित की जाने वाली सूचनाओं के शीर्षक निम्नलिखित हैं :—

(१) कार्य का नाम (Identification of the Job)
(२) कर्मचारियों की संख्या (Number of Employed)
(३) कर्तव्यों का विवरण (Statement of Duties)
(४) काम में आने वाले यन्त्र (Machines Used)
(५) क्रियाओं का विश्लेषण (Analysis of Operations)
(६) कार्य की दशायें (Conditions of Work)
(७) वेतन और प्रलोभन (Pay and Incentives)
(८) अन्य समान व्यवसायों से सम्बन्ध में कार्य का स्थान
(Relation to other Allied Jobs)
(९) स्थानान्तरण और पदोन्नति के अवसर
(Opportunities for Transfer and Promotion)

(१०) प्रशिक्षण का काल और उसकी प्रकृति
(Time and Nature of Training)

(११) व्यक्तिगत योग्यतायें (Personal Requirements)
(क) सामान्य-आयु, लिंग राष्ट्रीयता, विवाह आदि
(General Age, Sex, Nationality, Marital Status)
(ख) शारीरिक (Physical)
(ग) शैक्षिक (Educational)
(घ) पूर्व अनुभव (Previous Experience)
(ङ) सामान्य तथा विशेष मानसिक योग्यतायें
(General and Special Abilities)
(च) स्वभाव एवं चरित्र सम्बन्धी योग्यतायें
(Temperamental and Character Requirements)

जैसा कि उपरोक्त सूची से स्पष्ट है, कार्य विश्लेषण में कार्य के बारे में सूचनाओं का विस्तारपूर्वक संग्रह किया जाता है।

कार्य विश्लेषण में अनेक विधियों का प्रयोग किया जाता है। मुख्य विधियाँ निम्नलिखित हैं :—

कार्य विश्लेषण की विधियाँ
(१) वैयक्तिक मनोरेखांकन विधि (Individual Psychographic Method)
(२) प्रश्नावली विधि (Questionnaire Method)
(३) कार्य मनोरेखांकन विधि (Job Psychographic (Method)
(४) परीक्षण विधि (Job Analysis by Text)
(५) गति अध्ययन विधि (Motion Study Method)

अब इन विधियों का संक्षिप्त वर्णन किया जायेगा :—

(१) **वैयक्तिक मनोरेखांकन विधि**—इस विधि में विशेष कार्य में सफल किसी कर्मचारी की मानसिक विशेषताओं का पता लगाया जाता है। इन विशेषताओं की एक सूची बनाई जाती है और उनको ग्राफ (Graph) कागज पर चित्रित किया जाता है। इससे भविष्य में उस कार्य के लिये कर्मचारी चुनने में सहायता मिलती है।

(२) **प्रश्नावली विधि**—प्रश्नावली विधि में, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है कार्य से सम्बन्धित व्यक्तित्व के विभिन्न गुणों के आधार पर कुछ प्रश्नों की एक सूची बना ली जाती है। इस सूची को उस कार्य को करने वाले कर्मचारियों को दे दिया जाता है और उनसे उसके उत्तर लिखने के लिये कहा जाता है। जो उत्तर मिलते हैं उनके आधार पर कार्य में आवश्यक विशेषताओं की एक सूची बना ली जाती है। अब इसकी सहायता से भविष्य में उस कार्य के लिये कर्मचारियों को नियुक्त किया जा सकता है।

(३) **कार्य मनोरेखांकन विधि**—वाइटलीज (Viteles) के अनुसार कार्य मनोरेखांकन विधि में तीन बातें आवश्यक हैं :—

(अ) मानसिक गुणों का सुगम वर्गीकरण।

(ब) प्रामाणिक मुल्यांकन टेकनीक।

(स) प्रशिक्षित निरीक्षकों द्वारा प्रत्यक्ष पर्यावलोकन।

इस प्रकार इस विधि में कुछ विशेषज्ञ निरीक्षण कार्य का विश्लेषण करते हैं। वे एक प्रामाणिक मूल्यांकन टैकनीक निकालते हैं। वे एक ऐसी सूची बनाते हैं जिसमें कार्य के लिये आवश्यक सभी मानसिक गुणों का सुगम वर्गीकरण दिया रहता है। इन गुणों का एक रेखा-चित्र बना लिया जाता है जिससे कर्मचारियों के चुनाव में सहायता मिलती है।

(४) **परीक्षण विधि**—परीक्षण विधि में विशेष कार्य में आवश्यक योग्यताओं को लेकर कुछ विश्वसनीय और प्रामाणिक परीक्षायें बना ली जाती हैं। इन परीक्षाओं की सहायता से कर्मचारियों का चुनाव किया जाता है।

(५) **गति अध्ययन द्वारा कार्य विश्लेषण**—इस विधि में विशेष काम में कर्मचारी की गति और पर लगा समय नोट किया जाता है। इस प्रकार से भिन्न-भिन्न कर्मचारियों की गति और समय को नोट करके उनकी तुलना की जाती है। गति और समय के इस अध्ययन से कार्य विश्लेषण और कर्मचारियों के वरण में सहायता मिलती है।

कार्य विश्लेषण में उपरोक्त विधियों में से किसी भी एक या अधिक से परि-स्थिति के अनुसार काम लिया जा सकता है।

कर्मचारी विश्लेषण

(Worker's Analysis)

कर्मचारी विश्लेषण में आवश्यक तत्व

कर्मचारी वरण में दूसरा पहलू कर्मचारी विश्लेपण का है। कर्मचारी विश्लेषण में जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है प्रार्थी कर्मचारी के गुण, योग्यतायें, अनुभव तथा अन्य बातों के बारे में विस्तृत विवरण एकत्रित किया जाता है। स्थूल रूप से कर्मचारी विश्लेषण में निम्नलिखित बातों की जानकारी की जाती है :—

(१) कर्मचारी की आयु (Age)

(२) कर्मचारी की जाति (Caste)

(३) कर्मचारी का लिंग (Sex)

(४) कर्मचारी की राष्ट्रीयता (Nationality)

(५) शारीरिक स्वास्थ्य तथा शारीरिक विशेषतायें
(Physical Health and characteristics)

(६) कर्मचारी की शिक्षा और प्रशिक्षण (Education and Training)

(७) कर्मचारी का अनुभव (Experience)
(८) कर्मचारी की बुद्धि का स्तर (Level of Intelligence)
(९) कर्मचारी की मानसिक योग्यतायें तथा उनका स्तर
(Mental Abilities and their level)
(१०) कर्मचारी की रुचि तथा अभिरुचियाँ (Interests and Aptitudes)
(११) कर्मचारी की व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषतायें (Personality Traits)।

कर्मचारी के सम्बन्ध में उपरोक्त जानकारी एकत्रित करने से यह निश्चित किया जा सकता है कि वह किस तरह के कार्य के योग्य है और किस तरह के कार्य के योग्य नहीं है। कर्मचारी विश्लेषण से यह भी मालूम होता है कि विशिष्ट व्यक्ति को विशेष व्यवसाय में जाने के लिये कितने समय के और किस प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता है। कर्मचारी विश्लेषण से इस बात का भी कुछ न कुछ अनुमान लगाया जा सकता है कि विशेष कर्मचारी को विशेष काम के लिये कितना पारिश्रमिक दिया जाना चाहिये। कर्मचारी विश्लेषण व्यक्ति की व्यक्तिगत विशेषताओं का चित्र उपस्थित करता है। इसलिये इसको व्यक्ति विश्लेषण (Individual Analysis) भी कहा जाता है।

कर्मचारी विश्लेषण की विधियाँ

कर्मचारी विश्लेषण आजकल वैज्ञानिक स्तर पर किया जाता है। इसलिए इसमें कुछ विशेष विधियाँ इस्तेमाल की जाती हैं। स्थूल रूप से कर्मचारी विश्लेषण की मुख्य विधियाँ (Methods) निम्नलिखित हैं :—

(१) आवेदन-पत्र (Application Blank)
(२) संस्तुति पत्र (Letters of Recommendation)
(३) शैक्षिक आलेख (Academic Records)
(४) मनोवैज्ञानिक परीक्षण (Psychological Tests)
(५) शारीरिक परीक्षण (Physical Tests)
(६) सामूहिक निरीक्षण (Group Tests)
(७) मूल्यांकन (Rating)
(८) साक्षात्कार (Interview)।

यह आवश्यक नहीं है किसी कर्मचारी की योग्यताओं का विश्लेषण करने के लिये उपरोक्त सभी विधियों का इस्तेमाल किया जाय। विशेष परिस्थिति के अनुसार इनमें से किसी भी विधि का इस्तेमाल किया जा सकता है। अब इन सब विधियों को संक्षेप में समझ लेना प्रासंगिक होगा।

(१) **आवेदन-पत्र**—आजकल कर्मचारी विश्लेषण में सबसे पहले कर्मचारी को एक आवेदन पत्र भरना पड़ता है। इस आवेदन पत्र के द्वारा विभिन्न प्रकार की

सूचनाओं का पता लगाया जाता है। कभी-कभी तो इससे व्यक्ति का पूरा पिछला इतिहास ही का पता लगा लिया जाता है। आवेदन-पत्र में उम्मीदवार अपनी आयु, लिंग, जाति, राष्ट्रीयता, पिछला अनुभव, शिक्षा का स्तर, प्रशिक्षण, व्यक्तिगत इतिहास आदि के विषय में सूचनायें देता है। आवेदन-पत्र में किस तरह की सूचनायें दी जानी जरूरी हैं यह भिन्न-भिन्न व्यवसायों के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार से निश्चित किया जाता है। जिन व्यवसायों में कर्मचारी की अभिरुचियों, मानसिक झुकाव, रूचि आदि का भी महत्व होता है उनमें आवेदन-पत्र में उनके विषय में भी लिखना होता है। बहुत से सेवा योजक यह विस्तारपूर्वक नहीं बतलाते कि कर्मचारी को आवेदन पत्र में किन-किन बातों का उल्लेख करना है। व्यवसाय के विज्ञापन में वे केवल दो चार बातें ही लिखकर छोड़ देते हैं। इस तरह का आवेदन-पत्र वैज्ञानिक नहीं होता। आवेदन-पत्र में हर एक आवश्यक बात के बारे में विस्तारपूर्वक उल्लेख होना चाहिए। इस दिशा में अनुसंधान करने से अलग-अलग व्यवसायों के उपयुक्त आवेदन पत्रों की रूपरेखा बनाई जा सकती है और उसके अनुसार प्रार्थियों को भरने के लिए आवेदन-पत्र के रिक्त पत्र (Blank Forms) दिए जा सकते हैं। बहुधा आवेदन-पत्र में लिखे गये तथ्यों के पक्ष में प्रमाण-पत्र भी पेश करने पड़ते हैं।

(२) संस्तुति पत्र—कर्मचारी विश्लेषण में संस्तुति पत्र भी सहायक होते हैं। इनमें उम्मीदवार अपने पिछले सेवा योजक (Employer), अपने स्कूल या कालिज के प्रधानाचार्य या कुछ सम्मानित और प्रतिष्ठित व्यक्तियों के सिफारिश के पत्र पेश करता है। इन पत्रों में सिफारिश के साथ-साथ व्यक्ति की कुछ योग्यताओं को भी प्रमाणित किया जाता है। कभी-कभी इस तरह के पत्रों में बहुत-सी भ्रामक बातें भी शामिल होती हैं। उदाहरण के लिये व्यक्ति में ऐसे बहुत से गुण बताये जाते हैं जो कि उसमें नहीं होते अथवा उसके गुणों को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बताया जाता है। ऐसे संस्तुति पत्र कार्य विश्लेषण में सहायता देने की अपेक्षा बाधक ही सिद्ध होते हैं परन्तु यदि संस्तुति पत्र प्रमाणिक हों तो उनसे व्यक्ति के विश्लेषण में सहायता मिल सकती है।

(३) शैक्षिक आलेख—भिन्न-भिन्न व्यवसायों के लिये शिक्षा के भिन्न-भिन्न स्तर की आवश्यकता होती है। शैक्षिक आलेख व्यक्ति की शिक्षा सम्बन्धी योग्यता के प्रमाण-पत्र होते हैं। इनमें कभी-कभी विद्यालयों में संचित जीवन-वृत्त (Cumulative Records) भी शामिल होते हैं।

(४) मनोवैज्ञानिक परीक्षण—परन्तु व्यक्ति विश्लेषण की सबसे प्रामाणिक और महत्वपूर्ण विधि मनोवैज्ञानिक परीक्षण है। मनोवैज्ञानिक परीक्षण में उम्मीदवार की मानसिक योग्यता, रुचि, व्यक्तित्व तथा विशेष तौर से अभिरुचि की परीक्षा की जाती है। इन परीक्षणों के जो परिणाम आते हैं उनका बड़ी होशियारी से प्रयोग किया जाना चाहिये क्योंकि कभी-कभी उनमें कुछ गलतियाँ भी हो सकती हैं।

(५) शारीरिक परीक्षण—कुछ व्यवसायों में कुछ विशेष शारीरिक योग्यताओं की आवश्यकता होती है जैसे रेलवे गार्ड की नेत्र शक्ति सामान्य होनी चाहिये। इससे व्यक्ति विश्लेषण में भिन्न-भिन्न व्यवसायों में उम्मीदवारों की भिन्न-भिन्न प्रकार की शारीरिक परीक्षायें होती हैं। आजकल सरकारी नौकरियों में शारीरिक परीक्षा लगभग अनिवार्य ही हो गई है।

(६) सामूहिक निरीक्षण—कुछ व्यवसायों में कर्मचारियों को सामूहिक रूप से काम करना पड़ता है अथवा उनका दूसरे कर्मचारियों से अधिक सम्बन्ध आता है। ऐसे व्यवसायों में कर्मचारियों में कुछ सामूहिक व्यवहार सम्बन्धी योग्यताओं की भी आवश्यकता होती है। इनकी जानकारी के लिये उम्मीदवारों का सामूहिक निरीक्षण किया जाता है अर्थात् समूह में उनके व्यवहार की जाँच की जाती है।

(७) मूल्यांकन—कर्मचारी विश्लेषण में उम्मीदवारों के स्कूल कालिजों के अध्यापकों, प्रधानाचार्यों तथा मनोवैज्ञानिकों के मूल्यांकन का भी महत्व होता है। इसलिये कभी-कभी कर्मचारी विश्लेषण में इनकी भी सहायता ली जाती है।

(८) साक्षात्कार—अन्त में आजकल अधिकतर व्यवसायों में नियुक्ति करने से पहले सेवा योजक तथा कुछ विशेषज्ञ लोग उम्मीदवारों से साक्षात्कार करते हैं। साक्षात्कार में, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है साक्षात्कारकर्ता व्यक्ति अथवा समूह और प्रार्थी आमने-सामने बैठकर बातचीत करते हैं। साक्षात्कार में सभी लोग प्रार्थी से किसी न किसी तरह का प्रश्न करते हैं। जब एक व्यक्ति प्रश्न करता होता है तो उस समय भी ऐसी बातें मालूम होती हैं जो किसी भी अन्य विधि से मालूम नहीं हो सकती थीं। इससे व्यक्ति के आत्म-विश्वास, आत्म-नियन्त्रण, अनुशासन प्रियता, तत्परता, सुरुचि, वेशभूषा, आचार, व्यवहार, व्यक्तित्व की आकर्षकता तथा शिष्टाचार आदि बहुत-सी बातों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। परन्तु इसके लिए साक्षात्कार करने वाले लोग भी प्रशिक्षित और समझदार होने चाहियें अन्यथा साक्षात्कार में प्रार्थी के विषय में बहुत कुछ भ्रम हो सकता है।

कर्मचारी वरण के दोनों पहलू अर्थात् कार्य विश्लेषण और कर्मचारी विश्लेषण के उपरोक्त विस्तृत विवेचन से कर्मचारी वरण की विधि स्पष्ट हो जाती है। कार्य विश्लेषण और कर्मचारी विश्लेषण के बाद कर्मचारी वरण में अब केवल इतना ही शेष रह जाता है कि कर्मचारी विश्लेषण से जो व्यक्ति विशेष कार्य के लिये सबसे अधिक उपयुक्त पाया जाय उसको उस कार्य पर नियुक्त कर दिया जाय।

व्यावसायिक चुनाव और व्यावसायिक निर्देशन के अन्तर के लिये प्रश्नोत्तर संख्या १४ देखिये।

*

प्रश्न ५४—उद्योग में कार्य की दशाओं का क्या महत्व है? कार्य की विभिन्न दशाओं का वर्णन करते हुये उनमें सुधार के सुझाव दीजिये।

कार्य की दशायें

भिन्न-भिन्न कारखानों में, दफ्तरों में तथा अन्य व्यवसायों में कर्मचारी के कार्य करने की कुछ दशायें होती हैं। उदाहरण के लिये उसको एक विशेष मात्रा के प्रकाश में, एक विशेष स्थान पर, कोई विशेष काम करना पड़ता है। कार्य के स्थान की हवा कैसी है अर्थात् वहाँ स्वच्छ हवा का उचित प्रबन्ध है या नहीं, इससे कर्मचारी के स्वास्थ्य पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। कार्य करने के स्थान पर प्रकाश का कैसा प्रवन्ध है, इससे कर्मचारी के नेत्रों की ज्योति के साथ-साथ उसकी थकान और उसकी कार्यक्षमता तथा उसके कार्य के गुण पर भी प्रभाव पड़ता है। यह सभी लोग जानते हैं कि कभी-कभी शोर काम में बाधक होता है। इसलिये कार्य की दशाओं में यह भी देखा जाता है कि कार्य के स्थान पर कितना शोर रहता है। कुछ विशेष तापमान व्यक्ति की कार्यक्षमता के लिये हानिकारक होते हैं और कुछ विशेष तापमान में वह अधिक अच्छा काम कर सकता है। इसलिये कार्य की दशाओं में तापमान का भी अध्ययन किया जाता है। इन भौतिक दशाओं के अलावा बहुत-सी मनोवैज्ञानिक दशायें भी कर्मचारी को और उसके कार्य को प्रभावित करती हैं जैसे अधिकारियों का व्यवहार, कर्मचारियों के परस्पर सम्वन्ध, कर्मचारियों का पारिवारिक जीवन, कार्य में प्रलोभन इत्यादि।

इस प्रकार कार्य करने की दशाओं को दो भागों में बांटा जा सकता है :—

(१) भौतिक दशायें (Physical Conditions)

(२) मनोवैज्ञानिक दशायें (Psychological Conditions)

भौतिक दशाओं में मुख्य दशायें निम्नलिखित हैं :—

(१) प्रकाश की तीव्रता, स्थिति, वितरण और रंग (Intensity, Location Distribution and Colour of light)

कार्य की भौतिक दशायें

(२) तापमान (Temperature)

(६) वायु संचार (Ventilation)

(४) कोलाहल (Noise)

(५) कार्य के घण्टे (Working Hours)

(६) कार्य के बीच में आराम (Rest Pauses)

(७) संगीत (Music)

(८) अन्य भौतिक दशायें (Others Physical Conditions)

कार्य की मनोवैज्ञानिक दशाओं में मुख्य निम्नलिखित हैं :—

(१) अधिकारियों का व्यवहार (Behaviour of the Authorities)

(२) कर्मचारियों के परस्पर सम्बन्ध (Mutual Relations of the Employees)
(३) सुरक्षा (Security)
(४) आवश्यकताओं की पूर्ति (Satisfaction of Needs)
(५) प्रलोभन (Incentives)

अब कार्य की विभिन्न भौतिक दशाओं का संक्षेप में वर्णन किया जायेगा :—

(१) प्रकाश

(i) प्रकाश की तीव्रता—भिन्न-भिन्न कामों में और भिन्न-भिन्न आयु के लोगों के लिये प्रकाश की तीव्रता भिन्न-भिन्न तरह की होनी चाहिये। साधारण रूप में ३५ वर्ष से अधिक आयु के लोगों को अपेक्षाकृत अधिक तीव्र प्रकाश की आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार यदि कार्य वारीक है तो उसमें भी प्रकाश तीव्र होना चाहिये। कम आयु के लोगों को और मोटे काम में तीव्र प्रकाश की जरूरत नहीं है। प्रकाश कभी भी इतना तीव्र नहीं होना चाहिये कि उससे चकाचौंध उत्पन्न हो और न कभी इतना मन्द होना चाहिये कि उसमें काम करने से आंखों पर जोर पड़े। जिन कामों में तीव्र प्रकाश की जरूरत पड़ती है उनमें नेत्रों की रक्षा करने के लिये विशेष तरह के चश्मे इस्तेमाल किये जा सकते हैं।

(ii) प्रकाश की स्थिति—प्रकाश की स्थिति ऐसी होनी चाहिये कि प्रकाश सीधे आँखों पर न पड़े बल्कि उस यन्त्र पर पड़े जिससे काम लेना है परन्तु यन्त्र पर भी ऐसा प्रकाश नहीं पड़ना चाहिये जिससे कि चकाचौंध पैदा हो। इसलिए प्रकाश का समान रूप से वितरण होना चाहिये। समान वितरण के लिये बल्ब के प्रकाश की अपेक्षा ट्यूब (Tube) का प्रकाश अधिक अच्छा रहता है।

(iii) प्रकाश का वितरण—दिन का प्रकाश स्वयं ही समान रूप से वितरित होता है। जहां रात्रि में काम किये जाते हैं वहाँ प्रकाश के वितरण का विशेष रूप से ध्यान रखने की जरूरत है।

(iv) प्रकाश का रंग—प्रकाश की तीव्रता, स्थिति और वितरण के साथ-साथ उसके रंग के सम्वन्ध में भी ध्यान रखना जरूरी है। इस बारे में एक सामान्य सिद्धान्त यह है कि जो प्रकाश दिन के प्रकाश से जितना ही अधिक मिलता-जुलता होगा वह उतना ही अच्छा रहेगा। इसलिये सफेद प्रकाश सर्वोत्तम माना गया है। रंगीन प्रकाश में केवल हल्का पीला प्रकाश उत्तम है। अन्य सभी प्रकार के प्रकाश आंखों को कुछ न कुछ हानि पहुँचाते हैं।

(२) तापमान

काम करने के स्थान के तापमान का कर्मचारी के शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। आवश्यकता से अधिक और आवश्यकता से कम तापमान होने पर बीमारियाँ और दुर्घटनायें बढ़ जाती हैं। उचित तापमान होने पर श्रमिकों का स्वास्थ्य अच्छा रहता है और दुर्घटनायें भी कम होती हैं। एच० एम० वर्नन (H. M. Vernon)

ने ब्रिटेन के खान मजदूरों के विषय में यह पता लगाया कि ७५ डिग्री (75° F) से अधिक तापमान होने पर अधिक दुर्घटनायें होती हैं। तापमान का एक दूसरा प्रभाव कर्मचारियों की अनुभूति पर भी पड़ता है। अधिक या कम तापमान होने पर कर्मचारी को तकलीफ महसूस होती है जिससे कि उसके कार्य के गुण और मात्रा में कमी आ जाना स्वाभाविक है। तापमान का कमरे में वायु के संचार पर भी प्रभाव पड़ता है। कमरे में वायु का संचार ठीक होने के लिये भी यह आवश्यक है कि कमरे में उपयुक्त तापमान हो।

(३) वायु संचार

काम करने के स्थान पर शुद्ध हवा का आना बहुत जरूरी है। ऐसा न होने पर कर्मचारियों में सुस्ती और थकान बढ़ने लगती है। खानों में, कल कारखानों में और उन दफ्तरों में जहाँ बहुत से लोग बहुत समय तक काम करते हैं वायु काफी दूषित हो जाती है। इसके लिये वायु को बाहर फेंकने वाले पंखों का प्रयोग किया जाना चाहिए। काम करने के स्थान पर यातायात का पर्याप्त इन्तजाम होना चाहिए। वायु में आक्सीजन की मात्रा कम होने पर उसका स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। पौफेनबर्जर (Poffenberger) के अनुसार, जब वायु में आक्सीजन की मात्रा १४ प्रतिशत से कम होने लगती है तभी उसमें काम करने वालों पर बुरा प्रभाव पड़ने लगता है। वायु संचार का शरीर के तापमान पर भी प्रभाव पड़ता है। वायु संचार ठीक न होने पर त्वचा का तापमान भी ठीक नहीं रह पाता जिससे सुस्ती और थकावट बढ़ती है। इस सम्बन्ध में वायु की नमी की मात्रा का भी ध्यान रखना जरूरी है। आवश्यकता से अधिक नमी होने पर उसका बुरा प्रभाव पड़ सकता है।

(४) कोलाहल

अत्यधिक शोर या जरूरत से ज्यादा कोलाहल आमतौर से ध्यान बंटाता है और काम में बाधा डालता है। इसलिए आजकल सभी उद्योगों में कोलाहल की मात्रा का अध्ययन किया जाता है और आवश्यकता से अधिक कोलाहल को नियन्त्रित करने का उपाय किया जाता है। परन्तु कभी-कभी बराबर होने वाला कोलाहल कार्य में कोई बाधा नहीं डालता, बल्कि उल्टे कोलाहल के भंग होने से ध्यान भंग होता है। वास्तव में बात यह है कि केवल बहुत जोर का कोलाहल ही काम में बाधक होता है और उसका कानों पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। इन सब बातों को ध्यान में रखकर कोलाहल का नियन्त्रण किया जाना चाहिये।

(५) कार्य के घण्टे

जिन व्यवसायों में कार्य के घण्टे इतने अधिक होते हैं कि कर्मचारी अत्यधिक थक जाते हैं और उनकी क्षमता दिन-पर-दिन घटने लगती है उनमें मानवीय सम्बन्धों में तरह-तरह की समस्यायें दिखाई पड़ती है। मजदूर की शक्ति से अधिक काम के घण्टे होने से उसका स्वास्थ्य और सामर्थ्य घट जाते हैं और वह चिड़चिड़ा भी हो जाता है।

इसलिये आजकल हर एक प्रगतिशील देश में सरकार नियम बनाकर भिन्न-भिन्न व्यवसायों में और भिन्न-भिन्न आयु के कर्मचारियों के लिये तथा विभिन्न लिंग के कर्मचारियों के लिये कार्य के अधिकतम घण्टे निश्चित कर देती है। इनसे अधिक काम लेना या तो गैर-कानूनी माना जाता है या उसके लिये श्रमिक को अतिरिक्त पारिश्रमक देने की व्यवस्था की जाती है। इन नियमों का उल्लंघन करने पर व्यवसायों के मालिकों को दण्ड दिया जाता है।

(६) कार्य के बीच में आराम

कोई भी आदमी चाहे उसकी सामर्थ्य कितनी भी अधिक क्यों न हो लगातार बहुत घण्टों तक काम नहीं कर सकता। कुछ घण्टे कार्य करने के बाद हर एक को आराम की जरूरत पड़ती है। प्रयोगों से यह मालूम हुआ है कि लगातार काम करने की अपेक्षा काम के बीच-बीच में आराम लेकर काम करने से काम अधिक अच्छा और अधिक मात्रा में होता है। काम के बीच में आराम देने से उत्पादन में दस से बीस प्रतिशत की वृद्धि पाई गई है। इस काम में कितने समय के बाद, किस व्यक्ति को, कितने आराम की जरूरत है, यह व्यक्ति की सामर्थ्य और काम की प्रकृति पर निर्भर है। कठिन कामों में आसान कामों की अपेक्षा शीघ्र और अधिक समय तक आराम की जरूरत है। इसी तरह स्त्रियों, बालकों और बूढ़ों को अपेक्षाकृत शीघ्र और अधिक आराम की आवश्यकता होती है। आजकल साधारणतया हर एक व्यवसाय में काम के बीच में एक या दो बार १५ मिनट से लेकर एक घण्टे तक का अवकाश दिया जाता है जिससे कि कर्मचारी जलपान, भोजन आदि ले सके और आराम कर सके। काम के बीच में अवकाश देने से थकान तो दूर होती ही है, साथ ही साथ ऊब भी कम हो जाती है और काम में रुचि तथा उत्साह बढ़ते हैं।

(७) संगीत

आजकल काम की दशाओं में संगीत की भी गिनती की जाती है। केर (W. A. Keir) तथा स्मिथ (H. C. Smith) ने अपने प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकाला कि संगीत से कर्मचारी की मानसिक स्थिति पर अच्छा प्रभाव पड़ता है और उत्पादन में भी कुछ न कुछ वृद्धि ही होती है। यूं भी काम करने वालों को विशेष रूप से मजदूरों को काम करते हुए गाते देखा जा सकता है। भारतवर्ष में स्त्रियाँ चक्की पीसते समय, खेतों में काम करते समय तथा अन्य अवसरों पर गाती हुई देखी जा सकती हैं। संगीत में लय का काम की गति पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। भारतवर्ष में टाटा के कारखाने में संगीत की व्यवस्था है। पश्चिमी देशों में विशेषकर अमेरीका में कारखानों में संगीत का प्रयोग बराबर बढ़ता जा रहा है। स्मिथ (H. C. Smith) ने अपनी प्रश्नावली के द्वारा एक हजार श्रमिकों का संगीत के सम्बन्ध में मत संग्रह किया। इससे मालूम हुआ कि ९८ प्रतिशत कर्मचारी काम के घण्टों में संगीत से आनन्द प्राप्त करते हैं। काम पर संगीत के प्रभाव के सम्बन्ध में अभी बराबर अनुसंधान किये जा रहे हैं।

उपरोक्त भौतिक दशाओं के अलावा अन्य भौतिक दशाओं का भी कर्मचारियों पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिये यदि शौचालय, मूत्रालय, स्नानागार, जल-पानग्रह, कैन्टीन आदि की व्यवस्था हो तो कर्मचारियों के कार्य का समय अधिक रोचक हो जाता है और उनकी बहुत-सी परेशानियाँ भी दूर हो जाती हैं। कार्य करने के स्थान पर बदबू नहीं होनी चाहिये। गंदगी और धूल का कर्मचारियों की मन:स्थिति पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(८) अन्य भौतिक दशायें

कार्य की दशाओं में मुख्य मनोवैज्ञानिक दशाओं का प्रभाव इस प्रकार है—

(१) अधिकारियों का व्यवहार—अधिकारियों के व्यवहार का कर्मचारियों के मन:स्थिति पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। यदि व्यवहार अच्छा रहा तो कर्मचारियों में उत्साह और आनन्द बना रहता है। यदि व्यवहार बुरा हुआ तो बहुधा अधिकारियों और कर्मचारियों में झगड़ा होने की नौबत आ आती है और कुछ न कुछ तनातनी बराबर बनी रहती है। यह आवश्यक नहीं कि है अच्छे व्यवहार के लिये कर्मचारियों के साथ ढिलाई के साथ काम लिया जाय, क्योंकि ऐसी हालत में सुस्त और मक्कार कर्मचारी निश्चित ही कम कार्य करेंगे। इसलिये अधिकारियों को कर्मचारियों के काम पर बराबर नजर रखनी चाहिये। परन्तु उनकी गलतियाँ बतलाने में बड़ी चतुरता से काम लेना चाहिये। जो लोग कर्मचारियों को बराबर डाँटते फटकारते हैं उनका कर्मचारियों से बहुधा संघर्ष होता रहता है। अधिकारी के चापलूसी पसन्द, क्रोधी अथवा चिड़चिड़े होने पर कर्मचारी मन लगाकर काम नहीं करते। अधिकारियों का व्यवहार अच्छा होने पर कर्मचारी तो प्रसन्न रहते ही हैं साथ-साथ उत्पादन का गुण और मात्रा भी बढ़ती है।

कार्य की मनोवैज्ञानिक दशायें

(२) कर्मचारियों के परस्पर सम्बन्ध—कार्य करने की मनोवैज्ञानिक दशाओं में कर्मचारियों के परस्पर सम्बन्ध का भी प्रभाव पड़ता है। जहाँ एक से अधिक कर्मचारी काम करते हैं वहाँ पर उनके सम्बन्ध अच्छे होने पर काम में उत्साह और आनन्द बना रहता है। सम्बन्ध खराब होने पर काम की हानि होती है और सामूहिक उत्तरदायित्व वाले काम तो बहुत ही पिछड़ जाते हैं।

(३) व्यवसाय में सुरक्षा—व्यवसाय में सुरक्षा का कर्मचारी की मन:स्थिति पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। जिस व्यवसाय में कोई सुरक्षा न हो, जिसमें यह पता न हो कि मालिक कब नौकरी से निकाल देगा उसमें कर्मचारी कैसे दिल लगाकर काम कर सकता है और काम में उसका उत्साह कैसे बना रह सकता है? अत: व्यवसाय में सुरक्षा बड़ी जरूरी है। एक निश्चित समय के बाद सभी कर्मचारियों को उनके व्यवसाय पर स्थाई रूप से नियुक्त कर देना चाहिये। आजकल अधिकतर देशों में सरकार ने इस सम्बन्ध में कानून भी बना रखे हैं। व्यवसाय की सुरक्षा के अलावा बेकारी में सुरक्षा, बुढ़ापे में सुरक्षा और अपाहिज हो जाने की दशा में सुरक्षा भी

महत्वपूर्ण है। आजकल सभी प्रगतिशील देशों में सरकार और सेवा योजकों की ओर से इस प्रकार की सुरक्षा का भी समुचित प्रबन्ध होता है। ऐसा न होने पर कर्मचारी को भविष्य की चिन्ता लगी रहती है और वह अपने को असहाय समझता है।

(४) आवश्यकताओं की पूर्ति—हर एक व्यक्ति की निजी और अपने परिवार सम्बन्धी कुछ आवश्यकतायें होती हैं। उसको और उसके बच्चों को रोटी कपड़ा चाहिये, मकान चाहिये तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पर्याप्त धन चाहिए। इसके अलावा आत्म-सम्मान आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति भी जरूरी है। आजकल प्रगतिशील देशों में सेवायोजकों को इस दिशा में भी कर्मचारियों का ध्यान रखना पड़ता है। इसके लिये उनको कर्मचारियों के कल्याण की अनेक योजनायें चलानी पड़ती हैं। इन योजनाओं में कुछ रुपया तो अवश्य खर्च होता है परन्तु इनसे कर्मचारियों को बड़ा लाभ होता है। उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति होने से वे मालिकों का सम्मान करते हैं। उनका सुख और आनन्द बना रहता है और वे जी लगा कर काम करते हैं। उनको मालिकों में विश्वास रहता है और इसीलिये वे ऐसे काम नहीं करते जिससे मालिकों को नुकसान हो।

(५) उद्योग में प्रलोभन—मनुष्य के जीवन में प्रेरणाओं का बड़ा महत्व है। प्रेरणा के वगैर न तो कोई अधिक परिश्रम कर सकता है और न अपने काम को बेहतर बनाने की कोशिश कर सकता है। उद्योग और व्यवसाय में इस तरह की प्रेरणा नाना प्रकार के प्रलोभनों से मिलती है, जैसे वेतन वृद्धि, अधिकारियों द्वारा प्रशंसा, पदोन्नति अथवा लाभांश (Bonus) मिलना। आजकल उद्योग में प्रलोभनों का भी विशेष ध्यान रखा जाता है। प्रगतिशील देशों में अधिकतर उद्योगों में उत्पादन बढ़ने पर श्रमिकों को लाभांश दिया जाता है। अधिकतर व्यवसायों में अच्छा काम दिखाने पर कर्मचारी की पदोन्नति की जाती है। समझदार अधिकारी लोग कर्मचारियों के अच्छे काम की सदैव प्रशंसा करते हैं। विशेष अच्छा काम दिखाने पर कर्मचारी का वेतन भी बढ़ाया जाता है।

भौतिक और मनोवैज्ञानिक दोनों प्रकार की दशाओं का महत्व है

उद्योग और व्यवसाय में उपरोक्त बतलाई गई भौतिक और मनोवैज्ञानिक सभी दशाओं का बड़ा महत्व है। आजकल मनोवैज्ञानिकों ने इस ओर उद्योगपतियों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया है। केवल आर्थिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि मानवता की दृष्टि से भी यह जरूरी है कि कर्मचारियों को अच्छी भौतिक और मनोवैज्ञानिक दशाओं में काम करने का अवसर मिले। देश के नागरिक होने के नाते कर्मचारियों के लिए इस प्रकार की व्यवस्था सरकार द्वारा भी कराई जानी चाहिये। इस प्रकार की

व्यवस्था होने पर उद्योग के क्षेत्र में संघर्ष घटते हैं और उत्पादन बढ़ता है जिससे कर्मचारी, सेवा योजक (Employer) और सरकार सभी को लाभ होता है।

★

प्रश्न ५५—पदोन्नति कितने प्रकार की होती है ? वह किन बातों पर निर्भर होती है ? उसका औचित्य और महत्व बतलाइये।

हर एक कर्मचारी यह चाहता है कि उसको समय-समय पर पदोन्नति के अवसर दिये जायें। पदोन्नति का अर्थ, जैसा कि नाम से स्पष्ट हैं, ऊँचा पद मिलना या दिया जाना है। हर एक व्यवसाय में नौकरियों की अनेक श्रेणियाँ (Grades) होती हैं जिनमें एक क्रम (Order) होता है। उदाहरण के लिये प्रशासकीय सेवाओं में तहसीलदार से ऊँचा डिप्टी-कलक्टर का पद और डिप्टी-कलक्टर से ऊंचा कलक्टर का पद होता है। इसी प्रकार कलक्टर से ऊपर कमिश्नर और कमिश्नर से ऊपर गवर्नर होता है। इसी प्रकार सेना में लेफ्टिनेन्ट, कैप्टेन, कर्नल, मेजर, जनरल इत्यादि विभिन्न पद होते हैं। हर एक व्यवसाय में ऊंचे पदाधिकारी का वेतन भी अधिक होता है और अधिकार भी अधिक होते हैं। इसलिये स्वाभाविक है कि हर एक कर्मचारी अपने से ऊँचा पद प्राप्त करना चाहता है।

पदों की श्रेणियां और क्रम

परन्तु पदोन्नति का अर्थ केवल ऊँचा पद मिलना ही नहीं है। यद्यपि आमतौर से पदोन्नति का अर्थ ऊँचा पद मिलने से लगाया जाता है परन्तु वेतन में वृद्धि, अधिक अवकाश, कार्य करने की उन्नत दशायें तथा सम्मान वृद्धि आदि को भी पदोन्नति में गिना जाना चाहिये। वाल्टर्स (Walters) ने निम्नलिखित आठ प्रकार की पदोन्नति का वर्णन किया है :—

पदोन्नति के प्रकार

(१) वेतन या पारिश्रमिक में वृद्धि,
(२) पद, अधिकार या उत्तरदायित्व में वृद्धि,
(३) काम करने के समय में कमी या अवकाश में वृद्धि,
(४) उत्तम स्थान या विभाग में तबादला,
(५) काम करने या रहने की परिस्थिति में उन्नति,
(६) अधिक प्रशिक्षण और अनुभव के अवसर मिलना,
(७) पद तथा लाभ की अधिक सुरक्षा,
(८) सेवा काल की वृद्धि।

इस प्रकार यदि कर्मचारी का वेतन या पारिश्रमिक बढ़ा दिया जाय तो उसकी पदोन्नति मानी जायेगी। पदोन्नति में उसको ऊँचा पद, अधिक अधिकार या अधिक जिम्मेदारी दी जा सकती है। उसका काम करने का समय कम किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, उसका अवकाश बढ़ाया जा सकता है। पदोन्नति के रूप

में किसी व्यक्ति का किसी अच्छी जगह या अच्छे विभाग में तबादला किया जा सकता है। तबादले वाली नौकरियों में पदोन्नति की यह रीति ही सबसे अधिक प्रचलित है। अधिकतर दफ्तरों में किसी के अच्छे काम को देखकर उसके काम करने की परिस्थिति में उन्नति की जा सकती है अथवा उसके रहने की परिस्थिति में उन्नति की जा सकती है। अच्छा काम दिखाने वाले कर्मचारियों को प्रशिक्षण पाने और अनुभव करने के अवसर दिये जाते हैं। प्रशिक्षण में अनुभव बढ़ने से कर्मचारी को पदोन्नति के और भी अवसर मिलते हैं। लगभग सभी नौकरियों में नियुक्ति के बाद एक निश्चित समय तक अच्छा काम दिखाने पर कर्मचारी के पद को स्थायी और सुरक्षित कर दिया जाता है। व्यवसाय की सुरक्षा के रूप में भी पदोन्नति दी जा सकती है। अच्छा काम दिखाने पर कुछ कर्मचारियों का सेवा-काल बढ़ा दिया जाता है। बहुत-से लोगों को रिटायर होने की आयु आने के बाद भी काम करने का अवसर दिया जाता है।

पदोन्नति के विभिन्न रूपों के महत्त्व में अन्तर

पदोन्नति के उपरोक्त रूपों में भिन्न-भिन्न कर्मचारी भिन्न-भिन्न व्यवसाय में भिन्न-भिन्न रूप को महत्व देते हैं। कुछ लोग आर्थिक लाभ को सबसे अधिक महत्व देते हैं। कुछ लोग सम्मान वृद्धि को उससे ऊँचा समझते हैं। दूसरी ओर कुछ लोग इन दोनों प्रकार के काम करने की परिस्थितियों में उन्नति को महत्व देते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि एक विशेष प्रसंग में पदोन्नति उपरोक्त रूपों में से कोई एक ही दी जाय। बहुधा पद बढ़ने के साथ-साथ अधिकार, जिम्मेदारी और वेतन भी बढ़ते हैं और कार्य करने की परिस्थितियाँ भी उन्नत होती हैं। इस प्रकार बहुधा पदोन्नति के उपरोक्त रूपों में से कर्मचारी को एक से अधिक मिलते हैं।

पदोन्नति के आधार

हर एक व्यवसाय में चुनाव और नियुक्ति के समान ही पदोन्नति के कुछ निश्चित नियम होते हैं। उदाहरण के लिये अधिकतर व्यवसायों में वरिष्ठता (Seniority) के आधार पर समय-समय पर हर एक कर्मचारी की पदोन्नति होती रहती है। परन्तु लगभग सभी नौकरियों में पदोन्नति करने में कर्मचारी की वरिष्ठता के साथ-साथ उसकी योग्यता का भी ध्यान रखा जाता है। कभी-कभी तो योग्यता के आधार पर कुछ लोगों को वरिष्ठ कर्मचारियों से भी ऊँचा स्थान दे दिया जाता है। निजी व्यवसायों में योग्यता के साथ-साथ काम को भी बड़ा महत्व दिया जाता है। कर्मचारी के अधिक और अच्छा काम करने पर मालिक को लाभ होता है। अतः वह आसानी से उसका वेतन बढ़ा सकता है या उसको लाभ में अधिक हिस्सा दे सकता है। परन्तु कुछ व्यवसायों और सरकारी विभागों में जहाँ पर कि स्वयं मालिक अत्यधिक खुशामद-पसन्द है, वहाँ पदोन्नति काम, योग्यता या वरिष्ठता से नहीं बल्कि अधिकारियों की खुशामद से होती है। जिन व्यवसायों में पदोन्नति के कोई निश्चित नियम नहीं होते वहाँ पदोन्नति अधिकारियों की मेहरबानी पर निर्भर होती है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पदोन्नति मुख्य रूप से निम्नलिखित बातों पर निर्भर होती हैं :—

पदोन्नति में आवश्यक बातें
(१) वरिष्ठता (Seniority)
(२) योग्यता (Ability)
(३) अच्छा और अधिक कार्य (Better and more Work)
(४) अधिकारियों की मेहरबानी (Kindness of the Authorities)

(१) वरिष्ठता से पदोन्नति—अधिकतर व्यवसायों में और नौकरियों में हर साल कर्मचारियों का वेतन कुछ न कुछ बढ़ता रहता है। इस प्रकार वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति सब कहीं दी जाती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति होना बहुत आवश्यक है। हर एक कर्मचारी यह चाहता है कि उसके कार्यकाल को देखकर उसको नये लोगों से ऊँचा पद दिया जाय। जहाँ पर वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति के विषय में कोई निश्चित नियम नहीं होता वहाँ कर्मचारियों में असन्तोष बढ़ने लगता है और वे काम में कम उत्साह दिखलाते हैं। साथ ही साथ वे किसी एक व्यवसाय पर लग कर काम करने की कोशिश नहीं करते। इससे व्यवसाय को भी हानि पहुँचती है क्योंकि काम सीखने में हर एक आदमी को कुछ समय लगता है और यदि पुराने लोग बराबर छोड़ते रहें और नए लोग आते रहें तो काम का नुकसान होगा। इसीलिये हर एक व्यवसाय में वरिष्ठता के साथ वेतन बढ़ता है और बहुत से व्यवसायों में वरिष्ठता के साथ पद भी बढ़ता है। परन्तु वरिष्ठता को पदोन्नति का एकमात्र आधार समझना गलत है। जिस तरह वरिष्ठ व्यक्ति ऊँचा पद चाहता है उसी तरह अधिक योग्य कर्मचारी भी ऊँचा पद चाहता है। यदि उसको योग्यता के आधार पर ऊँचा पद न मिले और उसे वर्षों तक उसके लिये इन्तजार करना पड़े या कम योग्य वरिष्ठ कर्मचारी को वह पद दे दिया जाय तो उसमें असन्तोष बढ़ता है। वह काम उतना मन लगाकर नहीं करता। अपने अयोग्य वरिष्ठ अधिकारी का अनुशासन भी नहीं मानता। इसलिये वास्तव में वरिष्ठता के साथ-साथ पदोन्नति में योग्यता का भी ध्यान रखा जाना चाहिये।

(२) योग्यता के आधार पर पदोन्नति—पदोन्नति का दूसरा मुख्य आधार योग्यता है। योग्यता के आधार पर कुछ लोग अपने व्यवसायों में थोड़े समय में ही ऊँचे से ऊँचा पद प्राप्त कर लेते हैं। किसी भी व्यवसाय में केवल वरिष्ठता के आधार पर कोई भी व्यक्ति निम्नतम पद से उच्चतम पद पर नहीं पहुँच सकता। इसके लिये योग्यता की जरूरत है। परन्तु ऐसा नहीं है कि वरिष्ठता का कोई महत्व ही न हो। बहुत से व्यवसायों में अनुभव का भी बहुत महत्व होता है। दूसरे, वर्षों तक सच्चाई और ईमानदारी के साथ काम करने के बाद हर एक कर्मचारी स्वभावतया पदोन्नति चाहता है और यदि उसको पदोन्नति नहीं मिलती तो उसमें असन्तोष

बढ़ता है। वरिष्ठता और योग्यता में से पदोन्नति के चुनाव के लिये कौन-सी कसौटी अच्छी है, इस विषय में कोई सामान्य नियम नहीं बनाया जा सकता। साधारण रूप में वरिष्ठता के साथ वेतन बराबर बढ़ता रहना चाहिये। किन्तु अधिक जिम्मेदारी या व्यापक अधिकार वाले ऊँचे पद सौंपे जाने से पहले व्यक्ति की योग्यता का ध्यान रखना भी जरूरी है।

(३) काम के आधार पर पदोन्नति—हर एक व्यवसाय और नौकरी में अधिकारी लोग यह चाहते हैं कि कर्मचारी अच्छे से अच्छा काम करें। निजी व्यवसायों में तो मालिक कर्मचारियों से केवल एक ही बात चाहता है और वह है अधिक और अच्छा काम। इसीलिये निजी व्यवसायों में बहुधा उसी के आधार पर पदोन्नति दी जाती है। पदोन्नति की यह रीति साधारणतया सभी जगह अच्छी सिद्ध होती है क्योंकि एक तो इससे अधिक और अच्छा काम करने वालों का उत्साह बढ़ता है और दूसरे लोगों के सामने अधिक और अच्छा काम करने का प्रलोभन उपस्थित होता है। इससे एक की देखा-देखी और लोग भी अधिक और अच्छा काम करने की कोशिश करते हैं।

(४) मेहरबानी से पदोन्नति—अधिकारियों की मेहरबानी पदोन्नति का सबसे गलत और बुरा आधार है। यद्यपि आजकल इसका बहुत अधिक रिवाज है। सरकारी नौकरियों में तथा अर्ध-सरकारी नौकरियों में अधिकतर बड़े अफसरों की खुशामदें करने वाले, उनकी दावतें करने वाले, उनको और उनके घर वालों को समय-समय पर भेंट देने वाले तथा अन्य प्रकार के लाभ पहुँचाने वाले कर्मचारियों को सबसे पहले और सबसे अधिक पदोन्नति मिलती है। इसके बिना योग्य और अधिक तथा अच्छा काम करने वाला वरिष्ठ कर्मचारी भी वर्षों अपने पद पर सड़ता रहता है। इससे दूसरे कर्मचारियों के सामने भी गलत उदाहरण उपस्थित होता है और वे काम करने की जगह अधिकारियों की खुशामद में लगे रहने की अधिक कोशिश करते हैं।

पदोन्नति के उपरोक्त आधारों से पदोन्नति की रीति भी मालूम पड़ती है। वास्तव में जिस तरह नियुक्ति के समय कर्मचारी का चुनाव करना पड़ता है। उसी तरह पदोन्नति के समय भी चुनाव करना पड़ता है। दोनों ही दशाओं में बड़ी समझदारी और कुशलता से चुनाव किया जाना चाहिये। आम तौर से कर्मचारी की नियुक्ति में जितनी सावधानी से काम लिया जाता है उसकी पदोन्नति में उतनी सावधानी नहीं बरती जाती। बहुधा वरिष्ठता के आधार पर ही पदोन्नति में चुनाव होता है। पदोन्नति की यह विधि सबसे अधिक प्रचलित है। योग्यता के आधार पर पदोन्नति देना भी एक अच्छी रीति है। पदोन्नति की तीसरी उत्तम रीति काम की मात्रा और गुण को देखकर पदोन्नति करना है। परन्तु केवल अपनी खुशी से, अपनी इच्छा से, सिफारिशों से, खुशामद से खुश होकर या अपने किसी स्वार्थ के कारण

पदोन्नति की रीति

पदोन्नति देना सर्वथा अवांछनीय है। पदोन्नति की यह रीति एकदम गलत है। यह अवैज्ञानिक है, अनैतिक है और हानिकारक भी है।

पदोन्नति का हर एक व्यवसाय में बड़ा महत्व है। उसका औचित्य इस मनोवैज्ञानिक तथ्य पर आधारित है कि काम, योग्यता या वर्षों तक सेवा के आधार पर हर एक कर्मचारी पदोन्नति चाहता है। पदोन्नति प्रलोभन का काम करती है। पदोन्नति मिलने से कर्मचारियों का उत्साह बढ़ता है और वे और भी अच्छा और अधिक काम करने की कोशिश करते हैं। पदोन्नति के बारे में निश्चित नियम होने से कर्मचारियों में आत्म-विश्वास और सुरक्षा की भावना बनी रहती है। वे निश्चित नियमों के अनुसार पदोन्नति की चेष्टा में लगे रहते हैं और पदोन्नति न मिलने पर भी असंतुष्ट नहीं होते बल्कि दुगने उत्साह से कोशिश करते हैं। इसलिए हर एक व्यवसाय में पदोन्नति के नियम निश्चित और स्पष्ट होने चाहियें जिससे किसी को कोई शिकायत न हो। वरिष्ठता, योग्यता और काम की अधिक मात्रा और गुण पदोन्नति का औचित्य स्थापित करते हैं। परन्तु खुशामद या किसी स्वार्थ के आधार पर दी गई पदोन्नति सर्वथा अनुचित है। इससे कर्मचारियों में प्रेरणा मारी जाती है और काम ठीक से नहीं होता। स्पष्ट है कि पदोन्नति हर एक व्यवसाय में मालिक और कर्मचारी दोनों के लिए कितनी महत्वपूर्ण है। मालिक उसके आधार पर अच्छे कर्मचारियों का चुनाव कर सकता है और उसे काम में लाभ होता है। कर्मचारी की काम की प्रेरणा बनी रहती है और वह अपना काम और भी अधिक और अच्छा करने की कोशिश करता है। परन्तु पदोन्नति का लाभ तभी होता है जबकि उसके नियम निश्चित हों और सभी कर्मचारियों को स्पष्ट हों। पदोन्नति का आधार सही, उचित और वैज्ञानिक होने पर ही उससे पूरा लाभ हो सकता है।

पदोन्नति का महत्व

✻

प्रश्न ५६—प्रशासन और कल्याण के कार्यों का विशेष रूप से निर्देश करते हुए उद्योग में मानवीय सम्बन्धों की चर्चा कीजिए।

पहले जमाने में उद्योग में मजदूरों को कारखाने की मशीनों के साथ ही कारखाने का पुर्जा समझा जाता था। उनके साथ में बड़ा अमानवीय व्यवहार होता था। बहुत से मजदूरों की हालत तो गुलामों से अच्छी नहीं थी। अंग्रेजों के जमाने में भारतवर्ष में नील के कारखानों के मालिक निहले साहबों के कारखानों में काम करने वाले मजदूरों पर अत्याचार के विरुद्ध अनेक राष्ट्रीय नेताओं ने आवाज उठाई थी। पश्चिम में भी कारखानों में और खानों में मजदूरों के साथ मालिकों का व्यवहार अच्छा नहीं था। मजदूरों से डांट-डपट से काम लिया जाता था। बहुत-से व्यवसायों में कर्मचारियों को नोटिस दिये बगैर निकाल दिया जाता था।

कर्मचारियों से दुर्व्यवहार

दुर्घटना होने पर कर्मचारी और उसके परिवार को भूखों मरने तक की नौबत आ जाती थी। मशीनों के आविष्कार के बाद स्त्रियों और बच्चों से भी कारखानों में काम लिया जाने लगा। इसमें उनकी कोमल दशा पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। आवश्यक होने पर भी स्त्रियों को छुट्टी नहीं मिलती थी। बहुधा सन्तान होने पर स्त्री को नौकरी से निकाल दिया जाता था। कारखाने की व्यवस्था और काम करने की दशायें भी बड़ी शोचनीय थीं। मालिकों को अपने लाभ से मतलब था। कारखाने में रोशनी, हवा, पानी, सफाई आदि का क्या इन्तजाम है इसमें उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं थी। सरकार की ओर से काम के घण्टों पर अधिक रोक-टोक न होने के कारण व्यवसायों के मालिक-लोग कर्मचारियों से कम वेतन में अधिक घण्टे काम लेते थे। पदोन्नति के विषय में भी कोई निश्चित नियम नहीं थे। मजदूरों को काम में प्रलोभन दिये जाने की ओर भी विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। इस प्रकार उद्योग के क्षेत्र में सब कहीं शोषण का राज्य था।

साम्यवादी और जनतन्त्रीय आदर्शों के प्रचार से क्रमशः लोगों ने इस स्थिति का विरोध किया। जगह-जगह पर मजदूर संघ बने। भिन्न-भिन्न व्यवसायों ने अपने-अपने अलग-अलग संघ बना लिये। प्रगतिशील देशों में अधिकतर व्यवसायों में कर्मचारियों ने संगठित होकर काम की दशाओं को बेहतर बनाने के लिये और कर्मचारियों के जीवन को अन्य मनुष्यों के समान बनाने के लिये आन्दोलन किये। जनतन्त्रीय और साम्यवादी सरकारों ने भी इस ओर ध्यान दिया। इसके अलावा विचारकों और वैज्ञानिकों ने इस तथ्य को उपस्थित किया कि उद्योगों में मानवीय सम्बन्ध (Human relations) अच्छे न रहने से कर्मचारियों के साथ-साथ मालिकों और सरकार की भी हानि है। इससे यह विचारधारा फैलने लगी है कि उद्योग में मानवीय सम्बन्धों को बेहतर बनाये जाने की कोशिश की जानी चाहिये।

मानवीय व्यवहार और दशाओं की माँग

उद्योग में मानव सम्बन्ध मुख्य रूप से दो क्षेत्रों में दिखाई पड़ते हैं। प्रशासन (Administration) का क्षेत्र और कल्याण (Welfare) का क्षेत्र। प्रशासन के क्षेत्र में अधिकारियों और कर्मचारियों के सम्बन्ध का बड़ा महत्व है। श्रमिक कोई मशीन का पुर्जा नहीं है। वह मनुष्य है उसमें मानव सुलभ प्रेरणायें, संवेग, अनुभूतियाँ, आशायें, इच्छायें और आवश्यकतायें हैं। वह चाहता है कि उसके अच्छे काम की प्रशंसा की जाय। वह चाहता है कि उसकी मेहनत से उसको लाभ हो। वह आदर और प्रेम चाहता है। यदि अधिकारी लोग उससे मनुष्य के समान व्यवहार करते हैं तो उसका काम उसके लिए अधिक सुखद हो जाता है। पिछले दिनों जो स्थान-स्थान पर हड़ताल और ताले-बन्दी की घटनायें दिखाई पड़ती थीं वे

औद्योगिक प्रशासन में मानव सम्बन्ध

मूल रूप में प्रशासन से सम्बन्धित थीं। कारखाने के प्रशासन में श्रमिकों से उचित व्यवहार के साथ-साथ कारखाने की व्यवस्था भी सम्मिलित है। कारखाने में नियुक्ति, पद का स्थाई होना और पदोन्नति आदि के बारे में निश्चित नियम होने चाहियें जिस से कि कर्मचारी सुरक्षा अनुभव करे। उसको यह मालूम हो कि प्रगति का रास्ता सीधा है और सच्चाई तथा ईमानदारी से काम करने से बराबर प्रगति हो सकती है। ऐसा न होने पर कर्मचारियों में असन्तोष रहता है और वे मन लगाकर काम नहीं करते। अच्छा और अधिक काम दिखाने पर कर्मचारियों की प्रशंसा होनी चाहिये और उनको किसी न किसी रूप में लाभ होना चाहिए। उनका वेतन बढ़ाया जाय, उनको लाभांश (Bonus) मिले, उनको ऊँचा पद मिले, काम करने की दशायें बेहतर की जायें, अच्छी जगह तबादला हो जाय। इन सब बातों के रहने से काम करने में प्रेरणा रहती है। इन प्रलोभनों के बगैर उद्योग में कभी भी उतना अधिक और अच्छा काम नहीं हो सकता।

उद्योगों में कर्मचारियों और अधिकारियों में मतभेद होना कोई अनहोनी बात नहीं है। सभी मनुष्य हैं, उसके मन में एक दूसरे के प्रति हर तरह की भावनायें आ सकती हैं। अतः संघर्ष के अवसर आते रहते हैं। मानव सम्बन्धों की इन समस्याओं में बड़ी चतुरता से काम लेने की जरूरत है। यदि अधिकारी ढिलाई दिखलाता है तो हो सकता है कि उसका गलत फायदा उठाकर कर्मचारी लोग काम में ढिलाई शुरू कर दें। दूसरी ओर यदि अधिकारी जरूरत से ज्यादा कठोर है, बात-बात में झिड़कता और फटकारता है, कर्मचारियों का अपमान करता है और उन्हें धमकियाँ देता है तो इससे भी काम में उत्साह बने रहना कठिन है। वास्तव में कर्मचारियों में सभी का अलग-अलग स्वभाव होता है। इसलिये अधिकारी को यथा-योग्य व्यवहार करना चाहिए। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि जहाँ तक हो सके आपस के सम्बन्ध मानव-सुलभ और अच्छे बने रहे।

पहले यह समझा जाता था कि यदि मालिक कर्मचारी को उसके काम का पारिश्रमिक देता है तो उसका कर्तव्य यहीं समाप्त हो जाता है। आज के अर्थशास्त्र में आर्थिक लाभ से अधिक कल्याण पर जोर दिया जाता है। आज के राज्यों के सामने कल्याणकारी राज्य का आदर्श है। इसलिये आजकल यह माना जाता है कि कर्मचारियों को वेतन देने के साथ-साथ उनके कल्याण का ध्यान रखना भी उतना ही जरूरी है। कर्मचारियों के लिये मानव-सुलभ सेवाओं, सुविधाओं और आरामों का इन्तजाम होना चाहिये। उनके काम करने का और घर का वातावरण स्वस्थ होना चाहिए। उनको बौद्धिक, भौतिक, नैतिक और आर्थिक उन्नति के अवसर मिलने चाहियें। उनके कल्याण के लिये मकानों की व्यवस्था, चिकित्सा और शिक्षा सम्बन्धी सुविधायें, अच्छे भोजन की सुविधायें तथा आराम और मनोरंजन की सुविधायें होनी चाहियें। स्त्री कर्मचारियों के लिये अवकाश की और वेतन सहित छुट्टी की व्यवस्था बहुत

उद्योग में कल्याण

जरूरी है। माताओं के लिये व्यवसायों में लगे हुये धाय गृह और शिशु गृह होने चाहिये। बीमारी में कर्मचारियों को विशेष सहायता मिलनी चाहिये। स्त्रियों के लिये मातृत्व लाभ योजनायें आवश्यक हैं। कर्मचारियों के बच्चों की शिक्षा का भी प्रवन्ध होना चाहिये। इन सब बातों के अलावा कर्मचारियों के भविष्य की सुरक्षा का भी ध्यान रखा जाना चाहिये। इसके लिये प्रौविडेन्ट फण्ड, पेन्शन तथा जीवन बीमा आदि का इन्तजाम होना चाहिये। इस प्रकार आजकल यह माना जाता है कि मालिकों को कर्मचारियों के सर्वांगीण विकास का प्रयास करना चाहिये।

कल्याण कार्यों से लाभ

वास्तव में कर्मचारियों के कल्याण में खर्च किये हुये धन से मालिकों को भी कुछ न कुछ लाभ अवश्य होता है। उससे श्रमिकों की कार्य कुशलता और सहयोग बढ़ता है। यदि कारखाने में काम करते समय मजदूर किसी दुर्घटना का शिकार हो जाये तो उसके परिवार के भरण-पोषण का प्रबन्ध करना मालिक का नैतिक कर्तव्य है। वास्तव में श्रम कल्याण कार्यों में लगाया धन खर्च न होकर विनियोग (Investment) है क्योंकि जितना खर्च किया जाता है उससे अन्त में मालिकों को लाभ पहुँचता है। मजदूरों की कुशलता बढ़ने से उत्पादन बढ़ता है और कच्चा माल कम खर्च होता है। वैज्ञानिक ढंग से कर्मचारी वरण करने से मध्यस्थों का अनुचित शोषण समाप्त हो जाता है जिससे श्रमिकों में सन्तोष और उत्साह बना रहता है और वे अधिक काम करते हैं। इसी तरह औद्योगिक प्रशिक्षण देने में मालिकों को शुरू में काफी रुपया खर्च करना पड़ता है परन्तु इससे उनका लाभ भी बहुत बढ़ जाता है क्योंकि प्रशिक्षित कर्मचारी अशिक्षित कर्मचारी की अपेक्षा कम नुकसान करते हैं और अधिक कुशलता से काम करते हैं। प्रशिक्षित श्रमिकों के उत्पादन की मात्रा और गुण दोनों ही बढ़ जाते हैं जिससे मालिकों को लाभ होता है। कारखाने में स्वच्छता, प्रकाश तथा वायु के प्रबन्ध में कारखानेदार को कुछ अधिक व्यय नहीं करना पड़ता, परन्तु उससे श्रमिकों के स्वास्थ्य तथा कुशलता पर बड़ा अनुकूल प्रभाव पड़ता है, जिससे उत्पादन की मात्रा तथा गुण दोनों ही बढ़ते हैं, कारखाने में अनुपस्थिति कम रहती है, श्रमिकों को थकान कम आती है और बीमारियाँ भी कम होती हैं। काम करने की दशाओं को स्वास्थ्यप्रद होने से मजदूर सन्तुष्ट रहते हैं और यह अनुभव करते हैं कि मालिकों को उनका ख्याल है। इससे मालिक-मजदूर के सम्बन्ध अच्छे बनते हैं और मजदूरों में प्रवासी प्रवृत्ति कम होती है। दुर्घटनाओं से रोकथाम के कल्याण कार्य से तो मालिक को सीधा लाभ है। दुर्घटनाओं से श्रमिक को तो हानि होती ही है मालिक को भी कम हानि नहीं होती। दुर्घटना के कारण श्रमिक के परिवार को कुछ न कुछ मुआवजा अवश्य देना पड़ता है और साथ ही कारखाने के अन्य श्रमिकों में असन्तोष भी फैलता है। कभी-कभी यदि कोई प्रशिक्षित श्रमिक दुर्घटना का शिकार बन जाता है तो मालिक की प्रत्यक्ष हानि होती है। कारखाने में आग लगने आदि के खतरे से रोकथाम तो मालिक के अपने ही फायदे की बात है यद्यपि उससे श्रमिकों का भी

कल्याण होता है। कारखाने में थकान मिटाने की व्यवस्था या आराम की व्यवस्था से मजदूरों की कार्यकुशलता बनी रहती है। कैन्टीन आदि की व्यवस्था से उनको समय पर नाश्ता आदि मिल जाता है और फिर वे काम पर जुट सकते हैं। इस प्रकार कारखाने में कल्याण कार्यों से मालिकों को लाभ होता है।

★

प्रश्न ५७—श्रम-कल्याण क्या है? उसके क्या कार्य हैं? उससे मालिकों को क्या लाभ हैं? भारत में श्रम-कल्याण का महत्व बतलाइये।

उत्तर—श्रम-कल्याण का तात्पर्य उन कामों से है जिनसे श्रमिकों का किसी प्रकार का लाभ होता हो। परन्तु यह सामान्य अर्थ विज्ञान के काम का नहीं है। देश, काल तथा परिस्थितियों के अनुसार श्रम-कल्याण का अर्थ भी बदलता रहता है। शाही श्रम आयोग (Royal Commission of Labour) की रिपोर्ट के अनुसार, "कल्याण शब्द, जैसा कि वह औद्योगिक कार्यकर्ता के लिये लागू किया जाता है, ऐसा है जो कि आवश्यक रूप से लचीला होना चाहिये, विभिन्न सामाजिक प्रथाओं, औद्योगीकरण की मात्रा और श्रमिकों के शैक्षिक विकास के अनुसार उसकी एक देश से दूसरे में कुछ न कुछ भिन्न व्याख्यायें होनी चाहियें।"[1] इस प्रकार श्रम-कल्याण शब्द का तात्पर्य किस देश में क्या होगा यह उस देश के श्रमिकों की दशा पर निर्भर है। उदाहरण के लिये भारत में श्रमिक अधिकतर अशिक्षित हैं। अतः यहां पर श्रम-कल्याण में श्रमिकों की शिक्षा की व्यवस्था भी शामिल हो जायेगी। सामाजिक विज्ञानों के विश्वकोष (Encyclopeadia of Social Sciences) के अनुसार, "श्रम-कल्याण में कानून, उद्योग की प्रथा और बाजार की दशा के लिये आवश्यक कामों के परे, वर्तमान औद्योगिक व्यवस्था में मालिकों द्वारा श्रमिकों के काम करने की ओर कभी-कभी रहने की अवस्थाओं को स्थापित करने के ऐच्छिक प्रयत्न निहित हैं।"[2] इस प्रकार श्रम-कल्याण में वे काम शामिल नहीं होते जो कि देश के कानूनों

श्रम-कल्याण की परिभाषा

1. "The term welfare, as applied to the industrial worker, is one which must necessarily be elastic, bearing a somewhat different interpretation in one country from another, according to the different social customs, the degree of industrialisation and the educational development of the workers."

—Report of the Royal Commission of Labour.

2. "Labour welfare implies the voluntary efforts of the employers to establish, within the existing industrial system, working and sometimes living conditions of the employees beyond what is required by law, the custom of the industry and the condition of the market." —Encyclopeadia of Social Sciences.

उद्योगों की प्रथाओं अथवा बाजार की दशाओं के कारण अनिवार्य रूप से किये जाते हैं। अतः श्रम-कल्याण में ऐच्छिक कार्य आते हैं जिनसे मालिक श्रमिकों की दशा उन्नत बनाने का या काम की दशायें बेहतर बनाने का प्रयास करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन (International Labour Organisation) की एक रिपोर्ट में श्रम-कल्याण की परिभाषा इस प्रकार की गई है, "श्रमिकों के कल्याण का अर्थ ऐसी सेवाओं, सुविधाओं और आरामों से समझना चाहिए जो कि कारखानों में या उनके निकट स्थापित की जायें ताकि उनमें काम करने वाले व्यक्ति अपना काम स्वस्थ और अनुकूल पर्यावरण में कर सकें और उनको अच्छे स्वास्थ्य तथा उच्च नैतिकता में सहायक सुविधायें मिल सकें।"[3] इस प्रकार श्रम-कल्याण के कामों में श्रमिकों के स्वास्थ्य को उन्नत करने की दशायें उत्पन्न करने वाले और नैतिक स्तर को ऊँचा करने की परिस्थितियाँ उत्पन्न करने वाले काम आते हैं। इनमें मालिकों द्वारा ऐच्छिक रूप से किये गए वे सब काम शामिल हैं जिनसे श्रमिकों को किसी प्रकार का लाभ होता है। श्रम-कल्याण कार्य में ऐसे कोई काम नहीं आते जिन्हें मालिक को बाध्य होकर करना पड़ता हो चाहे उनसे श्रमिकों को कितना भी लाभ क्यों न हो? श्रम-कल्याण के कार्यों द्वारा मिल मालिक और कारखानेदार श्रमिकों के सर्वांगीण विकास का प्रयास करते हैं।

श्रम-कल्याण कार्य तीन प्रकार के माने जाते हैं:—

(१) वैधानिक—श्रमिकों की सुविधा, सुरक्षा, काम करने की दशाओं आदि के विषय में सरकारी कानून।

श्रम-कल्याण कार्य

(२) ऐच्छिक—वे कार्य जिनको उद्योगपति अपनी इच्छा से श्रमिकों के लिये करते हैं।

(३) पारस्परिक (Mutual)—इसमें श्रमिक संघों द्वारा किये जाने वाले कल्याण कार्य आते हैं।

डॉ० ब्राउटन (Dr. Broughton) ने श्रमिक कल्याण के कार्यों को दो भागों में विभाजित किया है—(१) कारखाने के अन्दर (Intra-mural) और (२) कारखाने के बाहर (Extra-mural)। कारखाने के अन्दर किये जाने वाले कल्याण कार्यों में मुख्य निम्नलिखित हैं:—

कारखाने के अन्दर के कल्याण कार्य

(१) वैज्ञानिक भर्ती—श्रमिकों की भर्ती वैज्ञानिक ढंग से करना।

---

3. "Worker's welfare should be understood as meaning such services, facilities and amenities which may be established in, or in vicinity of, undertaking to enable the persons employed in them to perform their work in healthy, congenial surroundings and provided with amenities conducive to good health and high morale."

—Report of I. L. O.

(२) औद्योगिक प्रशिक्षण—विभिन्न कारखानों में विशिष्ट कामों का प्रशिक्षण।

(३) स्वच्छता, प्रकाश तथा वायु का प्रबन्ध—इसमें कारखानों में सफाई, पुताई, रोशनदानों का प्रबन्ध, पीने के पानी का प्रबन्ध, स्नानगृह, संडास, मूत्रालय आदि की व्यवस्था, रोशनी का प्रबन्ध तथा गर्मी-सर्दी को कम करने की व्यवस्थायें आती हैं।

(४) दुर्घटनाओं की रोकथाम—इसमें खतरनाक यन्त्रों, अत्यधिक ताप आदि के बचाव तथा आग बुझाने का प्रबन्ध आदि शामिल हैं।

(५) अन्य कार्य—जैसे कैन्टीन, थकावट दूर करने की व्यवस्था, आराम की व्यवस्था आदि।

कारखाने के बाहर के मुख्य कल्याण कार्य निम्नलिखित हैं :—

कारखाने के बाहर के कल्याण कार्य

(१) शिक्षा का प्रबन्ध—इसमें प्रौढ़ शिक्षा, सामाजिक शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा, स्त्री, पुरुष बालकों की शिक्षा आदि आती हैं।

(२) उत्तम आवासों की व्यवस्था।

(३) चिकित्सा व्यवस्था—इसमें आराम, सवेतन अवकाश, मुफ्त उपचार आदि आते हैं।

(४) सस्ते और पोषणयुक्त भोजन की व्यवस्था।

(५) मनोरंजन की सुविधायें—क्लब, अखाड़े, सिनेमा, रेडियो, वाचनालय, पुस्तकालय आदि।

उपरोक्त कामों के अलावा श्रम-कल्याण में निम्नलिखित काम भी शामिल हैं :—

श्रम कल्याण में अन्य कार्य

(१) सामाजिक बीमा-व्यवस्था।
(२) प्रोविडेन्ट फण्ड की व्यवस्था।
(३) पेन्शन की व्यवस्था।
(४) बीमारी और मातृत्व लाभ की सुविधायें।
(५) धाय गृहों और शिशु गृहों की व्यवस्था।
(६) सहकारी समितियों की व्यवस्था।
(७) सांस्कृतिक कार्यक्रमों की व्यवस्था।
(८) बालक-बालिकाओं के स्कूलों की व्यवस्था।

आधुनिक देशों में सब कहीं प्रगतिशील सेवायोजक (Employers) श्रमिकों के लिए विभिन्न प्रकार के कल्याण कार्यों की व्यवस्था करते हैं क्योंकि उन्हें यह

कारखाने के अन्दर कल्याण कार्यों से मालिकों को लाभ

भली प्रकार विदित हो गया है कि श्रम-कल्याण कार्यों में जितना खर्च किया जाता है उससे अन्त में केवल श्रमिकों को ही नहीं बल्कि मालिकों को भी लाभ पहुँचता है। काम करने की दशाओं के स्वास्थ्यप्रद होने में मजदूर सन्तुष्ट रहते हैं और यह अनुभव करते हैं कि मालिक को उनका ख्याल है। इससे मालिक-मजदूर के सम्बन्ध अच्छे बनते हैं और मजदूरों में प्रवासी प्रवृत्ति कम होती है। दुर्घटनाओं से रोकथाम के कल्याण कार्य से तो मालिक को सीधा लाभ है। दुर्घटनाओं से श्रमिक को तो हानि होती ही है मालिक को भी कम हानि नहीं होती। उसको दुर्घटना के कारण श्रमिक के परिवार को कुछ न कुछ मुआवजा अवश्य देना पड़ता है और साथ ही कारखाने के अन्य श्रमिकों में असन्तोष भी फैलता है। कभी-कभी यदि कोई प्रशिक्षित श्रमिक दुर्घटना का शिकार हो जाता है तो मालिक की प्रत्यक्ष हानि होती है। कारखानों में आग लगने आदि के खतरे से रोकथाम तो मालिक के अपने ही फायदे की बात है। यद्यपि उससे श्रमिकों का भी कल्याण होता है। कारखाने में थकान मिटाने की व्यवस्था या आराम की व्यवस्था से मजदूरों की कार्यकुशलता बनी रहती है। कैन्टीन आदि की व्यवस्था से उनको समय पर नाश्ता आदि मिल जाता है और फिर वे काम पर जुट सकते हैं। इस प्रकार कारखाने के अन्दर के कल्याण कार्यों से तो मालिकों को सीधा लाभ होता है।

कारखाने के बाहर के कल्याण कार्यों से भी अन्त में मालिकों को लाभ होता है। मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं :—

कारखाने के बाहर के कल्याण कार्यों से मालिकों को लाभ

(१) श्रमिकों के स्वास्थ्य में वृद्धि—उत्तम आवासों का प्रबन्ध, सस्ते तथा पोषक भोजन की व्यवस्था तथा समुचित अवकाश आदि के प्रबन्ध से श्रमिकों का स्वास्थ्य अच्छा रहता है। इससे कारखाने में अनुपस्थिति कम होती है। प्रति मजदूर उत्पादन की दर बढ़ती है और मजदूरों में असन्तोष नहीं फैलता तथा मजदूरों में मालिक के प्रति श्रद्धा और विश्वास बना रहता है।

(२) श्रमिकों में कार्यकुशलता की वृद्धि—शिक्षा के प्रबन्ध से मजदूरों की कार्यकुशलता बढ़ती है और वे अधिक मात्रा में अच्छा काम कर सकते हैं। उनकी समझदारी बढ़ती है तथा वे निहित स्वार्थ वाले व्यक्तियों के भड़काने में नहीं आ सकते।

(३) कारखाने में अनुपस्थिति में कमी—चिकित्सा की व्यवस्था तथा बीमारियों की रोकथाम से श्रमिक कम बीमार पड़ते हैं और यदि पड़ते भी हैं तो जल्द अच्छे हो सकते हैं जिससे कारखानों में अनुपस्थिति कम होती है क्योंकि श्रमिकों में अनुपस्थिति का सबसे बड़ा कारण बीमारी है। सामाजिक कल्याण के कार्यों से

श्रमिकों का चरित्र ठीक रहता है और वे ईमानदारी से मेहनत करके काम करते हैं।

(४) **मालिक-मजदूरों के सम्बन्धों का अच्छा होना**—सामाजिक बीमा, प्रोवीडेन्ट फण्ड, पेन्शन, ग्रेच्युटी आदि की व्यवस्था से मजदूरों में असुरक्षा की भावना कम होती है, कल की चिन्ता मिट जाती है और मालिक पर विश्वास होता है। इससे मालिक और मजदूरों में सम्बन्ध अच्छे होते हैं।

(५) **मजदूरों में असन्तोष का दमन**—स्वस्थ मनोरंजन की व्यवस्था तथा साँस्कृतिक कार्यों से मजदूरों में हिंसात्मक प्रवृत्तियों का शोधीकरण (Sublimation) होता है। स्त्री श्रमिकों के कल्याण कार्यों, धाय गृहों और शिशु गृहों आदि की व्यवस्था तथा मातृत्व लाभ आदि की सुविधाओं से श्रमिकों में असन्तोष नहीं उत्पन्न होता जिससे हड़तालें नहीं होतीं और फलतः मिल मालिकों को लाभ होता है।

(६) **उत्पादन की मात्रा और किस्म में उन्नति**—उपरोक्त लाभों से कारखाने में उत्पादन की मात्रा बढ़ती हैं तथा अच्छी किस्म का माल बनता है। इससे मालिक को प्रत्यक्ष लाभ होता है।

(७) **मालिक को नैतिक सन्तोष**—परन्तु श्रम कल्याण के कार्यों से सबसे बड़ा लाभ मालिक को नैतिक सन्तोष (Moral Contentment) के रूप में मिलता है। भूखे, नंगे, रोगी, अशिक्षित तथा दुःखी श्रमिकों के श्रम से किसी भी सहृदय मालिक को सन्तोष नहीं मिलेगा। श्रम-कल्याण के कार्यों का आधार केवल आर्थिक लाभ ही नहीं है, यद्यपि उनसे आर्थिक लाभ होता है। श्रम-कल्याण के पीछे मानवता की भावना है, सहृदयता है और नैतिक चेतना है। इनके अभाव में शोषण होता है और वर्ग संघर्ष बढ़ता है।

कल्याण कार्य सुआयोजित और उदारतापूर्वक प्रशासित होने चाहियें

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कल्याण कार्यों से श्रमिकों के साथ-साथ मालिकों को भी लाभ होता है। परन्तु कल्याण कार्य सुआयोजित (Intelligently conceived) तथा उदारतापूर्वक प्रशासित (Generously administered) होने चाहियें। योजना तो सभी कामों में आवश्यक है परन्तु कल्याण कार्यों का प्रशासन उदार होने की भी आवश्यकता है क्योंकि वे केवल भौतिक दृष्टिकोण पर ही आधारित नहीं होते बल्कि मानवतावादी (Humanitarian) विचारों से भी निर्देशित होते हैं। अतः अन्त में यह कहा जा सकता है कि "बुद्धिमत्तापूर्वक आयोजित तथा उदारतापूर्वक प्रशासित कल्याण कार्य अन्त में मालिकों के लिये लाभप्रद होगा।"

भारत में श्रम-कल्याण का महत्व

अन्य देशों की तुलना में भारतवर्ष में श्रम कल्याण के कार्यों का महत्व तथा आवश्यकता कहीं अधिक है। इसका कारण भारतीय श्रमिकों की कुछ कमियाँ हैं जो कि अन्य देशों के श्रमिकों में उसी अनुपात से नहीं पाई जातीं। ये कमियाँ या दोष ही देश में श्रम कल्याण की आवश्यकता को बढ़ाते हैं। संक्षेप में अन्य देशों की तुलना में

भारतवर्ष में श्रम-कल्याण के कार्यों का महत्व तथा आवश्यकता अधिक होने के कारण निम्नलिखित हैं :—

(१) श्रम संगठन की न्यूनता—भारतवर्ष में श्रमिक लोग अभी तक वर्ग के रूप में संगठित नहीं हो पाए हैं। मजदूरों की संख्या को देखते हुए श्रम-संगठन का आन्दोलन अभी बहुत अविकसित है। जो कुछ श्रमिक संघ हैं भी उनमें से अधिकतर में योग्य नेताओं का अभाव है तथा विभिन्न श्रम-संगठनों में आपस में एकता नहीं है। दलगत तथा निहित स्वार्थों के सामने श्रमिकों के कल्याण का कोई ध्यान नहीं रखा जाता। सुसंगठित श्रमिक संघों के अभाव में श्रमिक न तो अपनी माँगों को मालिकों के सामने रख सकते हैं और न व्यवस्थित रूप से अपने हितों पर विचार ही कर सकते हैं। अन्य प्रगतिशील देशों में श्रमिक संगठन दृढ़ और सुसंगठित होते हैं, अतः भारतवर्ष में मालिकों तथा सरकार द्वारा कल्याण कार्यों का महत्व तथा आवश्यकता अधिक है। इससे मजदूर अपने पैरों पर खड़े हो सकेगें, सुदृढ़ संघ बना सकेंगे, अपने हितों को समझ सकेंगे तथा मिलकर आगे बढ़ सकेंगे और देश के विकास में सुसंगठित रूप में भाग ले सकेंगे।

(२) अशिक्षा—अन्य देशों के श्रमिकों के मुकाबले में भारत में श्रमिकों में शिक्षितों की संख्या बहुत ही कम है। अधिकांश श्रमिक अशिक्षित हैं। इसमें न तो वे औद्योगिक कुशलता प्राप्त कर सकते हैं, न उद्योगों की समस्याओं को समझ सकते हैं और न अपने तथा राष्ट्र के हित को समझ सकते हैं। इससे केवल श्रमिकों की ही नहीं बल्कि मालिकों और देश की भी हानि होती है। अतः भारतवर्ष में श्रम कल्याण की आवश्यकता अधिक है। श्रम कल्याण के कार्यों से श्रमिक सुशिक्षित होंगे, औद्योगिक प्रशिक्षण प्राप्त कर सकेंगे और देश के योग्य नागरिक बन सकेंगे।

(३) प्रवासी प्रवृत्ति तथा अनुपस्थिति की समस्यायें—अन्य देशों की तुलना में भारतीय श्रमिकों में प्रवासी प्रवृत्ति अधिक है क्योंकि शहरों में उनके रहने आदि की आवश्यक सुविधायें नहीं हैं और न वहाँ का वातावरण उनके अनुकूल है। मजदूरी की दर अत्यधिक कम है और चीजों के दाम अधिक हैं। अतः श्रमिक जमकर किसी एक स्थान पर नहीं रह पाते। श्रम कल्याण के कार्यों से, आवास आदि की व्यवस्था तथा काम करने की दशाओं में उन्नति से श्रमिकों की प्रवासी प्रवृत्ति कम होगी। इससे श्रमिकों को बार-बार भाग कर गाँवों में अपने घर न जाना पड़ेगा क्योंकि वे नगरों में सपरिवार रह सकेंगे। अतः कारखानों में अनुपस्थिति कम होगी। मनोरंजन तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों से नशे, अपराध तथा वेश्यागमन की प्रवृत्तियाँ और दुराचरण कम होगा। इससे भी अधिक कारखानों में अनुपस्थिति की संख्या कम होगी।

(४) स्वास्थ्य तथा पोषण का निम्न स्तर—अन्य देशों की तुलना में भारतीय श्रमिकों के स्वास्थ्य का स्तर बड़ा नीचा है। इससे उनकी उत्पादन क्षमता प्रगतिशील

देशों के श्रमिकों की अपेक्षा कम हो गई है। अतः उनको पोषणयुक्त सस्ते भोजन तथा चिकित्सा आदि की सुविधाओं की बड़ी आवश्यकता है।

(४) अत्यधिक गरीबी—भारतीय श्रमिक अन्य देशों के श्रमिकों की अपेक्षा अत्यधिक गरीब है। गरीबी के कारण न तो वह अपने बाल-बच्चों के भरण-पोषण का प्रबन्ध कर सकता है और न उन्हें समुचित शिक्षा ही दिला सकता है। स्त्री श्रमिकों का स्वास्थ्य अन्य देशों की स्त्रियों की तुलना में बहुत खराब है और गरीबी के कारण वे प्रसूति आदि के समय आवश्यक संरक्षण नहीं पातीं। अतः भारतवर्ष में कल्याण कार्यों की भारी आवश्यकता है। मातृत्व कल्याण की सुविधाओं, धाय घरों और शिशु गृहों से भारतीय स्त्री श्रमिक भी अन्य देशों की स्त्री श्रमिकों के समान स्वस्थ, सुखी और कार्यकुशल हो सकेंगी। बालक-बालिकाओं की शिक्षा की व्यवस्था बड़ी जरूरी है। गरीबी के कारण भारतीय श्रमिक बुढ़ापे के लिये कुछ नहीं बचा पाता।। अतः उसके लिये प्रोविडेन्ट फण्ड या पेन्शन आदि की सुविधाओं की आवश्यकता और भी अधिक है।

(५) प्रशिक्षण की कमी—भारतीय श्रमिकों में प्रशिक्षितों (Trained) की संख्या बहुत कम है। अन्य देशों की तुलना में श्रमिकों में प्रशिक्षण की भारी कमी है। अतः प्रशिक्षण की सुविधाओं की बड़ी जरूरत है। अप्रशिक्षित होने के कारण दुर्घटनाओं की सम्भावना बढ़ जाती है। अतः दुर्घटनाओं से बचाव का समुचित प्रबन्ध होना चाहिये।

(६) स्वस्थ मनोरंजन की कमी—भारतवर्ष में स्वस्थ मनोरंजन का बड़ा अभाव है। इससे श्रमिकों में अपराध और दुराचरण फैलता है तथा उनकी कार्यकुशलता घटती है। अतः देश में स्वस्थ मनोरंजन की सुविधाओं का होना बड़ा आवश्यक है।

(७) भारत का औद्योगिक पिछड़ापन—औद्योगिक दृष्टि से अन्य देशों के मुकाबले में भारतवर्ष बहुत पिछड़ा हुआ है। देश में पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा औद्योगिक विकास का प्रयत्न किया जा रहा है। औद्योगिक प्रगति श्रमिकों पर निर्भर है और श्रमिकों की दशा अन्य देशों के श्रमिकों की तुलना में बड़ी दयनीय है। अतः श्रमिकों में सब प्रकार के कल्याण कार्यों की आवश्यकता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो गया होगा कि अन्य देशों की तुलना में भारतवर्ष से श्रम-कल्याण के कार्यों का महत्व और आवश्यकता क्यों अधिक है? श्रम-कल्याण के कार्यों से श्रमिक नैतिक पतन से बचेंगे, उद्योगों के क्षेत्रों में हड़ताल और तालेबन्दियों की घटनायें कम होंगी जिससे देश की योजनायें सफल हो सकेंगी।

प्रश्न ५८—संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—हड़ताल और तालेबन्दी।

उत्तर—यदि किसी व्यवसाय में कर्मचारियों को मालिक में विश्वास होता है और मालिक कर्मचारियों का ध्यान रखता है तो उनके परस्पर सम्बन्ध अच्छे रहते हैं

उद्योग में संघर्ष

और उनमें संघर्ष की नौबत नहीं आती। यदि कर्मचारी किसी कारण से अत्यधिक शोषण होते हुये भी विरोध नहीं करते और चुप रहते हैं तो भी उसका मालिकों से संघर्ष नहीं होता। दूसरी ओर यदि मालिक लोग सदैव समझदारी से काम लेते हैं तो कारखाने को बन्द करने की नौबत नहीं आती। परन्तु बहुधा ऐसा नहीं होता। बहुधा मालिक मजदूरों का ध्यान नहीं रखते। वे भूल जाते हैं कि मजदूर भी मनुष्य हैं उनकी भी बहुत-सी आवश्यकतायें हैं जिनको पूरा करना जरूरी है, उनका शोषण करने से वे विद्रोह कर सकते हैं। पहले जब कर्मचारी असंगठित थे तब बहुधा वे मालिकों का विरोध नहीं कर पाते थे। उनमें फूट डलवाकर मालिक लोग मनमानी किया करते थे। परन्तु आज हर एक देश में लगभग हर एक बड़े व्यवसाय में कर्मचारियों के संघ बने हुए हैं। कुछ मजदूर संघ तो अनेक देशों में फैले हुए हैं। अनेक मजदूर संघों के पीछे राजनैतिक दलों की शक्ति है। इन राजनैतिक दलों के बहुत से नेता विधान-सभाओं के सदस्य होते हैं। मजदूरों पर कहीं भी अत्याचार होने पर वे विधान सभाओं में शोर मचा देते हैं और सरकार पर जोर डालते हैं। इन सब बातों से कर्मचारियों में शक्ति की भावना रहती है। वे अत्याचार का मुंह-तोड़ जवाब देते हैं। शोषण होने पर वे उसका विरोध करते हैं। वे संगठित रूप में अपनी माँगें पेश करते हैं, सभायें करते है, जलूस निकालते हैं, नारे लगाते हैं और अन्त में हड़ताल (Strike) करते हैं। हड़ताल आज के औद्योगिक जगत की मुख्य समस्या है।

हड़ताल क्या है ?

हड़ताल मालिक से असहयोग की घोषणा है। हड़ताल में सबसे पहले काम करना बन्द कर दिया जाता है। इसके बाद सभायें होती हैं, जलूस निकाले जाते हैं, प्रदर्शन किये जाते हैं, सार्वजनिक रूप में अपनी माँगें पेश की जाती हैं और कर्मचारियों के प्रतिनिधि मालिकों के पास अपनी माँगें लेकर जाते हैं। हड़ताल के साथ में यह सब बातें लगी हुई हैं। इनके अलावा आजकल हड़ताल के साथ-साथ जनता में हड़ताल के उद्देश्यों का प्रचार किया जाता है और जनमत को कर्मचारियों के पक्ष में लाने की कोशिश की जाती है। कर्मचारियों के प्रतिनिधि सरकार के पास भी अपनी माँगों का प्रस्ताव भेजते हैं और हड़ताल के उद्देश्य बतलाते हैं।

हड़ताल क्यों होती है ?

यह हड़ताल क्यों होती है ? इसके मूल में मालिकों के प्रति कर्मचारियों का अविश्वास है। काम करने की दशायें अच्छी न होते हुए भी जब तक कर्मचारी यह समझते हैं कि मालिक उनका भला चाहता है और उनकी दशाओं को बेहतर बनाने की कोशिश कर रहा है तब तक वे हड़ताल नहीं करते। परन्तु जब मालिक उनकी एक नहीं सुनता, जब मालिक पर से उनका विश्वास उठ जाता है तब हड़ताल होती है। ऐसा नहीं है कि हड़ताल करने वाले श्रमिकों की माँगें सदैव उचित ही हों। कभी-कभी

राजनैतिक दलों के भड़काने से या अन्य निहित स्वार्थों के चक्कर में आकर अथवा द्वेष के वशीभूत होकर कर्मचारी हड़ताल करते हैं। बहुत से कर्मचारियों, विशेषतया बहुत से श्रमिकों के मस्तिष्क में यह बात घर कर जाती है कि मालिकों की कोठियाँ, कारें, धन वैभव और सुख के समान सब मजदूर के शोषण पर आधारित हैं। कभी-कभी इस विचारधारा के कारण मालिक का व्यवहार अच्छा होने पर भी और काम करने की दशायें साधारणतया सन्तोषजनक होने पर भी कर्मचारी हड़ताल कर बैठते हैं। इस प्रकार वर्ग द्वेष भी हड़ताल का एक कारण होता है। कभी-कभी मजदूर संघ के नेता लोग अपने स्वार्थों के कारण श्रमिकों को भड़काते हैं। वे बहुत-सी बातों को तोड़ मरोड़ कर उपस्थित करते हैं और उनको हड़ताल करने पर प्रेरित करते हैं।

इस प्रकार हड़ताल चाहे सही हो चाहे गलत, उसके उद्देश्य उचित हों अथवा अनुचित वह कर्मचारियों और मालिकों के मध्य अविश्वास का परिणाम है।

हड़ताल बन्द करने का उपाय

यह अविश्वास कभी-कभी मालिक खुद उत्पन्न करते हैं और कभी राजनैतिक नेता या दूसरे लोग उत्पन्न करते हैं। दोनों ही हालतों में विश्वास पैदा करने की जरूरत है। यदि मजदूर कुछ गलत माँगें भी पेश करते हैं तो भी उनको सुनना जरूरी है। हड़ताल के समय में कर्मचारी भीड़ का सा व्यवहार करने लगते हैं। बहुधा वे विवेक खो बैठते हैं। उनमें संवेग बड़ी आसानी से जाग्रत हो जाते हैं। छोटी-छोटी बात पर वे उत्तेजित हो बैठते हैं। ऐसे समय में यदि मालिकों ने समझदारी से काम नहीं लिया तो कारखानों में आग लगाने, तोड़ फोड़ करने आदि की भी नौबत आ जाती है। परन्तु यदि श्रमिकों की बातों को सुना जाय, चतुराई से उनको समझाया जाय, उनकी कठिनाइयाँ दूर करने का वायदा किया जाय और व्यर्थ भड़काने वालों का पर्दाफाश किया जाय तो ऐसी दुर्घटनायें टाली जा सकती हैं।

परन्तु उपचार से रोकथाम सदैव बेहतर है। मालिकों को यह कोशिश करनी चाहिये कि कर्मचारियों में अविश्वास कभी इतना न बढ़े कि हड़ताल की नौबत आ

हड़ताल की रोकथाम

जाये, उनको कर्मचारियों का विश्वास प्राप्त करने की बराबर चेष्टा करनी चाहिए। इसके लिये दो बातें जरूरी हैं, एक ओर तो कर्मचारियों से अच्छा व्यवहार किया जाय, दूसरी ओर उनके काम करने की दशाओं में उन्नति की जाय और उनके कल्याण का ध्यान रखा जाय। ये दोनों बातें होने पर कर्मचारियों का विश्वास बना रहता है और हड़ताल की नौबत नहीं आती।

मालिक मजदूर के अविश्वास का एक पहलू हड़ताल है तो दूसरा पहलू है तालेबन्दी (Lock out)। तालेबन्दी में, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है कारखानों

तालेबन्दी की समस्या

में और दफ्तरों में कर्मचारियों का प्रवेश रोक दिया जाता है और फाटकों में ताले लगा दिए जाते हैं। इससे लाखों श्रमिक और कर्मचारी बेकार हो जाते हैं तथा कभी-कभी उनके भूखों मरने की नौबत आ जाती है। कर्मचारियों का तो नुकसान होता ही है मालिकों का भी कम नुकसान नहीं होता। मशीनों के बन्द पड़े रहने से ही उनका हजारों रुपये का नुकसान होता है। उत्पादन बन्द होने से लाखों का व्यापार ठप्प हो जाता है। फिर तालेबन्दी से भड़ककर कर्मचारी कभी-कभी हिंसा पर उतर आते हैं। वे कारखानों पर चढ़ाई कर देते हैं, आग लगा देते हैं और तोड़ फोड़ करते हैं। इससे मालिकों की बड़ी हानि होती है। ऐसे अवसर पर मालिकों को पुलिस की सहायता लेनी पड़ती है। भीड़ को तित्तर-बित्तर करने के लिये कभी-कभी पुलिस को गोली भी चलानी पड़ती है। इससे कभी-कभी दो चार लोग मर जाते हैं और सब जगह मालिक की बदनामी होती है। मालिकों से भी अधिक तालेबन्दी से देश की हानि होती है। आज के आर्थिक जगत में विभिन्न उद्योग एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। अतः एक उद्योग में तालेबन्दी होने पर उससे सम्बन्धित दूसरे उद्योगों पर भी प्रभाव पड़ता है और कभी-कभी वहाँ पर भी तालेबन्दी की नौबत आ जाती है। उद्योगों में काम करने वाले कर्मचारियों के अलावा हजारों दूकानदार और दूसरे लोग भी उद्योग के सहारे अपनी जीविकायापन करते हैं। तालेबन्दी से ये सब भी बेकार हो जाते हैं। उद्योगों के बन्द होने से बाजार में वस्तु की पूर्ति (Supply) बन्द हो जाती है। माँग से पूर्ति के कम हो जाने से चीजों के दाम बढ़ते हैं और उपभोक्ता पर संकट आ जाता है। इस तरह आज की जटिल आर्थिक व्यवस्था में किसी भी बड़े उद्योग में तालेबन्दी होने पर न्यूनाधिक रूप में पूरे देश पर प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार वह एक राष्ट्रीय समस्या बन जाती है।

तालेबन्दी के कारण

कभी-कभी कुछ परिस्थितियाँ ऐसी आ जाती हैं कि तालेबन्दी जरूरी हो जाती है परन्तु आमतौर से तालेबन्दी अनुचित होती है। कभी-कभी उससे मालिक लोग कर्मचारियों को दबाना चाहते हैं। कभी-कभी कर्मचारियों को भूखे मरते देखकर उनको मजा आता है। कभी-कभी आत्मसम्मान के प्रश्न को उठाकर, कारखानों में ताले लगा दिए जाते हैं। कभी-कभी वे अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने के लिये ऐसा करते हैं। इन सभी परिस्थितियों में तालेबन्दी अनुचित है। इनमें मालिक लोग अपने स्वार्थों के सामने कर्मचारियों के साथ-साथ राष्ट्र का हित भी भूल जाते हैं। ऐसी दशा में सरकार को भी हस्तक्षेप करना चाहिए क्योंकि यह एक राष्ट्रीय प्रश्न बन जाता है। वास्तव में यदि कर्मचारियों के कल्याण का ध्यान रखा जाय, उनके काम करने की दशायें अच्छी रखी जायें, उनको समय-समय पर प्रलोभन दिये जायें, उनके लिए दुर्घटना में, बुढ़ापे में और अन्य आपत्ति के समय सुरक्षा का प्रबन्ध हो और इन सब बातों में सरकार

की ओर से नियम बनाये जायें तथा उन नियमों का कठोरता से पालन कराया जाय तो देश में हड़ताल और तालेबन्दी की दुर्घटनाओं को रोका जा सकता है।

जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है कि हड़ताल और तालेबन्दी एक ही समस्या के दो पहलू हैं। उनके मूल में मालिकों और कर्मचारियों का परस्पर अविश्वास, पूर्व आग्रह (Prejudice), आन्तरिक समूह की भावना (In-Group feeling), स्वार्थ और व्यर्थ का दंभ होता है। ये सब मनोवैज्ञानिक कारण हैं। परन्तु ये एकदम पैदा नहीं हो जाते। थोड़ी बहुत मात्रा में इनके रहने से हड़ताल और तालेबन्दी की नौबत भी नहीं आती। यह नौबत तो तभी आती है जब ये उग्र रूप में बढ़ जाते हैं और इनका इस सीमा तक बढ़ना बराबर रोका जा सकता है। रोकने का मुख्य उपाय आपस के अविश्वास, पूर्व आग्रह और व्यर्थ के दम्भ आदि को दूर करना है। इसके लिए एक ओर तो इनको फैलाने वाले दलों और व्यक्तियों पर निगरानी रखी जानी चाहिए और दूसरी ओर कल्याण के कार्य किए जाने चाहियें। परन्तु इसमें सरकार के साथ-साथ मालिकों और कर्मचारियों के सहयोग की भी जरूरत है। आज की जटिल आर्थिक व्यवस्था में किसी भी उद्योग में हड़ताल और तालेबन्दी की समस्यायें न्यूनाधिक रूप में राष्ट्रीय समस्यायें बन जाती हैं। अतः उनको सुलझाने के लिए सरकार कर्मचारियों, कर्मचारी संघों और मिल मालिकों सभी को मिलकर प्रयास करना चाहिए।

१०

पाठ्यक्रम में निर्धारित प्रयोग

(Experiments Prescribed in Syllabus)

प्रश्न ५९—शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण पर एक प्रयोग का वर्णन कीजिये।

स्थान..

नाम..

तिथि.............. **समय** ....

प्रयोग का नाम............शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण (Verbal group Intelligence Test)

प्रयोगकर्त्ता का नाम..................................

विषय—कक्षा ८ के विद्यार्थी।

प्रयोग का उद्देश्य—१. शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण के द्वारा विद्यार्थियों की बुद्धि-लब्धि निकालना।

२. बुद्धि स्तर के अनुसार उनका वर्गीकरण करना।

सामग्री—१. कक्षा ८ पर मान्यनिरूपित (Standardised) समूह बुद्धि परीक्षा।

२. विराम घड़ी (Stop watch)।

३. कुछ बनी हुई पैंसिलें।

परीक्षण का परिचय—यह एक समूह परीक्षण है जो कि पूरी कक्षा को दिया जाता है। एक साथ पूरे समूह की परीक्षा होने से इसमें समय की बचत होती है। मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं में बुद्धि परीक्षण, योग्यता परीक्षण, व्यक्तित्व के परीक्षण और रुचि के परीक्षण आते हैं। प्रस्तुत प्रयोग में बुद्धि परीक्षण किया जा रहा है। इससे परीक्षार्थियों की बुद्धि-लब्धि (I. Q.) मालूम होती है जिसके आधार पर उनका वर्गीकरण किया जा सकता है।

सावधानियाँ (Precautions)—१. परीक्षण आरम्भ करने से पहले यह देख लीजिए कि परीक्षण का कमरा हवादार है और उसमें प्रकाश की उचित व्यवस्था है।

२. देखिये कि परीक्षण स्थान में शान्त वातावरण है और परीक्षार्थियों के बैठने के लिए मेज आदि की उचित व्यवस्था है।

३. परीक्षार्थियों की डैस्क पर कोई किताब नहीं रहनी चाहिए।

४. परीक्षार्थियों के पास बनी हुई दो नुकीली पैंसिलें होनी चाहियें।

आदेश—परीक्षार्थियों के बैठने के बाद उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए उन्हें निम्नलिखित आदेश दीजियेः—

"आज मैं तुमको एक नये प्रकार का परीक्षण दूंगा। इसमें पूछे गये प्रश्न तुम्हारी पढ़ी हुई पुस्तकों से नहीं लिये गये हैं। तुम जरा सोच समझ कर और ध्यान देने से इन प्रश्नों को हल कर सकते हो। यही प्रश्न पत्र भी है और इसी पर तुमको उत्तर भी लिखना है।"

"अच्छा अब मैं तुमको परचे की कापियाँ बांटता हूँ। याद रखो जब तक तुम से कहा न जाये न तो इसे खोलो और न इसमें कुछ लिखो।"

इस आदेश के बाद हर एक परीक्षार्थी को कापियाँ बांट दीजिये और देख लीजिये कि सभी को कापियाँ मिल गई हैं या नहीं। अब प्रत्येक परीक्षार्थी से कापी के ऊपर के पृष्ठ पर माँगी गई सूचनायें जैसे नाम, पिता का नाम, तिथि इत्यादि को भरवा दीजिये। इसके बाद उनकी पैंसिलें रखवा दीजिए और परचे की कापी के ऊपर लिखे हुये निम्नलिखित आदेशों को कक्षा में जोर-जोर से तथा स्पष्ट रूप से पढ़िये। परीक्षार्थियों को आदेश दीजिये कि आप के साथ साथ वे भी उसको मन में पढ़ते चलें।

परीक्षण पुस्तिका पर लिखे हुये आदेश—१. जब तुम से परचा शुरू करने को कहा जाये तो इसके सवाल जितनी जल्दी और सावधानी से कर सकते हो करो।

२. सवालों को ठीक तरह करने के लिये जो आदेश और उदाहरण उनके पहले दिये गये हैं उन्हें ठीक तरह पढ़ो और समझो।

३. पहले पृष्ठ से शुरू करो और आखिर तक करते जाओ।

४. यदि तुम्हें कोई सवाल न आता हो तो उस पर समय खराब न करो और अगला सवाल करो।

५. जब तुम एक पृष्ठ पर काम खत्म कर चुको तो दूसरे पर काम करना शुरू कर दो।

६. यदि तुम्हें कुछ लिखना हो तो दाहिने या बाँयें हाथ की खाली जगह में लिख सकते हो।

७. यदि तुम्हें कोई उत्तर बदलना हो तो उसे काट कर साफ-साफ लिख दो।

८. परचा शुरू होने के बाद किसी तरह का कोई सवाल न पूछो।

९. इस पूरी परीक्षा के लिये कुल पैंतालीस मिनट का समय है।

आदेश देने के बाद अब परीक्षार्थियों से कहिये "तैयार, शुरू करो।"

तत्काल स्टाप वाच चला दीजिये और समय नोट कर लीजिये।

निरीक्षण—यह देखते रहना चाहिये कि परीक्षार्थी एक दूसरे की नकल करने की कोशिश न करें। साथ ही यह भी देखिये कि उन्हें काम करने में किसी प्रकार की बाधा न हो।

आधा घंटा समाप्त होने पर कहिये "१५ मिनट और हैं।"

समय समाप्त होने पर कहिये "समय समाप्त हो गया। पैंसिलें नीचे रख दो। कापियाँ बन्द कर दो और जब तक कहा न जाये अपनी सीट न छोड़ो।"

अब सबसे कापियाँ एकत्रित कर लीजिये और गिन लीजिये कि उनकी संख्या पूरी है। इसके बाद परीक्षार्थियों को बाहर जाने का आदेश दीजिये।

परीक्षण पुस्तिकाओं का अंकन—पहले से बनी हुई उत्तर सूची या कुंजी (Key) की सहायता से समस्त पुस्तिकाओं का अंकन कर लीजिये और हर एक के ऊपर प्राप्त फलांकों (Raw Score) को उचित स्थान पर लिख लीजिये। इन फलांकों को पहले से बनी हुई मानक (Norms) तालिका से देख कर हर एक की बुद्धि-लब्धि (I. Q.) निकाल लीजिये।

परीक्षा फल—अब परीक्षार्थियों के फलांक, बुद्धि-लब्धि और बुद्धि स्तर को नीचे दी गई तालिका में अंकित कीजिये और यह ज्ञात कीजिये कि विभिन्न बौद्धिक स्तर में कितने बालक आते हैं:—

कक्षा ८ (ब) परीक्षार्थियों की संख्या ३३

क्रमांक	नाम परीक्षार्थी	फलांक	बुद्धि-लब्धि	बुद्धि स्तर के अनुसार वर्गीकरण
१.	राजेन्द्र शर्मा	७२	१४५	सामान्य से उच्च
२.	रामचन्द्र	५०	१००	सामान्य
३.	प्रीतम सिंह	४०	८५	सामान्य से कम
४.	रफीक अहमद	५७	१०३	सामान्य
५.	डीसोजा	४५	९८	लगभग सामान्य

(इसी प्रकार सबके विषय में अंकन कीजिए)

निष्कर्ष—उपरोक्त परीक्षाफल देखने से ज्ञात होता है कि कक्षा ८ ब में बुद्धि स्तर के अनुसार विद्यार्थियों का निम्नलिखित रूप से वर्गीकरण किया जा सकता है :—

बुद्धि स्तर	बालकों की प्रतिशत संख्या
प्रतिभाशाली	२
अत्युत्तम	३
उत्तम	२
सामान्य से उच्च	३
सामान्य	६
सामान्य से निम्न	८
मंद बुद्धि	४
मानसिक दोषी	२

प्रश्न ६०—अशाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण पर एक प्रयोग का वर्णन कीजिए।

उत्तर—

स्थान ....

तिथि · ....समय··· ....

प्रयोग का नाम—अशाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण (Non-Verbal group Intelligence Test)।

प्रयोगकर्त्ता का नाम·························

विषय—कक्षा ८ के विद्यार्थी।

प्रयोग का उद्देश्य—१. अशाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण के द्वारा कक्षा ८ के विद्यार्थियों का बुद्धि स्तर ज्ञात करना।

२. बुद्धि स्तर के अनुसार उनका वर्गीकरण करना।

सामग्री—१. पिजन द्वारा बनाए गए अशाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण के उत्तर प्रदेश मनोविज्ञानशाला द्वारा किये गये हिन्दी रूपान्तर की प्रतियाँ।

२. उपरोक्त परीक्षण की कुंजी तथा कक्षा ८ में पढ़ने वाले उत्तर प्रदेश के बालकों पर आधारित इस परीक्षण के मानक।

३. स्टाप वाच।

परीक्षण का परिचय—जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है इस परीक्षण का निर्माण इंगलैंड के मनोवैज्ञानिक डी० ए० पिजन ने किया है। मनोविज्ञानशाला उत्तर प्रदेश द्वारा इसका रूपान्तर किया गया और उत्तर प्रदेश के कक्षा ८ के विद्यार्थियों के लिये इसके मानक बनाये गये हैं। यह एक समूह परीक्षण है। इसलिये इससे समय और श्रम की बचत होती है। यह अशाब्दिक परीक्षण है। इसलिये इसमें भाषा सम्बन्धी योग्यता के अन्तर से विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

सावधानियाँ—(१) परीक्षण शुरू करने से पहले यह देख लीजिये कि परीक्षण का कमरा हवादार है और उसमें प्रकाश की उचित व्यवस्था है।

(२) देखिये कि परीक्षण स्थान में शान्त वातावरण है और परीक्षार्थियों के बैठने के लिये कुर्सी, मेज आदि की उचित व्यवस्था है।

(३) परीक्षार्थियों की डैस्क पर कोई किताब नहीं रहनी चाहिये।

(४) परीक्षार्थियों के पास बनी हुई दो नुकीली पैंसिलें होनी चाहियें।

आदेश—अब परीक्षार्थियों के बैठने के बाद उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए उन्हें निम्नांकित आदेश दीजिये :—

"आज मैं तुम्हें एक बुद्धि परीक्षण दूंगा। इसमें पूछे गये प्रश्न तुम्हारी पढ़ी हुई पुस्तकों से नहीं लिये गये हैं। इसमें कुछ छोटे-छोटे प्रश्न हैं जिनका उत्तर तुम सोच कर दे सकते हो। यह परीक्षा एक कापी की शक्ल में है। इनके उत्तर भी

तुम्हें इसी पर लिखना है। अब मैं तुम्हें कापियाँ बांटता हूँ। याद रखो जब तक तुमसे कहा न जाए न तो इसे खोलो और न इसमें कुछ लिखो।"

इस आदेश के बाद हरएक परीक्षार्थी को कापियाँ बांट दीजिये और देख लीजिये कि सभी को कापियाँ मिल गई हैं कि नहीं। अब प्रत्येक परीक्षार्थी से कापी के ऊपर के पृष्ठ पर माँगी गई सूचनायें जैसे नाम, पिता का नाम, तिथि आदि को भरवा लीजिये। इसके बाद उनकी पेंसिलें रखवा लीजिये और कापी के ऊपर लिखे हुए आदेशों को कक्षा में जोर-जोर से और स्पष्ट रूप से पढ़िये। परीक्षार्थियों को आदेश दीजिये कि आपके साथ वे भी उसको मन ही मन में पढ़ते चलें।।

आदेशों को पढ़ने के बाद कहिये—

"यह परीक्षण चार भागों में बंटा हुआ है। हर एक भाग के लिए अलग-अलग समय निश्चित है जो तुम्हें बतला दिया जावेगा। हर एक भाग में अभ्यास के लिये कुछ प्रश्न दिये गये हैं। इनके तुम ठीक तरह से समझ सकोगे कि तुम्हें हर एक भाग में क्या करना है। इनके नम्बर परीक्षा के अंकों में शामिल नहीं किये जायेंगे।"

"अच्छा अब अभ्यास १ खोलो। इस पृष्ठ पर बाँयी ओर चार रेखायें एक दूसरे को काटती हुई खींची गई हैं। रेखाओं के बीच के स्थान में कुछ अंक लिख दिये गये हैं। दायीं ओर उसी तरह की शक्लें अलग-अलग दिखलाई गई हैं ताकि प्रत्येक भाग की शक्ल और अंक ठीक-ठीक देखे जा सकें।"

"अब नीचे देखो (दिखाइये)। इसमें पहले खाने में एक वर्ग है। ऊपर इसी तरह की शक्ल में नम्बर ५ लिखा है। इसीलिये वर्ग के नीचे भी पाँच लिख दिया गया है। अब दूसरे खाने को देखो (दिखाइये) इसमें एल (L) की शक्ल बनी है। ऊपर इसी तरह की शक्ल में नम्बर ३ लिखा है। इसीलिये उसके नीचे भी ३ लिख दिया गया है। अब तुम समझ गये होंगे कि तुम्हें क्या करना है। तुम्हें इनमें हर एक शक्ल को देखकर फिर उसी तरह की शक्ल ऊपर खोजना है और उसका नम्बर उस शक्ल के नीचे लिख देना है। इसी तरह तीसरी शक्ल का उत्तर ७ लिखा गया है क्योंकि उस तरह की शक्ल में ऊपर सात लिखा है।"

"अच्छा अब इसी तरह बाकी शक्लों के नीचे उनके नम्बर ठीक-ठीक लिखो।"

जब सब विद्यार्थी परीक्षण समाप्त कर चुकें तब उनके ठीक उत्तर बतला दीजिये और नीचे दिये हुये प्रश्नों को करने के लिये भी उसी प्रकार आदेश दीजिये। जब विद्यार्थी सब प्रश्नों को समाप्त कर दें तो उनके उत्तर भी बतला दीजिए और कहिए :—

"अगले दो पृष्ठों पर तुम्हें इन्हीं उदाहरणों के जैसी और बहुत सी शक्लें मिलेंगी। तुम्हें ऊपर की शक्ल को देखकर हर एक शक्ल के नीचे उसका ठीक

उत्तर लिखना है। इसके लिये साढ़े तीन मिनट का समय है। अच्छा, तैयार, शुरू करो।"

साढ़े तीन मिनट बाद कहिये "समय समाप्त हो गया। लिखना बन्द करो। पैंसिलें नीचे रख दो। अब पन्ना उल्टो और पृष्ठ पाँच पर अभ्यास दो निकालो।"

"इसमें उदाहरण नम्बर १ को देखो। इसमें बाईं तरफ की ३ शक्लों में कुछ समानता है। देखो कि दाहिनी ओर की कौन-सी दो शक्लें बाँई ओर की शक्लों से मिलती-जुलती हैं। उनके नीचे लकीर खींच दो। यहाँ बाँई ओर की तीनों शक्लें बनी हुई हैं। दाहिनी ओर की नम्बर २ और नम्बर ५ की शक्लें भी बनी हुई हैं। इसलिये उनके नीचे भी लाइन खींच दी गई है।"

इस उदाहरण को बतलाने के बाद अन्य सवाल विद्यार्थियों को स्वयं करने दीजिये। जब वे सब सवाल कर चुकें तो उन्हें उनके उत्तर बतला दीजिये तथा समझा दीजिये और कहिये :—

"आगे तुम्हें इसी तरह के बहुत से सवाल मिलेंगे। यह परीक्षा ६, ७ और ८ तीन पृष्ठों में है। इसके लिये पाँच मिनट का समय है। अच्छा, पन्ना उल्टो और शुरू करो।"

५ मिनट समाप्त होने के बाद कहिये :—

"समय समाप्त हो गया, लिखना बन्द करो और पैंसिलें नीचे रख दो। अब पृष्ठ ९ पर अभ्यास ३ निकालो इसमें उदाहरण नं० १ के अ और ब की शक्लों में जो सम्बन्ध है उसी तरह का सम्बन्ध स का द की किसी एक शक्ल से है। देखो इसका उत्तर ५ है। इसलिये द की नम्बर ५ की शक्ल के नीचे लाइन खींच दी गई है। इसमें अ और ब एक सी है किन्तु ब छायांकित है। अब तुम्हें द में से वह शक्ल ढूंढनी है जो स की तरह हो परन्तु छायांकित हो। यह शक्ल ५ है। इसलिये उसके नीचे लाइन खींच दी गई है।"

इस उदाहरण को समझाने के बाद विद्यार्थियों को बाकी सवाल स्वयं करने दीजिये। जब वे सब सवाल कर चुकें तो उन्हें उनके उत्तर बतला दीजिये और समझा दीजिये तथा कहिये :—

"यह परीक्षा १०, ११ और १२ तीन पृष्ठों में है इसके लिये ५ मिनट का समय है। पन्ना उल्टो और शुरू करो।"

पाँच मिनट गुजर जाने के बाद कहिये :—

"समय समाप्त हो गया, लिखना बन्द करो और पैंसिलें नीचे रख दो। अब पृष्ठ १३ पर अभ्यास ४ देखो। बांई ओर हर एक उदाहरण में ५ वर्ग हैं जोकि किसी एक क्रम में हैं। इनमें से एक वर्ग खाली छोड़ दिया गया है। तुम्हें दायीं ओर के पाँचों वर्गों में से वह वर्ग खोजना है जो उस खाली वर्ग की जगह ठीक फिट हो सके। उसे खोज कर उसके नीचे रेखा खींच देना है। पहले उदाहरण को देखो जिसमें पहले वर्ग में एक काली लकीर है, दूसरे में दो काली लकीरें हैं, तीसरा खाली है, चौथे में

चार और पाँचवें में पाँच लकीरें हैं। दायीं ओर दिये हुये पाँचों वर्गों में से चौथे वर्ग में तीन काली लकीरें हैं इसलिये वह खाली वर्ग में ठीक बैठ सकता है। अतः उसके नीचे रेखा खींच दी गई है।"

इस उदाहरण को समझाने के बाद अब विद्यार्थियों को बाकी सवाल स्वयं करने दीजिये। सब सवाल करने के बाद उन्हें उनके उत्तर बतला दीजिये और कहिये :—

"आगे तुम्हें इसी तरह के सवाल करने हैं। यह परीक्षा १४, १५ और १६ तीन पृष्ठों में है। इसके लिये साढ़े छः मिनट का समय है। तैयार, शुरू करो।"

साढ़े छः मिनट गुजर जाने के बाद कहिये :—

"समय समाप्त हो गया, पैंसिलें नीचे रख दो, जब तक मैं कापियाँ इकट्ठी न कर लूँ तब तक अपनी जगह पर बैठे रहो। कोई अपनी जगह से न उठे।"

अब कापियाँ इकट्ठी कर लीजिये और गिन कर देख लीजिये कि कापियाँ पूरी हैं कि नहीं।

परीक्षण पुस्तिकाओं का अंकन—कुंजी की सहायता से परीक्षण पुस्तिकाओं को जाँचिये तथा प्राप्त फलांकों को पुस्तिकाओं के ऊपर उचित स्थान पर दर्ज कर दीजिये। अब उत्तर प्रदेश मनोविज्ञानशाला के द्वारा उत्तर प्रदेश के कक्षा ८ के विद्यार्थियों के लिये बनाये गये मानकों की सहायता से हर एक विद्यार्थी के फलांक को प्रमाणित फलांक में बदल दीजिये। अब प्रमाणित फलांकों के अनुसार विद्यार्थियों को नीचे दिये गये ५ वर्गों में बांट दीजिये :—

प्रमाणिक फलांक	बुद्धि स्तर	वर्ग
१·५ तथा उससे ऊपर	प्रखर	A
·५ से १·४ तक	सामान्य से उच्च	B
—·४ से ·४ तक	सामान्य	C
—·५ से १·४ तक	सामान्य से निम्न	D
—१·५ तथा उससे नीचे	निम्न	E

परीक्षा फल—विद्यार्थियों के फलांक, प्रमाणित फलांक, बुद्धि स्तर, तथा वर्ग मालूम करने बाद उन्हें नीचे दी गई तालिका में भर दीजिये :—

क्रमांक	नाम परीक्षार्थी	फलांक	प्रमाणिक फलांक	बुद्धि स्तर	वर्ग

वर्गीकरण—ऊपर दी गई तालिका को भरने के बाद अब कक्षा के सभी विद्यार्थियों का उनके बुद्धि स्तर के अनुसार निम्नांकित प्रकार से वर्गीकरण कीजिये और यह ज्ञात कीजिए कि भिन्न-भिन्न बौद्धिक स्तर में कितने बालक हैं—

बुद्धि स्तर	वर्ग	बालकों की प्रतिशत संख्या
प्रखर	A	....
सामान्य से उच्च	B	....
सामान्य	C	....
सामान्य से निम्न	D	....
निम्न	E	....

प्रश्न ६१—व्यावसायिक रुचि-पत्री द्वारा रुचि का पता लगाने के लिए एक प्रयोग का वर्णन कीजिए।

उत्तर—

स्थान...

तिथि............................ समय ....

प्रयोग का नाम—व्यावसायिक रुचि पत्री द्वारा रुचि (Interest) का पता लगाना।

प्रयोगकर्त्ता का नाम...

विषय—कक्षा ८ के विद्यार्थी।

प्रयोग का उद्देश्य—सामूहिक तथा व्यक्तिगत रूप से कक्षा ८ के विद्यार्थियों की व्यवसायिक रुचि का पता लगाना।

सामग्री—(१) मनोविज्ञानशाला में उत्तर प्रदेश द्वारा बनाई गई व्यवसायिक रुचि-पत्री की प्रतियाँ।

(२) उत्तर-पत्री।

प्रयोग का परिचय—रुचि का पता लगाने की अनेक विधियों में से एक प्रमुख विधि रुचि-पत्री द्वारा रुचि का पता लगाना है। यह पत्री सामूहिक और व्यक्तिगत दोनों ही रूप से दी जा सकती है। इसमें कुछ व्यवसायों तथा कार्यों के नाम लिखे हुए हैं। ये कार्य तथा व्यवसाय तीन-तीन के समूह में रखे गए हैं। इस प्रकार के सौ समूह हैं। हर एक समूह में एक पर सही तथा गुणा का निशान लगाकर परीक्षार्थी को क्रमशः अपनी रुचि और अरुचि प्रकट करनी होती है। जो कथन खाली बच जाता है उसमें न तो अरुचि मानी जाती है और न विशेष रुचि।

सावधानियाँ—(१) परीक्षण आरम्भ करने से पहले यह देख लीजिये कि परीक्षण का कमरा हवादार है और उनमें प्रकाश की उचित व्यवस्था है।

(२) देखिये कि परीक्षण स्थान में शांत वातावरण है और परीक्षार्थियों के बैठने के लिये कुर्सी मेज आदि की उचित व्यवस्था है।

(३) परीक्षार्थियों की डैस्क पर कोई किताब नहीं रहनी चाहिये।

(४) परीक्षार्थी के पास बनी हुई दो नुकीली पैंसिलें होनी चाहियें।

आदेश—उपरोक्त सावधानियों के बाद परीक्षार्थियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए उनसे कहिये :—

"यह पत्री तुम्हारी परीक्षा के लिए नहीं है। इसका उद्देश्य तुम्हारी व्यवसायिक रुचि का पता लगाना है। यह है उत्तर-पत्री और यह रुचि-पत्री (दिखलाइये)। तुम्हें केवल उत्तर-पत्री पर ही लिखना है। रुचि-पत्री पर कुछ नहीं लिखना है। रुचि-पत्री के प्रति दिये गये तुम्हारे उत्तरों से यह मालूम होगा कि तुम्हें कौनसा व्यवसाय बहुत पसंद है, कौन-सा नापसंद है और कौन-सा न रुचिकर है और न अरुचिकर। तुम्हें रुचिकर के आगे सही का निशान और अरुचिकर के आगे गुणा का निशान लगाना है और तीसरे को खाली छोड़ देना है। सही के निशान से तुम्हारी पसंद मालूम होगी और गुणा के निशान से तुम्हारी अरुचि। जिस पर कोई निशान नहीं है उसको तीसरे वर्ग में माना जायेगा अर्थात् वह न रुचिकर है और न अरुचिकर। अच्छा अब मैं पत्रिया बांटता हूँ।"

अब विद्यार्थियों को रुचि-पत्रियाँ बांट दीजिये और उनके नाम इत्यादि भरवा लीजिये। फिर उनका ध्यान रुचि-पत्री की ओर आकर्षित करते हुए कहिये कि आप उसके आदेशों को जोर से पढ़ेंगे और परीक्षार्थी भी आपके साथ उसे मन में पढ़ते चलें।

(१) यह सूची तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए नहीं है। इसका उद्देश्य तुम्हारी व्यवसायिक रुचि का पता लगाना है।

(२) नीचे कुछ व्यवसायों तथा कार्यों के नाम लिखे हुए हैं। ये व्यवसाय तथा कार्य तीन-तीन के समूह में रखे गए हैं। इस प्रकार के १०० समूह हैं। हर एक समूह के व्यवसाय अ, ब और स द्वारा इंगित किये गये हैं।

(३) हर एक समूह के तीनों व्यवसायों को ध्यान से पढ़ो और इन तीनों व्यवसायों में से सबसे अधिक पसंद और सबसे अधिक नापसंद व्यवसाय चुन कर क्रमशः उनके आगे सही और गुणा का निशान लगा दो। हर एक समूह का उत्तर दी हुई उत्तर-पत्री पर बने उसी संख्या के अ, ब या स के सामने वाले खाने में लिखना पड़ेगा।

(४) जिन व्यवसायों में जाने से पहले कोई प्रशिक्षण (Training) लेना पड़ता है उनके बारे में मान लो कि तुम्हें वह प्रशिक्षण दे दिया गया है।

(५) किसी एक समूह में अधिक देर तक रुकने की जरूरत नहीं है। तीनों को एक बार पढ़ कर जो विचार तुम्हारे मस्तिष्क में सबसे पहले आये उसी के अनुसार अपनी रुचि और अरुचि को व्यक्त करो।

(६) ध्यान रखो तुम्हें किसी भी समूह को तोड़ना नहीं है।

(७) इस पत्री के लिए कोई समय निश्चित नहीं है। फिर भी तुम्हें इसे आधे घंटे में आसानी से कर लेना चाहिए।

(८) अब अगले पृष्ठ से काम शुरू करो।

उपरोक्त आदर्शों को पढ़ने के बाद परीक्षार्थियों से कहियेः—

अब नीचे जो उदाहरण दिये गये हैं उनको देखो। मैं तुम्हें उन्हें समझाता चलूंगा।

	१ अ	√
१—(अ) सामाजिक उपन्यास पढ़ना।	....	......
	ब	×
(ब) स्कूल सहकारी समिति का कोषाध्यक्ष बनना।	....	......
	स	
(स) विज्ञान का शिक्षक बनाना।	....	......

इस उदाहरण में अ के सामने सही का निशान बना है और ब के सामने गुणा का निशान बना है। इससे स्पष्ट है कि इन तीनों व्यवसायों में अ अर्थात् सामाजिक उपन्यास पढ़ना बहुत पसंद है क्योंकि उसके आगे सही का निशान बना है। ब के आगे गुणा का निशान लगे होने से स्पष्ट है कि स्कूल सहकारी समिति का कोषाध्यक्ष बनना सबसे कम पसन्द या नापसन्द है। अब इसी तरह का एक और उदाहरण देखो।

	२ अ	×
२—(अ) लोहे के कारखाने में काम करना।	....	....
	ब	
(ब) सिंचाई के तरीके जानना।	....	....
	स	√
(स) अखबारों में सुधार सम्बन्धी लेख लिखना।	....	....

इस उदाहरण में अ के आगे गुणा का निशान बना है जिससे जाहिर है कि लोहे के कारखाने में काम करना सबसे कम पसन्द है। स के आगे सही का चिन्ह लगे होने से यह मालूम पड़ता है कि अखबारों में सुधार सम्बन्धी लेख लिखना बहुत पसन्द है।

इन उदाहरणों से तुम्हें मालूम हो गया होगा कि इसी तरह तुम्हें अपनी पसंद के व्यवसायों के आगे सही का और नापसंद व्यवसाय के आगे गुणा का निशान लगाना है। इस तरह हर एक समूह में से एक व्यवसाय या कार्य छूट जायेगा जो न तो रुचिकर माना जायेगा और न विशेष अरुचिकर।

अच्छा अब पन्ना खोलो और काम शुरू करो। काम करने में जो आदेश मैंने अभी पढ़कर सुनाये हैं, उनको ध्यान में रखो। जब तुम काम पूरा कर चुको तो कलम मेज पर रख दो जिससे मुझे यह मालूम हो जाये कि तुम काम कर चुके हो।

निरीक्षण—ध्यान रखिये कि कोई विद्यार्थी किसी की नकल न करे और न किसी के काम में कोई बाधा पड़े। जब सब विद्यार्थी काम पूरा कर चुकें तो सबसे पत्रियाँ लेकर गिनकर देख लीजिए कि पूरी हैं अथवा नहीं। इसके बाद विद्यार्थियों को बाहर जाने का आदेश दीजिये।

रुचि-पत्री का अंकन—पहले से बनाई गई स्टैन्सिलों की सहायता से उत्तर-पत्रियों को जाँच डालिए और प्रत्येक भाग में फलांक उस पर लिख दीजिए।

इस तरह दसों भागों के अलग-अलग दस फलांक होंगे। इनसे दस प्रकार की रुचियाँ मालूम होंगी जो कि रुचि-पत्री में दिये गये चार्ट में दिखलाई गई हैं। रुचि-पत्री के दस भागों में से छः भागों में हर एक के दस कथन हैं और बाकी में हर एक में केवल पाँच कथन हैं। इसलिए रुचियों के तुलनात्मक अध्ययन के लिये यह जरूरी है कि पाँच कथन वाले भागों के फलांक को दुगुना कर दीजिए। अब इन फलांकों को रुचि-पत्री के चौथे पृष्ठ पर दिये गये चार्ट में गुणा के चिन्ह द्वारा दिखलाइये। इन चिन्हों को मिलाकर एक परिपार्श्व चित्र बना लीजिये। इस परिपार्श्व चित्र से व्यक्ति की रुचियों के आपेक्षित महत्व का पता चलता है।

व्यवसायिक रुचि का पार्श्व-चित्र

नाम—सीता राम

कक्षा—८

रुचि-क्षेत्र	फलांक
(१) बाह्य (Outdoor)	
(२) यांत्रिक (Mechanical)	
(३) गणनात्मक (Computational)	
(४) वैज्ञानिक (Scientific)	
(५) समझाने बुझाने के कार्य (Persuasive)	
(६) कलात्मक (Artistic)	
(७) साहित्यिक (Literary)	
(८) संगीतात्मक (Musical)	
(९) समाज सेवा (Social Service)	
(१०) लिपिक सम्बन्धी (Clerical)	

यदि इस पार्श्व चित्र में सबसे अधिक फलांक साहित्य के हैं तो इससे स्पष्ट है कि इसी में परीक्षार्थी की सबसे अधिक रुचि है। इसी तरह कक्षा के सभी विद्यार्थियों की रुचि का पार्श्व चित्र बनाइये।

निष्कर्ष—विद्यार्थियों के परिपार्श्व चित्र बनाने और उनकी परस्पर तुलना से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं :—

१. हर एक बालक की रुचियाँ दूसरों से भिन्न हैं।

२. हर एक बालक की कुछ रुचियाँ प्रबल हैं, कुछ सामान्य हैं और कुछ अत्यन्त मन्द हैं।

३. हर एक बालक में बहुधा एक से अधिक क्षेत्रों में प्रबल रुचियाँ दिखलाई पड़ती हैं।

४. यह स्पष्ट मालूम होता है कि विद्यार्थियों की भावी शिक्षा और व्यवसाय की योजना में उनकी रुचियों को जान कर उचित निर्देशन दिया जा सकता है।

प्रश्न ६२—जाति सम्बन्धी दो पूर्वधारणाओं (prejudices) की प्रचलित कहावतें बताइये। इनकी असंगति (Absurdity) को दिखाने के लिए क्या उपाय करेंगे ? (यू० पी० बोर्ड १९६४)

उत्तर—

स्थान ....

तिथि .... समय ....

प्रयोग का नाम—लोकोक्तियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण जिससे कि उनका अपर्याप्त आधार सिद्ध हो सके।

प्रयोगकर्त्ता का नाम ....

विषय—विभिन्न व्यवसायों में लगे हुये तथा विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्तर के बनिया जाति के १० व्यक्ति।

प्रयोग का उद्देश्य—१. जाति, सम्प्रदाय या प्रदेश के आधार पर प्रचलित लोकोक्तियों का अपर्याप्त आधार सिद्ध करना। यहाँ पर "आँबा, नीबू, बानियाँ, जे दाबे रस देंय। कायस्थ, कौआ, करहटा, जे मरेउ रस लेंय।" की लोकोक्ति में यह परीक्षा करना है कि बनिये दबाने से देते हैं या स्वेच्छा से भी दूसरों के लिए रुपया पैसा आदि खर्च करते हैं।

२. ऐसी लोकोक्तियों का संग्रह करना जिनमें जाति, सम्प्रदाय या प्रदेश के विरुद्ध पूर्वाग्रह पर आधारित कोई कथन हो।

सामग्री—इस प्रयोग के लिये आवश्यक लोकोक्तियों की सूची। ऐसी एक सूची यहाँ दी गई है जिसमें से उपरोक्त लोकोक्ति चुनी गई है।

१. आँबा, नीबू, बानियाँ, जे दाबे रस देंय।
कायस्थ, कौआ, करहटा, जे मरेउ रस लेंय।

२. कायस्थ का बच्चा कभी न सच्चा।

३. खत्री पुत्रं कभी न मित्रं।
जब मित्रं तब दगी दगा।

४. ब्राह्मण, कुत्ता, हाथी, ये न जाति के साथी।
५. तगा, ततैया, बीजली, तीनों जाति कुजाति।
६. खत्री दाता हजार में, कायस्थ सौ में सूम।
बनिया बाँगा लाख में, ब्राह्मण पाँगा कौम।
७. अहीर, गडेरिया, पासी, तीनों सत्यनासी।
८. काला ब्राह्मण, गौर चमार।
इसके संग न उतरे पार।
९. कुक्कुर पानी पिये सुरुक्का। तबहूँ न मानिये मीत तुरुक्का।।
१०. लाला में सक्सेना मुसलमानों में ब्रेहना।
११. तेली तमोली सांग उखारें, तो खत्री काहे जाय जुहारे।
१२. ना चमार के कतहू गाँव, न कुक्कुर के ससुराल।
१३. सरदार जी के बारह बजे।
१४. जो जाहिल नहीं, वह पठान नहीं।
१५. नौ कनौजिया तेरह चूल्हा।
१६. नाई राखे छत्तीस आसन।
१७. ब्राह्मण खवाए से, ठाकुर रिझाये से और बनिया दबाये से।
१८. लाल हृदय लाली ध्वजा टोटो लाल लगाय।
चले लाल खेतिहरन के दे शासन पलटाय।
१९. पूरब दिशा मत जइयों मेरे स्वामी वहाँ की नारि सयानी।
२०. मेरी बीबी राजस्थानी, मुझसे रोज भरावे पानी।
२१. इलाहाबादी निधरक होते हैं, बलियाटिक मूर्ख होते हैं।
२२. पंजाबियों के कोई चरित्र नहीं होता, बिहारी बौड़म होते हैं, बंगाली चट होते हैं।
२३. झाँसी गले की फांसी, दतिया गले का हार।
रहो ललितपुर तब तक, जब तक मिले उधार।

प्रयोग का परिचय—अपने दैनिक जीवन में हम रोजाना की बोलचाल में बहुत-सी लोकोक्तियाँ सुनते रहते हैं जिनसे किसी जाति, सम्प्रदाय या प्रदेश के विरुद्ध पूर्वाग्रह दिखलाई पड़ते हैं। इन लोकोक्तियों को कह कर लोग भिन्न जाति, सम्प्रदाय या क्षेत्र के लोगों के प्रति कुंठा, निराशा या क्षोभ की भावनायें प्रकट करते हैं। इन्हें कहकर उन्हें एक प्रकार का सन्तोष होता है। ये लोकोक्तियाँ परम्परागत चलती रहती हैं। परन्तु वास्तव में इनका आधार उचित और यथार्थ नहीं होता। प्रस्तुत प्रयोग में इसी तथ्य की प्रयोग द्वारा परीक्षा की जायेगी।

सावधानियां—इस प्रयोग में परीक्षा के लिए जो लोकोक्ति चुनी गई है उसमें बनिया जाति के व्यक्ति के व्यवहार के बारे में यह कहा गया है कि जिस

तरह आम और नीबू दबाने से ही रस देते हैं उसी तरह बनिया भी दबाने से ही देता है, दबे बगैर कभी कोई चीज अपनी खुशी से नहीं देता। इसी तरह की बात अनेक अन्य लोकोक्तियों में भी कही गई हैं। इस लोकोक्ति की परीक्षा करने के लिए हमें बनिया जाति के व्यक्तियों के व्यवहार का निम्नलिखित परिस्थितियों में अध्ययन करना चाहिये :—

(१) पारिवारिक व्यवहार—क्या बनिया जाति के व्यक्ति परिवार में दबाव के बगैर केवल त्याग की भावना से कोई काम नहीं करते।

(२) पड़ौसियों से व्यवहार—क्या बनिया जाति के व्यक्ति पड़ौसियों से दबाये जाने पर भी सद्व्यवहार करते हैं अथवा दबाये जाने पर सदैव झुक जाते हैं ?

(३) सामाजिक व्यवहार—क्या बनिया जाति के व्यक्ति समाज में दबाये जाने से उचित और अच्छा व्यवहार करते हैं या दबाये जाने से प्रतिरोध करते हैं और अपनी मरजी से ही सद्व्यवहार करते हैं।

प्रयोग के लिये व्यक्तियों का चुनाव

इन बातों की परीक्षा करने के लिये बनिया जाति के दस व्यक्तियों की एक काल्पनिक सूची निम्नलिखित है :—

क्रम सं०	नाम	व्यवसाय	मासिक आय
१.	श्री प्रमोद गुप्ता	कारखानेदार	लगभग ५००० रु०
२.	श्री मोतीराम अग्रवाल	प्रोफेसर	३०० रु०
३.	श्री राधेश्याम गोयल	वकील	१००० रु०
४.	सेठ श्याम बिहारी लाल मित्तल	साहूकार	निश्चित नहीं
५.	श्री हरसरन दास	परचून की दुकान	३५० रु०
६.	डॉ० राधाकान्त कंसल	डाक्टरी	७०० रु०
७.	श्री अवध बिहारी लाल	हैड मास्टर	२५० रु०
८.	श्री देवी दयाल गर्ग	जज हाई कोर्ट	३५०० रु०
९.	श्री केदार नाथ बंसल	इन्जीनियर	१२०० रु०
१०.	श्री त्रिलोचन नाथ रस्तोगी	पुस्तक विक्रेता	८०० रु०

निरीक्षण—१—श्री प्रमोद गुप्ता
कारखानेदार
आय लगभग ५००० रुपये मासिक

पारिवारिक व्यवहार	पड़ौसियों से व्यवहार	सामाजिक व्यवहार	निष्कर्ष
गुप्ता जी परिवार के सदस्यों से बड़ा स्नेहपूर्ण व्यवहार रखते हैं। उन्होंने परिवार के अनेक गरीब सदस्यों के लड़कों को पढ़ाया है और लड़कियों की शादियाँ करायी हैं।	पड़ौसियों को गुप्ता जी से कोई शिकायत नहीं है। दूसरी ओर वे मुहल्ले के मुखिया माने जाते हैं। हर तरह के सुख, दुःख में छोटे स्तर के लोग उनसे सहायता लेते है।	गुप्ता जी ने शहर में स्टेशन के पास एक धर्मशाला बनवाई है। चन्दा मांगने वाले को वे कभी खाली हाथों नहीं लौटाते।	गुप्ता जी अपने पारिवारिक, सामाजिक और व्यवसायिक जीवन में अपने खरे परन्तु सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार के लिये प्रसिद्ध हैं।
२—श्री मोतीराम अग्रवाल, प्रोफेसर, मासिक आय ३०० रुपये			
प्रोफेसर अग्रवाल कुछ कड़े मिजाज के व्यक्ति हैं। ये विना बात किसी को परेशान नहीं करते मगर साथ ही साथ परिवार में अनुशासन बनाये रखना चाहते हैं।	मौहल्ले में प्रोफेसर अग्रवाल किसी भी गलत काम को रोकने में सबसे आगे होते हैं। सारे मौहल्ले में उनका सम्मान और रौब है।	कुछ अक्खड़ होते हुए भी प्रोफेसर अग्रवाल मिलने जुलने वालों से बड़ी सहानुभूति और सज्जनता से पेश आते हैं। इतने कम वेतन में भी वे गरीब विद्यार्थियों की सहायता करते रहते हैं।	प्रोफेसर अग्रवाल किसी से नहीं दबते और बड़े अनुशासनप्रिय हैं। परन्तु परिवार समाज, कालिज सभी जगह उनका व्यवहार अच्छा है।

निरीक्षण ३—श्री राधे श्याम गोयल
वकील
आय लगभग १००० रुपये मासिक ।

पारिवारिक व्यवहार	पड़ौसियों से व्यवहार	सामाजिक व्यवहार	निष्कर्ष
वकील साहब के घर वालों को उनसे कोई शिकायत नहीं है। वह एक अच्छे पिता और आदर्श पति हैं।	मौहल्ले में वकील साहब बड़े सज्जन व्यक्ति माने जाते हैं। सक्सेना साहब उनके विरुद्ध मालूम पड़े परन्तु इसका कारण यह ज्ञात हुआ कि उसमें व्यावसायिक प्रतियोगिता है।	यद्यपि वकील साहब सामाजिक कामों में अधिक रुपया पैसा नहीं खर्च करते परन्तु उनको कन्जूस भी नहीं कहा जा सकता।	वकील साहब मितव्ययी हैं परन्तु अपने परिवार वालों, पड़ौसियों और अन्य लोगों से उनका व्यवहार अच्छा और उदार है।

निष्कर्ष १—बनिया जाति के विभिन्न व्यक्तियों के पारिवारिक व्यवहार, पड़ौसियों से व्यवहार और सामाजिक व्यवहार के विवेचन से यह ज्ञात हुआ कि यह लोकोक्ति सही नहीं है कि "अम्बा, नींबू, बानियाँ जे दाबे रस देंय।" विभिन्न व्यक्तियों का व्यवहार भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है, जहाँ कोई व्यक्ति दबाने से काम करता है वहाँ दूसरा व्यक्ति दबाने से उल्टा बिगड़ जाता है। बनियाँ जाति के लोग इस तथ्य के अपवाद नहीं है।

२—सामूहिक रूप से कक्षा के सभी विद्यार्थियों के प्रयोगों से पता चला कि चुनी हुई लोकोक्ति में जो बात कही गई है वह सच नहीं है।

प्रश्न ६३—विज्ञापनों को एकत्र कर उनका प्रभाव जानने के लिए जो प्रयोग आपने किया हो, उसको लिखिए। (यू० पी० बोर्ड १९६५)

स्थान ....

तिथि ....समय..

प्रयोग का नाम—विज्ञापन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण।

प्रयोगकर्त्ता का नाम..

विषय—स्वयं।

प्रयोग का उद्देश्य—कुछ विज्ञापनों का संग्रह करना तथा उनकी अपील के मनोवैज्ञानिक आधारों का पता लगाना।

सामग्री—समाचार-पत्रों तथा मानसिक पत्रिकाओं की प्रतियाँ।

प्रयोग का परिचय—विज्ञापन का उद्देश्य उपभोक्ता के ध्यान को आकर्षित करके उसमें विज्ञापन की गई वस्तु को खरीदने की इच्छा तथा प्रेरणा उत्पन्न करना होता है। इसके लिए विज्ञापनकर्त्ता विज्ञापन करने में उपभोक्ताओं की रुचियों, अभिवृत्तियों तथा इच्छाओं को ध्यान में रखते हैं। इस प्रयोग से यह पता लगाना है कि विभिन्न प्रभावक विज्ञापनों की अपील के क्या मनोवैज्ञानिक आधार हैं।

सावधानियां—(१) एकाग्रचित होकर विज्ञापनों का अध्ययन करने के लिये विषय को शान्त वातावरण में बिठाना चाहिये।

(२) विषय को मनोविज्ञान के उन सामान्य तत्वों का ज्ञान होना चाहिए जिन पर विज्ञापन बहुधा आधारित होते हैं।

विधियाँ—(१) यह प्रयोग एक दिन में और एक स्थान पर भी किया जा सकता है और अनेक दिनों में तथा अनेक स्थानों पर भी किया जा सकता है।

(२) प्रयोग के लिये विषय को किसी मेले या प्रदर्शिनी में भेजा जा सकता है।

(३) प्रयोग के लिये विषय को नगर के किसी मुख्य बाजार में भी भेजा जा सकता है।

(४) यह प्रयोग पत्र-पत्रिकाओं से छांटकर विज्ञापनों का अलबम बनाकर भी किया जा सकता है।

आदेश—विषय को समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं की कुछ प्रतियाँ देकर आदेश दीजिये कि वह उनको पलटता जाय और जो विज्ञापन उसे प्रभावक लगें उनके विषय में संक्षिप्त नोट ले ले। जब यह काम हो जाये इसके बाद उससे कहिये कि वह नोट किये गये विज्ञापनों में से ऐसे दस विज्ञापन चुन ले जो अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली हों।

अब विज्ञापनों का मनोवैज्ञानिक विश्लेपण करना है। इसके लिये उदाहरण स्वरूप दो तालिकायें आगे दी गई हैं। विषय से कहिये कि इन तालिकाओं के समान वह अपने दसों विज्ञापनों का विश्लेषण करे और उनके विषय में अग्रलिखित बातें बतलाये।

विषय विज्ञापनों का विवरण और अपना अन्तर्दर्शन बोलता गया जिसे नोट कर लिया गया।

फल :—

क्रम संख्या	विज्ञापन का विवरण	अन्तर्दर्शन	विज्ञापन की आकर्षकता के वस्तुगत निर्धारक	मनोवैज्ञानिक आधार
१.	सूट पहने हुये एक नौजवान खड़ा है। एक ओर खड़ी तीन लड़कियाँ उसे देख रही हैं! विज्ञापन में बाँई ओर लिखा है "वे देखती हैं।" "वे घूरती हैं"। "वे प्रशंसा करती हैं।" दाहिनी और मोदी का ट्रेलान (Tralon) सिकुड़न विहीन सूटिंग और टाटलान (Totlon) विज्ञापन समाचार-पत्र के आधे पृष्ठ पर छपा है।	विज्ञापन देखकर इच्छा हुई कि काश मेरे पास भी यदि इन कपड़ों का सूट होता तो मैं भी आकर्षण का केन्द्र बन जाता। उस नौजवान के भाग्य पर ईर्ष्या भी हुई। अपनी गिरी आर्थिक स्थिति पर ग्लानि हुई परन्तु फिर इच्छा हुई कि इस कपड़े के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त की जाय।	१. आकार २. नवीनता ३. शब्दों का चयन	१. यौन प्रेरणा २. स्पर्धा ३. महत्वाकांक्षा ४ जिज्ञासा
२.	मर्फी रेडियो के विज्ञापन में 'मर्फी-बालक' सैनिक पोशाक पहने और हाथ में बन्दूक लिए है। उसके नीचे लिखा है "मर्फी रेडियो खरीदने से भी पहले डिफेन्स बांड खरीदिए। मर्फी रेडियो का चित्र बना है।	विज्ञापन में मर्फी बालक को सैनिक की पोशाक में देखकर देशभक्ति की भावना जाग्रत हुई। आज देश के बच्चे-बच्चे को देश की सुरक्षा के लिए प्रयास करना है। लिखे हुए शब्दों को पढ़कर देश के लिए त्याग और मर्फी रेडियो के लिए प्रशंसा और आदर का भाव जाग्रत हुआ।	१. नवीनता २. शब्द चयन ३. सामयिकता	१. त्याग की भावना २. देशभक्ति की भावना ३. प्रशंसा और आदर ४. उत्साह

(इसी प्रकार १० विज्ञापन तक)

निष्कर्ष—१. उपरोक्त तालिका देखने से स्पष्ट होता है कि विज्ञापनों में कुछ वस्तुगत निर्धारक भी उन्हें आकर्षक बनाते हैं परन्तु अधिकतर उनकी अपील का आधार मनोवैज्ञानिक होता है। विज्ञापन हमारे अन्दर यौन प्रेरणा, स्पर्धा, महत्वाकांक्षा, जिज्ञासा आदि उत्पन्न करते हैं जिससे हम उनको याद रखते हैं और उनसे सम्बन्धित वस्तुओं को खरीदने को प्रेरित होते हैं।

२. पूरी कक्षा के प्रयोग द्वारा लिये गये निष्कर्षों से भी इसी बात की पुष्टि हुई।

प्रश्न ६४—एसेम्बली के चुनाव के अवसर पर चुनाव प्रचार के परीक्षण तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के प्रयोग का वर्णन करो।

उत्तर—

स्थान...

तिथि................................ **समय**......................................

प्रयोग का नाम—एसेम्बली के चुनाव के अवसर पर चुनाव प्रचार का परीक्षण और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण।

प्रयोगकर्त्ता का नाम..

विषय—चुनाव के प्रचारक और सामान्य जनता जिसमें प्रचार हो रहा है।

प्रयोग का उद्देश्य—चुनाव के अवसर पर होने वाले प्रचार का निरीक्षण करना और तथ्यात्मक आधार (Factual basis), सांकेतिकता (Suggestibility) तथा संवेगात्मक अपील (Emotional Appeal) के प्रसंग में उसका विश्लेषण करना।

सामग्री—प्रयोग पुस्तिका।

परिचय—म्यूनिस्पैलिटी, जिला बोर्ड तथा एसेम्बली के चुनावों के अवसरों पर विभिन्न राजनैतिक दल जनता के वोट जीतने के लिये जनता में तरह-तरह से प्रचार करते हैं। इन प्रचारों से तथ्यों को हर तरह से तोड़ मरोड़ कर अपने पक्ष में करने की चेष्टा की जाती है और दूसरों के दोषों को ढूंढ-ढूंढ कर दिखाया जाता है। इस प्रकार अपने प्रचार का तथ्यात्मक आधार देने का प्रयास किया जाता है। जनता से अपनी बात मनवाने के लिये उनको तरह-तरह से संकेत दिये जाते हैं और उनके संवेगों को उकसाया जाता है। इस प्रकार सांकेतिकता और संवेगात्मक अपील का लाभ उठाकर जनता को अपने पक्ष में और दूसरों के विरुद्ध मोड़ने का प्रयास किया जाता है।

सावधानियाँ—१. सबसे पहले समस्या को अधिक से अधिक स्पष्ट कर लीजिये और उसके हर एक पहलू को भली प्रकार देख लीजिये ताकि प्रयोग के निष्कर्षों को प्रमाणिक माना जा सके।

२. किसी राजनैतिक दल की सभा में सम्पूर्ण कार्यक्रम और नेता के भाषण का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करके उसमें तथ्यात्मक आधारों, सांकेतिकता और संवेगात्मक अपील का पता लगाइये।

निरीक्षण—चुनाव के अवसर पर किसी राजनैतिक दल की प्रचार सभा में निम्नलिखित बातों का निरीक्षण कीजिए :—

१. देखिये कि नेता के आगमन की सूचना देने और उनका भाषण सुनने के लिए लोगों को किसी निश्चित स्थान पर एकत्रित करने के लिए क्या किया गया।

२. देखिये कि नेता का स्वागत किस प्रकार किया गया और उनका परिचय देते समय उनकी प्रशंसा में क्या-क्या कहा गया।

३. नेता जी ने विरोधी दलों पर जो दोषारोपण किये वे कहाँ तक सत्य पर आधारित थे ?

४. देखिये कि नेता जी ने अपने दल द्वारा किये गए कार्यों के बारे में जो कुछ कहा वह कहाँ तक तथ्यात्मक था।

५. देखिये कि जनता को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से क्या संकेत दिये गए।

६. नेता जी ने जनता के संवेगों को उभारने और उन्हें अपने अनुकूल करने के लिये भाषण में क्या-क्या कहा ?

प्रयोग—चार जनवरी के स्थानीय समाचार पत्रों में यह समाचार छपा कि····· पार्टी के सबसे बड़े नेता श्री········मंगलवार की शाम को ५ बजे भैंसाली ग्राउंड में एसेम्बली के चुनाव के विषय में अपना भाषण देंगे। इस भाषण की सूचना लाउडस्पीकर के द्वारा शहर के हर एक मौहल्ले में भी घूम-घूम कर दे दी गई। प्रयोग-कर्ता निर्धारित समय पर भैंसाली ग्राउंड पर पहुँच गया। भैंसाली ग्राउंड पर एक ओर एक बड़ा शानदार और ऊँचा मंच बनाया गया था। मंच पर पार्टी के झण्डे लहरा रहे थे। मंच को अच्छी तरह सजाया गया था, मैदान में बैठने वालों के लिए मंच के सामने काफी दूर तक दरियाँ बिछाई गई थीं। आने-जाने वालों का ध्यान आकर्षित करने के लिए और एकत्रित लोगों को रोके रखने के लिये रिकार्ड बजाये जा रहे थे। अच्छी खासी चहल पहल थी।

ठीक ५ बजे नेता जी एक खुली कार के द्वारा ग्राउंड पर पहुँचे। नेता जी के पहुँचते ही पार्टी के सदस्यों ने उनका जय जय कार किया। जनता के बहुत से लोगों ने इसमें उनका साथ दिया। नेता जी मंच पर पहुँचे। पार्टी के स्थानीय प्रधान ने उनको फूल मालायें पहनाईं और उनका परिचय कराते हुये कहा कि "हमारे नगर का बड़ा सौभाग्य है कि नेता जी ने हम लोगों को सही रास्ता दिखाने के लिए हमारे नगर में आकर हमें दर्शन दिये। आज चुनाव के दिनों में जब कि जनता के हर एक

सदस्य को अपना एक बहुत बड़ा फर्ज अदा करना है उस मौके पर नेता जी के भाषण से आप लोगों को ज्ञात होगा कि आप को क्या करना है।'' इसके बाद नेता जी से प्रार्थना की गयी कि वह अपना भाषण शुरू करें।

नेता जी ने अपना भाषण शुरू किया। सबसे पहले उन्होंने जनता की वर्तमान कठिनाइयों, गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा आदि का ऐसा सजीव चित्र खींचा कि जनता में संवेग जाग्रत हो उठे। फिर उन्होंने ऐसे बहुत से तथ्य बतलाये जिनसे यह मालूम होता था कि अन्य पार्टियों के लोग देश की बागडोर सम्भालने में सर्वथा अयोग्य हैं। नेता जी ने अपने दल के कारनामों का खूब बढ़ा चढ़ा कर वर्णन किया जिससे यह मालूम हो कि उनका दल ही देश का शासन सम्भालने के लिये सबसे अधिक उपयुक्त है। नेता जी ने यह नहीं कहा कि लोग उनकी पार्टी को वोट दें। परन्तु उनके भाषण से जनता को ऐसा ही करने का संकेत मिलता था। उन्होंने देश विरोधी काम करने वालों को देश के शत्रु बताया, जनता में उनके विरुद्ध क्रोध भड़काया। उन्होंने चीनी आक्रमण से उत्पन्न हुए संकट की ओर ध्यान दिलाकर जनता से सही व्यक्ति को वोट देने की अपील की। तालियों की गड़गड़ाहट के बीच नेता जी का भाषण समाप्त हुआ।

निरीक्षण—नेता जी के पूरे भाषण को निम्नलिखित रूप तीन भागों में बांट कर विश्लेषण किया गया:—

(१) तथ्यात्मक आधार (Factual Basis)—

(i) उनकी पार्टी ने देश के लिये निम्नलिखित कार्य किये :—

(अ) ....

(ब) ....

(ii) विरोधी पार्टी के निम्नलिखित कार्य से देश को हानि हुई :—

(अ) ....

(ब) ....

(स) ....

(२) संकेत (Suggestion)—

१. **सम्मान संकेत (Prestige Suggestion)**—इतने बड़े नेता का एक छोटे से नगर में आकर जनता का मार्ग दर्शन करने के लिये भाषण देना, नेता जी को फूल मालायें पहनाना, उनका जय जय कार करना इत्यादि।

२. **अप्रत्यक्ष संकेत (Indirect)**—नेता जी के भाषण से जनता को उनके दल को वोट देने का अप्रत्यक्ष संकेत मिला।

३. **नकारात्मक संकेत (Negative)**—नेता जी के भाषण से जनता को अन्य दलों के प्रतिनिधियों को वोट न देने का संकेत मिला।

(३) संवेगात्मक अपील (Emotional Appeal)—

१. जनता की गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा और दुर्दशा से जनता में क्रोध निराशा, भय, घृणा आदि के संवेग जाग्रत हुये।

२. नेता जी ने जिन लोगों को इस दुर्दशा के लिए जिम्मेदार ठहराया, जनता में उनके प्रति क्रोध और घृणा के संवेग उत्पन्न हुआ।

३. नेता जी ने चीनी आक्रमण से उत्पन्न संकट की ओर ध्यान दिलाया तो जनता में भय का संवेग उत्पन्न हुये।

निष्कर्ष—इस प्रकार एसेम्बली के चुनाव के अवसर पर चुनाव प्रचार का विश्लेषण करने से और अन्य लोगों के द्वारा म्यूनिसपैलिटी, जिला बोर्ड आदि के चुनाव के अवसर पर प्रचार के निरीक्षण से तुलना करने से यह ज्ञात हुआ कि प्रचार में प्रचारक लोग जनता में संवेग उभारते हैं, उसको अपने पक्ष में लाने के लिये संकेत देते हैं और तथ्यों को इस तरह तोड़ मरोड़ कर उपस्थित करते हैं कि उनकी बातों में तथ्यात्मक आधार दिखाई पड़े।

परन्तु इस सम्बन्ध में निम्नलिखित दो बातों में प्रचारकों में अन्तर दिखाई पड़ा—

(१) भिन्न-भिन्न प्रचारक तथ्यों, संवेगों और संकेतों को भिन्न-भिन्न रूप से इस्तेमाल करते हैं। कोई संवेग उभारने पर अधिक जोर देता है तो कोई अपने भाषण में अधिकतर तथ्यों को ही गिनाता है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सभी प्रचारक संकेत देने की कोशिश करते हैं।

(२) यह देखा गया कि एक ही तथ्य को भिन्न-भिन्न प्रचारक अपने-अपने दृष्टिकोण से भिन्न-भिन्न अर्थों में जनता के सामने उपस्थित करने की चेष्टा करते हैं। उदाहरण के लिए यह तथ्य है कि देश में गरीबी, भुखमरी और अशिक्षा है। परन्तु हर एक पार्टी के प्रचारक दूसरी पार्टी के नेताओं को देश की इस दुर्दशा के लिए जिम्मेदार ठहराते हैं। जहाँ सरकारी पार्टी के लोग यह बतलाते हैं कि इनको दूर करने के लिये सरकार ने क्या-क्या किया, वहाँ विरोधी पार्टी के प्रचारक सरकार के दोषों और असफलताओं की ओर जनता का ध्यान दिला कर उसे सरकार के विरुद्ध भड़काने और अपने पक्ष में करने की कोशिश करते हैं।

———

सहायक पुस्तकों की सूची

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में निम्नलिखित पुस्तकों से सहायता ली गई है :—

1. Akolkar, V. : Social Psychology, (1957) Asia Publishing House.
2. Anastasi, A. : Phychological Testing, (1954) Macmillan.
3. Bell, J. E. : Projective Techniques, (1948) Longmans Green.
4. Bernard, H. W. : Mental Hygiene for Classroom Teachers, (1952) McGraw Hill.
5. Bhatia, C. M. : Mental Testing and National Reconstruction, (1949) Hind Kitabs.
6. Bhatia, C. M, : Performance Test of Intelligence, (1955) Oxford University Press.
7. Bingham, W. V. D. : Aptitude & Apt. Testing, (1942) Harper.
8. Blum & Balansky : Counselling & Psychology, (1951) Prentice Hall.
9. Burt, H. E. : Applied Psychology, (1957) Prentice Hall.
10. Bureau of Psy U. P. : Procedure for Personal Guidance, Pub. No. 3, 1950.
11. Bureau of Psy. U. P. : Procedure for Voc. Guidance, Pub. No. 4., 1950.
12. Bureau of Psy. U. P. : Stanford-Binet Hindi Adaptation Test, Pub. No. 5, 1952.
13. Bureau of Psy. U. P. : The School Psychologist, Pub. No. 8, 1961.
14. Byrne & Bouthilet : You and Your Mental Abilities, S. R. A., Better Living Booklet.
15. Chapman, P. W. : Your Personality & Your Job, S. R. A., Life Adjustment Booklet.
16. Chronbach, L. J. : Essentials of Psy. Testings, (1949) Harper, New York, Oct. 1958.
17. Deptt. of Edu. U. P. Govt. 'SHIKSHA' Guidance Number.
18. English & Foster : Your Behaviour Problem, S. R. A., Life Adjustment Booklet.
19. Ferguson, L. W. : Personality Measurement, (1952) McGraw Hill, Book Co., New York.
20. Gardner, B. B. : Human Relations in Industry, (1946) Richard D. Irwin.

21. Gray, J. S. : Psy. Applied to Human Affairs, (1954 McGraw Hill Book Co., New York.
22. Griffith, C. R. : An Introduction to Applied Psy, (1946) Macmillan, Co., New York.
23. Harding. D. W. : Social Psy. and Individual Values, (1953) Hutchinson University Library.
24. Haitley & Haitley : Fundamentals of Social Psy. (1952) Alfred A. knopf.
25. Heron, W. E. : The Analysis of Fantasy, (1956) John Willey & Sons.
26. Heron, A. R. : Why Men Work, (1948) Stanford University Press.
27. Jones, A. J. : Principles of Guidance, (1951) McGraw Hill.
28. Kamath. V. V. : Measuring Intelligence of Indian Children, (1952) Oxford University Press.
29. Klopfer & Others : The Rorschach Technique, Harrap & Co.
30. Kuder & Paulson : Exploring Children's Interest, S. R. A., Better Living Booklets Chicago (1949).
31. Kuder & Paulson : Discovering Your Real Interest, S. R A., Better Living Booklets, Chicago (1954).
32. Lippman, H. S. : Treatment of Child in Emotional Conflict, S. R. A., Life Adjustment Booklet.
33. Maier, N. R. F. : Psychology in Industry, (1955) Houghton Miffin.
34. Meminger, W. C. : Understanding Yourself, S. R. A., Life Adjustment Booklet.
35. Menzil, E. W. : The Use of New-type Tests in India, (1956) O. U. P.
36. Merill, M. A. : Measuring Intelligence, (1948) Harrap & Co.
37. Ministry of Edu. India : A manual of Edu. Voc. Guidance (1957), Pub. No. 300.
38. Ministry of Edu. India : Workshop on Voc. Guidance (1955), Pub. No. 183.
39. Mundel, H. E. : Motion & Time Study, (1950) Prentice Hall.
40. Shafer & Shoben : The Psy. of Adjussment, (1956) Houghton Mifflin.
41. Stoops and Rosenheim : Planning Your Future Job, S. R.A., Life Adjustment Booklets, Chicago (1953).
42. Super, D. E. : Appraising Voc. Fitness, (1949) Harper & Bros.

43. Thurston : Manual of S. R. A., Primary Mental Abilities Test.
44. Traxler, A. E. : Techniques of Guidance, 1957) Harper.
45. Vernon, P. E. : Structure of Human Abilities (1951) John Willey.
46. Vernon, P. E. : Recent Trends in Mental Measurement & Statistical Analysis, (1956) Published in 'Studies in Education', University of London Press.
47. Viteles, M. S. : Motivation and Morale in Industry (1954) Staples Press.
48. Walter, J. E. : Applied personal Administration New York (Wiley) 1931.
49: Wechsler, D. : Manual Wechsler Intelligence Scale for Children, (1949), Psy. Corp., N. Y.
50. Willy Paul : Helping the Gifted child, S. R. A., Better Living Booklet.
51. Wrightson, J. B. : What Tests Can Tell About Children, S. R. A , Better Living Booklet.

———

यू० पी० बोर्ड के परीक्षा प्रश्न पत्र

१९६३

मनोविज्ञान

द्वितीय प्रश्न-पत्र

(व्यवहृत मनोविज्ञान)

सूचना—(१) केवल पांच प्रश्नों के उत्तर लिखिए। (२) सभी प्रश्नों के अंक समान हैं।

१. बुद्धि से क्या तात्पर्य है? बुद्धिमापन (Intelligence Testing) के शाब्दिक (Verbal) तथा अशाब्दिक (Non-verbal) परीक्षण में क्या भेद हैं? इन दोनों का प्रयोग किन-किन विशेष परिस्थितियों में होता है?

२. बाल अपराध किसे कहते हैं? इसके सामाजिक तथा आर्थिक कारणों की व्याख्या कीजिये।

३. भीड़ तथा श्रोता समूह में क्या अन्तर है? उदाहरण सहित समझाइये। भीड़ को किस प्रकार नियन्त्रण में लाया जा सकता है?

४. सामूहिक तनाव (Group Tension) का विकास किस प्रकार होता है? जातिवाद (Casteism) तथा साम्प्रदायवाद (Communalism) के उदाहरण देकर अपने उत्तर को स्पष्ट कीजिये।

५. विज्ञापन कला (Advertisement) के क्या सिद्धान्त हैं? विज्ञापन के मनोवैज्ञानिक प्रभाव की विवेचना कीजिए।

६. किसी उद्योग (Industry) में काम करने वाले लोगों (Personnel) का चुनाव किन सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है? इस प्रकार के चुनाव (Selection) तथा व्यावसायिक निर्देशन (Vocational Guidance) के अन्तर को स्पष्ट कीजिये।

१९६४

मनोविज्ञान

द्वितीय प्रश्न-पत्र

(व्यवहृत मनोविज्ञान)

सूचना—(१) केवल पांच प्रश्नों से उत्तर लिखिये। (२) सभी प्रश्नों के अंक समान हैं।

१. मनोवैज्ञानिक परीक्षण की विश्वसनीयता (Reliability) तथा वैधता (Validity) से आप क्या समझते हैं? किसी परीक्षण की विश्वसनीयता को निश्चित करने के लिए किन विधियों का उपयोग किया जाता है?

२. जूनियर हाई स्कूल स्तर पर शैक्षिक निर्देशन के महत्व का विवेचन कीजिये। उपयुक्त निर्देशन के मार्ग में किन-किन कठिनाइयों का अनुभव होता है।

३. मानसिक-स्वास्थ्य विज्ञान (Mental Hygiene) तथा मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health) में क्या अन्तर है? पाठशाला के बालकों में मानसिक स्वास्थ्य के संवर्द्धन के लिये आप सामान्यतः क्या उपाय करेंगे?

४. बाल अपराध के मनोवैज्ञानिक कारणों पर प्रकाश डालिए। अपने उत्तर की पुष्टि उदाहरणों से कीजिये।

५. भीड़ के प्रमुख रूपों को बताइये। इनमें से प्रत्येक प्रकार की भीड़ के मनोवैज्ञानिक लक्षणों का वर्णन कीजिये।

६. पूर्वधारणा (Prejudice) से क्या तात्पर्य हैं? पूर्वधारणा किस प्रकार सामूहिक तनाव उत्पन्न करती है? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिये।

७. प्रचार (Propaganda) का क्या अर्थ है? प्रचार में नारों (Slogans) का क्या स्थान है? कुछ उदाहरण देकर समझाइये।

८. मनोविज्ञान का उद्योग में क्या महत्व है? कर्मचारियों के चयन (Personnel Selection) में मनोविज्ञान किस प्रकार सहायक होता है?

९. रुचि-पत्री (Interest Inventory) अथवा निर्धारणमान (Rating Scale) का वर्णन कीजिये।

अथवा

जाति-पाँति सम्बन्धी दो पूर्व-धारणाओं (Prejudices) की प्रचलित कहावतें बताइये। इनकी असंगति (Absurdity) को दिखाने के लिए आप क्या उपाय करेंगे?

१९६५
मनोविज्ञान
द्वितीय प्रश्न-पत्र
(व्यवहृत मनोविज्ञान)

सूचना—(१) केवल पांच प्रश्नों के उत्तर दीजिये।
(२) सभी प्रश्नों के अंक समान हैं।

१. बुद्धि-लब्धि (Intelligence Quotient) से आप क्या समझते हैं ? यदि १० वर्ष की अवस्था के बालक की मानसिक आयु १२ वर्ष है तो उसकी बुद्धि-लब्धि क्या होगी तथा उसका स्तर क्या होगा ? बुद्धि-लब्धि के अनुसार लोगों का वर्गीकरण कैसे होता है ?

२. व्यावसायिक निर्देशन (Vocational Guidance) से आप क्या अर्थ समझते हैं ? व्यावसायिक निर्देशन के लिए किन-किन बातों को जानना आवश्यक है—इस पर प्रकाश डालिए।

३. मानसिक अस्वस्थता (Mental Ill-Health) के कारणों की संक्षेप में विवेचना कीजिए।

४. बाल-अपराध (Juvenile Delinqueney) किसे कहते हैं ? बाल अपराध के मनोवैज्ञानिक कारणों पर प्रकाश डालिए।

५. साधारण भीड़ (Crowd) और आक्रमक भीड़ (Mob) में क्या भेद है ? साधारण भीड़ की क्या विशेषतायें हैं ?

६. पूर्वधारणा (Prejudice) से क्या अभिप्राय है ? उदाहरण देकर समझाइये। पूर्वधारणा को दूर करने के लिये क्या उपाय हैं ?

७. प्रचार (Propaganda) से क्या अभिप्राय है ? प्रचार के विभिन्न साधनों की तुलना कीजिये।

८. विज्ञापनों को एकत्र कर उनका प्रभाव जानने के लिये जो प्रयोग आपने कया हो, उसको लिखिये।

९. निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिये :—

(क) परीक्षणों की वैधता और विश्वसनीयता (Validity and Reliability of Tests)।

(ख) उत्तर प्रदेश में निर्देशन सेवायें (Guidance Services in U. P.)।

(ग) कर्मचारियों का चयन (Personnel Selection)।

(घ) निर्देशनशीलता (Suggestibility)।

———

यू० पी० बोर्ड की इन्टरमीडियेट परीक्षा में मनोविज्ञान
विषय के प्रथम प्रश्नपत्र के पाठ्यक्रमा[illegible]

सामान्य मनोविज्ञान

डॉ० वात्स्यायन

अध्याय	१	परिभाषा, क्षेत्र और मूल्य
अध्याय	२	मनोवैज्ञानिक अध्ययन की पद्धतियाँ
अध्याय	३	अनुक्रिया यन्त्र और ज्ञानेन्द्रियाँ
अध्याय	४	प्रेरणा
अध्याय	५	संवेग और अनुभूति
अध्याय	६	प्रत्यक्षीकरण
अध्याय	७	ध्यान
अध्याय	८	स्मृति और साहचर्य
अध्याय	९	कल्पना और चिन्तन
अध्याय	१०	सीखना
अध्याय	११	व्यक्तित्व
अध्याय	१२	अचेतन
अध्याय	१३	थकान
अध्याय	१४	कुछ प्रयोग